श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -2

देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित ''सारसमुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-2)

[श्लोक 52 से 108 तक]

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ मूलकृति – श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित 'सार-समुच्चय'

❖ प्रस्तुत कृति – **''सद्-देशना'' (भाग-2)**
(श्लोक क्रमांक 52 से 108 तक, आगरा एवं जयपुर में किये प्रवचनों का संग्रह)

❖ देशनाकार – **श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ संकलन – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादन – पण्डित शिवचरणलाल जैन, मैनपुरी (उ.प्र.)

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र कुमार जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल

❖ प्रस्तुति सहयोग – ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना
श्रीमती अनीता नरेन्द्र चौधरी, उज्जैन

❖ आवृत्ति – प्रथम, वर्ष 2015, 2200 प्रतियाँ

❖ प्रकाशक – श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ पुण्यार्जक –
- श्री आजादकुमार रवि देवी जैन 'बीड़ीवाले', इंदौर
- श्री रज्जीलाल जैन मोदी 'सुपाड़ीवाले', सागर

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ न्यौछावर – रु. 150/- (पुनर्प्रकाशनार्थ

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
	सम्पादकीय	VI
	मंगलाचरण	XII
52	मिथ्यात्व संसार का बीज है	1
53	कुशासनों का कोप	9
54	मोह का परिणाम	17
55	मिथ्यादृष्टि की रुचि	26
56	कर्मनाश का कारण : धर्माचरण	34
57	दुष्कर्मों का नाशक सुकृत	41
58	धर्माचरण करने की प्रेरणा	49
59	कषाय और इन्द्रिय हैं चोर	55
60	संयम-बिना पश्चात्ताप	61
61	जीवन की सार्थकता	68
62	जीवित कौन? मरा कौन?	79
63	परम सुख का कारण	85
64	धर्म सुखकारी व तारक	94
65	धर्म नहीं छोड़ना	101
66	मृत्यु समय नहीं जाना जाता	108
67	निमित्तान्तर से मृत्यु	115
68	जन्म की निरर्थकता	125
69	पापकर्म की दशा	132
70	जिनधर्म धारण करने की प्रेरणा	132

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
71	परम आश्चर्य	140
72	धर्म ही त्राता है	146
73	दु:खी होने का कारण	150
74	कर्मोदय होने पर रक्षक कौन	158
75	भोगों से तृप्ति नहीं होती	162
76	विष है विषयभोग	171
77	इन्द्रियसुख सुखाभास हैं	180
78	इन्द्रियों को धर्मकार्यों में लगाने की प्रेरणा	189
79	इन्द्रियविषय ही शत्रु हैं	201
80	आत्मा ही शत्रु है	213
81	आत्महित में रत कौन?	226
82	इन्द्रियविषय परम कष्टकारी	239
83	परमतत्त्व का स्वरूप	239
84	संसारातीत होने का कारण	252
85	जीवन की सफलता	265
86	विश्व में पूज्यनीय	277
87	साधु सुख का भोक्ता	291
88	विनयी का अपमान नहीं होता	304
89	विषयों में प्रवृत्ति नहीं करना	319
90	स्त्री-संसर्ग दु:ख का कारण	319
91	कामाग्नि दाहक है	329
92	कामान्ध को शान्ति नहीं	329
93	काम ही महाव्याधि है	336
94	कर्मास्रव की कारण है कामाग्नि	336

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
95	काम से संसार-परिभ्रमण	341
96	काम दु:खों की खान	341
97	काम को वश करना कठिन	353
98	काम धन का नाशक	353
99	कामाधीनता भवसमुद्र में गिराती है	353
100	धर्म से पराङ्मुख करनेवाला भी काम है	368
101	काम तापकारक है	368
102	शल्य की चिकित्सा	368
103	कामवासना अनर्थ की पोषक	382
104	सर्व आपत्ति का मूल काम	382
105	संसारपरिभ्रमण का कारण है काम	394
106	काम निवारण मन्त्र	394
107	कामी की प्रवृत्ति	408
108	कामी की प्रवृत्ति	408
●	संदर्भ ग्रंथ सूची	420

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्त्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासन नायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतल प्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवतः एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवन परिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथ रचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप् छन्दों में

संस्कृत भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचना 'आत्म स्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुपयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधन रूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाशन हो चुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषा वचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935) सूरत व नरियां वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह (संभवतः मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी

का भाषा टीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य हैं।

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है।

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥ 326/सा.स.॥

बालस्वभाव वाले कुलभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टय्प छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुतः यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघ नायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध्यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व श्रावक सभी के लिए परम रसायण का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के

रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पचासों कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी देशना की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।''

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्त:करण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विराग सागर जी से बाल ब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैन शासन रूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद् देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद् देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त शीर्षकों को भी लिया गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञान भावना पूर्वक तप करणीय है, आत्म चिकित्सा की प्रेरणा, संसार दु:ख नाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद् देशना की भाषा शैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले पदयात्री-करपात्री पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से नि:सृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्य श्री की उभय लोक हित करूणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जना: धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिता:।
दुर्लभा: हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षव: ॥

वृथाही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करूणारस पूरित हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्य श्री परोपकार की मूर्ति हैं। जिनमें स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्तगुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोक भाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबता नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

"आचार्यप्रवर कुलभद्रस्वामी जगत् के जीवों को श्रद्धा का बोध करा रहे हैं। अर्हन्त जिनेन्द्र की वह गम्भीर दिव्य-देशना, जो अभद्रों को भी समन्तभद्र कर देती है, कितने ही अभद्र प्राणी हों, जिनेन्द्र की देशना को सुनते ही समन्तभद्र हो जाते हैं। वह देशना 'देशना' नहीं जिससे अभद्र को समन्तभद्रता प्राप्त न हो।"

"जिसको संसार में अभी और अधिक समय भटकने की भावना हो, वे अच्छी तरह मिथ्यात्व का सेवन करना और जिनको संसार में भटकने की इच्छा नहीं है, वे आज ही मिथ्यात्व छोड़ देना। जिनको मोक्ष की इच्छा है, उनको मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए। हे माँ! जगत् के सारे प्रपंचों का त्याग कर दो। मूसल, कुआँ पूजने से मोक्ष मिलने वाला नहीं है।"

''मन्त्र से नाग को वश में किया जा सकता है, लेकिन मन्त्र से मन को वश नहीं किया जा सकता है। मन को वश करना है, तो अरिहंत की वाणी का तंत्र चाहिए। मन को वश करने का सुगम उपाय वीतरागी आचार्यों द्वारा प्ररूपित जिनागम का स्वाध्याय है। मन को वश में करना हो तो जिन अशुभ ज्ञेयों में मन जा रहा है, उन अशुभ ज्ञेयों से मन को हटाकर शुभ ज्ञेयों में लगा दीजिए, यदी मन को वश में करना है।''

''जिन कारणों से अशुभ भाव आते हैं, उन कारणों से अपने आपको दूर कर लो और शुभ कार्य में लवलीन हो जाओ, तो अशुभ कार्य से बच जाओगे।''

''जितने युद्ध हुए हैं, जितने नाश हुए हैं, उनमें दो को ही श्रेय है। एक 'श्री', दूसरी स्त्री। महाभारत 'श्री' (धन) के कारण और रामायण स्त्री के कारण बना। श्री, स्त्री के राग में कोटि-कोटि योद्धा नष्ट हो गये। जिनको निष्कलंक जीवन जीना है, उनको इन दो से दूर रहना चाहिए। जितने कलंकित जीवन जी रहे हैं, इन्हीं दो के कारण। साधु हो या गृहस्थ इन्हीं दो के कारण बदनाम हुए हैं।''

''जो आत्मा में कर्म लगे हैं, उनके कलंक तो नष्ट किये जा सकते हैं, परन्तु अपयश का कलंक लग गया, तो भगवान् बनकर भी नहीं मिटा पाओगे।''

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकस्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती हैं इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च परम पूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्ध सागर जी महाराज को शतशः नमन। उनके मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य से ही यह कार्य, जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा। समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़ने वाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार। **श्री वाय. के. जैन, श्री नीरज जी, पिन्टु भैया आगरा** एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द का अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर जनता जनार्दन को सुख शान्ति का सन्देश देकर जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350
दि. 28-08-2014

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रि परिषद्

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान् हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव-समाज को दु:खी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अत: उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा को अपनाना ही महत्त्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं, भाव महत्वपूर्ण होते हैं।

निवेदन

इस ग्रन्थ में प्रमादवश व अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे त्रुटियों का यथास्थान संशोधन करें तथा उन संशोधनों/त्रुटियों से मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अत: त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र कुमार जैन
ए-60, पद्मनाभ नगर, भोपाल 462023
दूरभाष-2759084
चलित-8989405479

प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः॥

अविरल शब्दघनौघ प्रक्षालितसकलभूतल कलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः परम्पराचार्यगुरवे नमः

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं "श्री सार समुच्चय नामधेयं" अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री कुलभद्राचार्यदेव विरचितम्, तस्य भाषा टीका आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचिता, एषः 'सद्देशना' नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमोगणी, मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोस्तु मङ्गलम्॥
सर्वमङ्गल मङ्गल्यं सर्वकल्याण कारकं, प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

ग्रन्थ का मुख्य मंगलाचरण

देवदेवं जिनं नत्वा, भवोद्भव विनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां काञ्चिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः॥ (1/सा.स.)

"मिथ्यात्व संसार का बीज है"

मिथ्यात्वं परमं बीजं, संसारस्य दुरात्मनः।
तस्मात्तदेव मोक्तव्यं, मोक्षसौख्यं जिघृक्षुणा॥ 52।।

अन्वयार्थ—**दुरात्मनः** = इस दुष्ट दुःखदायी, **संसारस्य** = संसार का, **परमं बीजं** = उत्पन्न करनेवाला बड़ा भारी बीज, **मिथ्यात्वं** = मिथ्यादर्शन है, **तस्मात्** = इसलिए, **मोक्षसौख्यं** = मोक्ष के सुख को, **जिघृक्षुणा** = जो चाहता है उसे, **तत्एव** = उस मिथ्यात्व को अवश्य, **मोक्तव्यं** = त्याग कर देना चाहिए।

भावार्थ—हे भव्य! इस दुष्ट दुःखमयी संसार का परम बीज है मिथ्यादर्शन, इसलिए मोक्षसुख के इच्छुक मनुष्य को मिथ्यादर्शन का त्याग करना चाहिए।

॥सद्-देशना॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' जी में आत्मा के उन अलौकिक धर्मों की व्याख्या कर रहे हैं जिन धर्मों को जीव अन्तस् में समाहित होने पर भी समझ नहीं पा रहा है। आप कोई गरीब नहीं हैं। अन्तस् का भाव हीनभावना से युक्त है, तो गरीब है और हीनभावना नहीं है, तो उससे बड़ा अमीर नहीं है। भैया! पुद्गल के टुकड़े मिलें या न मिलें, इन पुद्गल के टुकड़ों में लिप्त मत हो जाना, प्रभु के चरणों को मत छोड़ देना। प्रभु के चरणों से बड़ा जगत् में कोई अन्य द्रव्य नहीं है। ज्ञानी! आस्था से, श्रद्धा से शून्य हो गया, तो उसके पास कुछ भी नहीं है और जिसके पास आस्था है, उसके पास सबकुछ है। यह आस्था का ही प्रभाव है कि आपके हृदय में जिन-सूत्र विराजमान हैं। यह सब द्रव्य (धन) का प्रभाव नहीं है, यह द्रव्य का प्रभाव है। द्रव्य (धन) तो प्रायः सबके पास होता है, परन्तु अन्तरंग के भाव का द्रव्य है तो विश्वास रखना एक

जीव का द्रव्य श्री जी की प्रतिमा में लग रहा है तो दूसरे जीव का धन उसी जिनालय के पास धर्मशाला के संडास में लग रहा है, पंखे में लग रहा है। यह धन का दोष नहीं है, यह जीव के भावों का परिणमन है। 'सम्पत्ति' होगी तो प्रतिमा में लगेगी और धन होगा तो संडास में लगेगा। सम्पत्ति समीचीन वृत्ति से अर्जित होती है और 'धन' लाते जाओ, रखते जाओ, मरते जाओ। अब अपने हृदय से पूछना कि आपके घर में सम्पत्ति है या धन? किसी और से मत पूछना। जिसे पैसे के आने पर अच्छे कार्य करने के परिणाम हों, तो समझ लेना कि सम्पत्ति मेरे घर में आई है और जिस पैसे के घर में आते ही खोटे परिणाम हों, वह धन है। ज्ञानियो! भाई से कभी विसंवाद मत करना। बेटे को जन्म देने की ताकत तुम्हारे अन्दर है, लेकिन भैया को जन्म देने की शक्ति तुम्हारे पास नहीं है। बड़े भैया! आपको बड़ा किसने कहा है? जितना दुलार बेटे के प्रति है, उतना दुलार छोटे भाई के प्रति भी रखना, क्योंकि छोटा भैया न होता तो तुमको बड़ा भैया कौन बोलता? आपको बड़ा तो छोटे ने ही बनाया है। जीवन में ध्यान रखना, अपने छोटे भाइयों का भी ध्यान रखना। जो सम्यक् की दृष्टि है, वह न भवन को निहार रही है, न धन को निहार रही है, वह मात्र आपकी पंचपरमेष्ठी के चरणों में आस्था है, भावना है, उसको निहार रही है।

सम्यक्त्व है, श्रद्धान है, तो सबकुछ है और श्रद्धान नष्ट हो गया तो विश्वास रखना, सारा आनंद नष्ट हो गया। आपके घर से चर्चा प्रारम्भ करो। कुटुम्ब में आनन्द तब तक है, जब तक परस्पर में प्रीति है। प्रीति के नष्ट होते ही एक दूसरे के चेहरे देखने के परिणाम नहीं होते हैं। भारत की भूमि पर ही नहीं, ढाई द्वीप में घूम कर आना, आनन्द कहीं नहीं है। यदि आनन्द कहीं है, तो तेरे अन्दर है। समता और साता यह दोनों यदि तेरे साथ हैं, तो श्मशान घाट में भी आनन्द है और यदि समता-साता नहीं है, तो सिंहासन भी काटता है। साता है, तो सर्वत्र सुख है और समता है, तो असाता में भी सुख है। जिसकी समता भंग हो चुकी है, उसको सद्भाव में भी अभाव दिखाई देता है। भैया! आधा गिलास दूध आपको पीने के लिए दिया, क्या विचार आता है आपके मन में? अज्ञानी होगा तो उसे

आधा गिलास खाली दिखेगा। तत्त्वज्ञानी का चिन्तन और अज्ञानी का चिन्तन खोजिये। गिलास भरा है, कि गिलास खाली है? जीवन जीना है तो अनेकांत से जीना पड़ेगा। एक जीव कह रहा है कि गिलास खाली है, दूसरा जीव कह रहा है कि गिलास भरा है। सत्य क्या है?जब गिलास में कुछ नहीं था, उस अपेक्षा से गिलास भरा है कि नहीं? गिलास खाली भी है स्यात्, भरा है स्यात्। सम्यग् ज्ञानी चिन्तन करता है, 'अहो! आधा गिलास दूध तो दिया।' दूध की कीमत नहीं है। देने के भाव हो जाना, इसकी कीमत है। इस खोटे काल में वस्तु नष्ट हो सकती है, सड़ सकती है, पर दूसरे को देने के परिणाम नहीं हो सकते। आपको देने के भाव आये कि नहीं, यह महत्त्वपूर्ण है। भीतर क्या-क्या हुआ, किसने देखा? कोई जहर भी दे रहा है तो उससे पूछना कि इसके पूर्व में क्या-क्या हो चुका है? कोई अमृत भी दे रहा है तो पूछना इसके पूर्व में क्या-क्या हो चुका है। माँ के आँचल में दूध भरा हुआ है। बेटा आँचल का पान कर रहा है। उसे क्या मालूम, उसे तो मात्र दुग्ध दिख रहा है। माँ के आँचल में दूध नहीं आया है, माँ के वात्सल्य में दूध आया है। यदि माँ में वात्सल्य न होता, तो आँचल सूख गया होता। एक अन्तरंग के वात्सल्य की परिणति तो देखो, यदि आपने पानी पिया है, दुग्ध पिया है, घृत का सेवन किया है, तो आप मल और मूत्र ही निकाल पाओगे और माँ ने भी वही सेवन किया है, लेकिन वह दूध दे रही है। तुम मल और मूत्र मात्र निकाल रहे हो। यह परिणामों की दशा है।

एक ही द्रव्य आपके परिणामों से भिन्न रूप परिणत होता है। गाय के द्वारा खाई गई घास दुग्धरूप परिणत हो रही है, बैल के द्वारा खाई गई घास मूत्ररूप परिणत हो रही है। घास तो एक-जैसी डाली गई है, परिणाम ही भिन्न रूप हुआ है। ऐसे ही ज्ञानियो! अरिहंत देव एक हैं, निर्ग्रन्थ गुरु एक हैं, जिनवाणी एक है। एक जीव को इन तीनों का संयोग सम्यक् उत्पन्न कराता है और दूसरे जीव को इन तीनों का संयोग मिथ्यात्व उत्पन्न कराता है। देव-शास्त्र-गुरु के संयोग से मिथ्यात्व? हाँ! देव को देखकर अनादर दृष्टि, शास्त्र को देखकर अनादर दृष्टि, गुरु को देखकर अनादर दृष्टि जिनकी है, उनको सम्यक्त्व प्रकट होगा कि मिथ्यात्व? देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में एक जीव निधत्ति-निकाचित कर्मों की निर्जरा कर रहा है। और एक जीव निधत्ति-निकाचित कर्मों का बंध कर रहा है।

रोटी कहाँ सिकती है? अग्नि पर बनेगी। जब भी रोटी जलेगी, चूल्हे पर ही जलेगी, यह सही है क्या? हाँ। सेंकते समय रोटी को घुमाते रहे तो रोटी बन जायेगी, नहीं घुमा पाये तो जलकर राख हो जायेगी। इसी प्रकार पंचपरमेष्ठी के चरणों में जाकर अपनी श्रद्धा को घुमाते रहोगे तो रोटी-जैसे फूल जाओगे और श्रद्धा से शून्य होकर बैठोगे तो रोटी-जैसे जल जाओगे। रोटी सिकती है तो अग्नि में, जलती है तो अग्नि में। अशुभ कर्म का बंध भी होता है तो पंचपरमेष्ठी के पादमूल में और अशुभ कर्म की निर्जरा भी होती है तो पंचपरमेष्ठी के पादमूल में। बहुत संभलने की आवश्यकता है। सम्यक्त्व की रक्षा कर लेना, आस्था की रक्षा कर लेना। लाखों करोड़ों की सम्पत्ति का व्यय हो रहा हो तो उसे स्वीकार कर लेना, लेकिन एक समय की श्रद्धा को नीचे मत जाने देना। कोई यह कहे कि अमुक जगह चादर चढ़ा दो तो सबकुछ मिल जायेगा, कह देना कि मुझे सबकुछ नहीं चाहिए, मुझे शिवसुख चाहिए। वह शिवसुख कहीं चादर चढ़ाने से नहीं, जिनेन्द्र के चरणों में सिर झुकाने से मिलेगा। ज्ञानी! बताओ, आपको सबकुछ चाहिए कि शिवसुख चाहिए? सबकुछ के पीछे दौड़ोगे तो सबकुछ भी जायेगा और शिवसुख भी जायेगा। शंका मत करना। धन्य हैं वे जीव, जिन्होंने अशुभ दिनों को भी देखा, तब भी देखा और शुभ दिनों को भी देखा, तब भी देखा। जो मात्र देखते हैं, वे कभी दु:खी नहीं होते। जो देखने की इच्छा रखते हैं, वे नियम से दु:खी होते हैं। ज्ञाता-दृष्टा बन कर देखो। सबके दिन एकसे नहीं होते। अच्छे दिन भी देखना, बुरे दिन भी देखना। पर हे ज्ञानी! देखना ही, देखने की इच्छा मत करना। (उसमें इष्ट-अनिष्ठ बुद्धि मत लगाना।) बड़े-बड़े महापुरुष हो गए। श्री राम से पूछो। बलभद्र थे। राम अपने घर में कितने दिन रह पाये? भरतेश चक्रवर्ती से पूछो, साठ हजार वर्ष दिग्विजय में ही लग गये। कितने महापुरुष हो गए, आपको लगता है कि सुखमय जीवन जीये हैं, पर सत्यता ये है कि दु:खमय जीवन ही जिये हैं। दु:ख तो क्षीण पुरुष को होता है। जो दु:ख को दु:ख स्वीकारता है, उसी को तो दु:ख होगा। जो दु:ख को दु:ख ही नहीं स्वीकारता, उसे दु:ख होगा क्यों? जिसकी जेब से 50 रु. कट गये, जो दु:ख मानेगा, वही तो दु:खी होगा। जो यह मानेगा कि जिसका था वह ले गया, वह

दु:खी क्यों होगा? संतान की मृत्यु के उपरांत पिता रो रहा है। यदि संतान की मृत्यु को मानेगा तो उसे रोना पड़ेगा। यदि कह रहा है कि यह कोई अनहोनी घटना नहीं है, इसका आयुकर्म पूर्ण हो गया, अब आगे की पर्याय को प्राप्त किया है, यह कोई नई बात नहीं है, यह तो प्रकृति का स्वभाव है। जन्म सत्य है, मरण सत्य है। दोनों सत्य हैं, मात्र रोनेवाला असत्य है। जिसकी मृत्यु हो गई, संसार में उसका कहीं-न-कहीं जन्म होगा कि नहीं? और जिसका जन्म हुआ है, वह कहीं से मरकर आया है कि नहीं? जिस घर में जन्म हुआ है, वहाँ थाली बज रही है और जिस घर में मरा है, वहाँ आँसू बह रहे हैं, पर ज्ञानी! थाली बजानेवाले पागल हैं और आँसू बहाने वाले पागल हैं। उस जीव से पूछो, न वहाँ दु:खी था, न यहाँ दु:खी है। वह तो यह कह रहा है कि मैं तो वृद्ध था, सड़े-गले शरीर को छोड़कर नये शरीर में आ गया, दु:ख किस बात का? जानेवाला नया स्थान प्राप्त कर लेता है, लेकिन जो रह जाते हैं, वे रोते रहते हैं। आज से रोने का त्याग करो। सबसे बड़ी साधना है, रोने का त्याग कर दो। द्रव्य की सत्ता असद्भूत नहीं है, विश्वास रखना। एक लकड़ी जल गई तो अज्ञानी के लिए नाश हुआ है और ज्ञानी के लिए पर्याय बदल गई। यदि नाश हुआ होता तो, राख किसकी हुई? लकड़ी जली हुई है, नाश नहीं हुआ, बदल गई है। इसी प्रकार ज्ञानियो! आपके इष्ट का वियोग हुआ है, आपको नाश दिख रहा है, लेकिन वह नाश नहीं हुआ है, पर्याय बदल गई है। पुण्य है तो सर्वत्र सम्मान मिलता है, पुण्य नहीं है तो अपने ही घर में अपमान प्रारम्भ हो जाता है।

माँ भोजन बनाते समय चावल का एक दाना देखकर अनुमान लगा लेती है कि चावल पक गया या नहीं। ज्ञानी! जिस दिन तुझे अपने ही घर में महसूस हो कि पत्नी द्वारा तेरा अपमान हुआ है, तो अनुमान-ज्ञान से लगा लीजिये कि हमारा पुण्य क्षीण हो चुका है, इसलिए धीरे-से अपने आप को सँभाल लेना। जब अपने घर में अपमान प्रारम्भ हो चुका है, अब परघर में जाना बन्द कर देना, अब तुम्हारा पुण्य क्षीण हो चुका है। जो ज्ञानीपुरुष होगा, वह अपना विवेक लगाकर परमेष्ठी के चरणों में जाकर बैठ जायेगा। अब कुछ नहीं करना, क्योंकि सबके दिन एकसे नहीं होते। अब तुम जितना आगे बढ़ोगे, उतना अपमान बढ़ता

जायेगा, हीनभावना आती जायेगी, संक्लेषता बढ़ेगी और अशुभ का बंध होगा और दुर्गति में गमन होगा। प्रथम दिन अपमान होने पर ही शांत होकर परमेष्ठी की आराधना प्रारम्भ कर देना चाहिए। यह भीतर की बात है, हल्ला करने की बात नहीं। वह अज्ञानी है जो पड़ोस में कहने जाये कि आज मेरी पत्नी ने मेरा अपमान किया है। अशुभ के दिनों में, संकट के समय में किसी के घर नहीं जाना। अशुभ के दिनों में समझानेवाले कम, हँसने वाले अधिक मिलते हैं। हे प्रभु! जो मैं जिनवाणी सुन रहा हूँ , संकट के समय जब सारे जगत् के लोग मुझे दुत्कारने लग जायें, तो माँ भारती अपनी गोद में मुझे रख लेना, क्योंकि माँ की गोद में जो शांति मिलती है वह कहीं नहीं मिलती। जब अन्तिम श्वास का समय आये, तब माँ भारती के शब्द मेरे कानों में सुनाई दें-बेटे! तू भगवान्-आत्मा है, तू भयभीत मत हो, क्योंकि जन्म देने वाली माँ जो तेरा पालन कर रही है, वह तो तेरे पुण्य का पालन है। यह व्यवहार की भाषा है कि माँ पालती है। तेरे पुण्य का द्रव्य है। यदि पुण्य का द्रव्य नहीं होता, तो माँ के पालने के परिणाम होते नहीं।

ज्ञानी! अनुमान-ज्ञान लगाना सीखो। साधन से साध्य का ज्ञान होता है, यह अनुमान-ज्ञान है।जिन-जिन को विकल्प आ रहे हों कि मेरे बाद मेरे परिवार का क्या होगा? जब पर्याय ही तेरी नहीं है, तो घर तेरा कहाँ? इसलिए धर्मध्यान के साथ आनंद से जियो। यह तत्त्व यदि अन्दर में प्रवेश कर गया, तो विश्वास रखना, आपका अस्पताल जाना बहुत कम हो जायेगा और एक दिन ऐसा आयेगा कि जाना ही नहीं पड़ेगा। जितने शरीर के रोगी नहीं हैं, उतने मानसिक रोगी हैं। मानसिक रोग से ही शारीरिक रोग बढ़ते हैं। इसलिए मन को प्रसन्न रखना सीखो, गद्गद् होना, अह्लादित होना सीखो। हीनभावना से बड़ा कोई शत्रु नहीं है। जितने दु:खी हो रहे हैं, सब हीनभावना के कारण हो रहे हैं। पुण्य-पाप के फल को नहीं देखते, हीनभावना में डूब जाते हैं।

क्या करें ? हमारे तत्त्व-वक्ताओं ने तत्त्व-वक्तव्य देना बन्द कर दिया। उन्होंने कहा कि विधान करो, श्रीफल रखो तो घर में धन आ जायेगा। अब ज्ञानी ने

मन्दिर जाना बन्द कर दिया और सुबह-शाम उस श्रीफल को देखने लगा कि अब धन बरसेगा, अब धन बरसेगा। ज्ञानी! उसे तीनलोक के नाथ के चरणों से हटाकर श्रीफल में चिपका दिया। बताना यह चाहिए था कि श्रीफल मांगलिक है, मंगलभूत है, लेकिन मंगल होगा तभी, जब भाव मंगल होगा। भाव मंगल नहीं है तो कुछ भी मंगल नहीं है। ज्योतिषियों, जादू-टोना वालों के चक्कर में पड़कर जीव भ्रमित हो चुका है। वस्तुस्वभाव का विवेक नहीं है। तत्त्वनिर्णय नहीं है, तत्त्वदृष्टि नहीं है। पुण्यात्मा जीव निर्वस्त्र भी होगा तब भी चमकता दिखेगा, पापी जीव मणियों से जड़ा होगा तब भी नहीं चमक पायेगा। सम्यक्त्व की रक्षा करो, दुनियाँ में भटकने से कुछ मिलनेवाला नहीं है।

हे मुमुक्षुओ! आप ये कह देना कि मैं दासी का दास होना पसन्द करता हूँ, पर तीर्थंकर के चरण छोड़ना पसन्द नहीं करता। आचार्यदेव कह रहे हैं कि जिस जीव ने सम्यक्त्व के साधन को प्राप्त कर लिया है, श्रद्धा गुण को प्राप्त कर लिया, वो अपनी श्रद्धा गुण का पान करके वमन नहीं कर रहा है। करोड़ों भवों की तपस्या का पुण्य है जो आप यहाँ बैठे हैं, जिनवाणी सुन रहे हैं। यह है पुण्य तुम्हारा। धन का मिलना, स्त्री, भवन का मिलना पुण्य नहीं है, पुण्य का फल है। परमेष्ठी के चरणों में बैठे हो, यह पुण्य है। यह पुण्यानुबंधी पुण्य है यानि पुण्य का फल भी है, पुण्य का बंध भी चल रहा है। जो वैभव मात्र को प्राप्त करके मुस्करा रहा है, वह अगरबत्ती के जलने के समान है। सुगंध आ रही है, पर नीचे देखो क्या हो रहा है? सुगंध में मत डूब जाओ, नीचे देखो क्या हो रहा है? राख गिर रही है। बस, ज्ञानी! जितने दिन तुम सुख भोग रहे हो, वह पुण्य का सेवन चल रहा है, पर नीचे तो पुण्य क्षीण होकर राख ही बच रही है। जलाने के साथ-साथ निर्मित भी करो। पंचपरमेष्ठी के चरणों में निर्मित भी करो, परमात्मा पर भक्तिभूत और निज के बननेवाले परमात्मा पर प्राप्तिभूत लक्ष्य रखो। चौबीस तीर्थंकर की आराधना तो शुभोपयोग के लिए है, परन्तु निज पर लक्ष्य नहीं है तो ज्ञानी! संसार में सुख तो भोगते रहोगे, पर संसारातीत नहीं हो पाओगे। भगवान् को भगवान् मान कर पूजनेवाले तो कोटि-कोटि दर्शन हैं, पूजनेवाले को भगवान् मानने वाला मात्र जैनदर्शन है। यह दास संस्कृति नहीं है,

स्वामी-सेवक दर्शन नहीं है। यह भक्त-भगवान् के बीच का श्रद्धा-श्रद्धेय दर्शन है, पर हमारी श्रद्धा भगवान् से मिलने के लिए नहीं है, हमारी श्रद्धा भगवान् के दर्शन करके भगवान् बनने की है। वाहन चलाना सीखने के लिए वाहनचालक के बगल में बैठना पड़ता है। ऐसे ही ज्ञानियो! हम परमात्मा के चरणों में जाकर परमात्मा-जैसा बनने के लिए जाते हैं। अरिहंत की द्रव्य-गुण-पर्याय को जानकर निज के द्रव्य-गुण-पर्याय जानने का पुरुषार्थ करने के लिये परमेष्ठी के पादमूल में जाना पड़ता है। यह लक्ष्य है।

मिथ्यात्वं परमं बीजं, संसारस्य दुरात्मनः।
तस्मात्तदेव मोक्तव्यं, मोक्षसौख्यं जिघृक्षुणा॥ (52 सा. स)

आचार्य महाराज कह रहे हैं, मुमुक्षुओ! दुष्ट दुःखमयी संसार का परम बीज कोई है, तो उसका नाम मिथ्यात्व है, कोई दूसरा नहीं है। **''जिसको संसार में अभी और अधिक समय भटकने की भावना हो, वे अच्छी तरह मिथ्यात्व का सेवन करना और जिनको संसार में भटकने की इच्छा नहीं है, वे आज ही मिथ्यात्व छोड़ देना। जिनको मोक्ष की इच्छा है, उनको मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए। आचार्य महाराज ने आदेश कर दिया है। हे माँ! जगत् के सारे प्रपंचों का त्याग कर दो। कोई मूसल पूज रहे, कोई कुआँ पूज रहे। इनको पूजने से मोक्ष मिलनेवाला नहीं है।''** धन्य हैं वे जीव, जिन्होंने तत्त्व का निर्णय कर लिया है और अपने आप को स्वतन्त्र स्वच्छ कर लिया है। आपको अपने पर भरोसा नहीं है क्या? किसी पर भरोसा करो या मत करो, अपने भाग्य पर तो भरोसा करो। नाना प्रकार के देवताओं को पूजने वाले भी भीख माँग रहे हैं और किसी को नहीं पूजने वाले आनंद में हैं। ज्ञानी! तेरा सुख पराधीन हो गया क्या? नहीं।

ज्ञानी! न कोई लक्ष्मी देता है, न कोई लक्ष्मी का हरण करता है। जीव का शुभ कर्म ही उपकार करता है और अशुभ कर्म ही अपकार करता है, इसलिए जगत् में कोई किसी का कर्ता-धर्ता नहीं है।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"कुशासनों का कोप"

आत्मतत्त्वं न जानन्ति, मिथ्यामोहेन मोहिताः।
मनुजा येन मानस्था, विप्रलुब्धाः कुशासनैः॥ 53॥

अन्वयार्थ—येन = उसे, **मिथ्यामोहेन** = मिथ्यात्व भाव से, **मोहिताः** = मूढ़ होते हुए, **मनुजाः** = मनुष्य, **कुशासनैः** = मिथ्या उपदेशों से, **विप्रलुब्धाः** = मिथ्यामार्ग के लोभी होते हुए, **मानस्था** = शरीर के अहंकार में फँसकर, **आत्मतत्त्वं** = आत्मिक तत्त्व को, **न जानन्ति** = नहीं जान पाते हैं।

भावार्थ—ज्ञानियो! मिथ्यात्व से मोहित हुए मानव आत्म-तत्त्व को नहीं जानते हैं और आत्म-तत्त्व के ज्ञान के अभाव के कारण वे अहंकारी मानव कुशासनों (मिथ्योपदेश) के द्वारा विप्रलुब्ध हो जाते हैं यानी प्रतारित हो जाते हैं, ठगे जाते हैं।

॥सद्-देशना॥

भव बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर प्रभू की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में सम्यक्त्व गुण की व्याख्या करते हुए बता रहे हैं कि कोटि-कोटि शून्य हों, पर अंक न हो, तो शून्य-शून्य ही है। यदि एक अंक पर शून्य है, तो कीमत प्रारम्भ हो जाती है। चाहे तपस्या करो, चाहे अनेकानेक ग्रन्थों को अन्तस् में उतार लो, पर यदि सम्यक् श्रद्धान का अभाव है, तो वह तप कुतप है और वह ज्ञान कुज्ञान है। सम्यग्दृष्टि जीव का अल्प ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है, सम्यग्दृष्टि जीव का अल्प चारित्र भी सम्यग्चारित्र और वही मोक्षमार्गभूत है। मिथ्यादृष्टि जीव का बहुतश्रुत ज्ञान और बहु साधना पुण्यबंध का साधन तो है, पर कर्मक्षय का साधन नहीं है। कर्मक्षय चाहिए तो अन्तस् में श्रद्धा को पवित्र करने की आवश्यकता है। लोक से प्रभावित

होना बहुत बड़ा दोष है। किसी संसारी बात को देखकर आश्चर्यचकित हो जाना बहुत बड़ा दोष है। आश्चर्य आना ही दोष है। तीर्थंकर अरिहंत के अठारह दोषों में आश्चर्य भी एक दोष है। वे अठारह दोषों से रहित होते हैं। आश्चर्यचकित होने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ है, सब सामान्य है। अपने आपको पर के चमत्कारों से भरकर निज के चैतन्य-चमत्कार को खो देना सम्यक्त्व का साधन नहीं है। किसी ने श्रीफल में से मोती निकाल दिया, आप आश्चर्यचकित हो रहे हो। ये सब इन्द्रजाल है। मोक्षमार्ग भिन्न है और संसार के चमत्कार भिन्न हैं। चमत्कारों से पेट भरता होता तो जादूगर नोट दिखाता है और फिर कटोरा आगे करता है। जैनदर्शन वह दर्शन है, जिसने जगत् के मायाजाल को स्वीकार नहीं किया। निर्णय कीजिये। जो दिखने की वस्तु है, वह खाने की नहीं है। जो खाने की वस्तु है, वह जगत् में दिखाने की नहीं है। धन्य हैं वे योगीश्वर, पंचमकाल में चित्त चलायमान हैं, देह अन्न का कीड़ा है, ऐसे खोटे काल में भी जिनेन्द्र के रूप को धारण करने वाले ये युवा दिखाई दे रहे हैं। ये ही पंचमकाल का चमत्कार है। निज में निज का नियन्त्रण कर लेना महान् है। कालिया नाग को मन्त्र से वश में किया जा सकता है, पर मन को मन्त्र से वश में नहीं किया जा सकता। योगी चर्या के लिए श्रावक के घर जाते हैं, मौन लेकर जाते हैं और मौन लिये-लिये ही वापस आ जाते हैं। उपदेश सुनने श्रावक योगी के पास आते हैं। धन्य है योगी की दशा, जिसे कंचन-कामिनी से कोई प्रयोजन नहीं। जिसको कंचन-कामिनी से प्रयोजन है, वे दिगम्बर तपोधन नहीं हैं। आज इस खोटे काल में भी जिनमुद्रा की पूजा अरिहंत-जैसी होती है।

ज्ञानियो! पंचपरमेष्ठी में नाम आता है जिनेन्द्रमुद्राधारी का। लोक में साधु महात्मा बहुत हैं, पर किसी भी सम्प्रदाय में अष्टद्रव्य से साधु की पूजा नहीं होती है। एकमात्र दिगम्बर जैन परम्परा है जिसमें अष्टद्रव्य से साधु की पूजा होती है। जिसने साधुमुद्रा को धारण किया है, उसे पहले मुनि-मन पर विचार कर लेना चाहिये। यदि मुनि-मन बना सको तो मुनि बनना, मुनि-मन नहीं बना सको तो मुनिराजों के भक्त बनकर रहना, मुनिमुद्रा को लजाने मत जाना। भक्त बनना श्रेष्ठ

है। **''मन्त्र से नाग को वश में किया जा सकता है, लेकिन मन्त्र से मन को वश नहीं किया जा सकता। मन को वश करना है तो अरिहंत की वाणी का तंत्र चाहिए। मन को वश करने का सुगम उपाय वीतरागी आचार्यों द्वारा प्ररूपित जिनागम का स्वाध्याय है। मन को वश में करना हो तो जिन अशुभ ज्ञेयों में मन जा रहा है, उन अशुभ ज्ञेयों से मन को हटाकर शुभ ज्ञेयों में लगा दीजिये, यदि मन को वश में करना है।''** विषय नहीं मिलेगा तो मन विषयों में जायेगा। विषय मिल जायेगा तो विषयों से दूर हो जायेगा।

ज्ञानी! क्या तुम्हारा मन इस समय अशुभ हो रहा है? नहीं। क्योंकि आपने मन को विषय दिया है, इसलिए विषयों में नहीं जा रहा है। जो अभागे विषय नहीं देते उनके मन भटकते हैं। अतः जिनवाणी के तत्त्व में लवलीन हो जाओ। यदि जिनवाणी के रहस्यों में लीन हो जाओगे, तो विश्वास रखना, विषयों से मन हट जायेगा और निज आत्मा के विषय में लीन हो जायेगा। मन वश में हो जायेगा तब मुनि बनूँगा, ऐसा कहने वाले कभी मुनि नहीं बन पायेंगे। तुम कारण से दूर नहीं होना चाहते और कार्य को करना चाहते हो। अग्नि से दूर नहीं होना चाहता और अंगुली को बचाना चाहता है। ज्ञानी! अंगुली अग्नि पर रखोगे तो वह तो जलेगी-ही-जलेगी। कारण से दूर हो जाओ। जिन कारणों से अशुभ भाव आते हैं, उन कारणों से अपने आपको दूर कर दो और शुभ कार्य में लवलीन हो जाओ, तो अशुभ कार्य से बच जाओगे। इतना समय निकाल कर यहाँ उपदेश सुनने आये हो, दुर्ध्यान से बचे कि नहीं बचे? अज्ञानी सोचेगा कि मैं इतने समय में करोड़ों रुपये कमा लेता।

हे ज्ञानी! कोटि-कोटि द्रव्य फेंक देना, पर एक मुहूर्त की शांति करोड़ों द्रव्यों से भी मिलने वाली नहीं है। जिनकी पैसों पर, परिवार पर, धन पर अधिक दृष्टि रहती है, वे लोग जल्दी मृत्यु को प्राप्त करते हैं, क्योंकि चिन्ता को समय दे रहा है, चिन्तन को समय ही नहीं दे रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव चिन्ता को समय नहीं देता है, चिन्तन को समय देता है। मन में तनाव हो तो थकान आती है कि नहीं? हाँ। ज्ञानी! चित्त प्रसन्न हो तो थकान आती है क्या? नहीं। जिनको अपनी आयु

को प्रशस्त भाव से जीना है, वे आज से चिन्ता करना बन्द कर दें और चिन्तवन करना प्रारम्भ कर दें। क्या आपके चिन्ता करने से वस्तु की प्राप्ति होती है? क्या मृतक पुनः जीवित हो सकता है? क्या पूर्व में उगने वाला सूर्य पश्चिम में उग सकता है? यदि ये नहीं हो सकता, तो चिन्ता करके अपने चित्त को व्यर्थ व्यथित क्यों कर रहे हो? जो चिन्ता करते हैं, वे ज्ञानी हैं या अज्ञानी? अज्ञानी। चिन्ता करने वाले को सर्वाधिक पेट के रोग होते हैं, क्योंकि चिंता करता है तो गैस बनती है। गैस जब पेट में नहीं समाती, तो मस्तिष्क में जाती है और मस्तिष्क में जाती है तो आदमी पागल हो जाता है। जो अपने बड़ों से लड़ते हैं, वे कभी स्वस्थ नहीं रह सकते और उनका कभी समाधिमरण नहीं हो सकता। क्योंकि ज्येष्ठ से लड़ेगा तो जीत पायेगा नहीं, पराजय को प्राप्त होगा, तो तनाव बढ़ेगा और पेट के रोग बढ़ेंगे, वात का रोग होगा।

ज्ञानी! घृत या तेल का उपयोग कितने लोभ से करते हो? वह तो परद्रव्य है। आपको अपने वचनों का प्रयोग भी उतने ही लोभ से करना चाहिए। जब लोग हजार बार पूछें, तब एक बार बोलना। सम्मान तभी तक है, जब तक मौन तेरे साथ है। उसी दिन सम्मान नष्ट हो जाता है, जब व्यर्थ बोलना प्रारम्भ कर देता है। एक वे पुरुष हैं जिनसे कहा जाता है, कि चुप रहो और एक वे पुरुष हैं जिनसे निवेदन किया जाता है 'कहो'। आज से नियम ले लो कि कम-से-कम मन्दिर में घर की बातें नहीं करेंगे। चौबीस घण्टे में 10-15 मिनट का समय निकाल कर मन्दिर आ पाते हैं और वह भी व्यर्थ की चर्चा में नष्ट कर दिया, कितना छल किया स्वयं के साथ, परिवार के साथ? मन्दिर का बोल कर आये थे, चर्चा का बोलकर कहाँ आये थे? मायाचारी की कि नहीं? क्या कर्मबंध नहीं होगा? क्या आस्रव नहीं होगा? क्या उदय में नहीं आयेगा? आयेगा। मन्दिर में जितने कबूतर हैं, चूहे हैं, पक्षी व जानवर हैं, ये वे ही सज्जन हैं जिन्होंने मन्दिर में बैठकर मायाचारी की थी, सो बेचारे चूहे बन कर घूम रहे हैं। भैया! धन्य हो उस धन को, जो अपने चतुष्टय में है, तेरे चतुष्टय में नहीं है। पर के चतुष्टय का राग देखो कि तुझे परम स्वचतुष्टय की प्राप्ति से दूर करा देता है। समझो, भैया!

प्रयोजनवश हाथ में रखना, पर साथ में मत रखना। गृहस्थ हो आप, इसलिये आपको धन भी चाहिए। **''जितने युद्ध हुए हैं, जितने नाश हुए हैं, उनमें दो को ही श्रेय है। एक श्री, दूसरी स्त्री। महाभारत श्री के कारण और रामायण स्त्री के कारण बना। कोटि-कोटि योद्धा नष्ट हो गए, किसके राग में? श्री, स्त्री के । जिन-जिन को निष्कलंक जीवन जीना है, उनको इन दो से दूर रहना चाहिए। श्री और स्त्री। ज्ञानियो! जितने कलंकित जीवन जी रहे हैं, इन्हीं दो के कारण। साधु हो या गृहस्थ, इन्हीं दो के कारण बदनाम हुए हैं।''** स्त्री के कारण ही माँ को माँ कहना छोड़ दिया। जब घर में कुछ नहीं था, तो दिन में तीन बार मन्दिर जाता था। जब से घर में धन आया, तो श्री के राग में श्रीजी को छोड़ दिया। क्योंकि पहले एक ही दुकान थी, अब 15-20 दुकानें हैं। देखना पड़ता है सबको। धिक्कार हो ऐसी दुकानों को, जो श्री के राग में श्रीजी को छुड़वा देती हैं। पोटली बांधकर आज ही किसी कुँए में डाल दो उस श्री को और कह देना कि मेरा पुण्य होगा तो तू अपने आप निकल कर आयेगी, परन्तु मैं श्री जी को नहीं छोड़ सकता। सम्यग्दृष्टि जीव यह सोचकर खुश रहता है कि श्री वाले लोग तो विश्व में हैं, पर श्रीजी के पास कुछ ही लोग हैं। श्रावको! तुम अधिक धन कमाने की लालसा में विदेश जाओगे क्या? नहीं। क्योंकि ढाईद्वीप के बाहर अरिहंत की प्रतिमायें तो मिल जायेंगी, लेकिन दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास रखने का सौभाग्य ढाई द्वीप मात्र में ही मिलेगा और जिस भूमि में दिगम्बर मुनियों का विचरण नहीं होता है, वहाँ सम्यग्दृष्टि जीव निवास करने नहीं जाता है।

पं. कामता प्रसाद जी एवं बैरिस्टर चम्पतराय हमारे यहाँ के बड़े विद्वान् हुए हैं। ये लोग विदेश जाया करते थे और जब भारत आते तो यहाँ के युवाओं से कहा करते थे कि भारत में क्या रखा है? जीवन जीना है तो विदेश में जाकर देखो। ज्ञानी! जब गर्दन हिलने का समय आया, तो वे भारत लौट आये। यहाँ के एक युवा ने पूछ लिया-बाबूजी! आप हर समय कहा करते थे कि जीवन जीना है तो विदेश जाना चाहिए, लेकिन आप लौटकर क्यों आ गये? बेरिस्टर

चम्पतराय जी ने कितनी सुन्दर बात कही? मेरे युवा मित्रो! मैंने अपने जीवन में यही तो कहा था कि जीवन जीना है तो विदेश जाना चाहिए। मैंने यह कब कहा था कि मरना हो तो विदेश जाना चाहिए? जीवन तो विदेशों में जिया जा सकता है, लेकिन समाधिमरण करना है तो भारत में ही आना चाहिए, क्योंकि यहाँ कई लोग णमोकार सुनाने के लिये मिल जायेंगे। हे ज्ञानियो! मरना हो तो भारत की भूमि, निर्ग्रन्थ योगी के चरणों में। बहुत अच्छा है कि अन्तिम श्वास कपड़े पहने-पहने न निकले, निर्ग्रन्थ बनकर ही निकले। ऐसे भाव आप भी कर लेना। जब भी अन्तिम श्वास निकले, पंचपरमेष्ठी के पादमूल में ही निकले।

पुण्य के अनंत भेद हैं। एक वह पुण्य है जो प्रधानमन्त्री/राष्ट्रपति बन कर बैठा है, एक वह पुण्य है जो नाचने-गाने में यश प्राप्त कर रहा है। आप ही दुनियाँ देखो, अशुभ करने में भी नाम प्राप्त कर लेते हैं। पर हे ज्ञानी! ध्यान देना, एक वह पुण्य है जो जिनमुद्रा को धारण कर रहा है, एक वह पुण्य है जो सल्लेखना पूर्वक मरण को प्राप्त कर रहा है। आपको आज से ही उन पुण्यों की भेद प्रकृतियों को समझकर ऐसे पुण्य का संचय करना है। यदि आप सामायिक करते हो तो अलग से महामन्त्र की एक माला आज से फेरना इस बात के लिए कि न धन चाहिए, न धरती चाहिए, अन्तिम समय में समाधिमरण चाहिए। आज से ही तैयारी करना पड़ेगी। जिस तरह परिवार को चलाने के लिए आप अपने धन का प्रबन्ध करते हो, पर के लिए इतना विकल्प है, तो आपको आज से ही अपनी व्यवस्था करना है। जिसने सबकी व्यवस्था की है, उसके बारे में व्यवस्था की है कि नहीं? नहीं की हो तो आज से प्रारम्भ कर देना। सोचते रहे, पर सोचनहार को भूल गये। स्वयं के द्वारा स्वयं को दु:खी करेगा तो तुझे पाप का बंध होगा कि नहीं? विश्वास रखना, जितना घोर पाप का बंध दूसरे जीव को दु:खी करने पर होता है, उतना ही घोर पाप का बंध स्वयं को दु:खी करने पर भी होता है। जैनागम को समझो। संक्लेष परिणाम होंगे कि नहीं? 'अप्पाणं हणदि अप्पेण'। आत्मा के द्वारा आत्मा का हनन कर रहा है। आप अपने बेटे पर भी क्रोध करते हैं, तो संक्लेषता के कारण स्वयं का घात तो हो चुका है। आत्मा के द्वारा आत्मा का हनन हो रहा है। जब पर की आत्मा को कष्ट

देना हिंसा है, तो स्वयं की आत्मा को कष्ट देना अहिंसा कैसे? इसलिए आप कहने लग जाओ कि मुनिराज केशलुंचन कर रहे हैं तो कायक्लेश नहीं है क्या? ज्ञानी! वे संक्लेषता नहीं बरत रहे हैं, वे साम्य भाव से कर्मों की निर्जरा की तपस्या कर रहे हैं। कोई तपस्वी मान कषाय के लिए घोर तपस्या कर रहा है तो जिनवाणी कहेगी बेटा! 'अप्पाणं हणदि अप्पेण'। चींटी की रक्षा के भाव तो कोटि-कोटि जीवों ने किये हैं, पर जो चींटी की रक्षा कर रहा है, उसकी रक्षा के भाव क्यों नहीं किये? जिसका वाणी पर संयम नहीं है, वह प्राणी पर संयम क्या करेगा? शब्द वाणी का भी काम करता है और बाण का भी काम करता है। सम्यग्दृष्टि जीव जमीन मात्र को ही नहीं, चारों तरफ देखकर चलता है। पंचपरमेष्ठी को सिर झुकाने के साथ अन्य लक्ष्य भी रखता है। कहीं मेरी वाणी से जिनवाणी का घात तो नहीं हो रहा है? सत्य का विनाश तो नहीं हो रहा है?

ज्ञानी! द्रव्य तो पुण्य का मल है। पुण्य प्रबल होगा तो जहाँ जायेगा वहाँ मिलेगा, पर सम्यग्दर्शन एक बार छूट गया तो फिर मिलना दुर्लभ है। इसलिए आचार्य-भगवान् ने कह दिया है, हे जीव! सबकुछ छोड़ देना, दासी का दास हो जाना, पर जिनदेव के चरणों को मत छोड़ना। पर विश्वास रखना, जिनेन्द्र का भक्त कभी दासी का दास हो नहीं सकता। कठिन-से-कठिन काल भी क्यों न आ जाये, पर कहना कि परिस्थितियाँ तो परिस्थितियोँ हैं, परिस्थितियाँ विपरीत हो जायें तो विकल्प मत करना, मन:स्थिति को खोटी मत करना। सीता के ऊपर कितनी विपरीतता आई थी? पर उन्होंने मन:स्थिति को संभाल कर रखा। मन:स्थिति को संभालना बहुत कठिन है, भोजन-पानी छोड़ देना बहुत सरल है। सोना देखा आपने? मन्दिर के कलश पर सोना लगा है। उससे पूछना, तू इतने ऊपर चमका कैसे? वह कहेगा, ज्ञानी! सुन, चमकने के पहले मुझे कितना कुटना पड़ा है, तब ये चमक आई है। ज्ञानी! जो जितना कुट-पिट लेता है, वह सिद्धशिला पर जाकर चमकता है। चमकना है तो धैर्य रखना सीखो। जो व्यक्ति विपत्ति के काल में मुस्कुराहट नहीं छोड़ता, उसको देखकर विपत्ति ही विपत्ति में पड़ जाती है। जो है, सो है। क्या कह रहे हैं कुलभद्र स्वामी? पंचपरमेष्ठी राष्ट्र, प्रान्त में नहीं बँटे होते,

पंचपरमेष्ठी तो विश्व के होते हैं। जिनेन्द्र के वचनों को विश्वास व आनंद के साथ पढ़ना और सबको बताना। जीवन में एक बार सत्य को समझ लो, असत्य को अनंत बार समझा है। जिनशासन छोड़कर कुशासन में रुचि मत ले जाना। खोटे शासन की आज्ञा मत मानना। मिथ्यात्व में अपनी मति मत ले जाना।

आत्मतत्त्वं न जानन्ति, मिथ्यामोहेन मोहिताः।
मनुजा येन मानस्था, विप्रलुब्धाः कुशासनैः॥ 53॥

जो आत्मतत्त्व को नहीं जानते, जो मिथ्यात्व के मोह से मोहित हैं, ऐसे प्राणी आत्मतत्त्व को नहीं जानते, उनको परतत्त्व में ही आनन्द टपक रहा है। ख्याति, लाभ, पूजा में ही डूब-डूब कर मर रहे हैं। यश, प्रतिष्ठा, उपाधियों से उनको फुर्सत ही नहीं है कि आत्मा के बारे में सोच पायें। ज्ञानी! प्रत्येक मन्दिर में मानस्तम्भ होना चाहिए, इससे अहंकारी मानस्तम्भ को देखे और उससे मानियों का मान भंग हो जाये। ज्ञानी! राजस्थान का ऊँट कितना बड़ा और कब तक बड़ा है? ऊँट! जब तक तू पहाड़ के नीचे नहीं खड़ा, तभी तक तू बड़ा है। पहाड़ के नीचे आते ही तू छोटा हो जाता है अहंकार से भरे हुए मनुष्य खोटे शासन पर मोहित हो गए और अपनी आत्मा को ठग लिया। आगे और चर्चा करेंगे कि कैसे कुशासन में जीव अपने आप को भ्रमित कर चुका है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मोह का परिणाम"

दुःखस्य भीरवोऽप्येने, सद्धर्मं न हि कुर्वते।
कर्मणा मोहनीयेन, मोहिता बहवो जनाः॥ 54 ॥

अन्वयार्थ—**दुःखस्य भीरवः** = दुःखों से भयभीत, **अपि** = होते हुए भी, **एते** = ऐसे, **बहवः जनाः** = बहुत से मनुष्य हैं जो, **मोहनीयेन कर्मणा** = मोहनीय कर्म के कारण मोहित होते हुए, **सद्धर्मं** = यथार्थ धर्म का, **न हि कुर्वते** = आचरण नहीं करते हैं।

भावार्थ—हे मुमुक्षु! दुःखों से भयभीत बहुत से संसारी जन मोहनीय कर्म से मोहित होकर सद्धर्म का आचरण नहीं करते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर प्रभु की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञशासन, नमोस्तुशासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में सम्यक्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। जगत् के पदार्थों को जान लेना भिन्न विषय है और तत्त्व को जानना भिन्न विषय है। सत् तो सत् है, रस तो रस है। रस में सत् है, लेकिन रस के सत् को निकालना सभी नहीं जानते। रस का पान औषधि का काम नहीं कर रहा है, सत् का पान औषधि का काम कर रहा है। इसी द्रव्य में सत् है, लेकिन रस को प्राप्त करके गिलास-के-गिलास पी गया, पर वह कार्य नहीं हुआ जो एक बूँद सत् कर सकता था। बड़े विवेक के साथ समझना।

ज्ञानियो! एक किलो दूध का सेवन करने वाला पुरुष और पचास ग्राम घृत का सेवन करने वाला पुरुष, दोनों में अन्तर है। जिसको दुग्ध में से घृत निकालने की विधि मालूम नहीं है, वह दुग्ध का पान तो करता रहेगा, लेकिन सूखी रोटी खाता रहेगा। ज्ञानी! जिसको विवेक है, वह दुग्ध से घृत को निकालकर अपने

नेत्रों की ज्योति बढ़ा लेगा। नेत्रों की ज्योति बढ़ानेवाला, मस्तिष्क की बुद्धि बढ़ाने वाला घृत उस दुग्ध के अन्दर था और आपको मालूम होना चाहिए कि भारतीय गाय के दुग्ध में तो सोना भी होता है। पौद्गलिक द्रव्य की व्याख्या इसलिए की जा रही है, जिससे कि आप जीवतत्त्व को भली प्रकार से समझें। दुग्ध के अन्दर आँखों से देखना चाहोगे तो घृत दृष्टिगोचर नहीं होता है। वहीं भेदविज्ञान से देखोगे तो दिखेगा। गोपिका कितनी महान् है कि दूध में घी न दिखने पर भी दूध से घी निकाल लेती है, क्या आप गोपिका से भी हीन हो? यह विश्वास रखना कि जब बिना द्रव्यदृष्टि के, बिना वस्तु-स्वभाव को समझे संसार का व्यवहार नहीं चल सकता, तो फिर मोक्षमार्ग तो बहुत दूर है। आपने द्रव्यदृष्टि को मात्र आत्मा पर इंगित किया है, जबकि जितने वैज्ञानिक हैं वे द्रव्यानुयोग से ही सम्पूर्ण द्रव्य की सिद्धि कर रहे हैं। बीज में क्या फल दिखाई देता है? नहीं। तो किसान! तुझे धन्य हो जो तूने कुन्दकुन्द और महावीर की वाणी को समझ लिया है। तुझे बीज में फल दिखाई तो नहीं देता है, फिर भी तू उसे बोता है। जैसे कृषक बीज में फल को निहारता है, तभी भूमि में बोता है और मुट्ठी का दाना मिट्टी में फेंक रहा है, क्योंकि उसे दिख रहा है कि एक मुट्ठी मिट्टी में फेंकूँगा तो बोरा भर कर निकलेगा। मुट्ठी के दाने मुख में रखता तो मल बनता और मिट्टी में फेंके तो गोदाम भरता है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव विवेकी होते हैं, वह पुण्य के द्रव्य को भोगों के मुख में नहीं डालता है, पुण्य के द्रव्य को चारित्र की मिट्टी में डालता है और मोक्ष के फल को प्राप्त करता है। यह सम्यग्दृष्टि जीव की दृष्टि है। किसान को भेदविज्ञान है, द्रव्य-दृष्टि का ज्ञान है, पर अन्तर इतना है कि वह अपनी द्रव्यदृष्टि को बहिर्द्रव्य में लगा रहा है और ज्ञानीजीव अपनी द्रव्यदृष्टि को आत्मद्रव्य में लगाता है।

जो वस्तु का स्वभाव है, उसका नाम तत्त्व है। जीव ने पदार्थ को तो जाना है, पर जीवतत्त्व को नहीं जाना।

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।' (त. सू.)

तत्त्व पर श्रद्धान करना सम्यक्त्व है। आत्मद्रव्य को, जीवद्रव्य को जगत् में जितने दर्शन हैं सभी जीव को जीव तो मानते हैं, पर जीव को तत्त्वरूप में नहीं

पहचानते। जीव का ज्ञान होना मोक्षमार्ग नहीं है, जीवतत्त्व का ज्ञान एवं उस पर श्रद्धान होना ही सम्यक्त्व है और सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है। अन्तर समझना, जीवतत्त्व का खोजी जो है उसका नाम वीतरागविज्ञान है। पानी तत्त्व नहीं है, पानी पदार्थ है। पानी में जो शीतलता है, वह पानी का तत्त्व है। अग्नि तत्त्व नहीं है, उसकी उष्णता तत्त्व है। मनुष्य तत्त्व नहीं है, उसका मनुष्यत्व तत्त्व है। मुनि तत्त्व नहीं है। मुनि में मुनित्व है वह तत्त्व है। भाव वाची। जो भाववाची है, वह स्वभाववाची है। जो स्वभाववाची है, वह भाववाची है।

'तस्यभावस्य तत्त्वं।'

इसलिए आचार्य महाराज ने कल कहा था कि जो कुशासनों में तत्त्व की प्ररूपणायें हैं, उन तत्त्वों को स्वीकार करके ज्ञानी! अपनी बुद्धि को भ्रमित मत कर लेना। विश्वास रखना, मार्ग में चलते-चलते मार्ग भटक जायें तो कोई भी बता देगा। इधर से उधर निकल जाओ, तो भी आपको स्थान मिल जायेगा, लेकिन जो बुद्धि का तत्त्वनिर्णय का मार्ग है, वह पैरों से चलनेवाला मार्ग नहीं है, वह तो निज चैतन्य द्रव्य के ज्ञायकभाव का मार्ग है। उस ज्ञायकभाव के मार्ग पर मस्तिष्क में तत्त्व का निर्णय करते-करते भ्रमित भी हो जाता है। मार्ग पर चलनेवाला भ्रमित भी हो जायेगा तो भी मिथ्यात्व में नहीं जा सकता, लेकिन तत्त्व के मार्ग में भ्रमित हो गया तो निश्चित ही मिथ्यात्व में जायेगा।

जिस तरह आप वाहन से जा रहे हो, चौराहे पर जाकर भ्रमित होते हो कि किधर जाना है। आपकी गाड़ी में पेट्रोल भी कम है, तो आप खड़े होकर दो-चार व्यक्तियों से सही मार्ग की जानकारी लेते हो, क्योंकि आपको पता है कि यदि कहीं गलत मार्ग पर चले गये तो लौटने के लिए तेल भी वाहन में नहीं है। उसी तरह ज्ञानियो! खड़े हो जाओ, आयु कर्म का तेल न्यून है। यदि कहीं तत्त्व के विपरीत मार्ग में प्रवेश हो गया और अंतिम श्वास में निर्णय कर पाये, तब-तक मोक्षमार्ग पर चलने का समय निकल चुका है। जब सामर्थ्य थी, तब निमित्त नहीं मिले, भाव नहीं बने। सारे जगत् में भटक लेना, परन्तु तत्त्व के निर्णय से विपरीत कदम मत बढ़ाना। सत्यार्थ मार्ग की प्ररूपणा करने वाले योगी बहुत कम

मिलेंगे। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने प्रश्न कर दिया समन्तभद्र स्वामी से -हे समंतभद्र! मेरा शासन इतना महान् है, फिर भी इसको मानने वाले लोग मुट्ठी भर ही क्यों हैं? समन्तभद्र स्वामी ने उत्तर दिया, हे प्रभु! आपका दर्शन महान् है, आपका मार्ग महान् है। यह आपके मार्ग का दोष नहीं है।

भैया! ऐसा जगत् में कौन-सा जीवद्रव्य है जो तत्त्व नहीं है। पर्यायों को देखोगे तो परिणाम बिगड़ेंगे। सम्बन्धों को देखोगे तो राग होगा, बंध होगा। लिंग को देखोगे तो विकार बढ़ेगा। वेदों को देखोगे तो विकार बढ़ेंगे। जीवतत्त्व को देखोगे तो 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' प्राप्त होगा। ज्ञानी! विश्वास रखना, वस्त्र उतारने के बाद भी कुछ उतारने को अवशेष बचता है। विकारी भाव और कषाय की लालिमा को भी हटाना पड़ेगा, तभी शुद्धात्मा शुक्लध्यान से प्राप्त होगा। पर्याय को देखेगा तो सम्बन्ध दिखेंगे। सात तत्त्वों पर श्रद्धान करके जीव कहता है कि मुझे सम्यग्दर्शन हो गया। नहीं हुआ अभी सम्यग्दर्शन। तूने पत्नी पर श्रद्धान तो किया ही नहीं। वह जीवतत्त्व है कि नहीं? प्रत्येक जीव को भगवान्-आत्मा के रूप में देखने का नाम सम्यक्त्व है। ज्ञानी! जब तक किसी जीव में प्रीति विशेष है और किसी जीव में अप्रीति विशेष है, तबतक आपका जीवतत्त्व पर सामान्य भाव नहीं है। जिस दिन तेरा मन पानी बन जायेगा, उस दिन तू सम्यग्दृष्टि बन जायेगा। पानी को कहीं से भी बहाना, वह अपने स्तर में ही बहता है, स्तर से हटकर नहीं बहता। गड्ढा आयेगा तो पहले गड्ढे को भरेगा। जब बराबर आ जायेगा, तब आगे बढ़ेगा। ऐसे ही जिसका हृदय पानी की भाँति है, वह कौन स्त्री, कौन पुरुष, कौन नपुंसक, कौन जाति, कौन वंश, सबको भूलकर मात्र जीवतत्त्व को देखता है, उसका नाम सम्यग्दृष्टि जीव होता है। जब कैमरे वाले को देखकर आप व्यवस्थित होकर बैठ जाते हो, तो सीमंधर स्वामी के कैवल्य में तुम बराबर झलक रहे हो, तो तुम्हें कितना व्यवस्थित होकर रहना चाहिए? मायाचारी की परणति जब तक नहीं छूट रही, तब तक सम्यक्त्व बहुत दूर है। तत्त्व पर श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व है, तो तेरा बेटा तत्त्व है कि नहीं?

तो समंतभद्र स्वामी कह रहे हैं-हे वर्द्धमान! आप के शासन का दोष नहीं है-

कालः कलिर्वा कलुषाशयो वा श्रोतुः प्रवक्तुर्वचना नयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्व-लक्ष्मी-प्रभुत्वशक्तेरपवाद-हेतुः॥ 5 युक्त्यनुशासन॥

हे नाथ! आपके दर्शन में दोष नहीं है, आपके धर्म में दोष नहीं है। तो फिर जैन समाज टुकड़ों में क्यों बंट रही है? स्वामी! काल काला है। काल काला होता, तब भी कोई विशेष विकल्प नहीं था। इस काले काल में जन्म लेने वाले लोगों के हृदय भी काले हैं। आपके पादमूल में नमस्कार करने भी आता है, तब भी खाली होकर नहीं आता, कुछ-न-कुछ सोचकर ही आता है। हे स्वामी! आज अमुक काम हो गया तो सिद्धचक्र मण्डल विधान करूँगा और नहीं हुआ तो पद्मपुरा की शक्ति भी गई, तिजारा की शक्ति गई। हे अभागे! तूने अपने पुण्य की शक्ति को हीन कर दिया। ज्ञानी! ये मत सोचना कि जितने यहाँ बैठे हैं सब महावीर के भक्त हैं। पता नहीं कहाँ-कहाँ जाकर सिर टेकते हैं कि श्री मिल जाये। हे ज्ञानी! 'श्री' मिल जाये' ऐसा सोचने से श्री नहीं मिलती। श्रीजी की भक्ति करेगा तो अपने आप श्री मिलेगी, भाग्य हुआ तो। हमारे 'समयसार' जी ग्रन्थ में सोना बनाने की विधि लिखी हुई है। आपका मन कह रहा होगा 'महाराज! सब बन्द करो, वही बता दो।' ज्ञानी! सत्य कह रहा हूँ। कुन्दकुन्द स्वामी ने सोना बनाने की विधि लिख दी, पर जयसेन स्वामी ने टीका करके छोटी-सी बात उसमें रख दी। नागफनी की जड़, जस्ता, हथिनी का मूत्र, इत्यादि द्रव्यों को मंद धौंकनी से धौंकने पर सोना बनता है, लेकिन पुण्य है तो। अब ज्ञानी! तुम कितना ही कुछ कर लेना, धनबल, ज्ञानबल, आयुबल हो सकता है, पर कार्य की सफलता तभी होगी जब पुण्य का बल साथ में होगा। पुण्य का बल है तो सारे बल एक किनारे हो जाते हैं। रावण से पूछो, जब पुण्य बल क्षीण हो गया तो काम के बाण से बिंध करके यश-कीर्ति नष्ट कर बैठा।

ज्ञानियो! सम्पत्ति नष्ट हो रही हो तो विकल्प मत करना, वह तो पुनः कमाई जा सकती है, पर जीवन में एक बार भी यश नष्ट नहीं होना चाहिए। जो आत्मा में कर्म लगे हैं, उनके कलंक तो नष्ट किये जा सकते हैं, परन्तु अपयश का

कलंक लग गया तो भगवान् बन कर भी नहीं मिटा पाओगे। आपको विश्वास न हो तो भरत-बाहुबली स्वामी से पूछो। दोनों सिद्धालय में विराजित हैं, परन्तु इतिहास कह रहा है कि राज्य के लिए भाई-भाई लड़े थे। हे भरतेश! तुम सिद्ध भगवान् हो गए, परन्तु भाई पर चक्र चलाया था उस कलंक को नष्ट नहीं कर पाये। सूखी रोटी खा लेना, वह भी न मिले तो णमोकार पढ़कर सल्लेखना धारण कर लेना, पर कलंक का जीवन नहीं जीना। मेरा श्रद्धान परमेष्ठी से दूर न हो, इस पुरुषार्थ के साथ इतना ध्यान और रखना कि मेरे प्रति भी किसी का अश्रद्धान न बन पाये। जिसके भीतर ये शब्द आ गये, उसके जीवन की चर्या अपने आप सम्यक् चलेगी। सच्चा योगी बनकर जीना है तो यह विषय तो अपने भीतर लाना ही पड़ेगा कि मेरे प्रति किसी का अश्रद्धान न बन पाये। आपके अन्दर में दूसरे के प्रति अश्रद्धान क्यों होता है, इसकी खोज होनी चाहिए। जब वह खोज हो जायेगी, तो फिर आपको सोचना पड़ेगा कि जब मुझे इस क्रिया से अश्रद्धान उत्पन्न हो सकता है, तो मेरी खोटी क्रिया से दूसरे को भी मेरे ऊपर अश्रद्धान हो सकता है। जितना भी आनंद है, विश्वास रखना ज्ञानियो! जगत् में सम्पूर्ण द्रव्यों का आनंद श्रद्धा गुण पर टिका हुआ है। श्रद्धा गई, तो सारा आनंद समाप्त। ज्ञानियो! तुम जगत् में किसी के हाथ-पैर भी तोड़ दो तो इतना विकल्प नहीं है, परन्तु किसी की वीतराग भाव से श्रद्धा को तोड़ने का प्रयास मत करना। उन शब्दों का प्रयोग मत कर देना जिनसे लोगों की देव-शास्त्र-गुरु पर से श्रद्धा टूट जाये। ऐसे शब्दों का प्रयोग मत करना कि किसी के घर टूट जायें। ये कृष्ण लेश्या का लक्षण है कि दूसरे की मित्रता को भंग करा देना।

इस खोटे काल के लोगों के हृदय भी कलुषित हैं, इसलिए प्रवक्ता नय के ज्ञान से शून्य हो रहे हैं। कोई वक्ता निश्चय को खींच रहा है, कोई व्यवहार को खींच रहा है; परन्तु वस्तुस्वरूप न निश्चय का खींचना है, न व्यवहार का खींचना है। वस्तुस्वरूप की व्याख्या करके मध्यस्थ होकर जो जीता है, उसका नाम मोक्षमार्गी है। धर्म सम्मान का भूखा नहीं होता। ज्ञानी! सम्मानों को महत्त्व नहीं देना, अपमानों को महत्त्व नहीं देना, महत्त्व देना तो भगवान् को महत्त्व देना।

कितने लोग होंगे जो मन्दिर नहीं आते। कहते हैं कि वहाँ सम्मान नहीं होता मेरा। पर्याय का अभिनन्दन चाहने वाला तू शरीर के अभिनन्दन की दृष्टि से आया था या भगवान् की वन्दना की दृष्टि से आया था? कितने ही श्रावक मिल जायेंगे जो दूर के मन्दिर चले जायेंगे, पर घर के सामने के मन्दिर में नहीं जायेंगे। क्यों? क्योंकि यहाँ मेरा सम्मान नहीं होता।

हे मुमुक्षु! तूने भगवान् को नहीं देखा। तूने अपनी पर्याय के सम्मान को देखा है। मखमली कीड़ों को देखना, कितने सुन्दर दिखते हैं? कौन लोग हैं वे, पता है ? जो पुण्यभूमि में आकर मात्र सम्मान चाहते थे, उनके पुण्य ने कहा, बेटा! चिन्ता मत करो, जैसा सुन्दर वाह्याचरण/वाह्य भेष होता है, वैसा सुन्दर तुझे शरीर ही दे देता हूँ। तूने जो आराधना की है, वह सम्मान के लिये की है, भगवान् के लिये नहीं की, इसलिए पर्याय तेरी तिर्यञ्च की होगी, पर सुन्दर होगी।

जिसका चित्त मिथ्यात्व के मोह से मोहित हो चुका है, वह आत्मतत्त्व को नहीं जानता। अंगूर के विकृत रस का जिसने पान किया है, वह मदहोश हो सकता है। अंगूर के विकृत रस का मद तो उतर जायेगा, पर हे मुमुक्षु! अनादि से तुमने मोह के रस का पान किया है, वह मोह की मदिरा तेरे नशे को बढ़ा रही है और तुझे भेदविज्ञान होने नहीं दे रही है। शराब का मद तो उतर जायेगा, पर मोह का मद कितना विकार उत्पन्न कर रहा है ? वह विकराल है।

संसार में कब से हैं, कब तक रहना है? जब तक मोह को नष्ट नहीं किया। मोह को नष्ट करना अपनी भगवानआत्मा के हाथ में है। ज्ञानी! देर नहीं लगती, अन्तर्मुहूर्त में काम हो जाता है। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है, आप लोग घर में रह कैसे रह रहे हो? कोई किसी को बाँधे नहीं है। सत्य तो यह है कि तुम्हारी कषाय/वासना की कमजोरी तुमको बांध कर रखे हुए है। आप लोगों को बुरा नहीं लगता मैं इतना सुनाता रहता हूँ ? ज्ञानी! नमक की डली पर एक बूंद पानी गिर जाये तो वह नमक भी पानी बन जाता है। धन्य है आप लोगों को जो जिनवाणी की इतनी बूंदों के गिरने पर भी पानी नहीं होते।

जो तत्त्व के विपरीत कथन कर रहे हैं, मिथ्यात्व से भरे हुए हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवों के वचनों में आकर हे ज्ञानी! अपनी सम्यक्त्व रूपी चिड़िया का घात मत कर लेना। मिथ्यात्व के बहेलिया (आखेटक) बहुत हैं, तेरे सम्यक्त्व रत्न को चुराने वाले चोर बहुत हैं। ज्ञानी! यदि घर में डाकू घुस आये तो चिन्ता मत करना, पर तेरे अन्दर जो सम्यक्त्व का रत्न रखा हुआ है, उसकी मिथ्यात्व के चोरों से रक्षा अवश्य करना। धन्य है आपकी समता को, जिस समता से आप घर की विषमता को सहन कर लेते हो। यदि साधु बनकर करते तो कर्म की गुणश्रेणी निर्जरा होती। हे कालिया नागो! सपेरे की टोकरी में नाग कितना ही सिर उठाये, किन्तु अन्त में टोकरी में ही शांत बैठना पड़ता है। हे भावों के कालिया नागो! तुम घर में कितनी ही मोक्षमार्ग की बातें कर लो, पर राग की टोकरी में तू शांत होकर बैठ जाता है। बांमी के अन्दर बैठा कालिया नाग भी बीन की आवाज सुनकर बाहर निकल आता है और नाच उठता है, ऐसे ही मुमुक्षुओ! जिनवाणी की आवाज सुनकर विषय-कषाय की बांमी से बाहर निकल आओ और वीतराग चारित्र के आंगन में झूमने लग जाओ तो तुम्हारी जहर की थैली निकल जायेगी और तुम भगवान्-आत्मा बन जाओगे।

दुःखस्य भीरवोऽप्येते, सद्धर्मं न हि कुर्वते।
कर्मणा मोहनीयेन, मोहिता बहवो जनाः॥54॥

ऐसा लगता है आचार्य महाराज जब ग्रन्थ लिख रहे थे तो जैसे प्राणियों के मन को पढ़ रहे हों, उनके अन्तस् में बैठकर लिख रहे हों। ज्ञानियो! आपके सामने कोई युवक अशुभ प्रवृति में भी लग गया हो तो तुम उसे पापी मत समझना। भीतर की बात कह रहा हूँ। तुम्हारे मन में भाव होता है कि ये पाप मैं न करूँ। ऐसे लोग भी हैं जो पाप करते-करते णमोकार पढ़ते हैं। आगम की भाषा में कहूँ तो ऐसे लोगों के घर में भी महावीर और तीर्थंकर जैसी संतान होती है। जो काम पुरुषार्थ के काल में भी परमात्मा का नाम नहीं छोड़ते, उनके घर में साधु-साध्वी जैसी संतान होती है। जो पापकर्म में भी पाप करते हैं, तीव्र लिप्सा से युक्त होते हैं, उनके घर में कमठ, रावण, मंथरा जैसी संतान होती है। मेरे पास सब

तरह के लोग आते हैं, कहते हैं, महाराज! बहुत कोशिश करता हूँ, फिर भी ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाता। मैं कहता हूँ कि कोई बात नहीं। तुम घबराना मत। यदि ऐसे ही भाव हैं तो भगवान् के द्वार पर आते रहना। एक दिन ऐसा आयेगा जब तुम्हारा वासना का काल समाप्त हो जायेगा, साधना का काल प्रारम्भ हो जायेगा। पर मन्दिर आना मत छोड़ना। बिगड़ भी गये हो, तब भी भगवान् के द्वार पर आना बन्द मत कर देना। विश्वास रखना, जिनवाणी में प्रायश्चित्त है, प्रतिक्रमण है, आलोचना है, निन्दा है, गर्हा है इनका प्रयोग करो, परिणामों को साफ करो। आलोचना व प्रतिक्रमण करते रहो। भावना बनाकर रखना कि वह दिन कब आये जब मैं पापों से मुक्त हो जाऊँ।

दु:खों से भयभीत हुआ पुरुष सद्धर्म को नहीं कर पा रहा है। मोह कर्म से मोहित हुआ प्राणी समझता है, डरता है, भयभीत होता है, लेकिन तब भी धर्म में नहीं लग रहा है। यह कर्म का सताया भटक रहा है। भैया! इसलिए कोई अशुभ भी कर रहा हो तो उसको देखकर अशुभ भाव मत करना। यही सोचना कि बेचारे के अशुभ कर्म का उदय चल रहा है। काश! मुझ में इतनी शक्ति होती कि मैं इसको अपने-जैसा बना लेता। परन्तु कौन बना सकता है? कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मिथ्यादृष्टि की रुचि"

कथं न रमते चित्तं, धर्मे चैकसुखप्रदे।
देवानां दुःखभीरूणां, प्रायो मिथ्यादृशो यतः॥ 55॥

अन्वयार्थ—दुःखभीरूणां = दुःखों से भयभीत, **देवानां** = देवों का, **चित्तं** = मन **एक सुखप्रदे धर्मे च** = एकमात्र सुख के देने वाले धर्म में, **कथं न रमते** = क्यों नहीं रमण करता? **यतः** = क्योंकि **प्रायः मिथ्यादृशः** = वे बहुधा मिथ्यादृष्टि होते हैं।

भावार्थ—हे भव्य! दुःखों से भयभीत देवों का चित्त सुखप्रद धर्म में क्यों नहीं रमण करता है? क्योंकि वे बहुधा मिथ्यादृष्टि होते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर महावीर की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन नमोस्तुशासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सार समुच्चय' जी में सम्यक्त्व की व्याख्या करते हुए कह रहे हैं कि यदि दृष्टि निर्मल है, पवित्र है, तो हर वस्तु में आपको धर्म दिखाई देगा। दृष्टि में निर्मलता नहीं है तो विश्वास रखना, माँ के अंदर भी मातृभाव दृष्टिगोचर नहीं होगा। जब चित्त प्रसन्न और उल्लसित है, उस काल में काँटे भी सुहावने लगते हैं। मन खिन्न होता है तो चन्द्रमा की चाँदनी भी झुलसाती है। वे ही लोग जो मधुर महसूस होते थे, वे आज अशुभ नजर क्यों आ रहे हैं? वस्तु नहीं बदली, दृष्टि बदल गई है। राग की पूर्ति हो रही थी तो मैत्रीभाव था, पर जब इच्छाओं की पूर्ति होना बंद हो गई तो मैत्रीभाव खत्म हो गया। दिगम्बर जैन परम्परा में आचार्य भगवंतों ने राग की पूर्ति का नाम 'मैत्री' नहीं किया। जिससे आपकी इच्छाओं की पूर्ति हो रही हो, आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है, उसके साथ तुम्हारी मित्रता है, यह 'मैत्री' नहीं है। इच्छाओं की पूर्ति के साथ जो मैत्री है वह राग का प्रतीक है। मैत्री में किसी के साथ कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होती है,

मैत्री में कोई आकांक्षा नहीं होती है, उपकार करने पर भी उपकार के बदले की भावना नहीं होती है। बदले की भावना होती है, तो वह मैत्री नहीं, व्यापार है। यदि आपने जीवन में किसी का उपकार भी किया हो, तो ऐसे भूल जाना जैसे प्रातः संडास में छोड़कर आते हो, उसे दोबारा देखने का भाव नहीं करते। जगत् में आपको मैत्रीभाव स्थापित करने की दृष्टि है, तो जिसने उपकार किया है उसका तो स्मरण करना चाहिए, लेकिन आपने किसी पर उपकार किया है तो उसे भूल जाना चाहिए। जीवन में एक बात ध्यान रखना, 'सबके दिन एक-से नहीं होते'। अज्ञानी दुःखों के दिनों को देखकर दिल दुःखाता है और ज्ञानी दुःखों के दिनों को देखकर आनंदित होता है। लगता ऐसा है कि सारा विश्व मेरा है, लेकिन विश्वास रखना, विश्व तेरा नहीं है, तेरा किया हुआ पुण्य तेरा है और जब तक पुण्य साथ देता है, तब तक शत्रु के घर में भी राज्यतिलक होता है और जब वह साथ छोड़ देता है तो आपका राज्य आपके हाथ से चला जाता है। इसलिए कभी विकल्प नहीं करना, कि हाय क्या हुआ ? मित्र भी पलायन कर जाते हैं। जीवन में एक सूत्र ध्यान रखना- दूसरे के बल पर कभी कोई काम प्रारंभ मत करना। पर के पुण्य पर आप कोई कार्य प्रारंभ करोगे, तो विश्वास रखना, वह पुण्य उसका है, तेरा नहीं, इसीलिये उसे तो सफलता मिलेगी, पर तू असफल ही होगा। यदि लौकिक कार्य भी करो, तो पहले स्वयं का पुण्य निहारना। ज्ञानियो! पुण्य हो तो अग्नि में भी हाथ डाल देना, वहाँ तुझे मोती मिलेंगे और जिस दिन पुण्य क्षीण हो जायेगा, मोतियों में हाथ डालेगा तो वे अंगारे बनकर जला देंगे। सोमा सती ने मटके में से वास्तव में हार नहीं निकाला था। वह हार नहीं, कालिया नाग था। हे शील! तुझे धन्य हो, तेरी महिमा इस विश्व में अकथनीय है। जिसका हृदय पवित्र हो, उसके लिए कालिया नाग भी हार हो जाता है। जब पापी होता है तो इष्ट भी अनिष्ट हो जाता है।

मुमुक्षुओ! ध्यान रखना, सूर्य को मुट्ठी में बंद नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार जिस जीव का पुण्य का उदय तीव्र होता है उसे कोई नहीं रोक सकता। जगत् में किसी का अशुभ सोचोगे उसका अशुभ तो नहीं होगा, पर सोचने वाले का अशुभ निश्चित है। जिसके प्रति अनुपकार का भाव है, उसका अनुपकार हो या न हो, यह कर्म पर नियत है, पर तेरा अशुभ नियत है। यह मत सोचना कि मेरे साथ भेदभाव हो रहा है। भाई!

आप चार भाई एकसाथ बैठकर भोजन कर रहे हो। परोसनेवाला सबको समान परोस रहा है। उसके मन में कुछ नहीं है कि किसको कितना परोसूँ, पर नियोग देखो, जैसे ही तेरा नंबर आया, उसके हाथ में सामग्री समाप्त हो गई। ज्ञानी! उसके हाथ में तेरे भाग्य की सामग्री नहीं थी। उसमें परोसनेवाले का दोष नहीं है, तेरा ही दोष है। किसी से भी पुण्य का हिस्सा नहीं माँगा जा सकता।

दो भाई थे। पिताजी से कहने लगे कि हमें अलग कर दो, हम साथ नहीं रह सकते। पिता समझदार थे। बोले- बेटे! एक वर्ष के अंदर मैं दोनों को अलग कर दूँगा, पर छोटी-सी बात मेरी मान लो। पिता ने एक-एक मुट्ठी चने दोनों भाइयों को दे दिये और कहा कि एक वर्ष उपरांत ये चने मुझे वापिस कर देना, फिर मैं दोनों को बराबर हिस्सा देकर अलग कर दूँगा। दोनों बहुत खुश हुए कि चलो, एक साल तो निकाल लेंगे। पिता से हर समय बेटे क्यों लड़ते थे ? बड़े बेटे पर ज्यादा ध्यान नहीं था पिता का, छोटे बेटे पर अधिक था, इसलिए बड़ा बेटा बिलखता था कि मेरे प्रति बाप को अनुराग भाव नहीं है। पिता समझदार था। वह बुद्धि से काम करता है। करणानुयोग और जैन सिद्धांत कहता है कि शरीर की साधना करने वाले की अपेक्षा मानसिक साधना करने वाले को कर्म की निर्जरा अधिक होती है। उपवास कर लेना और दो घण्टे ध्यान कर लेना, ज्ञानी! ध्यान की निर्जरा अधिक होगी उपवास की अपेक्षा। बड़े बेटे ने चनों को सोने के डिब्बे में बंद करके सुरक्षित रख दिया। प्रतिदिन उसको अगरबत्ती लगाने लग गया। छोटा बेटा सोचता है कि एक मुट्ठी चने दिये हैं और एक वर्ष बाद माँगे हैं, कोई-न-कोई रहस्य होना चाहिए।

अज्ञानी मंदबुद्धि उतना ही करते हैं जितना आपने कह दिया और ज्ञानी पुरुष एक अक्षर को ज्ञान से एक ग्रंथ बनाने की क्षमता रखता है, वह तत्त्वज्ञ पुरुष होता है। तत्त्वज्ञ चिन्तक पुरुष होता है, वह किसानवत् होता है। छोटे बेटे ने सोचा, यदि घर में रखता हूँ तो कीड़े लग जायेंगे, फेंकना पड़ेंगे। क्यों न इन चनों को खेत में बो दूँ। जब खेत में चने बो दिये, तो कुछ समय बाद फसल आने पर बोरे भर गये। एक वर्ष बाद पिता ने बेटों को संदेश भेजा कि चने लेकर आइये। ज्येष्ठ पुत्र मुस्कुराते हुए सोने की डिब्बी लेकर पिताजी के पास पहुँचता है और कहता है—तात! मैंने आपके दिये हुए चनों को

सोने की डिब्बी में रखा है और प्रतिदिन अगरबत्ती लगाई है, आरती उतारी है। पिता सिर ठोक लेता है। कहता है, 'ठीक है। जरा खोल कर और दिखाओ।' जैसे ही डिब्बे का ढक्कन खोलता है, उसमें कीड़े घूम रहे थे। पिता कुछ नहीं बोले। छोटे बेटे से बोले-बेटा! तुम्हारे चने कहाँ हैं? बेटा कहता है- पिताजी! क्षमा करना, आपको कष्ट उठाना पड़ेगा। मैं चने यहाँ तक लाने में असमर्थ हूँ। क्यों? उनसे तो पूरा बोरा भरा हुआ है, आपको तो चलकर ही देखना पड़ेगा। पिता समझ गये।

बेटो! पिताजी से हिस्सा मत माँगो। अहंकार में मत डूबो। अपनी प्रज्ञा की पहचान स्वयं करो। तुममें बुद्धि कितनी है? पिताजी ने कहा- बेटे! अब अलग होना है कि नहीं? ज्येष्ठ पुत्र कहता है- पिताजी! मैं यह समझता था कि मेरी वजह से पूरा परिवार चल रहा है, पर आज समझ में आ गया कि मेरे में मात्र अहंकार करने की बुद्धि थी और चने में कीड़े लगाने की बुद्धि थी। जिस जीव के अंदर अहंकार की बुद्धि है, वह अपने मार्दव-आर्जव धर्म में कीड़े लगा रहा है और जिसकी साम्य बुद्धि है, वह अपने परिणामों को शुचिता से युक्त कर रहा है। ज्ञानी! न शरीर को पवित्र करो, न भूमि को पवित्र करो। यदि विश्व का भला चाहते हो तो अपनी सोच को शौच करो। जिसका सोच पवित्र है, जगत् में वही पवित्र है। जिसका सोच पवित्र नहीं है,उसके हृदय में शुचिता नहीं है और वह प्राणरहित मुर्दे के समान है। मुझे मत देखिये, आप उसे देखिये जो मुझे देख रहा है। जो यह कह रहा है कि चलो, महाराज के पास चलें, उससे कहना ज्ञानी! तू अपने पास भी तो मुझे ले चल। सारे जगत् का मार्ग दिखा दिया और जिसने मार्ग दिखाया है, उसे ही तूने महत्व नहीं दिया। उसे मार्ग से दूर कर दिया।

मुमुक्षुओ! जीव पहले देखता है कि हानि कहाँ और लाभ कहाँ है? ग्राह्य-अग्राह्य का बोध नहीं है, आपा-पर का भेदविज्ञान नहीं है, हेय-उपादेय पर दृष्टि नहीं है, उसका ज्ञान किस काम का? बुद्धि का प्रयोग भी किया तो अध्यवसाय भाव में किया, रागादिक परिणामों में किया। बुद्धि का प्रयोग भी किया तो यह सोचा कि दूसरे को नीचा कैसे दिखा पाऊँ। पर सत्यता यह है कि ज्ञानी! नीचा कौन देखेगा, कौन दिखायेगा? कर्म कह रहा है कि फावड़े को जमीन पर पटक देना और उस पर पैर रख देना, फिर क्या होगा? समझो, क्या कह रहा हूँ? क्या होगा? हे पैर रखने वाले ज्ञानी! जैसे ही तू पैर

रखेगा, उसका डण्डा कहाँ जायेगा? स्वयं के सिर में ही लगेगा कि नहीं ? यदि कोई तुमको सता भी रहा हो, दु:खी भी करता हो, तो मेरे भैया! उसके प्रति अशुभ मत सोचना, आप तो उस फावड़े को देख लेना। जो उस फावड़े पर पैर रखेगा, उसका सिर फूटेगा कि नहीं? कर्म स्वयं देख रहा है, तो मैं परेशान क्यों होऊँ? साम्य भाव रखना चाहिए। कोटि-कोटि वर्षों की तपस्या सरल है, एक क्षण का साम्यभाव रख पाना कठिन है। विषमता के आने पर समता के परिणाम रख पाना बहुत कठिन है। ज्ञानी! आप अभ्यास करो। जो बहिरंग साधना है, वह तो दुकान में लगे फर्नीचर के समान है और जो समता परिणाम है, वह दुकान में भरे हुए माल के समान है।

माँ! घर में कहीं विषमता दृष्टिगोचर हो जाय तो सूत्र को ध्यान रखना। एक समय प्रमाण काल की समता से जो पुण्य का आस्रव होगा, जो कर्म की निर्जरा होगी, वह कोटि-कोटि तपस्या से भी होने वाली नहीं है। ज्ञानी! सुनो। यदि रास्ते में कहीं जा रहे हो, तुम्हें किसी भूमि पर बोर्ड लिखा दिखे 'जिनालय के लिए प्रस्तावित भूमि' तो उस भूमि पर भी आपका गंदगी करने का भाव नहीं आता। ज्ञानियो! आज तुम श्रद्धा में बैठे हो, तुम सब प्रस्तावित सिद्ध परमात्मा हो। जितने निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं, वे प्रस्तावित सिद्ध परमात्मा हैं। जब तू प्रस्तावित भूमि पर गंदगी नहीं कर सकता, तो धर्मात्मा को देखकर भी अपने भावों को खराब मत करना, वह प्रस्तावित भूमि है। **'मुनि तन मलिन न देख घिनावे।'**

हे सम्यग्दृष्टियो! मुनि के मलिन तन को देखकर भी मन में ग्लानि के भाव मत लाना, यह प्रस्तावित सिद्धभूमि है। जिसको निर्ग्रन्थ दिखाई नहीं देते, उसको अरिहंत मिल ही नहीं सकते। हृदयों की डायरी पर लिख लेना। जिनके नयनों में निर्ग्रन्थ नहीं दिखते, मृगनयनी का निवास है, उन्हें ब्रह्म-सुख की प्राप्ति कहाँ?

एक भैया मेरे से कह रहा था- महाराज! थोड़ा सरल प्रवचन करो। मैंने कहा- ज्ञानी! सरलता में कोई आनंद नहीं। इतना समझ लेना कि समझ में नहीं आ रहा, तब भी मैं प्रसन्न रहूँगा। क्योंकि प्रवचन कठिन नहीं, तुम्हारी बुद्धि की कमी है। महावीर स्वामी के पास 'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कम्' सूत्र का उत्तर न होता, तो गौतम स्वामी का मिथ्यात्व दूर कौन कर पाता? अहंकारी जीव गौतम, जो कहता था कि ब्रह्माण्ड में मेरे

समान कोई ज्ञानी नहीं है और जैसे ही सूत्र सामने आया, सारे पुराण और वेद-वेदान्त का ज्ञाता, मीमांसा का अध्ययन करने वाला, गौतम कहता है- 'त्रैकालं द्रव्य षट्कम्' यह तो मैंने आज तक नहीं सुना। ज्ञानी! ध्यान रखना, अज्ञानी मित्र की अपेक्षा ज्ञानी शत्रु फिर भी श्रेष्ठ है। अहंकारी गौतम को उत्तर नहीं आता था। वह सोचता है कि मेरे 500 शिष्य क्या सोचेंगे? प्रज्ञा का उपयोग किया। 'आपको क्या समझाना? मैं तो आपके गुरु को ही समझाऊँगा।' सौधर्म इन्द्र मुस्कुरा दिया, मैं यही तो चाहता था। हाथी, घोड़े, ऊँट कब तक बड़े? जब तक पहाड़ के नीचे नहीं खड़े। गौतम आकर जैसे ही प्रभु की समवसरण सभा को देखते हैं, नतमस्तक हो गये।

अभद्र भी ज्ञानियो! प्रभु के चरणों में समंतभद्र हो जाता है। जो महावीर को समझाने गये थे, स्वयं समझ गये, केशलुंचन प्रारंभ हो गया। 500 शिष्य थे साथ में, वे भी दिगम्बर मुनि बन गये। इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि शिष्यों के साथ दिगम्बर दीक्षा ले ली। महिमा तो देखो अरिहंत दशा की, एक दिन में 1503 शिष्यों की प्राप्ति हुई थी तीर्थंकर महावीर को। किसके प्रभाव से? विश्वास रखना, जितना सरलीकरण हो रहा है, उतना महत्व कम हो रहा है। जितना आनंद सम्मेदशिखर की वंदना में कंकड़, पत्थरों पर चढ़ कर जाने में आता था, वह पक्की सड़क पर दौड़-दौड़ कर जाने वालों को नहीं आता। आप लोग क्या करते हैं? घर से थैला लेकर सब्जी लेने जाते हैं, तो पत्नी से कहता है कि मंदिर के चावल की डिब्बी और दे दो, दर्शन और करता आऊँगा। अरे अभागे! भगवान् महान् हैं कि साग महान् है? क्रियायें दोनों ही की हैं। मंदिर भी गया, लेकिन पहले क्या बोला?- थैला दे दो, साग लेकर आऊँगा। ज्ञानी! दृष्टि तेरी पहले राग की है और सम्यग्दृष्टि जीव कहता है- बार-बार जाऊँगा तो अनर्थदण्ड होगा, इसलिए मैं मंदिर जा रहा हूँ, थैला दे दो, लौटते समय साग भी लेता आऊँगा। दोनों ने एक समान काम किया, पर एक बंधक है, दूसरा अबंधक है। बस, आपको दृष्टि को मोड़ना है, वस्तु को कुछ नहीं करना। इतना-सा करने के लिए कितना चिन्तवन, कितना पुरुषार्थ चाहिए? भैया! विश्वास रखना, इतना तभी कर पाओगे, जब तुम्हारा प्रशस्त पुण्य साथ देगा। अशुभ के काल में **'प्रक्षीणपुण्यं विनश्यति विचारणं'**।

जिस जीव का पुण्य क्षीण हो जाता है, उसको कोटि-कोटि सम्यक् तत्त्व समझाना, लेकिन उसकी विचार-बुद्धि में चढ़ेंगे ही नहीं। जब समझाने पर भी न समझे कोई, तो आप अशुभ मत सोचना। बस, यही कहना, भैया! अब कुछ नहीं हो सकता, इसका पुण्य क्षीण हो चुका है। रावण को विभीषण ने कितना समझाया? भैया! जिस जीव की प्रवृत्ति अशुभ बोलने की हो चुकी है, आप उसको कितना ही समझाओ, वह अपनी प्रवृत्ति बदलने वाला नहीं है। आप अपने भाव अशुभ मत करना, इसमें उसका भी दोष नहीं है, उसकी पर्याय की प्रत्यासत्ति ही ऐसी है। उसका स्वभाव ही ऐसा है। जिनवाणी माँ कह रही है कि वर्ण को देखकर किसी से प्रभावित मत हो जाना, वाणी को देखकर प्रभावित होना। भाषा तो भावों की जनक है। भाषा भावों की उद्घाटक है। भाषा भावों की अभिव्यक्ति है। जैसा भीतर भाव हो रहा है, वैसी भाषा निकलना प्रारंभ होती है। कुए में झाँककर आवाज करोगे तो जैसी आप आवाज करोगे, वैसी ही प्रतिध्वनि सुनाई देगी। जैसा भव होगा, वैसी भाषा होगी। उज्जैन चातुर्मास में मैंने अलौकिक दृश्य देखा। सुबह-सुबह एक भिखारी दूसरे भिखारी को भीख दे रहा था। वह कितना महान् है कि भिखारी होकर भी भीख देना जानता है, परन्तु वह कितना हीन होगा जो भिखारी से भी भीख माँग रहा होगा। ज्ञानियो! हीनाचरण वाले हीनाचरण करें तो समझ में आता है, हीनाचरण वाले के साथ आप हीनाचरण करो तो सबसे हीन कौन होगा? भिखारी से भीख मत माँगो।

तत्त्व को जानते हुए भी तत्त्व पर नहीं चल पाता तो दोष किसका है? किसी का भी नहीं, दोष मोह का है। अहो भूताविष्ट! 'समयसार' जी में कुंदकुंद देव ने कहा- भूताविष्ट। भूत लग जाये तो मंत्र के द्वारा उतर जाते हैं, परन्तु मोहाविष्टों का किसी भी मंत्र से मोह नहीं उतरता। मोह-भूत तो भव-भव में सताये जा रहा है, फिर भी उसे उतरवाने की बात नहीं सोचता। ज्ञानी! निज घर जाओ।

कथं न रमते चित्तं, धर्मे चैकसुखप्रदे।
देवानां दुःखभरूिणां, प्रायो मिथ्यादृशो यतः॥ 55॥

पुनः कह रहे हैं आचार्य महाराज कि भैया! ज्ञानीपना तो ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम है, पर चारित्र तो चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से प्रगट होता है।

ज्ञानियों को चारित्रवानों के प्रति शुभ भाव रखना चाहिए और चारित्रवानों को भी ज्ञानियों के प्रति शुभ भाव रखना चाहिए। एक दूसरे को देखकर अशुभ परिणाम मत करो, अपना अपना क्षयोपशम देखो। स्वर्ग का देव तो अपने अवधिज्ञान से सब कुछ जान लेता है। जान लेना भिन्न विषय है और आचरण में ला पाना भिन्न विषय है।

धर्म में चित्त क्यों नहीं रमण कर पाता? दु:खों से भयभीत देवों का चित्त सुख को देने वाले धर्म में क्यों नहीं रमण कर पाता? क्यों करें, कैसे करें? प्राय: करके लोक में लोक की दृष्टि मिथ्या है। मोह के कारण ज्ञान कार्यकारी नहीं होता। एक प्रश्न करूँ? कितने लोगों को मालूम नहीं है कि पाँच पाप, 'पाप' हैं? हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पाँच पाप 'पाप' हैं कि नहीं? हैं। फिर नरक जाना पड़ता है कि नहीं? हाँ। क्या आप सबको इतना मालूम नहीं है? सब कुछ मालूम है। पाँच पापों से कर्म का बंध होता है, इतना जानने के बाद भी जानबूझकर आप पाप कर रहे हैं। क्या करूँ, मोह से ढँका मेरा ज्ञान तत्त्व का प्रवाह ही नहीं होने देता।

ज्ञानियो! अपने जीवन में अंतरंग में उतार कर चलना, भगवन्! मोह के बादल कब हटें और वस्तुस्वरूप का बोध कब हो।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"कर्मनाश का कारण-धर्माचरण"

दुःखं न शक्यते सोढुं, पूर्वकर्मार्जितं नरैः।
तस्मात् कुरुत सद्धर्मं, येन तत्कर्म नश्यति॥ 56॥

अन्वयार्थ—यदि **नरैः** = मानव, **पूर्वकर्मार्जितं** = पूर्व कर्मों के उदय से प्राप्त, **दुःखं** = दुःख को, **सोढुं न शक्यते** = सहन नहीं कर सकते हैं, **तस्मात्** = तब तो **सद्धर्मं कुरुत** = उन्हें सद्धर्म का आचरण करना ही चाहिए, **येन** = जिस धर्म के सेवन से, **तत्कर्म** = वह पूर्व का पापकर्म, **नश्यति** = नाश हो जाए।

भावार्थ—हे भव्य! यदि पूर्व कर्म के उदय से प्राप्त दुःखों को सहन करने में समर्थ नहीं है, तो सद्धर्म का आचरण करना चाहिए, जिससे पूर्वोपार्जित कर्म का नाश हो जायेगा।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर प्रभु की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तुशासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के उत्थान के लिए उन गुण-दोषों की विवेचना कर रहे हैं, जिनको न जानने के कारण यह जीव अज्ञता में विज्ञता की खोज कर रहा था। लोक में बहुत सारे ऐसे जीव हैं जो यथार्थ में अपने आपको ज्ञानी मानते थे, पर जैसे-जैसे उनका ज्ञान बढ़ा, वे पूर्व के ज्ञान को अज्ञान मानने लगे। जीव अपने आपको ज्ञानी मानता है, यह निर्णय दूसरे का नहीं, स्वयं का ही है। जैसे-जैसे मोह मंद होता जाता है, लिप्सायें कम होती जाती हैं, वैसे-वैसे ज्ञान वर्द्धमान होता है। हे ज्ञानी! अपने ऊपर ही दृष्टि डालो। जो युवावस्था में पूर्व में आप किया करते थे, वह आज अच्छा लगता है क्या? इतना सारा प्रमेय आपके पास है, इतना सारा ज्ञेय आपके पास है, जैसे-जैसे आपका अनुभव बढ़ता जाता है, विश्वास रखना, ग्रंथ बंद हो जायेंगे, आपका जीवन ही ग्रंथ बनकर स्वाध्याय प्रारंभ हो जायेगा। एक क्षण ऐसा आता है कि

निर्ग्रन्थों के ग्रंथ खुलना बंद हो जाते हैं और ग्रंथियाँ खुलना प्रारंभ हो जाती हैं। ज्ञानी! यही शुद्धोपयोग की दशा है। जहाँ कर्म की ग्रंथियाँ खुलना प्रारंभ हो चुकी हैं, ग्रंथ खोलने के विकल्प का भी जहाँ अभाव हो चुका है, वही निर्ग्रन्थ की निर्ग्रन्थ दशा है। स्वयं चिन्तन प्रारंभ करो। निज के प्रमेय में निज को ही प्रमेय बनाना है, निज के ज्ञेय में निज को ही प्रमेय बनाना है। परज्ञेयों को छोड़कर ग्रहण करना।

एक जीव स्वयं तो व्यवस्थित बैठा है, किन्तु किसी अशुभ पुरुष की चेष्ठा देखकर सोच रहा है कि यह अमुक प्राणी कैसे कार्य कर रहा है? कैसी चेष्ठा कर रहा है? आपका काययोग व्यवस्थित था, लेकिन मनयोग चंचल है। हे ज्ञानी! जहाँ तू बैठा है, वहाँ अरिहंत देव का जिनबिम्ब भी था, जिनवाणी भी थी और वीतरागी तपोधन भी थे, फिर भी दृष्टि जा रही है व्यक्ति पर। तेरा स्वयं का चित्त कह रहा है, कि मैं प्रशस्त चिन्तन कर रहा हूँ। हे ज्ञानी! तेरे ज्ञान में अरिहंत ज्ञेय नहीं आ रहे, तेरे ज्ञान में जिनवाणी ज्ञेय नहीं आ रही है, निर्ग्रन्थ तपोधन तेरे ज्ञान में ज्ञेय नहीं आ रहे हैं, तेरे ज्ञान में तो उस व्यक्ति का चेहरा ज्ञेय बनकर आ रहा है। इस समय तेरे परिणामों की दशा क्या है? और ज्ञान में ज्ञेय क्या है? तू सोच रहा है कि मैं अच्छा कर रहा हूँ, लेकिन तू अच्छा कर ही कहाँ रहा है? ऐसे आयुकर्म के निषेक उन क्रियाओं में उस जीव ने कितने नष्ट किये हैं? और यह सोच रहा था कि में तो अच्छा कर रहा हूँ।

ज्ञानी! जिस क्षण हम अच्छा करने का विचार करते हैं, शीघ्र ही उसी क्षण दूसरे की बुराइयाँ सामने आती हैं। अच्छा कार्य करके अपनी अच्छाई का ही आनंद लूटो, लेकिन जीव जब तक दूसरे की बुराई न देख ले, तब तक स्वयं की अच्छाई का आनंद उसे नहीं आता। निज की अच्छाई का आनंद दूसरे की बुराई ही उत्पन्न कराती है। पर विश्वास रखना, माँ जिनवाणी कह रही है- मेरे सपूतो! इतना समय तुमने व्यर्थ में नष्ट किया है। जितना लक्ष्य स्वयं के गुणों पर नहीं था, उतना लक्ष्य पर के अवगुणों पर था। अब आपको यदि अपने गुणों के व्याख्यान की ही आदत पड़ गई है, तो आप अपने गुणों का ही अनुभव करो, तेरे अन्दर तो अनंतानंत गुण विराजते हैं, तू उन गुणों की व्याख्या अपने आप में कर। एक द्ररिद्री को एक सिक्का मिल जाये तो वह भी उसे सुरक्षित रख कर आनंद अनुभव करता है, भले ही हाथ में न हो। एक जड़ द्रव्य के आते ही आपको

आनंद की अनुभूति प्राप्त होने लगती है। यदि यथार्थ में आपके जीवन में कोई सच्चा गुण हो, तो ऐसा उपाय करो कि मधुमक्खी जैसा न हो जाये। मधुमक्खियाँ रस ग्रहण करके तो आती हैं, पराग लेकर आती हैं, लेकिन स्वयं छत्ते सहित उनकी मृत्यु हो जाती है। हे श्रावको! कहीं ऐसा न हो जाये कि जिस परद्रव्य को तुम संग्रहित कर रहे हो, उस परद्रव्य के साथ ही तेरा जीवन नष्ट हो जाये। अच्छा यह हो कि निज के अन्दर रखा जो रस है, उस रस को चखना प्रारंभ कर दो। आँखें उनकी ही घूमती हैं, जिनकी आँख आँख पर नहीं होती है। और जिसकी आँख आँखों में प्रवेश कर जाती हैं, उनका घूमना बंद हो जाता है। क्या तीर्थंकर अरिहंतदेव के नेत्रों में टिमकार होती है? वीतराग परम्परा में किसी भी प्रतिमा की आँखें खुली नहीं मिलती हैं। बंद भी नहीं हैं। नासाग्र दृष्टि है। जो चिंता में डूबे, सो आँखें बंद करे। जो कषाय में डूबे, सो आँखें खोल-खोल कर देखे।

ज्ञानी! जहाँ दु:ख भी नहीं है, कषाय भी नहीं है, उनकी दृष्टि सौम्य, शांत, नासाग्रदृष्टि है। अपने जीवन की हर धारा को ज्ञेय बनाना सीखो। पहले चेहरे को ज्ञेय बनाइये, फिर चेहरेवान को ज्ञेय बनाइये। जिसने अपना चेहरा ज्ञेय बना डाला है, विश्वास रखना, वह पर के चेहरे को ज्ञेय नहीं बनायेगा और ब्रह्मधर्म का नाश होने से बच जायेगा। द्वादशांग का सार इतना ही है-हे भद्र! निज के भगवान् को पहचानो। हे भद्र! क्या कभी संगीत नहीं सुना? सितार में कितने स्वर हैं? सात स्वर हैं। इन सात स्वरों को मुख्य रूप में ग्रहण किया है। उन सात स्वरों में ध्वनियाँ कितनी हैं और तुझे कितने प्रकार से समझ में आती हैं? सितार में कितने ही स्वर और ध्वनियाँ हों, पर मेरे मित्रो! सितार को रख दीजिये, उनमें कोई ध्वनि नहीं निकलती, उसमें कोई आवाज नहीं है। हे ज्ञानी! जैसा ज्ञाता स्वर निकालना चाहता है, उससे वही ध्वनि निकलती है और जो जिस रूप में सुनना चाहता है, उसे वही सुनाई पड़ता है।

हे मुमुक्षु! जगत् में जीवद्रव्य है, वह न पिता, न माता है, न भाई-है, वह तो जीवत्व मात्र है। ये आपके राग के सम्बन्ध हैं, वस्तुस्वभाव का कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो 'जो है, सो है'। जो जिस राग से देखता है, उसके वही सम्बन्ध हैं। हे ज्ञानी! एक स्त्री को तू माँ कहता है, एक को बहन कहता है। ये तेरे संबंध का संबंध है, कि तेरे विभाव

का स्वभाव है? संबंध में कोई संबंध होते ही नहीं हैं, जैसा विभाव का उद्भव होता है, वैसा विश्व में संबंध दिखाई देना प्रारंभ हो जाता है। एक क्षण के लिए, जीवन में मात्र एक क्षण के लिए आपको इतना वेदन हो जाये कि 'मैं, मैं ही हूँ', तो विश्वास रखना, अर्ध पुद्गल परावर्तन के अंदर-अंदर तेरा नियत मोक्ष होगा। एक मिनट के लिए यह अनुभूति हो जाए कि मैं संबंधातीत हूँ, एकत्व-विभक्त चिद्रूप मेरा परम स्वभाव है, 'ब्रह्मानंद स्वरूपोऽहं', ब्रह्म ही आनंद है। **''जिस क्रिया के करने के उपरांत पश्चाताप हो, वह आनंद नहीं है। जिस क्रिया के करने में शर्म आये, वह आनंद नहीं है। जिस क्रिया के करने के बाद किसी को सुनाने के भाव न आयें, वह आनंद नहीं और जिस क्रिया को करने के पूर्व, मध्य में, अंत में सबसे कहने के भाव आयें, वही क्रिया आनंदमयी है।''** ज्ञानी! अशुभ को कौन कहता है और शुभ को कौन छिपाता है?

विश्वास मानो, निर्गुण को गुणवान के आगे झुकना ही पड़ता है। भारतीय संस्कृति कितनी महान् है? यह उम्र नहीं देखती, यह कुल जाति नहीं देखती, गुण देखती है। किसी भी कुल में जन्मा पुरुष यदि रत्नत्रय गुण से मण्डित है, तो सभी वन्दना करते हैं। ये वन्दना किसकी चल रही है? वदन की वन्दना नहीं है, पद की वन्दना नहीं है, यह निर्बन्धस्वभावी भगवान्-आत्मा की वन्दना है।

इसलिए सँभलकर जीना, सहज जीवन जीना। कारण कार्य विपर्यास मत करना। ये नेत्र जिनदेव को निहारने और जिनवाणी के वाचन के लिए मिले हैं, देखकर चलने के लिए मिले हैं। इन नेत्रों से तूने कितना पुण्य अर्जन किया था? धन्य हों तेरे नेत्र पर हे ज्ञानी! तू इन नेत्रों से परनारी पर दृष्टिपात करता है। हे आँखो! कारण-कार्य विपर्यास मत करो। ये देव-शास्त्र-गुरु की वन्दना के लिए आँखें थीं, तू वन्दना की जगह बंध के लिए क्यों उपयोग कर रहा है? भविष्य को पवित्र रखना चाहते हो तो भूत में चले जाइये। अपने से कोई गलती हो जाये तो हर किसी को बताने मत बैठ जाना, निर्ग्रन्थ के चरणों में चले जाना।

इस राजस्थान की भूमि पर टोडरमल जी आदि जैसे विद्वान् हो गए, जो लिख-लिख कर चले गये। यदि लख-लख कर लिखते, तो निर्ग्रन्थ की भावना मात्र ही नहीं भाते, अपितु निर्ग्रन्थ बन कर जाते। जीवन में इतने सरल मत हो जाना कि आपकी सरलता वक्रता में परिणत हो जाये। वक्रता के काल में श्वासें लंबी चलना प्रारंभ हुई, भीतर के

भाव गरम हो गए और गरम अवस्था में तेरी श्वास निकल गई, तो नरक की भूमि में ही तुझे प्रवेश मिलेगा, अन्य भूमि में प्रवेश मिलनेवाला नहीं है।

''जब भी कीचड़ होगा, तो पानी से होगा और जब भी धुलेगा, पानी से ही धुलेगा। जब भी पाप का बंध होगा, तो चित्त से होगा और जब भी पाप का प्रक्षालन होगा, तो चित्त से होगा। इसलिए पर के चित्त में अपना चित्त मत ले जाओ। यह सोचना चाहिए कि जब मैं पाप का बंध करने की सामर्थ्य रखता हूँ, तो पाप के बंध को धोने की भी सामर्थ्य रखता हूँ।'' दोष करके आये हो और दुनियाँ में चेहरा बिगाड़ कर रो रहे हो, यह बहुत बड़ी भूल कर रहे हो। ज्ञानी! अपने अंतरंग में ग्लानि आ रही है, तो क्या करना चाहिए? जिस प्रज्ञा से बंध हुआ है, उसी प्रज्ञा से मोक्ष मिलेगा। राजस्थान की मिट्टी के कण-कण में कला छिपी हुई है।

ज्ञानी! मेरी आँखों में ही मेरी परिणति कांटा बनकर ना झलके, इसका परिणाम शुभोपयोग है। इसका पुरुषार्थ जिसने कर लिया, वही योगी है। बंध किससे होगा, बंध किसने किया? विश्वास रखना, पर के परिणामों से नहीं, अपने परिणामों की शृंखला से ही बंध होगा और जब बंध की शृंखला टूटेगी तो अपनी इच्छाशक्ति, अपनी उत्साह शक्ति से ही टूटेगी, तभी अरिहंत अवस्था प्राप्त होगी।

हे धर्मात्माओ! पर की श्रद्धा पर तो करुणा कीजिये। आप पर कोटि-कोटि लोगों की श्रद्धा टिकी हुई है, वह टूट जायेगी। तुम्हारी समाज में धर्मात्मा की छवि बनी है। कदाचित् तेरे अधर्म करने के परिणाम आ रहे हैं, तो तुझे उन्हें वश करना ही पड़ेगा।

''इज्जत को बना लेना महान् नहीं है, इज्जत को बनाये रखना महान् है। पापी और पुण्यात्मा जीव की परिणति तो भीतर होती है, पर भीतर नहीं रह पाती, वह सारे विश्व में छा जाती है।'' रावण से पूछो, राम से पूछो, तीर्थंकर भगवन्तों से पूछो। निर्गुणी बिखर कर बैठता है, फिर भी सिमट जाता है। सगुणी छुप कर बैठता है, फिर भी विश्व में फैल जाता है। जो केवली हुए हैं, उन्होंने एकांत में झाड़ियों में बैठकर तपस्या की है। हे स्वामी! आप तपस्या एकांत में कर सकते हो, पर कैवल्य को ज्योति को एकांत में छिपा कर नहीं रख सकते। हे मुमुक्षुओ! पाप एकांत में किया जा सकता है, लेकिन पाप का फल सबके बीच प्रकट होता है । पाप-पुण्य छिप कर किया जा

सकता है, पर दोनों के फल को छिपा कर नहीं रखा जा सकता है। यदि विश्वास न हो तो गेंहूँ बोते किसान को देखो। वह क्या बो रहा है, किसी को नहीं दिखता। बंद मुट्ठी से दाने पाइप में डालता जाता है और दाने मिट्टी में छिपते जाते हैं। अब आप यदि यह जानना चाहते हो कि किसान ने क्या बोया है, तो परेशान मत होओ, चार महिने बाद जब फसल लहरायेगी, तो अपने आप पता चल जायेगा। बस, ज्ञानियो! किसी से मत पूछना कि तुम क्या कर रहे हो। थोड़ा रुक जाओ। जब कर्म का उदय सामने आयेगा, तो अपने आप पता चल जायेगा कि जीवन में क्या किया है? इसका निर्णय मरण का अंतिम समय बतायेगा। अंतिम श्वास के काल में यदि तू कहे कि णमोकार सुना दूँ और वह कहे कि हल्ला मत कर, तो समझ लेना कि जीवनभर क्या किया है और जब अंतिम काल के समय में वह यों कहे कि मुझे जिनवाणी सुना दो, अरिहंत के अभिषेक दिखा दो, निर्ग्रन्थों के दर्शन करा दो, तो समझ लेना कि पुण्यात्मा जीव है। अपनी भूल को निर्ग्रन्थ गुरु के अलावा किसी को बताने मत जाना, क्योंकि संसार विचित्र है। संभल कर जियो। युवाओं को दृष्टि को वृद्ध बनाकर चलना चाहिए।

ज्ञानी! वस्तुस्वरूप समझो। सबकुछ जानने के बाद भी मन मानता क्यों नहीं? क्या करूँ? मोह से मोहित चित्त वस्तुस्वरूप के विवेक को खो देता है।

मोहेनसंव्रतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान पदार्थानां, यथा मदन कोद्रवैः॥ इष॰॥

कोदों जानते हो आप? मद उत्पन्न करनेवाला कोदों होता है। जैसे उन्मत्त पुरुष हेय-उपादेय को भूल जाता है, ऐसे ही मोह से युक्त प्राणी हेय-उपादेय को भूल जाता है।

पुनः कह रहे हैं कि देव ज्ञानी होते हैं, तो क्यों नहीं छोड़ देते शुभ-अशुभ कर्म को? मिथ्यात्व से ग्रसित चित्त धर्म की ओर जाने नहीं देता है।

दुःखं न शक्यते सोढुं, पूर्वकर्मार्जितं नरैः।
तस्मात् कुरुत सद्धर्मं, येन तत्कर्म नश्यति॥ 56॥

देखो भैया! दूसरों से हँसी-मजाक करते हो और स्वयं का नंबर आता है तो चीखते हो। जब तुममें सामर्थ्य नहीं है तो दूसरों से क्यों करते हो? एक सुनाओ, तो दस सुनने

की शक्ति होनी चाहिए। ससुराल में रहना चाहते हो तो पहले सहनशक्ति लाओ। नहीं-तो शांति से सुबह जाओ, शाम को भाग आओ।

यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं, हे ज्ञानी! यदि तू दु:ख सहन करने में समर्थ नहीं है, तो सद्धर्म करो, जिससे तेरे बुरे कर्मों का नाश हो जाये, तू सुखी हो जायेगा।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"दुष्कर्मों का नाशक सुकृत"

सुकृतं तु भवेद्यस्य, तेन यान्ति परिक्षयम्।
दुःखोत्पादनभूतानि, दुष्कर्माणि समन्ततः॥ 57॥

अन्वयार्थ—यस्य तु = जिसके द्वारा, **सुकृतं भवेत्** = धर्मकार्य होगा, **तेन** = उसके धार्मिक भाव से, **दुःखोत्पादन भूतानि** = दुःखों को पैदा करने वाले, **दुष्कर्माणि** = कर्म, **समन्ततः** = सर्वथा, **परिक्षयम् यान्ति** = क्षय हो जाते हैं।

भावार्थ—हे भव्य! जिसके समीप पुण्य होता है, जो पुण्य के कार्य करता है, उसके उस पुण्य से एवं धार्मिक भावों से चारों तरफ से दुःखों को उत्पन्न करने वाले दुष्कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में सम्यक्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। जिसके अंतरंग में सम्यक्त्व की ज्योति जाज्वल्यमान हो चुकी है, उस तत्त्वज्ञानी जीव को संसार में रोकने की कोई शक्ति नहीं रही है। सम्यक् दृष्टि जीव को जगत् में भ्रमण कराने वाली कोई शक्ति नहीं है। ऐसा दिव्य रत्न है, ऐसा दिव्य अस्त्र है, जिसके सामने 148 कर्मप्रकृतियाँ नतमस्तक हो जाती हैं। जिसको जीवन में एक बार सम्यक्त्व प्रकट हो गया है, उस जीव की नियम से ऐसी परिणति बनेगी कि वह दिगम्बर मुनि बन जायेगा। कितने ही भव लग जायें, वह जिनलिंग को धारण करके, साधना करके, कर्म का क्षय करके सिद्ध परमात्मा बनेगा। कैसी धारा है उस परमानन्द की, कैसी धारा है सम्यक्त्व गुण की? उस जीव की अनुभूति की चर्चा करो। सम्यग्दृष्टि होता है, अनंत बार सुना है, पर सम्यग्दृष्टि जीव का सोच कैसा होता है? **"ज्ञानी! पहले साधना नहीं होती, पहले सोच होता है। जिसके सोच में, जिसके विचारों में निर्मलता नहीं है, उसके आचरण में निर्मलता त्रैकालिक असंभव है। जिसके आचरण में निर्मलता है, उसके विचारों में निर्मलता होगी। जिसका चित्त पवित्र होगा, उसका आचरण निर्मल होगा।"** जिसका आचरण

निर्मल है, उसका चित्त पवित्र है, यह कोई नियम नहीं है। ज्ञानी! बगुला तालाब के किनारे कितना सहज सरल होकर एक टाँग पर बैठा है। योग कितना एकाग्र दिखाई दे रहा है। उपयोग से पूछो कि क्या हो रहा है?

ज्ञानी! देह एकाग्र है, लेकिन चित्त विचित्र है। देह का चित्र शुभ है। बगुले को मत देखना, बकवृत्ति को देखना। चित्र कितना सुन्दर दिख रहा है, शुभ है, एकाग्र है, लेकिन चित्त कितना विकृत है। जैसे ही मछली दिखाई दे, उसे पकड़ लेता है। ऐसे-ही कितने ही बकवृत्ति वाले जीव जिनालय भी आते हैं, आँख बंद करके खड़े हैं। लोग सोचते हैं कि वह जिनदेव को देख रहा है, लेकिन वह पापी किसी नारी का ध्यान कर रहा होता है। जो देव-शास्त्र-गुरु के पादमूल में इसलिए जाता है कि समाज में जाऊँगा तो मेरे परिवार के काम बनेंगे, वह जिनेन्द्र का भक्त नहीं, बगुला है। उसकी दृष्टि तो समाज में पहचान बनाने की है। जबकि सम्यग्दृष्टि जीव समाज में पहचान नहीं बनाता, निज समय में पहचान बनाता है।

ज्ञानी! जिस दिन तू सबसे मिलना बंद कर देगा, उस दिन तू शिव से मिल जायेगा। उन सिद्धों से मिलो, जो एक में अनेक होकर बैठे हैं। निर्ग्रन्थ तपोधन अकेले होते हैं। सबसे भिन्न होते हैं। उनकी अलौकिक वृत्ति है। जो देह में विराजे हैं, उन लोगों से नहीं मिलते हैं। जो अशरीरी बन चुके हैं, उन सिद्धों से एकांत में मिलकर अपनी निज की निज से बात करते हैं। वे वीतरागी तपोधन निर्ग्रन्थ मुनि हुआ करते हैं। आपको लगता है कि अकेले बैठे हैं। जो आनंद अकेले में आता है, वह तो कुछ-और ही है। कभी भी आप समूह में आनंद लेते ही नहीं हो। आप सब भी अकेले में आनंद लेते हो। परिवार के साथ भोजन करने बैठते हो, ग्रास मुख में जाता है, लेकिन उसका आनंद अकेले ही लेते हो।

''मनीषियो! पंचमकाल में एकलविहार का निषेध है। कुन्दकुन्द स्वामी, वट्टकेर स्वामी ने कहा है—शत्रु ही क्यों न हो, परन्तु एकलविहारी नहीं हो। एक मुनिराज के साथ पचासों क्षुल्लक एलक हैं, तब भी वे एकलविहारी ही हैं। दो दिगम्बर मुनि होना चाहिए, तभी एकलविहार का दोष मिटता है। समलिंग होना चाहिए। विषम लिंग में एकल विहार का दोष नहीं टलता। ऐलक या क्षुल्लक तो

श्रावक होते हैं, साधु नहीं। उनका पंचपरमेष्ठी में नाम नहीं आता।'' यह विशुद्ध सागर नहीं, 'मूलाचार' बोल रहा है।

'धवला' जी में लिखा है कि यदि तत्त्व समझ में न आये, श्रद्धापूर्वक सुन भी रहा है, तो वह असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा कर रहा है। सच्चा श्रावक वही है, जो श्रद्धापूर्वक श्रुत को सुनता है।

ज्ञानी! जहाँ रागियों को वैराग्य हो जाता है, वहाँ वैरागियों को राग हो जाता है। श्रावक घर में बैठे राग में लवलीन हैं। वैरागियों को संसार से वैराग्य है और धर्म में राग है। जहाँ लौकिक पुरुष सोते हैं, वहाँ तपोधन जागते हैं और जहाँ तपोधन सोते हैं, वहाँ रागी जागते हैं। जिन विषय-कषायों में आप सब जाग रहे हैं, वहाँ वीतरागी योगी सोते हैं। हे मुमुक्षुओ! आगम के गूढ़ रहस्यों को समझो। साधु आँखों से देखकर नहीं चलता, साधु आगम को देखकर चलता है।

'आगम चक्खु साहू'

ज्ञानी! जब तूने प्रथम बार 'अ' लिखना सीखा था, तो तुझे स्लेट पर विश्वास था या पेन पर या अध्यापक पर विश्वास था? अध्यापक पर। जो प्रथम दिन ज्ञानी बनकर आयेगा, वह कभी ज्ञानी बन कर नहीं जा पायेगा। ज्ञानी! धन्य हो तेरे विश्वास को, जो अपरिचित व्यक्ति पर विश्वास किया। तेरे माता-पिता तुझे अध्यापक के पास छोड़ आते हैं। अध्यापक तुझे 'अ' बनाना सिखाता है। विश्व में जितनी भी वर्णमाला हैं उनकी आकृति में अंतर होगा, उनके उच्चारण में अंतर होगा, पर पहले अक्षर का अर्थ जो भी निकलेगा वह 'अ' ही निकलेगा। अंग्रेजी में 'A' लिखोगे तो आकृति बदल गई, उच्चारण बदल गया, पर अर्थ तो 'अ' ही है। धर्म की चर्चायें मात्र पूजा-पाठ तक मत छोड़ देना। पूजन-पाठ के साथ-साथ धर्म की व्याख्या को समझो। 'अ' जब भी सीखेगा, मिथ्यादृष्टि भी हो, 'अ' ही सीखेगा। आठ वर्ष के पहले कोई सम्यग्दृष्टि होता नहीं। आजकल ढाई साल के बच्चे को बिठा देते हो। हमारे आगम में अध्ययन की जो व्यवस्था थी, वह सम्यग्दृष्टि से थी। आठ वर्ष तक का बालक जो भी शुभ या अशुभ करेगा, उसका फल माता-पिता को मिलेगा। आठ वर्ष तक के बालक के अष्ट-मूल-गुणों का पालन कराना आपका धर्म है। आठ वर्ष का होने पर बालक को सबसे पहले स्नान

आदि करवा कर तीर्थंकर अरिहंत के जिनालय में ले जाना चाहिए और वहाँ अभिषेक व सिद्धों की पूजा करवा कर 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' लिखवा कर उसकी विद्या प्रारंभ करवाना चाहिए। यह विद्या-अध्ययन की विधि है। सबसे पहले सिद्धों की वन्दना कीजिये। हमारे तीर्थंकर भगवान् भी दीक्षा लेने जाते हैं, तो वे भी 'नमः सिद्धम्' बोलते हैं।

भैया! आस्था के बिना 'अ' बनता नहीं, तो फिर आस्था के बिना आत्मा को कैसे पहचानोगे? वर्णों की आम्नाय अनादि-सिद्ध है। अक्षर तो अक्षर है। किसी ने बनाये नहीं, अविनाशी हैं। आगम कब से है? आगम के सिद्धान्त सनातन हैं। जब से धर्म है, तब से आगम है और धर्म अनादि सनातन है। धर्म सनातन है तो अक्षर भी सनातन हैं। अक्षर सनातन नहीं होंगे, तो जिनवाणी सनातन कैसे बचेगी? वर्णमाला के बिना शास्त्र नहीं लिखे जा सकते। कौन-सा ऐसा अक्षर है, जिससे मंत्र न बनता हो? 64 वर्णों में क्या ऐसा कोई वर्ण है जिससे मंत्र न बनता हो? ऐसा कोई वर्ण नहीं है जिस वर्ण से मंत्र न बनता हो। धिक्कार हो जीव के उपयोग की दृष्टि को। एक ज्ञानी वर्णमाला से मंत्र बना रहा है और दूसरा वर्णमाला का दुरुपयोग करके गाली दे रहा है। एक-एक अक्षर मंत्र है। आपने व्यर्थ में वचनालाप किया है। मलस्थानों पर मुख से बोला है तो आपने जिनवाणी की अवहेलना ही है, ज्ञानावरणी कर्म का तीव्र आस्रव किया है। एक-एक बीजाक्षर से पाषाण परमात्मा बनता है। उन बीजाक्षरों का गंदे स्थानों पर प्रयोग कर रहे हो, धिक्कार हो। सम्यग्दृष्टि जीव का चित्त पवित्र होगा तो चारित्र भी पवित्र होगा। बिना विवेक के सम्यक्त्व कैसा?

कुंदकुंद स्वामी ने कहा है कि आर्य को आर्य की भाषा में समझाइये और म्लेच्छ को म्लेच्छ की भाषा में समझाइये।

जह ण वि सक्कमणज्जो, अणज्जभासं विणा उ गाहेउं।
तह ववहारेण विणा परमत्थुवएसणमसक्कं॥ (8/स.सा.)

जैसे अनार्य को अनार्य की भाषा में समझाये बिना उसे बोध नहीं होता है, ऐसे ही परमार्थ का विषय भी समझाना है तो पहले व्यवहार की भाषा का बोध करवाना पड़ेगा। वस्तुस्वरूप समझो। एक-एक वर्ण बीजाक्षर है।

जब भी जिनालय जायें, पूर्ण उच्चारण के साथ भगवान् की भक्ति करें जिससे अंदर की कार्बन-डाई-ऑक्साइड बाहर निकल जाये और ऑक्सीजन प्रवेश कर जाये। ॐ.....उच्चारण करें। लोग तो प्राणायाम योगा कर रहे हैं। आप श्वासोच्छवास से णमोकार की माला फेरो, कोई रोग तुम्हारे पास नहीं आ पायेगा। उच्चारण के साथ जोर से 'ॐ ह्रीं' बोलेगा तो उच्चारण के साथ सारे विकार बाहर फिक जाते हैं, तनाव मुक्त होता है, जिससे चित्त प्रसन्न होता है और शरीर स्वस्थ होता है। जिसका शरीर और चित्त दोनों स्वस्थ होते हैं, उसका चारित्र भी स्वस्थ होता है। जो कम सो पाते हैं, उनको विकार अधिक सताते हैं। जो अधिक बोलते हैं, उनकी बुद्धि क्षीण होती है। जो अधिक सोते हैं, उनको कफ की वृद्धि होती है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। आप तनाव में रहते हो, सो नींद भंग हो गई। नींद भंग हुई तो पाचनक्रिया बिगड़ गई, तो विकार सताने लगे। विकार सताये, सो चित्त भी बिगड़ा, चारित्र भी बिगड़ा, तन भी बिगड़ा, आयु भी विकृत हुई। भाव बिगड़े, सो भव बिगड़ गया। आचारांग सूत्र पर सर्वप्रथम चर्चा होना चाहिए।

कधं चरे कधं चिट्ठे, कधमासे कधं सए।
कधं भुंजेज्ज भासिज्ज, कधं पावं ण बज्झदि॥मू.॥

कैसे खायें, कैसे सोयें, कैसे चलें, कैसे बोलें, कैसे बैठें जिससे पाप का आस्रव-बंध न-हो। यही तो जिनवाणी का सार है, आचारांग का मूल सूत्र है। बुन्देलखण्ड में कहते हैं-'भैया! जरा देखकर बैठो, कुत्ता भी पूँछ हिलाकर बैठता है।' ज्ञानी! धन्य है दिगम्बर योगियों को। पहले पिच्छि से मार्जन करते हैं, फिर बैठते हैं। यह निर्ग्रन्थों का धर्म है। जहाँ प्रमाद है, वहाँ हिंसा है, वहाँ संसार है। इसलिए प्रमाद छोड़ो। एक व्यक्ति को जीभ में बरैया ने काट लिया। कैसे? गिलास में पानी था, बिना देखे गिलास मुँह से लगा लिया, बरैया ने काट लिया। यदि वर्द्धमान के उपदेश को ध्यान में रखता, देखकर पीता, तो नहीं काटती। इसलिए भैया! पहले देखो, फिर मार्जन करो, फिर प्रयोग करो।

'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' यह तो आपने कंठस्थ कर लिया है, करते कुछ भी नहीं हो। माँ! हलुआ कैसे बनता है? घी, आटा, बस, बन गया हलवा? अच्छा,

घी-आटा सेंकना, बूरा मिलाना, पानी मिलाना, इतना आपने जान लिया तो क्या बन गया हलवा? ज्ञानी! जानने मात्र से हलवा नहीं बनता, तो भगवान कहाँ से बनेगा? जानने के साथ-साथ तद् अनुकूल सामग्री का संग्रह करना पड़ेगा, तद्रूप प्रवृति करना पड़ेगी, तब हलवा बन सकेगा। ऐसे-ही ज्ञानी! 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' सूत्र को गहरे में समझिये। तत्त्वार्थ को जानना पड़ेगा और उसके अनुरूप प्रवृत्ति करना पड़ेगी, तब कहीं सम्यक्त्व प्रकट होगा। आपकी प्रवृत्ति मिथ्यात्वभूत हो रही है, कुगुरू कुदेव को सिर टेक रहे हो और कह रहे हो 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' तो कहाँ सम्यग्दर्शन होगा? गृहीत छूट नहीं रहा है, तो कहाँ अगृहीत छूटेगा? नई गाड़ी, साइकल भी आती है तो उसे भी पूजने लगता है। सोचो, ज्ञानी! तुम्हारा चिन्तन कहाँ है? महावीर जी में जब उल्टा स्वस्तिक बनाने से तुम्हारा काम हो रहा है, तो सीधा बनाओगे तो काम कैसे नहीं होगा? एक जीव द्रव्यलिंग को धारण कर ले और निर्दोष पालन कर ले, तो ग्रैवेयक चला जाता है। श्रावक सम्यग्दृष्टि जीव कितनी ही घोर तपस्या कर ले, लेकिन ग्रैवेयक नहीं जा सकता और दिगंबर मुनि मिथ्यात्व गुणस्थान में होने पर भी, द्रव्यलिंग की निर्दोष साधना करके ग्रैवेयक जा सकता है। एकमात्र द्रव्य की कितनी महिमा है। बिना भाव के ही मुनि बन गया, तो भी सारा जगत् नमोस्तु-नमोस्तु करता है। यदि भावसहित बन गया, तो भगवान् ही बन जायेगा। **''चित्त की विशुद्धि के बिना चारित्र की विशुद्धि होती नहीं और चारित्र की विशुद्धि हुए बिना मोक्षमार्ग प्रारंभ होता नहीं। चित्त-विशुद्धि हुए बिना सम्यक्त्व प्रकट होता नहीं। सम्यक्त्व बिना सम्यग्ज्ञान प्रकट नहीं होता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान के बिना सम्यक्चारित्र प्रकट नहीं होता। सम्यक्चारित्र बिना निश्चय ध्यान नहीं लगता। निश्चय ध्यान के बिना निर्वाण नहीं होता।''** ध्यान, जैनदर्शन में जो अंतिम साधना थी, जिसको बौद्धों ने स्वीकार कर लिया, जिसको अन्य दर्शनों ने स्वीकार कर लिया, उसे जैनी भूल गये। कोई विपश्यना करा रहा है, कोई योगा करा रहा है, कोई नाच-गा रहा है और कह रहा है कि ध्यान कर रहा है। जिस दर्शन की उत्कृष्ट साधना ध्यान है, उस दर्शन वाले उस पर दृष्टि ही नहीं डाल रहे । दिगम्बर जैन आम्नाय में अंतिम कोई साधना है, अंतिम अन्तरंग तप है, उसका नाम ध्यान है। इस पर क्यों नहीं लक्ष्य ले जा रहे? कह दो इन ज्ञानियों से कि

ध्यानकेन्द्र बनाने से निर्वाण नहीं होगा। ज्ञानी! कब ध्यानकेन्द्र बनेगा, कब ध्यान करेगा? **''आत्मदर्शी ध्यानकेन्द्र की खोज नहीं करता है। आत्मदर्शी तो जहाँ बैठ जाये, वहीं उसका ध्यानकेन्द्र है। ईंट-चूने में लवलीन होकरके ध्यान भंग कर बैठेगा। एक ईंट के पकने में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। दुर्ध्यान तो पहले ही कर बैठा, अब ध्यान क्या करेगा?''**

ज्ञानी! तेरा पिता कह रहा है कि मुझे तो चैत्यालय मंदिर में एक करोड़ रूपया दान देना है, क्योंकि वहाँ लाल पत्थर लग रहा है। जैसे भी बने, मुझे एक करोड़ कमाना है और दान देना है। हे भोली आत्मा! नाली में लोट कर कह रहा है कि स्नान करने जाना है। यह मैं नहीं, आचार्य पूज्यपाद स्वामी बोल रहे हैं :-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः ।
स्व शरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति॥ इष॰॥

त्याग श्रेष्ठ है, इसलिए वित्त को संचित कर लूँ। वह ऐसे समझना जैसे पंक में लोट करके स्नान करना चाहता है। ज्ञानी! जो संपत्ति अर्जित करके रखी है, उसका तो दान देना, पर दान के राग में कमाने मत जाना। स्नान के राग में नाली में लोटने नहीं जाना। यह लोगों की मानसिकता बन रही है। पैसा कमाने में यह भी नहीं देख रहे हैं कि किस गरीब का पेट काट रहे हैं। मंदिर की दुकान, मंदिर का मकान। सुनो ध्यान से। जो कमा कर रखा है, उसको तो दान देना, पर दान के राग में पाप करके पैसा कमाने मत जाना। क्या मालूम दे पाया कि नहीं दे पाया? इसके पहले ही यहाँ से चला गया। तेरी कमाई रागी पापी भोगेंगे, तू पाप कमाकर चला जायेगा। जितना कमाया है, सब दान कर दो। जो जन्मा है, वह स्वयं कमा लेगा।

सुकृतं तु भवेद्यस्य, तेन यान्ति परिक्षयम्।
दुःखोत्पादनभूतानि, दुष्कर्माणि समन्ततः॥ 57॥

हे ज्ञानियो! जिसके पुण्य होता है, उसके धार्मिक भावों से चारों तरफ से दुःख का क्षय हो जाता है। जो दुष्कर्म हैं, उन दुष्कर्मों के लिए चारों ओर से नष्ट करने वाला धर्म ही है। आजकल शनि ग्रह के लिए मुनिसुव्रत नाथ भगवान् की पूजा करते हैं। अरे भैया! चौबीस तीर्थंकरों में से किसी की भी पूजा करो, सभी ग्रह टल जायेंगे। शनि ग्रह

लगे तो शनि ग्रह की पूजा क्यों करता है? परिग्रह के लिए? मुमुक्षुओ। परिग्रह उतार दो तो सभी ग्रह उतर जायेंगे अपने आप। सबसे बड़ा ग्रह है कोई, तो वह है परिग्रह। उसे उतारना नहीं चाहते। आज जोर है शनि ग्रह, वास्तु और कालसर्प का, बड़े-बड़े मंदिर नष्ट कर दिये वास्तु के नाम पर। उन्ही भवनों में राजा रहते थे, राज्य किये, तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया सो तुम्हें भूत लगने लगे उन्हीं भवनों में। अपने भाग्य की बात करो, भवनों में राग-द्वेष मत करो। ज्ञानी! अशुभ कर्म तोड़ो, शुभ कर्म जोड़ो, तो बड़े-बड़े देव भी जो नाश करने आये थे वे आशीर्वाद देकर चले जायेंगे तुझे। पर मेरा सोच है, कि न आशीर्वाद फलित होता है, न श्राप फलित होता है। पुण्य है तो वरदान है, पाप है तो वरदान भी श्राप है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धर्माचरण करने की प्रेरणा"

धर्म एव सदा कार्यो, मुक्त्वा व्यापारमन्यतः।
यः करोति परं सौख्यं, यावन्निर्वाणसङ्गमः॥ 58॥

अन्वयार्थ—अन्यतः = दूसरे कार्यों से **व्यापारं**= व्यवहार **मुक्त्वा** = हटाकर **धर्मएव**= धर्म को ही **सदा** = सदा **कार्यः** = करना योग्य है **यावत्**= जब तक **निवार्णसङ्गमः**= निर्वाण का लाभ न हो तब तक **यः**= यह धर्म **परं सौख्यं**= परमानंद को **करोति**= प्रदान करता रहता है।

भावार्थ—हे मुमुक्षुओ! दूसरे कार्यों को मन-वचन-काय रूप से छोड़कर सदा धार्मिक कार्य करना योग्य है, क्योंकि यह धर्म जब-तक निर्वाण की प्राप्ति न हो तब-तक परम सुख प्रदान करता रहता है।

॥ सद्-देशना॥

भव्य बंधुओ! वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर प्रभु की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज "सार समुच्चय" में आत्मा के उन गुणों की व्याख्या कर रहे हैं, जो गुण एक बार प्रकट हो जायें तो अनंत भव एक क्षण में नष्ट हो जायें। हे भव्य! जिनके माध्यम से जीव जगत् के द्रव्यों को जान रहा है, पहचान रहा है, वह अलौकिक गुण, परम गुण हैं।

ज्ञानी! सबसे कठिन है अपने ज्ञान से ज्ञान को जानना। स्वयं के ज्ञान से स्वयं के ज्ञान को पहचान लेना, यही जगत् का सर्वोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। जितने साधन हैं, उन सभी का उद्देश्य तत्त्वज्ञान मात्र को समझना है। आश्चर्य यह है कि सारे किले में बन्दनवार लगे हों, अनेक प्रकार से सजाया गया हो, लेकिन सम्राट नहीं है, तो शोभा किस काम की? तैयारी चल रही है, राग की कन्या वरमाला लिये बैठी है, लेकिन दूल्हा है ही नहीं। बराती भी हैं, घराती भी हैं, सब हैं, लेकिन दूल्हा नहीं है। ऐसे-ही ज्ञानियो सम्पूर्ण

साधना हैं, परन्तु जिसके लिये साधना चल रही है, उस ज्ञानगुण पर दृष्टि नहीं है, तो दूल्हाविहीन बरात है। साधना, आराधना बराबर है, लेकिन लक्ष्य पर लक्ष्य नहीं है। स्थान का बोध नहीं है, गमन चल रहा है। लक्ष्य का बोध नहीं है। जो मुद्रा है, वह लक्ष्य नहीं है। विद्यार्थी की यूनीफार्म धारण करने से ज्ञानी बनता होता तो घर में ही पहनकर बैठा रहता, स्कूल कॉलेज जाने की क्या आवश्यकता? इसलिए श्रावकों को, साधुओं को लक्ष्य पर दृष्टिपात करना पड़ेगा। मुद्रा लक्ष्य नहीं है, की प्राप्ति के लिए आपने भेष (यूनीफार्म) धारण किया है। पहचान के लिए भेष होता है। अरिहंत की मुद्रा जीव धारण कर ले और जाकरके एक सुन्दर भवन में सो जाये, तो कभी भगवान् नहीं बन पायेगा। मोक्षमार्ग मुद्रा धारण करने का नहीं है, मोक्षमार्ग रत्नत्रय धर्म पालन करने का है। मुद्रा धारण करके रत्नत्रय धर्म का पालन नहीं किया, तो मुद्रा मात्र उस विद्यार्थी के समान है जो यूनीफार्म धारण करके घर में बैठा है, विद्यालय नहीं गया। मंदिर में आते हो तो मन को समझा कर लाया करो। हे मन! हमेशा मैं तेरी बात मानता हूँ। तू थोड़ी देर मेरी बात मान लेना। जब तक मंदिर में हूँ, तब तक इधर-उधर मत जाना। यदि देह यहाँ बैठी रही और देही बाहर घूमता रहा, तो लाभ होने वाला नहीं है। शरीर के साथ भावों को लेकर आओगे तो भगवान् बन जाओगे।

ज्ञानी! किसी ने तुझे मधुर पेड़ा खाने को दिया। पीछे तेरा मित्र बैठा था, वह सहन नहीं कर पाया, अरे! यह पेड़ा खायेगा? तू जरा पानी पीने गया, इतने में पीछे से उस पेड़े में कंकड़ डाल दिया। आपको पता नहीं था कि पेड़े में कंकड़ है। आपने जैसे-ही पेड़े को मुख में रखा, कंकड़ के कारण पूरा-का-पूरा पेड़ा किसकिसा हो गया। जैसे कंकड़ के आने से पेड़े में किसकिसापन आ गया, जो निर्द्वन्द स्वाद आना चाहिए था, जो निर्विकार स्वाद आना चाहिए था, वह नहीं आ पाया। ऐसे-ही जो जीव देव के चरणों में, गुरु के चरणों में, जिनवाणी के पास आया और मन में घर के कंकड़ की किसकिसाहट लेकर आया, तो पूरा आनंद किसकिसा हो गया। इसलिए जैसे थाली को पोंछ लेते हो भोजन को रखने से पहले, ऐसे-ही हे मुमुक्षु! जिनवाणी सुनने से पहले अपने मन को पोछ लेना। सम्यग्दृष्टि जीव जब-जब जिनेन्द्र के चरणों में आता है, तो जिनेन्द्र की वाणी जिनवाणी सुनने को लालायित रहता है। हे ज्ञानी! अनंत काल हो गया सुनते-सुनते, पर

जो सुनने लायक था, वह नहीं सुना। हर पुरुष को पता है कि जिन चर्चाओं को मैं सुन रहा हूँ, वे बंध की हैं, आस्रव की हैं, नरक-निगोद का साधन हैं, उनको कितना सारा समय दे रहा हूँ और तत्त्व की चर्चा के लिए समय कम है। किसी वृद्ध से पूछना-सबसे ज्यादा आयु के क्षण कहाँ नष्ट किये? किसी अतिरिक्त कार्य के आने पर शृंगार के समय को या भोजन के समय को नहीं बचाता, मंदिर में जो प्रतिदिन दो घण्टे पूजा-पाठ करता था उसके स्थान पर मुट्ठी भर चावल पटक कर आ गया। मंदिर का समय काटकर तूने उस काम को किया, लेकिन दूसरा कोई समय नहीं बचाया। हे अभागे! जिस पुण्य से सब कार्य होते थे, उस पुण्य को तो छोड़ रहा है और पाप/शेष कार्य के लिए दौड़ रहा है। शेष कार्य अपने लिये हैं और मंदिर का काम भगवान् के लिए है, यही सबसे बड़ी भूल है। ज्ञानी! शेष कार्य पर के लिये हैं और भगवान् के चरणों में आया है यही तेरे निज के लिये था, जो तूने छोड़ दिया। आज से ध्यान रखना, कोटि-कोटि काम बिगड़ते हों उनको छोड़ देना, लेकिन तीनलोक के नाथ के चरणों को छोड़कर मत जाना। भगवान् को छोड़करके धन की ओर मत दौड़ना।

जीवन में हर्ष में फूलना नहीं और विषाद में कूलना नहीं। तत्त्वज्ञानीजीव हर्ष में फूलता नहीं और दु:ख में कूलता नहीं और कहता है- सब दिन एकसे नहीं होते। जो है, सो है। ज्ञानी! हजारों मंदिर हों, हजारों प्रतिमाएँ हों, एक-एक मंदिर और एक-एक प्रतिमा के दर्शन करना, क्योंकि पता नहीं किस प्रतिमा के दर्शन से ऐसी ज्योति प्रकट हो जाये जो मिथ्यात्व का अंधकार नष्ट कर दे। धन्य हो उन जीवों को, जिन्होंने द्रव्य को जिन-संस्कृति की रक्षा में लगाया। आप लोग भी नियम ले लो, जीवन में अंतिम श्वास निकलने से पहले एक मंदिर बनवायेंगे। अरे! मंदिर बनवा पाओ या न बनवा पाओ, भावना तो कर ही लो। मंदिर न बनवा पाओ तो एक प्रतिमा तो अवश्य विराजमान करवाके जाना। उस प्रतिमा के दर्शन से किसी को सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया तो तेरे द्रव्य की सार्थकता है।

हे ज्ञानी! शरणभूत कोई है, दु:ख से मुक्त करने का साधन कोई है, तो पंचपरमेष्ठी। जगत् में कहीं भी चले जाना, समझाने वाले कई मिल जायेंगे, पर साम्यभाव प्रकट कराने वाले नहीं मिलेंगे। जब चित्त उद्विग्न हो, तब प्रतिमा के सामने दस-पंद्रह मिनिट

शांति से बैठ जाना, अपने आप शांति मिल जायेगी। प्राचीन जिनबिम्ब हो उसके आज्ञाचक्र को मस्तक को देखना। विद्यार्थियो यदि दस मिनिट भी अच्छे से देख लिया, तो तुम्हारा ज्ञान बढ़ना प्रारंभ हो जायेगा, नेत्रों की ज्योति बढ़ेगी और बुद्धि का विकास होगा। जैसे-जैसे चित्त घूमता है, वैसे-वैसे बुद्धि का ह्रास होता है। चैतन्य भगवान्-आत्मा का चित्र तेरे मन को कैसे शांत नहीं करता? मन चंचल हो रहा हो, माला फेरने में मन नहीं लग रहा हो, तो कुछ नहीं करना, शांत होकर भगवान् को निहारना। देखते-देखते नींद आने लगे, तब भी ठीक है। लोगों को नींद के लिए गोली खाना पड़ती है और सम्यग्दृष्टि जीव आँखों से जिनदेव को देखते-देखते निजदेव को देखने लगता है। सम्यग्दृष्टि जीव भगवान् को देखते-देखते सो गया, उसे स्वप्न भी आयेगा तो अच्छा स्वप्न आयेगा।

यह मुद्रा जो आप देख रहे हैं, यह विशुद्धसागर की मुद्रा नहीं है। यह मुद्रा तीनलोक के नाथ तीर्थंकर अरिहंत देव की है। जिस मुद्रा को अरिहंत देव ने स्वीकार किया हो, उस मुद्रा को धारण करके तुम निकल रहे हो। आहार को जाओ, मौन लेकर जाओ। क्षुधा की पीड़ा के वश हुआ झुक मत जाना। तीर्थंकर की मुद्रा को लजाने का काम मत करना। आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने लिखा है, तू आहार के समय मौन नहीं रहता, तो तू भिक्षु है, कि व्यंतर है?

जैसे दिगम्बर मुनि आहारचर्या को जाते समय मौन लेकर जाते हैं, ऐसे ही हे श्रावको! संकट तुम्हारे ऊपर आयें तो भगवान् के चरणों में आकर बैठ जाना। मौन लेकर बैठना। क्यों? मंदिर के अंदर अन्य समाजजन भी होते हैं। यदि मौन लेकर नहीं बैठे, तो दु:ख का भाव जो तुम्हारे अन्दर है, वह फूट पड़ेगा, घर की बात तुम सबसे कह दोगे। ज्ञानी! संकट मिटानेवाला कोई नहीं मिलेगा, पर तेरे घर की हँसी उड़ानेवाले सैकड़ों लोग मिल जायेंगे, इसलिए मौन लेकर बैठना। वे अज्ञानी लोग हैं जो दु:ख के काल में दु:खी होते हैं। वे महा-अज्ञानी हैं जो दु:ख के काल में अपनी बातें सबसे कहते फिरते हैं। असाता के उदय में दु:ख होता है, लेकिन मैं असातामयि नहीं हूँ, तो दु:ख किस बात का? साता के उदय में सुख होता है, मैं सातामय नहीं हूँ, तो सुख किस बात का? असाता के उदय में दु:ख हुआ और तू मुख से बोल पड़ा। विश्वास रखना,

सांत्वना देने वाले कम होंगे, लेकिन हँसी करने वाले अधिक हैं। उस हँसी ने तुझे विचलित किया, तो तेरा दु:ख दुगना हो जायेगा। आज से नियम ले लो, अपने भीतर की व्यथा किसी को मत सुनाना। मात्र उसे सुनाना, जो समझ सके और तेरे तनाव को दूर कर सके। वह कौन होगा? स्वयं तू ही होगा। मेरा दु:ख दूर कौन करेगा? मैं ही करूँगा। भविष्य को सुखमय बनाना है तो अपने दु:ख को किसी को सुनाने मत जाना। ज्ञानी! कितनी ही विपरीत स्थितियाँ हों, लेकिन उनका समय अल्प होता है। ज्ञानी! विपत्ति के काल में भीख माँग कर खा लेना, पर संबंधियों के घर में सहायता माँगने मत जाना।

अंजन तो निरंजन बन कर सिद्धालय में बैठा है, पर जब भी निशंकित अंग की बात करेंगे तो अंजन चोर ही बोलेंगे। अंजन तो निरंजन हो गया, पर उसे चोर कहना नहीं छोड़ा।

यश उनको मिला है,उत्थान उनके हुए हैं, जो स्व नगर को छोड़कर विदेश में गये हैं। राम यदि अयोध्या में बैठे रहते, तो अयोध्या के ही राम रहते; लेकिन अयोध्या छोड़कर गये, तो सारे विश्व के राम हो गये। जिन-जिन को विश्व का बनना है, घर छोड़कर जाओ, तो विश्व के बन जाओगे। महाराज बन जाओगे।

आचार्य महाराज कह रहे हैं—हे जीव! सुख का हेतु सुकृत है। दु:ख का हेतु कोई है, तो दुष्कृत है। न अन्य कोई मेरे दु:ख का हेतु है, न अन्य कोई मेरे सुख का हेतु है—

धर्म एव सदा कार्यो, मुक्त्वा व्यापारमन्यतः।
यः करोति परं सौख्यं, यावन्निर्वाण सङ्गमः॥ (58)

हे स्वामी! मैं तब तक धर्म का आलंबन लेता हूँ, जब तक मुझे निर्वाण का समागम न मिल जाये। हे ज्ञानी! तब-तक भगवान् को मत छोड़ देना, पंचपरमेष्ठी को मत छोड़ देना, जब तक स्वयं परमेष्ठी या सिद्ध न बन जाये। हे मुमुक्षु! धर्म को सदा करना चाहिए। आदेश कर रहे हैं- अन्य सभी व्यापारों को छोड़करके धर्म हमेशा करना चाहिए। धर्म सुख प्रदान कराता है और निर्वाण का समागम कराता है। ऐसे धर्म को जीवन में कभी मत छोड़ना। आप लोग घर छोड़कर तो आये ही हो, मन से और कह दो कि जब तक यहाँ बैठे हो, तब तक यहीं रहो। तत्त्वज्ञानी जीव जिस समय जो कार्य करता है, उस समय उसी में लीन होता है। हो सकता है कि धर्म की बातें आपको समझ

में न आ रही हों, तो कर्म की बात पूछ लेता हूँ। रसगुल्ला खाते हो, तो स्वाद कब आता है? यदि तनावरहित हो, तो सूखी रोटी में भी आनंद आता है और तनावसहित हो, तो छप्पन भोग में भी स्वाद नहीं आता। इस बात को क्या आप मानते हो? हाँ। ज्ञानी! जिसके अंतरंग में तनाव है, पति-पत्नी में झगड़ा हो जाये तो तीन दिन भोजन भी न मिले तो भी भूख नहीं लगती और ऐसे एक उपवास भी नहीं बनता। तो ज्ञानी! जैसे विसंवाद होने पर भूख भाग जाती है, मन तेरा भोजन की ओर नहीं जाता है, जब अशुभ में चित्त लगने पर भूख भाग जाती है, तो सम्यक्त्व में जिसका चित्त लगा है, उसकी भूख क्यों नहीं भागेगी? योगी अपने उपयोग को निज में अथवा जिन में लगा लेता है, इसलिए उनके मन में किसी प्रकार का विकल्प नहीं सताता है। आज से आप लोग अनुभव करके जीना प्रारंभ कर दो। जो सुना है, घर जाकर अनुभव करना। कोई गाली भी दे दे तो उत्तर मत देना। सुनकर अनुभव करना कि मुझे कैसा लगा? मुझे विश्वास है कि जो अच्छा चिन्तन करेगा, आज से गाली देना बंद कर देगा। जब पर की गाली तुझे पीड़ित करती है, तो तेरी गाली भी किसी को पीड़ा देती होगी। माँ! बहू को मत सताना, वह भी एक जीवद्रव्य है। जब आपको बुरा लगता है, तो उसे भी बुरा लगता होगा। आजकल आधी बीमारियों की जड़ घर में हो रहे विसंवाद हैं । घर में विसंवाद करना बंद कर दो तो आधे रोग ठीक हो जायेंगे। वास्तविकता यही है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"कषाय और इन्द्रिय हैं चोर"

क्षणेऽपि समतिक्रान्ते सद्धर्मं परिवर्जिते।
आत्मानं मुषितं मन्ये कषायेन्द्रियतस्करैः॥ 59॥

अन्वयार्थ—सद्धर्मं परिवर्जिते= सत्य धर्म के आचरण बिना, **क्षणेऽपि** = एक क्षण भी **समतिक्रान्ते** = वृथा चले जाने पर **मन्ये** = मैं मानता हूँ कि मैंने **आत्मानं** = अपने को **कषायेन्द्रियतस्करैः** = कषाय और इन्द्रियों के विषय रूपी चोरों से **मुषितं** = ठगा लिया है।

भावार्थ—सद्धर्म के आचरण बिना एक क्षण भी वृथा चले जाने पर मैं मानता हूँ कि मैं कषाय और इन्द्रिय-विषय रूपी चोरों से ठगा लिया।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर प्रभु की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में भव्य जीवों को समझाने के लिये कह रहे हैं। भगवान् जिनेन्द्र के शासन का आश्रय तब तक लेते रहना, जब तक निर्वाण का संगम न हो जाये। वह जीव सौभाग्यशाली है, जिसके अंतस् में पंचपरमेष्ठी के प्रति आस्था विद्यमान है। पुरुष के चेहरे से झलकता है कि श्रद्धा से सहित क्रिया है, कि श्रद्धा से विहीन क्रिया है?

''आराधना पक्ष भिन्न है और साधना पक्ष भिन्न है। आराधना व साधना, दोनों पक्ष एक स्तर पर होना असंभव है। आराधना में चिन्तवन है, साधना में एकाग्रता है। अज्ञानी लोग आराधना और साधना को एक मान लेते हैं, यह बहुत बड़ी तत्त्व की भूल है। जो आप कर रहे हो, यह साधना नहीं होती। मंदिर में आराधना में द्वैत भाव है। मंदिर में साधना नहीं होती, मंदिर में आराधना होती है। यह आराधना का स्थान है, साधना का नहीं। योगियों ने मंदिर में बैठकर साधना नहीं की, जंगलों में बैठकर साधना की है। मंदिरों में आराधना होती है। जिस व्यक्ति को इस रहस्य

का बोध नहीं है, वह दोनों को एकरूप में देखता है।'' एक किसान भी इतना ज्ञानी होता है, कि जब एक ही भूमि पर दो फसल लेना हो तो जिस भूमि पर गेहूँ बोया है, उस भूमि में वह तुअर नहीं बोता। ज्ञानी! आप तत्त्व के उपदेश में पंखे चला रहे हो, तो सुनाई पड़े कैसे? यह विषय गंभीर है, हलचल का विषय नहीं है। संगीत में पूजा तो हो सकती है, पर संगीत में स्वाध्याय नहीं हो सकता। आराधना और साधना आलंबन के लिये है। साधना निरालंब है, साधना का स्थान एकांत है। साधना का स्थान श्मशान हो सकता है, पर आराधना का स्थान श्मशान नहीं हो सकता। क्योंकि आराधना आराध्य के साथ होती है और आराध्य को अपवित्र भूमि पर विराजमान नहीं किया जा सकता। आराधना का स्थान वीतरागमय है। जीवन में ध्यान रखना, नया मंदिर बनाओ तो मल-मूत्र स्थान सौ हाथ दूर हों, अटैच न हों। मंदिर की दीवार से धर्मशाला की दीवार का स्पर्श नहीं होना चाहिए। जिन भवनों में धर्म की आराधना की जाती है, वे धर्मशालाएँ होती हैं, किन्तु वर्तमान में जिनमें शादी-ब्याह आदि हो रहे हैं, वे धर्मशालाए कहाँ बचीं? साधना का स्थान और आराधना का स्थान पवित्र होना चाहिए। साधना का स्थान विकराल हो सकता है, पर आराधना का स्थान तो मंगलमय ही होता है। श्मशान में अरिहंत की प्रतिमा विराजमान नहीं की जा सकती, जिनवाणी विराजमान नहीं की जा सकती। मुनियों ने श्मशान में स्वाध्याय नहीं किया, साधना की है। **''स्वाध्याय के लिए भूमि, क्षेत्र, काल, भाव, द्रव्य शुद्ध होना चाहिए। अशुद्ध स्थान पर बैठ कर जो स्वाध्याय करता है, श्रुत के राग में वह स्वाध्याय कर भी बैठा तो अगली पर्याय बुद्धिविहीन होने वाली है, दुर्गति का कारण है। जिन कक्षों में कंघी करते हो, उन कक्षों में जिनवाणी विराजमान मत कर देना। संभलकर सुनना। जिन कक्षों में जिनवाणी विराजमान हो, उन कक्षों में अशुद्धि के समय में प्रवेश मत करना। अशुद्धि के समय में रसोईघर में प्रवेश वर्जित है, तो स्वाध्याय-कक्ष में प्रवेश कैसा?''** सब विपर्यास कर दिया। ज्ञानियों ने आँखें बंद कर ली हैं, क्योंकि उन्हें मालूम है कि इस व्याख्यान में द्रव्य नहीं मिलेगा। वे व्याख्यायें चल रही हैं जो हृदय को शून्य कर दें और चेहरे पर खिलखिलाहट उत्पन्न कर दें। तत्त्व का निर्णय नहीं हो रहा है।

आप देख रहे हो, बच्चे मंदबुद्धि क्यों हैं? पाँच दिन की शुद्धि का भी जिस घर में विवेक न हो, उस घर का भोजन शुद्ध जहर है। अशुद्ध अवस्था में पापड़, बड़ी आदि दिख जाये तो उनका रंग बदल जाता है, फिर ज्ञानियो! चैतन्य का परिणमन क्यों नहीं विचलित होगा? जिस घर में इस शुद्धि का ध्यान रखा जाता है, उन घरों में महावीर, राम जैसे पुत्रों का जन्म होगा, ब्राह्मी,सुन्दरी जैसी पुत्रियाँ जन्मेंगी। भोजन की शुद्धि, भावों की शुद्धि, द्रव्य शुद्धि, ब्रह्मचर्य का पालन। ऐसा कोई साधना-आराधना का क्षेत्र नहीं है जिसमें शील की व्याख्या न की गई हो। जो साधना का साधन है, उसका नाम आराधना है। जब चित्त उद्विग्न हो और आप आँख बंद करके बैठ जाओगे, तो साधना नहीं कर सकते। भावों में खिन्नता है, परिणामों में अशुद्धि है, ऐसे काल में साधना करने बैठोगे तो समय का दुरुपयोग मात्र होगा और पता नहीं भाव कहाँ से कहाँ पहुँच जायें। इतना ध्यान रखना कि जीव का उत्थान भी एकांत में ही होगा। जिनके मन में किसी के प्रति द्वेषभाव आ रहे हों, वे एकांत में कभी न बैठें। जिनके मन में कामादिक विकार सता रहे हों, वे एकांत का आश्रय न लें। एकांत मिलते ही आप अपने आप से दूर हो जाओगे। समझिए—योगी को आत्मलीनता के लिए एकांत चाहिए और भोगी को भोगवृति के लिये भी एकांत चाहिए। पर दोनों एकांत में कितना अंतर है। एक निर्बंध का स्थान है, दूसरा बन्ध का स्थान है।

''साधना शीघ्र ही प्रारंभ नहीं करना चाहिए। जो साधना शीघ्र प्रारंभ कर देते हैं, वे साधना और आराधना दोनों से हाथ धो बैठते हैं। उनका पतन निश्चित है। वर्तमान में साधना-आराधना क्यों निष्फल हो रही है? क्योंकि शुद्धि नहीं रही है। जिस व्यक्ति का चारित्र पवित्र होगा, उसका चेहरा भी आपको चमकता दिखेगा।''

व्यक्ति की नाक से बोध हो जाता है कि वह किस प्रदेश का है। बहुत सारा ज्योतिष नाक पर धरा होता है। वाणी के माध्यम से प्रदेश का बोध कर सकते हो। संतान के माध्यम से माता-पिता का भी बोध होता है। जिसका बेटा ढाबे पर खड़ा दिखे, यह ध्रुव सत्य है कि उसकी माँ से अच्छा भोजन बनाते नहीं बनता। घर का शुद्ध स्वादिष्ट भोजन छोड़कर ढाबे पर पशुवृत्ति करने कौन जायेगा?

ज्ञानी! साधन से साध्य का ज्ञान होता है। साधुपुरुष वे होते हैं, जिनका विश्राम भी किसी की आँखों के सामने नहीं होता है।

दिगम्बर मुनि कभी किसी श्रावक के सामने विश्राम भी नहीं करता। शरीर में वेदना सता रही हो, तब भी एकांत स्थान। साधक, आराधक का चेहरा प्रसन्नचित्त होगा और गंभीरता से युक्त होगा। वर्तमान में घरों में संक्लेषता क्यों बढ़ रही है? दो काम नहीं छोड़ना चाहिए-तीर्थवन्दना और रिश्तेदारी में जाना। तीर्थवन्दना में चेतन तीर्थों की भी वन्दना करना, अचेतन तीर्थों की भी वन्दना करना। इनके पास जाते ही परिणामों में परिवर्तन होता है, जिससे रक्त कणिकाओं में परिवर्तन होता है। साम्य पुरुष के श्वेत कणिकाओं की वृद्धि होती है। एक संतान के जन्म के बाद वात्सल्य भाव के कारण माँ के आँचल में दुग्ध आ सकता है, तो हमारे तीर्थंकर के सर्वांग में श्वेत रक्त होता है, क्योंकि उनको प्राणीमात्र के प्रति वात्सल्य भाव होता है।

साधना, आराधना ये जगत् के प्रपंच के विषय नहीं हैं। यह बात विश्व के वैज्ञानिकों के कानों तक जाना चाहिए। साधक का मस्तिष्क भिन्न होता है, आराधक का मस्तिष्क भिन्न होता है। जो आराधना करके साधना करता है, वही भगवान् बनता है। जो आराधना के अभाव में साधना करने बैठ जाता है, वह विक्षिप्त हो जाता है, पागल हो जाता है। जो जीव आराधना तक ही सीमित हो जाता है, वह स्वर्ग में देव हो जाता है। जो जीव आराधना के काल में मायाचारी कर लेता है, वह हाथी-जैसा जीव बन जाता है। आराधना के काल में सुर में ही लीन हो गया, आराध्य के पास नहीं है, यह मात्र संगीत के सुरों के पास था। मन में कुछ था, तन में कुछ था और पूजा कुछ हो रही थी। यह माया धर्म हो गया। नाक के पीछे धर्म किया, सो सबसे बड़ी नाक हाथी की होती है, टीका भी लगता है, घन्टियाँ भी बजती हैं, उसको ऐसी पर्याय मिलती है।

ज्ञानी! आराधना और साधना दो शब्दों पर ध्यान दीजिये। रावण की आराधना को देखिये। लक्ष्मण को शक्ति लगी। विशल्या के स्नान-जल से शक्ति भागने लगी। हनुमान ने पकड़ लिया उसे। शक्ति चीखने-चिल्लाने लगी। हनुमान ने पूछा- आपने ऐसा क्यों किया? शक्ति कहती है-हनुमान! मेरा कोई दोष नहीं है। मैं पुण्यात्मा की दास हूँ। जो आराधना करता है, उसके साथ मुझे रहना पड़ता है। आज भी मंदिरों में

अतिशय चमत्कार है, आराधना पवित्र है तो। रावण ने शांतिनाथ भगवान् की जो आराधना की है, वीणा का तार टूटने पर शरीर पर राग नहीं गया। मेरी आराधना भंग न हो जाये, इसलिए अपनी त्वचा को चीर कर एक नस निकाल कर वीणा में लगा दी और आराधना सतत चलती रही। उसकी आराधना को देखकर धरणेन्द्र प्रभावित हो गया और धरणेन्द्र ने वरदान देना चाहा।

शूद्र का काम जैनी कर रहा है, उसके घर में सूतक कभी समाप्त नहीं होता। क्या तुमको उच्च कुल की महिमा समझ में नहीं आ रही है? माँ! भीख माँगना श्रेष्ठ है, पर नीच कर्म करना श्रेष्ठ नहीं है। जितना मुझे 'समयसार' का व्याख्यान करने में आनंद आता है, आप विश्वास मानिये, अपनी संस्कृति की रक्षा की बात करने में भी मुझे उतना ही आनंद आता है। यदि संस्कृति का नाश हो गया, उस दिन 'नमोस्तु-नमोस्तु' शब्द समाप्त हो जायेगा। जिस दिन नमोस्तु-नमोस्तु शब्द समाप्त हो गया, उस दिन भारत-भूमि से अग्नि का लोप हो जायेगा। अग्नि का लोप होते ही धर्म समाप्त हो जायेगा। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खाना प्रारंभ कर देगा। साढ़े अठारह हजार वर्ष तक आपको नमोस्तु शासन को जयवंत करना है। इसलिए संतान पर दृष्टि रखो, उसे संस्कार दो, बच्चों को संस्कार दो।

साधना, आराधना की शब्दावली आपको स्तंभित किये है। विश्व में जितने चमत्कार हैं, प्रतिमाओं में नहीं हैं। आराधक और साधक। ऋणात्मक व धनात्मक दोनों धाराओं से बल्ब जलता है। ज्ञानी! जगत् में ऐसा कोई भी बोधज्ञान नहीं है, जो तीर्थंकर की वाणी के बाहर निकल गया हो। जब-जब संसार चलेगा, तो द्वैत चाहिए और जब-जब मोक्षमार्ग चलेगा, तो द्वैत्व चाहिए। संसार में भटकने के लिए राग-द्वेष दोनों चाहिए, द्वैत्व है। मोक्ष चाहिए, तो आराधना और साधना दोनों चाहिए। उन प्रतिमाओं में अतिशय होते हैं, जिनमें श्रावक और विद्वान् दोनों के आराध्य-आराधक भाव पवित्र होते हैं और सूरिमंत्र देने वाले आचार्य/साधु साधक की साधना पवित्र होना चाहिए। जब ऋण व धन दोनों मिल जायेंगे, तब प्रतिमा में चमत्कार उत्पन्न होंगे।

इतना ध्यान रखना कि साधक ऊष्मा को प्रकट करता है, आराधक शीतलता को प्रकट करता है। आराधना में सलिल है, इसलिए प्रसन्न रहता है। साधना शुष्क है, वह सुखाती है, इसलिए गंभीर हो जाता है। आराधना से पुण्य के पर्वत खड़े हो जायेंगे। साधना से कर्म का पानी सूख जायेगा, तू परमात्मा बन जायेगा। इसलिए आराधना मंदिर में ही होना चाहिए और साधना एकांत में ही होना चाहिए।

साक्षात् फलित होने वाला दान कोई है, तो वह है साधु की अंजुली पर रखा गया ग्रास। यह परम्परा वाला पुण्य नहीं है, साक्षात् वाला पुण्य है। आपने दान दिया तो सबसे पहले लोभ का त्याग हो गया। मामा के आने पर बच्चा मुस्कुराता है। महाराज से ज्ञान मिल रहा है, आपका अज्ञान मिट रहा है, साक्षात् फल है। ज्ञानी! ऐसा भाव आने लग जाये कि मेरा प्रतिक्षण प्रतिपल निर्ग्रन्थों के चरणों में बीते, जिनवाणी के पास रहे।

क्षणेऽपि समतिक्रान्ते सद्धर्मं परिवर्जिते।
आत्मानं मुषितं मन्ये कषायेन्द्रियतस्करैः।। (59)

हे मुमुक्षु! तुझे संसार में किंचित् भी कष्ट दिखाई दे रहा हो, तो धर्म में लग जाइये। क्यों? क्योंकि धर्म के आचरण के बिना एक क्षण भी व्यर्थ चले जाने पर, सद्धर्म से रहित होने पर, इन्द्रिय विषय-कषाय रूपी डाकू तेरी आत्मा को चुरा लेंगे। आत्मगुणों को चुरा लेंगे, सम्यक्त्व का नाश कर देंगे, तेरे सद्धर्म को चुरा ले जायेंगे। इसलिए ध्यान रखो, एक क्षण भी धर्म से दूर मत रहना। यही जिनवाणी का सार है।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"संयम बिना जीवन व्यतीत करने से पश्चाताप होता है"

धर्मकार्ये मतिस्तावद्यावदायुर्दृढं तव।
आयुःकर्मणिसंक्षीणे, पश्चात्त्वं किं करिष्यसि॥ 60॥

अन्वयार्थ—यावत् = जब तक **तव आयुः** = तेरी उम्र **दृढं** = मजबूत है **तावत्** = तब तक **धर्मकार्ये**= धर्मकार्य में **मतिः** = बुद्धि रखनी चाहिए। **आयुः कर्मणि** = आयु-कर्म के **संक्षीणे** = नाश हो जाने पर **पश्चात्** = पीछे **त्वं** = तू **किं** = क्या **करिष्यसि** = करेगा?

भावार्थ—हे आत्मन्! जब तक तेरी आयु दृढ़ है, तब तक धर्मकार्य में बुद्धि लगानी चाहिए। आयुकर्म के क्षीण हो जाने पर पीछे तू क्या करेगा?

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी तत्त्व-गवेषणा करते हुए समझा रहे हैं - अहो मुमुक्षुओ! वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित जान पाना एवं तत्त्वनिर्णय कर पाना बहुत बड़ी साधना है। **शरीर की साधना काययोग की पीड़ा है।** शरीर से मेहनत उसे अधिक करना पड़ती है, जिसकी प्रज्ञा कम काम करती है। जिसकी प्रज्ञा (मस्तिष्क) अधिक काम करती है, उसका शरीर बहुत कम काम करता है, लेकिन फल उसे अधिक मिलता है। मजदूर सड़क पर मिट्टी डालता है, वह भी मनुष्य है, लेकिन क्या करोगे, मनुष्य भी बन जाओ तो मनुष्य बनने मात्र से कार्य नहीं बनता है। मनुष्यों के एक या दो भेद नहीं, चौदह लाख प्रकार के मनुष्य हैं।

ज्ञानी! आप मेरे से मत पूछो धर्म का फल क्या है? मेरे से मत पूछो पाप का फल क्या है? एक ओर पालकी ढोने वाले पुरुष को देखें और दूसरी और पालकी पर बैठे पुरुष को देखें। यही पाप-पुण्य का फल है। जितना धन व धरती में आनन्द नहीं है,

उतना आदेश देने में आनन्द है। सबसे बड़ा दु:ख है तो दूसरे की आज्ञा पर चल पाना। ज्ञानी! आदेश जिसका चले, उससे बड़ा कोई सुख नहीं है। जिससे मान भंग हो, उससे बड़ा कोई दु:ख नहीं है। जिससे मान की वृद्धि हो, उससे बड़ा मनुष्य के लिये कोई सुख नहीं है। मनुष्यपर्याय में आकरके भी कितने प्रकार के विकल्प मन में बैठे हुये हैं। घर में रह कर भी माँ के द्वारा बराबर दुलार देने पर भी, पुण्य का दुलार बराबर नहीं है। माँ ने चारों बेटों को गिलास भरकर दूध दिया था, परन्तु एक को दूध पीकरके उल्टी हो रही है, दूसरे को दस्त लग रहे हैं, तीसरे को गैस बन रही है, चौथा दूध पीकरके पहलवान बन रहा है। क्या करें? माँ ने तो चारों को बराबर दूध दिया था। बेटे! ये दूध का दोष नहीं, तुम्हारे भाग्य का दोष है। ऐसा नहीं होता क्या? इसलिए मुमुक्षु! यह कभी मत सोचना कि दूसरे ने मुझे सुख दिया है, दूसरे ने मुझे दु:ख दिया है। पर पुरुष सुख-दु:ख के साधन उपस्थित कर सकता है, लेकिन सुख-दु:ख का जो वेदन है, वह पर-पुरुष नहीं कर सकता।

तत्त्व का निर्णय बहुत कठिन है। ध्यान दीजिये, बहुत बड़ी साधना है- अपने लोगों को अपने-जैसा स्वीकार कर लेना। उपवास, नीरस, धूप में खड़े होकर साधना कर लेना, वृक्ष के नीचे, पर्वत की चोटी पर पहुँच जाना सरल है, किन्तु प्राणीमात्र को अपने-जैसा स्वीकार कर लेना, यह आत्मा के निज परिणामों की साधना है। आराधक में द्वैत्व भाव है, साधक में अद्वैत भाव है। **''साधक भिन्न है, आराधक भिन्न है। आराधक बनकर साधक बनना चाहिए। जो आराधक बने बिना साधक बनता है, वह व्यक्ति विक्षिप्त हो जाता है। आराधना में चित्त प्रसन्न होता है, अपने आप को व्यवस्थित किया जाता है, व्यवस्थित होने के लिये सामने कुछ दिखाई देता है। आराधना जब भी होगी, किसी आराध्य की होगी। पर साधना जब भी होगी, स्वयं से स्वयं की होगी। साधना में संगठन है, आराधना में विरलन है।''**

तीर्थंकर-जैसी भगवान्-आत्मा के लिए आराधना करते-करते साधना तक पहुँचने में दस भव लग जाते हैं। सोलहकारण भावना साधना नहीं, आराधना है। द्वैत्व भक्ति दो के साथ चल रही है। आराधना का मार्ग सरल है, साधना का मार्ग कठिन है। भैया! मंत्री

बनना कठिन है, मजदूरी करना सरल है। लोक यह समझता है कि मंत्री बन जाना बहुत सरल है, मान की पुष्टि होती है। यह उसकी अज्ञान की भाषा है। यथार्थ में मंत्री की प्रज्ञा सम्राट से ज्यादा होना चाहिए। सम्राट तो आदेश करना जानता है, प्रज्ञा किसकी काम कर रही है? राम, भरत, बाहुबलि सभी के पास मंत्री थे। मंत्री जब भी मंत्रणा करते, राष्ट्रहित में ही करते हैं। यह दुर्भाग्य होगा कि मंत्री की मंत्रणा को दुर्बुद्धि सम्राट स्वीकार नहीं करता। धर्मनीति कहती है कि मंत्री! मृत्यु को स्वीकार कर लेना, पर गलत मंत्रणा मत देना। मंत्री होना कठिन है। मजदूरी हल्की है, क्योंकि उन्हें निर्णय लेने का भार नहीं है। कार्य करना महत्वपूर्ण नहीं होता है, कार्य का निर्णय लेना महत्वपूर्ण होता है।

साधना, आराधना एक नहीं है, भिन्न है। जो कार्य किया जा रहा है, वह आराधना है। साधना कठिन है। जो इंजीनियर नक्शा बनाकर दे रहा है, उसका वेतन अधिक है, कि जो मजदूर भवन बना रहा है उसका वेतन अधिक है? 'इंजीनियर का।' क्यों? उसने तो मात्र कागज पर रेखायें खींची हैं? 'दिमाग का उपयोग अधिक है।' मुमुक्षुओ! भगवान् तो बना-हुआ भगवान् होता है। साधक बने-भगवान् को नहीं देखता, वह निज में बननेवाले भगवान् को देखता है। इतना अंतर होता है कि आराधक के सामने महावीर स्वामी होंगे, पारसनाथ स्वामी होंगे, लेकिन साधक के सामने न महावीर होंगे, न पारसनाथ होंगे। साधक के सामने निज नाथ मात्र होंगे। बनी-प्रतिमा को देख लेना बहुत सरल है, पर पाषाण या मिट्टी में प्रतिमा को देख पाना कठिन है। आराधक सामने स्थित प्रतिमा को देखता है, वह पूजन आदि करके अशुभ भावों से बचकरके घर पहुँच जाता है, बहुत सरल मार्ग है। कठिन मार्ग तो जंगल या शमशान की साधना है। तीर्थविहीन स्थान पर अपने भीतर तीर्थ खोजता है, उसका नाम साधक है। अब साधक को चाहिए कि आराधना के बिना साधना प्रारंभ न करे। जितने साधक विक्षिप्त हुए हैं, गुरुविहीन हुए हैं, वे सब आराधना के अभाव में साधना कर बैठे ।

ज्ञानी! आपने सीधी-सीधी बातें की हैं और सीधी-सीधी बातें सुनी हैं, इसलिए आपको ऐसा लग सकता है कि क्या कह रहे हैं महाराज? आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' में कह रहे हैं कि जिसके अणुव्रतों का पालन नहीं है, उसको

जिनेन्द्र की देशना नहीं देना चाहिए। पात्रता तो होना चाहिए। आराधना में व्यक्ति पागल नहीं होता, क्योंकि उसे बतानेवाला सामने कोई है, आराध्य है। जहाँ आलम्बन होता है, वहाँ तनाव नहीं होता। जब तक तुझे पर का सहारा दिखाई देता रहेगा, तब तक साधना नहीं कर पायेगा। जब पर का सहारा समाप्त हो जायेगा, तब साधना कर पायेगा। आराधनास्थली होती है, साधनास्थली नहीं होती। जब जिस स्थान पर साधना में लीन हो जाता है, वही साधना-स्थली है। साधना-स्थली दूसरे के द्वारा घोषित की जा सकती है, पर स्वयं के द्वारा घोषित नहीं की जा सकती। जो व्यक्ति अपनी साधना-स्थली की घोषणा कर रहा है, वह जीते जी कह रहा है कि मैं सर्वार्थ सिद्धि का देव हो गया हूँ। जब तू मरा ही नहीं, तो देव कैसे हो गया? वर्तमान में सोनागिर में अपने जीते-जी एक मुमुक्षु ने अपने चरण स्थापित करवा दिये, तो एक ने अपनी छतरी बनवा दी। ज्ञानी! यह न साधना थी, न आराधना थी। अहंकारी के पास दोनों ही नहीं होती। इसलिए ध्यान रखें, अपने जिनालयों में तीर्थंकर और जिनवाणी मात्र विराजमान करना। पंचमकाल है, इसमें भूतों की पूजा ज्यादा होती है, अरिहंतों की कम।

सत्यता यह है कि जब वस्तुस्वरूप समझ में आने लगता है, तब 'जो है, सो है'। आराधना पहले ही करना चाहिए। रहस्य को समझो। क्यों करना चाहिए? भूतार्थ दृष्टि से देखो आप, यदि वाहन भी कोई चलाता है, तो किसी चालक का सहयोग लेता है, सीखता है। पुस्तक पढ़कर कभी भी कोई भी अच्छे से न वाहन चला पायेगा, न भोजन बना पायेगा। ऐसेही कोई साधक आराधक ग्रंथों को पढ़ते-पढ़ते साधना करने बैठेगा, ग्रंथ देखेगा, तो स्वाध्याय तो हो जायेगा परन्तु न साधना होगी, न आराधना होगी। वे अज्ञानी लोग हैं जो ग्रंथों के स्वाध्याय को साधना मान रहे हैं, आराधना मान रहे हैं। वह तो साधना या आराधना का ज्ञान प्राप्त करना मात्र है। देश में आँधी-सी चल रही है, साधना-आराधना। यह न तो साधना है और न ही आराधना है। यह तो शब्द ज्ञान प्राप्ति का लक्ष्य है। जब आराधना करेगा तो ग्रंथ नहीं, भगवंत सामने होगा। जिनवाणी, अरिहंत/निर्ग्रन्थ की पूजा आदि आराधना होगी। जब साधना करेगा, तो हाथ पर हाथ रखे मिलेंगे और आराधना करेगा तो हाथ जुड़े मिलेंगे। आराधना करेगा तो आँख खुली

मिलेगी और साधना करेगा तो नासाग्र दृष्टि होगी। देह का कार्य और प्रज्ञा का कार्य। आराधना में देह-क्रिया प्रधान है, जबकि साधना में देह-क्रिया गौण है और प्रज्ञा-क्रिया प्रधान है। आराधना की अपेक्षा साधना की निर्जरा अधिक है। जिनवाणी का उद्देश्य भ्रम हटाने का है, भ्रम उत्पन्न कराने का नहीं है।

कुसलाकुसलं कर्म परलोकश्च न क्वचित।
एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ! स्व-पर वैरिषु॥ 8 आ. मी.॥

समन्तभद्र स्वामी के शब्द हैं। हे नाथ! वह स्व-पर का बैरी है। उसके न पुण्यकार्य घटित होता है, न पापकार्य घटित होता है। क्यों? तुम शनि आदि ग्रह उतरवाने दुनियाँ में भटक रहे हो, ज्ञानी! यदि तुझे ग्रह ही उतरवाना है, तो सबसे बड़ा ग्रह है एकान्त का ग्रह। एकांत से दूषित जिनका चित्त है, वे सब स्व-पर के बैरी हैं। ज्ञानी! तू कदाचित् पुण्यशाली हुआ और तूने एकान्त मिथ्यात्व फैला दिया, तू तो अपने पुण्य के नियोग से सुलझ जायेगा, पर कोटि-कोटि को भ्रमित करके चला जायेगा। वर्द्धमान से पूछो—हे वर्द्धमान! मारीच की पर्याय में सांख्य का प्ररूपण करके 363 मिथ्या पंथ चला डाले, स्वयं तो भगवान् बन गये, लेकिन भगवान् बनकर भी तुम उनको समाप्त नहीं कर पाये। इसलिए हे मुमुक्षुओ! तुम पुण्यात्मा जीव हो, पर उन गरीबों पर दया करना।

जिसको स्वयं ही निर्णय नहीं हुआ है कि रक्तदान है कि हिंसाकर्म है, महावीरजयंती जैसे पवित्र दिन पर भी रक्तदान को बढ़ावा दे रहे हैं। **''हे अभागे! ऐसा खोटा काम मत करो। यह उपकार का काम नहीं है। हमारे महावीर ने रक्त और मांस के चिथड़ों को कोई दान नहीं कहा है। दान देना है तो निर्दोष औषध का और ज्ञान का दान दो। आहारदान दो, अभयदान दो। कन्यादान आदि कोई दान नहीं है।''** शीतलनाथ भगवान् के तीर्थकाल में यह कुदान की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई थी।

ज्ञानी! ज्ञान-दर्शनआत्मा में कब से है? अनादि से है। क्रोध आदि कषाय कब से हैं? अनादि से। लोग कहते हैं कि आज के लोग बिगड़ गये। अरे! आज नहीं बिगड़े, बिगड़े तो अनादि से हैं। अनादि से अच्छा होता, तो यहाँ आता ही क्यों? महावीर के साथ चला गया होता। आज के लोग नहीं बिगड़े, वे पुराने बिगड़े लोग ही आज आये

हैं। ऐसा कभी नहीं कहना, क्योंकि वस्तु त्रैकालिक है। जिनके घर में चौबीस घण्टे कलह/झगड़ा सुनाई दे, उनके घर पर पेन्टर से लिखवा देना 'नरक भवन'। मंदिर के द्वार से जब निकलते हैं, तो घंटियों की आवाज सुनाई पड़ती है, तो हमको मालूम चल जाता है कि जिनालय है। कलह वाले घर के सामने से जब-जब निकलता हूँ, विचित्र प्रकार की घण्टियाँ सुनाई पड़ती हैं, इसलिए 'नरक भवन' लिख दिया है। उसमें रहने वालों में परस्पर में प्रीति नहीं है, इसलिए उनका नाम 'नारकी' है। ऐसा लगता है कि ये नरक से आये हुए लोग हैं। संस्कार पड़े हुए हैं, इसलिए लड़ रहे हैं। कुछ लोग नरक में जाने वाले हैं, इसलिए अभ्यास कर रहे हैं। ज्ञानी! लज्जा गुण गया, तो सबकुछ गया।

समझो-समझो साधना, आराधना। आराधना में आलंबन है, साधना निरालंब है। प्रयोग करके देखते हैं। ज्ञानी! सभी लोग मन में णमोकार मंत्र पढ़ो .....। हो गया। अब जीभ हिलाकर पढ़ो। ताकत किसमें अधिक लगी ? महसूस किया। जीभ नहीं हिलाने में अधिक ताकत लगी। हिलाने में ज्यादा मेहनत नहीं लगती, शांत रहने में अधिक मेहनत लगती है। जैनदर्शन कहता है -करना महत्वपूर्ण नहीं है, ज्ञानी! कुछ नहीं करना महत्वपूर्ण है। यही साधना है। जिसमें करना- करना है, उसका नाम आराधना है। जिसमें करना बंद हो जाये, उसका नाम साधना है। इसलिए ध्यान रखना, श्रावको! तुम्हारे पास मात्र आराधना है, निर्ग्रन्थों के पास साधना व आराधना दोनों हैं। अरिहन्त, सिद्ध के पास न साधना है, न आराधना है। उनके पास आराधना व साधना का फल है। यही 'समयसार' की कारण-कार्य व्याख्या है।

पंचपरमेष्ठी में चित्त लगाना, इसका नाम आराधना है स्यात्। निश्चय आराधना ही साधना है और व्यवहार आराधना तो व्यवहार आराधना मात्र है। साधना का साधन है। जो साधक आराधना में लीन हो गया और अपने आप को व्यवस्थित कर लेता है, उसे पंच-परमेष्ठी भी समझ में आते हैं, आत्मतत्त्व भी समझ में आता है। ऐसा साधक बड़े सहज भाव से साधना में सफल हो जाता है। जिसने परमेष्ठी को नहीं जाना, उसने कुछ नहीं जाना। संशय भी अज्ञानी को नहीं, ज्ञानी को होता है। ज्ञात में ही भय और प्रीति होती है, अज्ञात में भय और प्रीति नहीं होती। साधना करना चाहिए आराधना-पूर्वक।

पुनः आचार्य महाराज कर रहे हैं, सुधी मुमुक्षु!

धर्मकार्ये मतिस्तावद्यावदायुर्दृढं तव।
आयुः कर्मणिसंक्षीणे, पश्चात्त्वं किं करिष्यसि॥ (60)

हे आत्मन्! जब तक तेरी आयु दृढ़ है, ये चर्म चमक रही है यानि जब तक खजूर से छुआरा नहीं बनी है, तब तक धर्म करो। जब तक आयुकर्म दृढ़ है, तब तक धर्मकार्य में प्रज्ञा का प्रयोग कर लो। आयु के क्षीण हो जाने पर फिर क्या करेगा? सोचता ही रहेगा। क्या करेगा जब 'चिड़िया चुग गई खेत' ? इसलिए जब तक आयु है, श्वास चल रही है, शरीर स्वस्थ है, तब तक आराधना व साधना कर लो और अपनी आत्मा की रक्षा कर लो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"जीवन की सार्थकता"

धर्ममाचर यत्नेन, मा भवस्त्वं मृतोपमः।
सद्धर्मं चेतसां पुंसां जीवितं सफलं भवेत्॥ 61॥

अन्वयार्थ—यत्नेन = यत्न के साथ **धर्मं** = धर्म का **आचर** = आचरण कर **त्वं**= तू **मृतोपमः** = मृत प्राणी के समान **मा भव**= मत रह **सद्धर्मं** = सत्य धर्म को **चेतसां** = अनुभव करने वाले **पुंसां** = मानवों का **जीवितं** = जीवन **सफलं** = सफल **भवेत्** =होता है।

भावार्थ—हे आत्मन्! तू यत्नपूर्वक सद्धर्म का आचरण कर। धर्म को छोड़कर मरे हुए प्राणी के समान मत हो। सद्धर्म का अनुभव करने वाले जीव का ही जीवन सफल होता है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। श्रमणपरम्परा में ज्ञानियो! चौबीस तीर्थंकर-भगवन्त होते हैं। भारत-भूमि पर एक नहीं, दो नहीं, अनन्तानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं। चौबीस तीर्थंकर-भगवन्तों में वर्तमान की चौबीसी में अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी हुए। तीर्थंकर वर्द्धमान के सद् उपदेशों से तत्त्व की प्ररूपणा हुई और तत्त्वप्ररूपणा जन-जन के अंतस् तक पहुँची।

एक वह दिन था जब श्रावक व श्रमण तीर्थंकर केवली के पादमूल में बैठकर दिव्य देशना का पान करते थे। पुण्यात्मा जीव था श्रेणिक, जो कोई आचार्य या मुनि से प्रश्न नहीं करता था, वह साक्षात् वर्द्धमान स्वामी से या गौतम स्वामी से जिज्ञासा का समाधान किया करता था। यह जगत् में सबसे बड़ा पुण्य का नियोग है। भगवान् महावीर को निर्वाण होने पर गौतम स्वामी को कैवल्य प्रकट हुआ और गौतम स्वामी का निर्वाण

हुआ तो सुधर्माचार्य स्वामी को कैवल्य प्रकट हुआ और सुधर्माचार्य स्वामी को निर्वाण प्राप्त हुआ तो जम्बू स्वामी को कैवल्य प्रकट हुआ। ये तीन अनुबद्ध केवली हुए। भारत की भूमि पर अखण्ड कैवल्य जाज्वल्यमान रहा। तीर्थंकर का अभाव लोगों को महसूस नहीं हुआ। कैवल्य धारा अनवरत चलती रही। वह समय भी आया जब जम्बू स्वामी के बाद अनुबद्ध केवली की परम्परा इस भारत भूमि पर समाप्त हो गई। साक्षात् क्षायिकज्ञान का अभाव हो गया। उनके बाद किसी भी जीव को कैवल्य नहीं हुआ। श्रुतपरम्परा प्रारंभ हुई। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी हुए।

एक बालक गोटियों पर गोटियाँ रख रहा था। उसने चौदह गोटियाँ एकसाथ रख दीं। उधर से गोवर्धन स्वामी विचरण करते हुए निकले और बालक पर दृष्टि पड़ी। योगियों को तत्त्व नजर आया, उस बालक को देखकर उन्होंने अपने निमित्तज्ञान से जान लिया कि यह बालक भविष्य का अंतिम श्रुतकेवली है। बालक से उसके माता-पिता का पता पूछा और उसके घर की ओर चल दिये। घर के दरवाजे पर ही बालक के पिता मिल गये। उन्होंने कहा-आपके इस बेटे को मैं ले जाना चाहता हूँ। जिनशासन की रक्षा के लिये, श्रुत की रक्षा के लिए आचार्यपरमेष्ठी बेटे को माँग रहे हैं। इस बेटे को आप मुझे दे दो। पिताजी कहते हैं- महाराज! उसकी माँ से पूछना पड़ेगा। नियोग ऐसा बना कि बाहर आवाज सुनकर माँ भी भीतर से बाहर आ गई। वहीं चर्चा प्रारंभ हो गई । दोनों सोच में पड़ गये कि क्या करें? आचार्यमहाराज बोले-विकल्प मत करो। इसको मैं अध्ययन कराना चाहता हूँ। भद्रबाहु स्वामी के पिता बाले-स्वामी! मैंने भी इसकी कुण्डली देखी है। उसमें जितने ग्रह-नक्षत्र बैठे हैं, वे सारे-के-सारे सूचित कर रहे हैं कि इसको भविष्य का दिगम्बराचार्य बनना है। जब गोवर्धन स्वामी ने यह सुना, तो बोले-आपको सब मालूम है तो क्यों विकल्प करते हो ? इस बेटे को मुझे दे दो।

हे स्वामी! आप कहते हो तो मैं दे सकता हूँ, परन्तु एक शर्त मेरी भी है। आप इसे ले जाओ, पर आप इसे दीक्षा नहीं देंगे। वीतरागी तपोधन गुरु 'गुरू' होते हैं। वे भी बोले- आपकी शर्त है तो मेरी भी शर्त है। मैं सोलह वर्ष तक इसको श्रुत का पान कराऊँगा और सोलह वर्ष उपरांत घर भेजूँगा। यदि पुनः मेरे पास आ गया, तो मैं आपकी

अनुमति नहीं लूँगा, इसको दीक्षा दे दूँगा। यह आपका काम है कि सोलह वर्ष कि बाद जब यह घर आये, तो आप घर में रख लेना। किसको मालूम नहीं है कि जो निर्ग्रन्थों के पास एक बार पहुँच गया वह माता-पिता सबको भूल जाता है? बालक भद्रबाहु गोवर्धन स्वामी के साथ चला गया। सोलह वर्ष में आचार्यमहाराज ने बालक को द्वादशांग का ज्ञाता बना दिया, सम्पूर्ण शास्त्रों में पारंगत कर दिया और जैसे-ही सोलह वर्ष पूर्ण हुए, भद्रबाहु से कहा- आप अपने जनक-जननी के यहाँ जाइये। बालक कहता है- मुझे तो जैनेश्वरी दीक्षा चाहिए, आप मुझे दीक्षा दो। सारे जगत् से आप कहते हैं कि कल्याण मार्ग पर लगो और मुझसे कह रहे हैं-घर जाओ। यह उल्टी गंगा कब से बहने लग गई?

आचार्यमहाराज बोले- बेटे! मैंने जो संस्कार दिये हैं, वे चातक पुत्रवत् हैं। ज्ञानियो शिष्य या बेटे को बाहर भेजने में डर उनको लगे, जिनके संस्कारों में कमी है। वे बोले-भद्रबाहु! क्या तुम्हें स्वयं पर विश्वास नहीं है? क्या तेरा हृदय वैराग्य से इतना हीन है कि घर जाकर संसार में फँस जायेगा? गुरु आज्ञा स्वीकार कर माता-पिता के पास जाइये, फिर आगे विचार करना। जैसे-ही भद्रबाहु अपने माता-पिता के पास पहुँचता है, सारे नगर में आनंद छा गया। अध्ययन करके, तपस्या करके आया है, उस विद्यार्थी का राजसम्मान के साथ नगर में प्रवेश होता था। 'तत्त्वार्थ सूत्र' का जो पाठ मात्र कर लेता था, पालकी में बिठाकर उसको नगरभ्रमण कराया जाता था।

आज विद्वानों ने पुद्गल के टुकड़ों में सम्मान खो दिया है। ज्ञानी! जीवन में ध्यान रखना, माँ की देह का व्यापार नहीं होता है। हे विद्वानो! तुम माँ जिनवाणी का व्यापार कैसे करने लग गये? जब जन्म देने वाली माँ का व्यापार नहीं होता है, तो पुद्गल के टुकड़ों के पीछे वीतरागी अरिहंत की वाणी का व्यापार कैसे? वे दिन कहाँ गये, जब विद्वान् माँ जिनवाणी को सुनाकर पैसे लेकर नहीं आते थे। उल्टा दान दे देना भैया! पर पैसे लेकर मत आना। पूर्व में तुमने निर्ग्रन्थों को शास्त्र भेंट किये होंगे, उस पुण्य के नियोग से तुम्हारे नाम के आगे 'पण्डित' शब्द जुड़ गया है। पुद्गल के टुकड़ों के राग में इस प्रज्ञा को खण्डित मत कर लेना देश के सारे विद्वानों से कह देना, तुम अपना व्यापार करके पेट भरो, भगवती जिनवाणी को बेंचकर पेट मत भरो। मुमुक्षु! शास्त्रजीवी और शस्त्रजीवी दोनों अज्ञानी हैं, दीर्घसंसारी हैं।

ज्ञानी! भद्रबाहु स्वामी का राज-सम्मान हुआ, नगर में प्रवेश हुआ। बेटा सोलह वर्ष के बाद घर पहुँचा तो माता-पिता गद्‌गद् हो गये। वह भी जो दिगम्बराचार्य से अध्ययन करके आया हो। प्रातः होते ही पिता सोच रहे थे, कि कोई सुकुल कन्या देखकर बेटे का कल ही लग्न करवा दूँ, क्योंकि परसों का भरोसा नहीं इसका। प्रातः सूर्य की किरणें बाद में फूटीं, बेटे के वैराग्य की किरणें फूट पड़ीं। कहता है- 'अहो तात! मुझे आशीष दो, इस देह का दान दे दो, आपके द्वारा प्रदत्त शरीर से मैं जैनेश्वरी दीक्षा लेकरके आत्मकल्याण करना चाहता हूँ।' बेटे की माँ अंदर सुंदर भोजन बना रही थी, बाहर आकर कहती है- क्या कह रहा है बेटा? 'बस, माँ! आपके निमित्त से मेरे शरीर का जन्म हुआ है, लेकिन मैं तो अजन्मा हूँ। जिस शरीर के आप जनक-जननी हैं, उस शरीर से मैं जिन-दीक्षा लेकरके निर्वाण मुक्ति वधू का वरण करूँगा। आप जिस नारी से वरण करना चाहते हो, वह तो पुद्‌गल का पिण्ड चर्ममय, पापमय होगा, मगर मैं जिस वधू से वरण करना चाहता हूँ, वह शिव-वनिता कभी नाश को प्राप्त नहीं होगी।' माँ-पिता कुछ कहते, इसके पहले ही भद्रबाहु ने चरण स्पर्श किये और देहरी के बाहर निकल गये। माँ बिलखती रही, जनक निहारता रहा। स्वप्न जैसा लगा कि बेटा आया था। पीछे-पीछे माता-पिता भी चल दिये कि गोवर्धन स्वामी को समझायेंगे कि हमारे बेटे को दीक्षा मत दो।

तत्त्व की प्ररूपणा, वस्तुतत्त्व का श्रद्धान, वस्तुतत्त्व का ज्ञान तीनों को विवेकपूर्वक समझने की आवश्यकता है। सम्यग्दृष्टि जीव साधना और आराधना दोनों में भेद को देखता है। साधना और आराधना दोनों में महान् अंतर है। जिसमें योगों की चंचलता है, वह आराधना है। जहाँ योग की चंचलता से शून्य अवस्था है, वह साधना है। परमार्थ दृष्टि से भगवती आराधना। भग यानि ज्ञान से युक्त ध्रुव-आत्मा, उस निज आत्मा की आराधना ही भगवती आराधना है। रत्नत्रय धर्म से युक्त आत्मा की आराधना ज्ञानी एक बार भी कर लेता तो-फिर कोई आराधना न करनी पड़ती। अरिहंत की, पंचपरमेष्ठी की आराधना तो अनंत प्रकार से होती है, परंतु आत्मा की आराधना एक ही प्रकार से होती है।

परमात्मा की आराधना का उल्लेख 'श्लोकवार्तिक' में किया है। बैखरी आराधना भी कर रहा है, उपांशु आराधना भी कर रहा है, अंतर्‌जल्प आराधना भी कर रहा है,

लेकिन यह आराधना परगत तत्त्व है। आपने मुख से उच्चारण करके णमोकार पढ़ा है, वह बैखरी आराधना है। इससे वातावरण तो प्रशस्त होता है, लेकिन साधक को उतना फल नहीं मिलता जितना उपांशु आराधना में मिलता है, क्योंकि मुख से उच्चारण करने से तरंगें बाहर फैल गई। उपांशु में जिह्वा हिलती है, होंठ नहीं चलते, मात्र जाप चल रहा है। अतंर्जल्प में अंतरंग-अंतरंग में ही अनुष्ठान चल रहा है। सबसे श्रेष्ठ कोई आराधना है वह अन्तर्जल्प है। उपांशु सरल है। जब पुरुष चलता है, उसका हाथ हिलता है। जितना तीव्र हाथ हिलता है, उतनी तीव्र गति से चलता है। हाथ बांध दिये जायें तो गमन धीमा हो जायेगा। ज्ञानी! यह बड़ा गंभीर रहस्य है। जैसे गमन करते पुरुष के लिये हाथ हिलने पर गति बढ़ती है, ऐसे ही चंचल चित्त के लिए जितनी मुख में जीभ हिलेगी, उतना मन दौड़ेगा। जितना जीभ को बंद करके रखेगा, तेरा मन शांत हो जायेगा। होठ मत हिलाओ, जीभ मत हिलाओ, णमोकार का जाप करो, आपको महसूस होगा कि बोलने में अधिक ताकत लगती है कि अन्तरंग में अधिक ताकत लगती है? अनुभव करके देख लो, कर्म की निर्जरा इसमें अधिक है, क्योंकि शक्ति अंदर वाष्पित हो रही है और बोलने में शरीर की शक्ति बाहर निकल रही है।

यहाँ कुंदकुंद स्वामी की भक्ति प्रारंभ होती है। वे कह रहे हैं कि निज अद्वैत में लीन हो जाना, इससे तात्पर्य है परमात्मा के विकल्प की समाप्ति। पर परमात्मा का विकल्प समाप्त होने के लिए हे साधक! तुझे गंभीर आराधना करना पड़ेगी। योग को, उपयोग को संभालना पड़ेगा। जिसका योग और उपयोग नहीं संभल रहा है, उसका अद्वैत आराधना में प्रवेश संभव नहीं है। जब चित्त चलायमान होता है, उस समय निहार लेना, या तो भयभीत है, या कुपित है, या मान में है, या माया में है, या लोभ में है। मित्र कोई-न-कोई कषाय से ग्रसित होगा, उसी का चित्त चलायमान होगा। विश्वास रखना, जब चित्त चलायमान होता है, तो चेहरा भी चारों ओर घूमता है। जिसको पर को देखने की आकांक्षा है, वह चारों ओर आँखें घुमायेगा। जिसको दिखाने और देखने का भाव नहीं है, वही निज अद्वैत परम ब्रह्म को देख सकेगा। किंचित भी पर के प्रति मन में भाव है, तो अद्वैत में लीन नहीं हो सकेगा।

ज्ञानी! अशुभ अहंकार में जीने वाले लोग तो कोटि-कोटि हैं ही, शुभ अहंकार में जीने वाले लोग भी कोटि-कोटि हैं। विधर्मी हैं, वे अशुभ में डूबे ही हैं। जो अपने आप को धर्मात्मा मान रहे हैं, वे शुभ अहंकार में डूब रहे हैं। धर्म का लक्ष्य कितना ? मार्ग में चलते हुए वाहन के सामने आये जीव को तूने बचा लिया, हे ज्ञानी! उसे देखकर तेरे मन में जो करुणा के भाव आये थे, जो दु:ख के भाव आये थे, उस दु:ख को तूने दूर कर लिया है, लेकिन तू इस अहंकार में लोगों को सुना रहा है कि मैंने जीव की रक्षा की है। यह शुभ अहंकार के रस का पान कर रहा है। जिसे आप शांत परिणाम कह रहे थे, वे कषाय परिणाम थे। रोता बालक भी चाकलेट पाकर शांत हो जाता है। चाकलेट का स्वाद लेता हुआ बाहर शांत दिखाई देता है, वह निष्कषायी है क्या ? वह आहार संज्ञा की गृद्धता में लिप्त है। आपको लगता अकषायी है। ऐसे ही कोई जीव आपको एकदम शांत दृष्टिगोचर हो रहा हो, वह शांत किसमें है ? किसी कषाय की अनुभूति में शांत है।

ज्ञानी! तुझे आज ही एक करोड़ रूपये का मुनाफा हुआ है और उस क्षण न आप किसी को अशुभ भाषण कर रहे हो, न अशुभ दृष्टि से देख रहे हो, आप क्रोध भी नहीं कर रहे हो। उस समय आपको कोई आकर देखे और कहे, कि कैसा शांत होकर बैठा है ?' हे ज्ञानी! शांति से तू बैठा है, कि एक करोड़ के द्रव्य को देख रहा है ? हे ज्ञानी! तेरी देह की पर्याय को देखने वाला तुझे शांत कहेगा, लेकिन परिणामों को देखने वाला कहेगा कि रौद्रध्यान में लीन बैठा है, क्योंकि तेरा परिग्रहानंदी ध्यान चल रहा है। ध्यान दो, जब परद्रव्य के मिलने पर इतनी संतुष्टि आत्मा को मिल रही है, तब यदि निज द्रव्य मिल जाये, तो कितनी संतुष्टि आत्मा को मिल जायेगी ? द्विसंयोगी भाव में निज से भिन्न संयोग में जब शांति का वेदन कर सकता है, तो फिर असंयोग में कितनी शांति होगी ? जगत् में पर-संयोगी भाव में ही आनंद चल रहा है अभी, ज्ञानी! परमेष्ठी का आनंद बहुत दूर है, अभी पापभूत द्रव्य में संतुष्टि चल रही है।

योग की लीनता, उपयोग में अविच्छेद वहीं है। जहाँ पर ज्ञेय में दृष्टि किंचित् भी नहीं गई है। पर-प्रमेयों को देखने का प्रयास किया है यही आपकी भूल है। आप जिस स्थिति पर हैं, उतना ही समझ पा रहे हो। धर्म द्वैत्वभूत है। एक जीव णमोकार की माला फेर रहा है, वह भी धर्मात्मा है। एक स्वाध्याय कर रहा है, एक मुनियों की आराधना कर

रहा है, चौबीस भगवंतों की आराधना कर रहा है, वह भी धर्मात्मा है। धर्मात्मा तो है, मंद-कषायी है, लेकिन अभी धर्म में नहीं है। भद्र-परिणति का धर्मात्मा तो है, धर्म का धर्मात्मा नहीं है। जैनधर्म का, जाति का, सम्प्रदाय का धर्मात्मा तो हो सकता है, पर धर्म में लीन होने वाला धर्मात्मा नहीं है। रागियों की बात तो छोड़िये, योगियों को भी सोचना पड़ेगा। ये मुनिराज बने बैठे हैं आपके सामने, ये धर्म प्राप्ति की मुद्रा है। इस भेष के होने से भी धर्मात्मा नहीं हैं। जगत् में कितने ही लोग हैं जो मुद्रा की ही आराधना करके अपनी आयु को पूर्ण कर लेते हैं। ये धर्म से बहुत दूर हैं। समझ में आ रहा है तो भीतर की ओर चले जाना, नहीं तो बाहर आ जाओ।

जो धर्म चल रहा है, वह व्यवहार धर्म है, लेकिन जिसकी बात कर रहा हूँ, वह इन सबसे भिन्न है। वहाँ तक नहीं पहुँच पा रहे हैं। धर्म गुण होता है और गुणी से अभिन्न होता है।

जो ज्ञेय है, वह भेदात्मक भी है, अभेदात्मक भी है। मेरी ध्रुव आत्मा भेदात्मक भी है, अभेदात्मक भी है। जब मैं अखण्ड चिद्रूप आत्मा को देखता हूँ, तो वह अभेदात्मक है। जब मेरा ही आत्मा ज्ञान-दर्शन गुणस्वभावी है, हमने अपने ही द्रव्य में गुण का भेद करके देखा है, ज्ञान गुण भिन्न दिख रहा है, दर्शनगुण भिन्न दिख रहा है। ज्ञेय भेदात्मक है, ज्ञेय अभेदात्मक है। ज्ञानी! तेरा शरीर कितना बड़ा है ? उसमें आँख, कान, नाक हैं कि नहीं ? तो शरीर अंग है, नाक,कान अलग हैं ना तेरे ? शरीर में नाक,कान है, और पेट,पैर पीठ ये क्या हैं ? ये सब शरीर में है।

ज्ञानी! अभेद में भेदवृत्ति, भेद में अभेदवृत्ति! जब अंगों को देखेंगे तो भेद दिखेगा, फिर मैं उसमें अभेद शरीर को देखूँगा तो भेदवृत्ति। जब शरीर में अंग देखेंगे तो अभेद में भेदवृत्ति। यह 'अष्ट सहस्री' का विषय है।

धर्म को द्वैत रूप से घटित करो। एक संप्रदायभूत धर्म है, दूसरा क्रियारूप धर्म है, जो अपनी पुण्य क्रिया रूप चल रहा है। रत्नत्रय का पालन कर रहे हो, यह भी धर्म है। दस प्रकार के धर्म हैं, लेकिन जिस धर्म के लिये सबकुछ किया जा रहा है, वह धर्म अभी भी नहीं है। जिस धर्म में आप पहुँचना चाह रहे हैं, वह धर्म कभी उत्पन्न नहीं होता, वह

धर्म कभी नष्ट नहीं होता, वह धर्म त्रैकालिक ही होता है। 'जब होता ही है, तो व्याख्या क्यों?' व्याख्या इसलिए कर रहा हूँ, कहीं आप निजधर्म को खोकर, जो परभूत धर्म है उसमें संतुष्ट होकरके ऐसा न हो जावे कि जीवन की अन्तिम श्वास तक भी आप उस धर्म को पहचान न सको। कौन-सा धर्म? जिस धर्म ने सम्पूर्ण धर्मों को जाना है। हे मुमुक्षु! ज्ञाता! तू उस धर्म को ही नहीं जान सका जिसके लिए श्रमणदीक्षा ली जाती है।

आचार्य-भगवन् ने स्पष्ट कह दिया है कि आयु के नष्ट होने के पहले धर्म को पहचान लो। कितना ही पुरुषार्थ, कितनी ही शक्ति लग जाये, वीर्य-अन्तराय कर्म का क्षयोपशम और बुद्धि जब तक काम कर रही है, तब तक धर्म को पहचान लो। ज्ञानी! एक क्षण के लिए इतना तटस्थ भाव आया, उस क्षण का आनंद आपको शब्दों में नहीं बताया जा सकता। मैं तो भगवान् से भी भिन्न हूँ, मैं तो धर्म से भी भिन्न हूँ। जैनधर्म के प्रति मेरा राग है, वह भी मेरा निजधर्म नहीं है। वह तो इस कुल में, इस धर्म में जन्मा हूँ, इसलिए ऐसा भाव आ रहा है। पर जो मेरा धर्म है, वह इन सबसे भिन्न ही है। ज्ञानियो! जितने जगत् में सम्प्रदाय हैं, एक भी धर्म नहीं है। जो मैं कह रहा हूँ, ऐसा सोचकर जो बैठ जायेगा, उसको लोग पागल जरूर कहेंगे। जो इसमें उतरेगा, वह शिष्य, भाई, पण्डित कुछ भी नहीं देखेगा। ध्रुव सत्य है कि अभी तक जीव को पर का व निज का बोध नहीं है। जिनसे स्वार्थ की सिद्धि हो रही है, उनको 'निज' कह रहा है और जिनसे स्वार्थ की सिद्धि नहीं हो रही है, उनको 'पर' कह रहा है। निज-पर का बोध यह थोड़े-ही है। यह स्व-पर का भेद-विज्ञान नहीं है।

"धण्णा ते भयवंता"

वे योगीश्वर धन्य हों, जो स्व-पर के भेदविज्ञान में डूबे हैं। ज्ञानी! अबद्ध में स्व-पर का भेद-विज्ञान मिथ्यादृष्टि भी कर लेता है। अबद्ध में भेदविज्ञान की बात तो कोटि-कोटि जीव कर लेंगे। अबद्ध से तात्पर्य है कि जो निज आत्मा में कर्म का संबंध है, वह बद्धभूत है और तेरा बेटा जो तेरा है, वह बद्धभूत है। तेरा धन, शत्रु,मित्र अबद्धभूत हैं। जैनदर्शन क्या कह रहा है? बद्ध में अबद्ध को निहार लेना। कर्मों की 148 प्रकृतियों को अपने से भिन्न देख पाना। क्या व्यवहारनय मेरा धर्म है, क्या निश्चयनय मेरा धर्म है? मेरा

धर्म क्या है? एक जीव को भी समझ में आ गया तो वाचना सफल हो गई। जिनमें तुम संतुष्ट हो रहे थे, वे सब अधर्म थे। जो मेरे से कभी भिन्न न हुआ, न होगा, वह मेरा धर्म है ज्ञान-दर्शन/ज्ञायकभाव। संसार के जितने साधन हैं, उन्हें ज्ञायकभाव से जानते मात्र हैं। जिसको भी निर्वाण मिलेगा, ज्ञायकभाव मात्र की लीनता से ही मिलेगा, अन्य से मिलनेवाला नहीं है। सिद्धान्त की भाषा, आगम की भाषायें उस ज्ञायकभाव को समझने के लिए ही हैं। चाहे तुम एकत्व-विभक्त शुक्लध्यान बनाओ, लेकिन अंतिम सत्ता शुद्ध ज्ञायक में प्रवेश है। वही सब ध्यानों की व्यवस्था है।

पानी में फिटकरी डालने से उसका मल नीचे बैठ जाता है। समझिये पानी आपको नाना रूपों में दिख जायेगा। एक वह पानी, जो आरपार काँच-जैसा दिखाई दे रहा है। जब पानी पारदर्शी हो सकता है, तो मेरी आत्मा का ज्ञान-गुण भी शुद्ध पारदर्शी हो सकता है, जिसमें तीनों लोक दिखते हैं। वही सर्वज्ञ का ज्ञान है। शुद्ध ज्ञान की सत्ता है, वही केवलज्ञान है। शुद्ध गुण तो अशुद्ध अवस्था में प्रकट हो जाता है, लेकिन आत्मद्रव्य शुद्ध तभी होगा, जब चारित्र की परिपूर्ण शुद्धता हो जायेगी। करणानुयोग की दृष्टि से जब तक गुणस्थान है, तब तक आत्मा अशुद्ध है। द्रव्यानुयोग की दृष्टि से गुणस्थान, मार्गणास्थान जब तक है, तब तक यह आत्मा अशुद्ध है। इनसे रहित जो देखता है, वह आत्मा शुद्ध है। चौदहवें गुणस्थान तक जीव संसारी है। द्रव्यमोक्ष नहीं हुआ, भावमोक्ष हुआ है। अरिहंत अवस्था में गुण शुद्ध तो प्रकट हो गया है, अभी द्रव्य शुद्ध नहीं हुआ। द्रव्य शुद्ध तब होगा, जब संपूर्ण कर्म-कालिमा/कलंक हट जायेगा। चिन्तन करो तो समझ में आता है कि आगम में क्या-क्या रहस्य निकलता है।

अशुद्ध पर्याय में शुद्ध गुण तो प्रकट हो गया अरहंत भगवान् के केवल ज्ञान, केवलदर्शन किन्तु अभी शेष गुण और हैं। द्रव्य की शुद्धता तभी प्रकट होगी, जब 148 कर्मप्रकृतियाँ जो बद्ध दशा में हैं, वे नष्ट हो जाएँगी।

बद्ध-अबद्ध सोच भी मेरा धर्म नहीं है। आत्मा में जो कर्मों की बद्धता है, वह भी जब मेरी नहीं है और जो रागादिक भाव कर रहा हूँ, वे भी मेरे धर्म नहीं हैं,तो मेरा धर्म क्या है? शुद्ध पानी को देखो। शुद्ध जीवद्रव्य का केवलज्ञानगुण जब प्रकट हो जाता है, तब सारे विश्व के चराचर द्रव्य झलकना प्रारंभ हो जाते हैं।

अब आइये पुनः व्यवहार में। आप जो धर्म कर रहे हो, उसे छोड़ मत देना। पानी स्वभाव से शुद्ध था, पर पानी में जो फिटकरी डालकर रखी है, उससे मल बैठा है। ऐसे-ही ज्ञानी! जो शुद्ध सत्ता को मैंने आपको बताया है, उस शुद्ध अवस्था को प्रकट करने के लिए देवपूजा, गुरुपूजा आदि, मूलगुण व उत्तरगुणों का पालन, रत्नत्रय का धारण आदि निर्मली (फिटकरी) है, पर्याय-जन्य कार्य को करना पड़ेगा, लेकिन ये स्वभाव नहीं है।

जिस तरह बादाम का तेल निकालने के लिए छिलकों को हटाना पड़ता है तब तेल प्राप्त होता है, बस, ज्ञानी! जैनदर्शन का जो वस्तुस्वभावभूत धर्म है-

"दसविध धम्मो, रयणत्तयं धम्मो, दया धम्मो"

इन सबके कहने के बाद आता है- 'वस्तु स्वभावो धम्मो' वही मूलधर्म है। जितने धर्म हैं, सभी 'वस्तु स्वभावो धम्मो' की प्राप्ति के लिए हैं। न इतना गहरा तुम सोचोगे, न समझोगे और पता चला कि ऊपरी सतह पर तैरते-तैरते ही पर्याय पूरी कर दी। समाधि तभी होगी, जब 'वस्तु स्वभावो धम्मो' में प्रवेश होगा। चक्रवर्ती के द्वारा सूर्यविमान में जिनबिम्ब की वन्दना होती है। ज्ञानी! आपको खड़ा कर दिया जाये तो आपका क्षयोपशम नहीं है, अतः तुझे नहीं दिख रहा है। इसका तात्पर्य चक्रवर्ती को दिखाई देने वाले जिनबिम्ब में नास्तिपना नहीं है। उसका अस्तिपना ही है। ऐसे-ही मैं जो कह रहा हूँ, यदि इसमें प्रवेश किसी का नहीं हो रहा है, तो ये तनाव नहीं है कि लोग मेरी बात को नहीं मान रहे हैं, क्योंकि मेरी समझ में आ रहा है कि 'वस्तुस्वभावो धम्मो' की सिद्धि के लिए सारे धर्म हैं। वस्तुस्वभाव यदि भूल गये, तो सारे धर्म मात्र सम्प्रदायभूत, क्रियाभूत होंगे, लेकिन ज्ञानी! सिद्धों के कुल में प्रवेश नहीं कर सकोगे। इतनी मेहनत करना पड़ेगी सम्प्रदायातीत होकर बैठना पड़ेगा, अन्यथा नहीं समझ पाओगे। माँ! शुद्ध घी बनाती हो? कितना कचरा निकलता है? वह दूध में दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार शरीर दिख रहा है, इसमें आत्मा में कितना कचरा है? ध्यान की अग्नि पर रखो तो सारा कर्मों का कचरा निकल जाता है। जिस प्रकार घी में मरी (कचरा) रह जाती है, तो वह दुर्गन्ध देने लगता है, इसी प्रकार यदि राग की मरी आत्मा में किंचित् भी रह गई, तो विश्वास रखना, पुनः जगत् के कचरे में आना पड़ेगा।

धर्ममाचर यत्नेन, मा भवस्त्वं मृतोपमः।
सद्धर्मं चेतसां पुंसां जीवितं सफलं भवेत्॥ (61)

अभी तक जितनी चर्चा चल रही थी, 61वें श्लोक की भूमिका चल रही थी। हे ज्ञानी! तू धर्म का आचरण यत्नपूर्वक कर, क्यों? ज्ञान-दर्शनरूप निजधर्म की प्राप्ति के लिए। धर्म को छोड़ करके मरे हुए के समान मत बन जाना। जो धर्म को छोड़कर बैठ गया, वह मुर्दा हो गया। जो सद्धर्म में लीन है, उसी जीव का जीवन सफल है। धर्म से जो शून्य होकर जी रहा है, उसका जीवन तो मृतक के समान है। इसलिए भैया! भगवान् जिनेन्द्र की देशना का ध्यान रखो। अपने आन, बान, कुल की शान रखते हुए कम-से-कम व्यवहार धर्म का पालन निर्दोष करो। अपने शीलधर्म का नाश करके तुझे जन्म दिया है, बेटे। मेरे अन्तिम श्वास तक मुझे जिनदेव, जिनवाणी, निर्ग्रन्थ गुरु के दर्शन करवाना। देर मत करना।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"जीवित कौन है? मरा हुआ कौन है?"

मृता नैव मृतास्ते तु, ये नराः धर्मकारिणः।
जीवंतोऽपि मृतास्ते वै, ये नराः पापकारिणः॥ 62॥

अन्वयार्थ—ये = जो **नराः** = मानव **धर्मकारिणः** = धर्म का आचरण करने वाले हैं **ते तु मृताः** = वे यदि मर जावें **मृता न एव** = तो भी वे मरे नहीं हैं **वै** = परन्तु **ये नराः** = जो मानव **पापकारणिः** = पाप करने वाले हैं **ते** = वे **जीवन्तः अपि** = जीते हुए भी **मृताः** = मरे हुए हैं।

भावार्थ—जो मानव धर्माचरण करने वाले हैं, यदि वे मर भी जावें तो भी वे मरे नहीं हैं, परन्तु जो मानव पाप करने वाले हैं, वे जीते हुए भी मरे हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज "सार समुच्चय" जी में तत्त्वगवेषणा करते हुए समझा रहे हैं। हे मुमुक्षु! दस प्राणों से जीव होना, ये कोई महत्ता नहीं है। ग्यारहवें प्राण में दृष्टि को लगा देना महानता नहीं है, दीनता है। दस प्राण हैं। पाँच इन्द्रिय, श्वासोच्छवास, मन, वचन, काय, आयु। ये दस द्रव्यप्राण हैं। पर क्या करूँ, इस जीव को राग की तीव्रता में दस प्राणों की भी चिन्ता नहीं रहती। जो परिग्रह है, उसको आचार्यों ने ग्यारहवाँ प्राण कह दिया। हे माँ! गोदी के बेटे को सड़क पर भेजने में तुमको डर लगता है कि कहीं मेरे लाल को कुछ हो न जाये। हे माँ! तू मंदिर तक भेजने में भय करती है कि कुछ हो न जाय। लेकिन वही बेटा जब कमाने के लायक होता है, तो उसको विदेश भेजने में भी किंचित विकल्प नहीं आता। वहाँ लाल के मरने का डर कहाँ चला गया? ज्ञानी! ग्यारहवाँ प्राण है पैसा।

पैसे के पीछे व्यक्ति कहाँ-कहाँ नहीं जाता है? श्री और स्त्री ने सारे विश्व को झकझोर रखा है। हे शरीर,हे स्त्री! तेरी महिमा कितनी निराली है ? कोटि-कोटि जीव युद्धों में नष्ट हो गये। हे सीता! आपने अग्निपरीक्षा के उपरांत दीक्षा ली। लंका में क्यों बैठी रहीं? यदि लंका में ही दीक्षा ले लेती, तो दोनों पक्षों में इतना घमासान युद्ध क्यों होता? जानकी! आप जान रही थीं कि जो कुछ हो रहा है, उसमें निमित्त आपका है, परन्तु ज्ञानियो! जब तक प्रज्ञा पवित्र नहीं होती है, पुण्य साथ नहीं देता है, तो जगत् में किसी की निर्मल बुद्धि चलती नहीं है। णमोकार पढ़ते-पढ़ते पाप करते हैं लोग। पाप करने के लिये मंगलाचरण करते हैं लोग। बेटे की शादी के पहले विधान करता है, शादी के समय मंगलाचरण करता है। ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिए कि एक बार के अब्रह्म सेवन में नौ कोटि जीवों की हिंसा होती है। आप पाप करने के लिए भी मंगलाचरण करते हो। रावण भी बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने के लिए बैठा हुआ है। मंदोदरी ने पूरे राज्य को संभाला, जब रावण ध्यान में बैठ गया। ज्ञानी! अगरबत्ती की लकड़ी में अंश मात्र भी मसाला रहेगा, तब तक सुगंध आयेगी-ही-आयेगी।

ज्ञानी! जब तक पुण्य का अंश मात्र भी रहेगा, तब तक तेरा साथ देने के लिए दुनियाँ रहेगी, तू कितना ही पाप कर ले। रावण जब बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने बैठा, तो श्रीराम के दल के सैनिकों ने सोचा कि यदि यह विद्या सिद्ध हो गई, तो रावण को जीतना और मुश्किल हो जायेगा। ज्ञानियो! जो तत्त्वज्ञ पुरुष होते हैं, वे 'पिष्टमांस-भक्षी' नहीं होते। वे शत्रु के ध्यान में भी विघ्न उपस्थित नहीं करते। उपद्रव करते हैं छोटे लोग। ज्ञानियो! जीवन में सिंह बनकर जीना। सामने से वार करना, पीछे से नहीं। आचारांग का प्रधान ग्रंथ है मूलाचार। मूलाचार जी से बड़ा, श्रमणचर्या का कथन करने वाला, अन्य कोई ग्रंथ नहीं है। वर्तमान के योगियों को उसका ध्यान रखना चाहिए। जब भी अनुशासन चलता है, वह अनुशासित लोगों पर ही चलता है।

अनुशासनहीनों पर किसी का अनुशासन नहीं चलता। साधुपुरुष ही अनुशासित हैं। मर्यादापुरुषोत्तम राम के यहाँ ऐसे भी सैनिक थे जो रावण की आराधना में विघ्न करने पहुँच गये, पर लंकेश इतना लीन रहा कि कोई भी उसके ध्यान को भंग नहीं कर सका। हे लंकेश! जैसा ध्यान तू विद्या की सिद्धि के लिये कर रहा था, ऐसा ध्यान तू आत्मा की

सिद्धि के लिए करता, तो तुझे सीता का रूप न दिखता, तुझे भगवान् का स्वरूप दिखता। लंकेश की दृढ़ता देखो। उसे कोई हिला नहीं सका। पर गहरी बात समझना। जगत् में जब भी किसी सिद्धि की सिद्धि होगी, तो संयम से ही होगी, असंयम से नहीं। चंचल चित्त और चलायमान आँखें कभी सिद्धि प्राप्त नहीं कर पायेंगी। तुझे कर्म-शत्रु पर विजय प्राप्त करना है तो, ज्ञानी! तेरे पास दो नेत्र हैं। एक भोग का नेत्र, दूसरा योग का नेत्र। तुझे भोग का नेत्र बंद करना पड़ेगा और योग का नेत्र खोलना पड़ेगा, तब कर्मशत्रु पर विजय प्राप्त कर सकेगा। भोगों से आँख बंद करो, योग की आँख खोलो।

मणिभद्र जैसे यक्ष राम के पास उलाहना देने पहुँच गये। विवेक रखोगे तो वीरता काम आयेगी, विवेक नहीं रखोगे तो वीरता नष्ट हो जायेगी। लक्ष्मण धीरे से कहते हैं- हे यक्षेन्द्र! आपको मालूम होना चाहिए कि रावण तो वैसे ही शक्तिमान है। यदि बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर लेता है, तो युद्ध किससे होगा? मैं रावण के ध्यान में विघ्न नहीं कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ आप साम्य युद्ध क्यों नहीं होने देते हो? ज्ञानी! नीति सीखना। जीवन में हर समय वीरता नहीं दिखाई जाती। विवेक रखोगे तो वीरता काम आयेगी। जितनी ताकत बाटी बनाने में लगती है, उतनी पूड़ी बनाने में नहीं लगती। जितनी शक्ति हो, उतना विवेक भी होना चाहिए, नहीं-तो उस शक्ति का उपयोग कैसे करेगा? लक्ष्मण चाहते तो उतावले होकर मणिभद्र यक्ष से कुछ भी बोल सकते थे। रावण जो राम की पत्नी को रखे हुए है, उसका पक्ष ले रहे हो। यक्ष को समझ में आया, बोला, बात सत्य है, पर करूँ क्या? बंध अधिकार की दृष्टि से बात करो तो न यक्ष पक्ष ले रहा था, न कोई सेना पक्ष ले रही थी। पुण्य का खजाना/कोष रावण के पास था। यही कारण था कि यक्ष आकरके रावण का पक्ष ले रहा है। मुमुक्षु! न तन की रक्षा करना, न धन की रक्षा करना। कर सको तो भावों की, भगवान् की और पुण्य की रक्षा करना, तो सबकी रक्षा अपने आप हो जायेगी। आपने अपने अंदर धर्म की रक्षा कर ली, तो तन, धन, सबकी रक्षा हो जायेगी। सीता ने अपने धर्म की रक्षा की थी, इसलिए अग्नि ने भी उसके तन की रक्षा की, वह पानी हो गया। 'वस्तु स्वभावो धम्मो' उस धर्म की रक्षा करो।

यदि तेरे ज्ञान में पर-प्रमेय आया है, तो तेरा ज्ञान विक्षिप्त हुआ है। हे मुमुक्षु! तू किसी पर भी कषाय कर ,पर भगवती जिनवाणी कह रही है कि चंदन की लकड़ी में आग लगाने पर सुगंध अवश्य आयेगी, लेकिन जलने पर राख ही होगी। ऐसे-ही यदि आप धर्म के नाम पर भी कषाय-भाव लाते हो, तो राख तेरे शुभ उपयोग की नियत होगी। इसलिए मुमुक्षु! झुलसना नहीं है, जलना नहीं है। पर की परिणति के परिणमन में मैं (हम) निमित्त भी नहीं हूँ। लिख लेना डायरी में। पर की परिणति से तुम्हारे भाव नहीं बदलते। पर की परिणति में मैं निमित्त बनता नहीं।

दर्पण में जब चेहरा देखते हो तो एवंभूत नय से वह चर्मकार कहलायेगा चर्मकार। धिक्कार हो आपको। जीव यह सोचता है कि पर के निमित्त से परिणमन हो रहा है, पर ध्रुव सत्ता को समझिए। बहिरंग दृष्टि से अवश्य कह दीजिये कि पर-निमित्त प्रभावित कर रहा है, पर सत्यता यह नहीं है। हे ज्ञानी! यदि कोई तुमको सताना चाहता है, तुम विचार करोगे, तो ही तुम्हें कष्ट होगा। तुम विचार ही नहीं करोगे तो वह स्वयं का ही बिगाड़ कर पायेगा, तेरा बिगाड़ नहीं कर पायेगा। क्योंकि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यन्ताभाव है। इतनी-सी बात समझने के लिए तीर्थंकर-जैसी आत्मा को भी दस-दस भव लग गये। जब तक कषाय मंद है, भद्र परिणाम हैं, तब तक सब समझ में आता है। जब भी कषाय तीव्र होती है, तो पता नहीं चलता कि कहाँ गया समयसार, कहाँ गया मूलाचार। लेकिन फिर भी तत्त्व यही कहेगा, कि परिणमन तेरा तेरे में ही हुआ है। यदि आत्मशांति चाहिए, तब तो ऐसा ही सोचना पड़ेगा।

" रयणत्तयं धम्मो, दसविध धम्मो, धम्मो दया विशुद्धो।"

इन सभी धर्मों की व्याख्या के बाद कोई धर्म आता है वह है, 'वस्तुस्वभावो धम्मो।' 'वस्तु स्वभावो धम्मो' निर्विकार, निर्विकल्प,स्वतंत्र है, पर-संयोग से रहित है। शब्दावली समझ में न आये तो विकल्प नहीं करना।

जब भी समझ में समझ आयेगी, विश्वास रखो, आपके समझाने से मुझे कभी समझ में नहीं आयेगी। जब भी मेरी समझ में आयेगा, तब स्वयं की समझ काम करेगी, तभी तेरी समझ मेरी समझ में आयेगी। मर्यादापुरुषोत्तम क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव राम

लक्ष्मण के मृत शरीर को लेकर घूमते रहे। उनको समझ में क्यों नहीं आया? जब कषाय के छः माह पूरे हो गये, तो उनकी समझ में आ गया। हे कर्म! जब तेरा आवरण घणा होता है, तो जगत् में कुछ भी समझ में नहीं आता है।

मित्रो! जब भी जीवन में कोई निर्णय करने बैठो, तो पहले कषाय को ठण्डा कर लेना। भद्र परिणाम। 'षट्खण्डागम' में आता है कि अनादि मिथ्यादृष्टि जीव जब सम्यक्त्व के सम्मुख होता है, तो वह मिथ्यात्व के तीन टुकड़े करता है, फिर वह जीव विशुद्ध होता है। बहुत विशुद्धि को प्राप्त होता है। जिस प्रकार तनाव से गैस बनती है, वैसे ही ध्यान से भी गैस बनती है। क्यों? व्यक्ति को जब तनाव होता है, तो पाचनशक्ति मंद पड़ जाती है। जब ध्यान में लीन हो जाता है जीव, तो उसकी पाचनशक्ति मंद हो जाती है, क्षुधा कम हो जाती है, इसलिए ध्यानी का भोजन कम हो जाता है। ध्यान को प्रधानता दी है जैनधर्म में। योगियों को पैदल विहार का आदेश दिया है। क्या रहस्य है? भोजन, विहार, निहार सभी की सीमा बना दी है।

ज्ञानी! मूलाचार से हटकर काम करोगे, तो ही विकार आयेंगे और मूल-आगम के अनुसार चर्या करोगे तो न देह के विकार सतायेंगे, न भावों के विकार सतायेंगे। जब देह व भावों के विकार बंद हो जायेंगे, तो भव का विकार भी बंद हो जायेगा।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जीवित वही है, जो स्वधर्म के साथ जी रहा है। जो स्वधर्म खो देता है, वह जीते-जी मर चुका है। अभी तक आप लोक में सुनते थे, अब आगम में सुनो। वह जीव मरने के बाद भी जीवित रहता है जो स्वधर्म में जीता है। रावण के भावप्राणों का घात तो उसी दिन हो चुका था जिस दिन उसने सीता के रूप को देखा था। भगवान् ऋषभदेव जयवंत हों। आज भी वे जी रहे हैं। जीवन जीना है तो यश के साथ जियो।

अपने भी तुझे तभी तक प्रिय कहेंगे, जब तक तू निर्दोष जीवन जी रहा है। राजा का साथ भी प्रजा तभी तक देती है जब तक राजा निर्दोष है। भीतर का साथ तभी तक साथ देता है जब तक साथी का भाव निर्दोष होता है। अग्नि व पानी का संयोग कैसे हो सकता है? ऐसे-ही ज्ञानियो! सत्पुरुष का संयोग असत्पुरुष के साथ होता नहीं है। दुर्जनों से

अपनी आत्मा की रक्षा करो। वे अपनी दुर्जनता में झूमेंगे तो सज्जनता रूपी केले के पत्ते फट जायेंगे।

मृता नैव मृतास्ते तु, ये नराः धर्मकारिणः।
जीवंतोऽपि मृतास्ते वै, ये नराः पापकारिणः॥ (62)

ज्ञानियो! मरने के बाद भी वे लोग मरे नहीं होते, जो धर्म से युक्त हैं। दीवान अमर चंद माँसाहारी सिंह को जलेबियाँ खिलाने वाला महान् श्रावक हुआ है। आज हमें इस बात पर गौरव आना चाहिए कि मैं उस कुल में जन्मा हूँ, जिस कुल के श्रावक ने सिंह को दूध-जलेबी खिलाई थी। क्रूरता को बदल कर साम्यता खड़ी कर दी थी। वह व्यक्ति आज जीवित है कि नहीं? जो धर्म से युक्त होता है, वह मरने के बाद भी जीवित होता है। वह जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान हैं, जिनका लोक में अपयश फैल रहा है, बदनाम हो रहे हैं। भैया! भूखे सो जाना, खाने को न मिले तो णमोकार पढ़ कर सल्लेखना कर लेना, लेकिन हे मुमुक्षु! कलंकित जीवन कभी मत जीना। जो पाप करने वाले मनुष्य होते हैं, वे जीवित होते भी मरे हुए के समान हैं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परम सुख का कारण"

धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातङ्क विनाशनम्।
यस्मिन् पीते परंसौख्यं जीवानां जायते सदा॥ 63॥

अन्वयार्थ—दुःखातङ्क विनाशनम् = दुःखरूपी रोगों के नाश करने वाले **धर्मामृतं**= धर्मरूपी अमृत को, **सदापेयं** = सदा पीना चाहिए **यस्मिन्** = जिसके **पीते** = पीने से **जीवानां** = जीवों को **सदा** = सदा **परंसौख्यं** = उत्तम सुख **जायते** = होता है।

भावार्थ—दुःखरूपी रोगों के विनाश करने वाले धर्मामृत का सदा पान करना चाहिए, क्योंकि धर्मामृत का पान करने पर जीवों को अविनाशी सुख की प्राप्ति होती है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज "सारसमुच्चय"जी में सद्धर्म की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं, अहो ज्ञानी! वे जीव ही जीवित हैं, जो धर्ममय जीवन जी रहे हैं। वे जीवन में जीवित हैं, जो चारित्रमय जीवन जी रहे हैं। वे जीवित होते हुए भी मृतक-तुल्य हैं, जिनके अन्तरंग से चारित्र नष्ट हो चुका है उस गेहूँ के समान, जिस दाने के भीतर कीड़ा बैठा हुआ है। उस कीड़े ने गेहूँ के दाने को अंदर से नष्ट कर दिया है, पर छिलके में चमक अभी दिखाई दे रही है।

विषय-कषायों ने अंतरंग धर्म नष्ट कर दिया है, मात्र बाहर की प्रवृत्ति शेष हैं। जो घुणे गेहूँ के दाने के छिलके के समान चमक रहीं है। यह देह की चमक है, परिणामों से धर्मशून्य हो चुका है। क्या आवश्यकता थी ऐसे रहस्य को कहने की? यह अंतरंग में आचार्यभगवन्त की करुणा है कि जगत के प्राणी परम सत्य को समझने का प्रयास तो करें। वे जीव मरने के बाद भी मरे नहीं हैं, जो धर्म के साथ जिये थे। मुमुक्षुओ! आयु

का क्षय यानि मरण जो है, उसका होना तो बहुत दूर की बात है। चाहे अल्प वय में हो, चाहे दीर्घ वय में हो, तत्त्वज्ञ समझता है कि इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने अल्पवय को प्राप्त किया, पर अल्प वय में भी ऐसे कार्य करके गये हैं, सदियों बाद भी उन्हें याद किया जा रहा है। आचार्य सकलकीर्ति महाराज इसी राजस्थान की भूमि में जन्मे थे। अल्प वय में जिन्होंने संस्कृत साहित्य का प्रचुर सृजन किया। उत्तर भारत में श्रमणपरम्परा को गौरवान्वित करने वाले मात्र सकलकीर्ति महाराज हैं। कुंदकुंद स्वामी, समन्तभद्र, अकलंक स्वामी, पूज्य पादस्वामी आदि आचार्यभगवन्तों ने दक्षिण भारत की भूमि को निर्मल किया था। यह नियोग है कि भगवान् की देशना उत्तर भारत में खिरी है और देशना को सृजित करने का सौभाग्य दक्षिण भारत को मिला। सकलकीर्ति जी महाराज ने उस परम्परा को राजस्थान में भी जीवित रखा। संस्कृत वाङ्मय में जो कोष भरा है, वह आचार्य सकलकीर्ति जी महाराज ने भरा है।

"ज्ञानी! दो के ही नाम चलते हैं। साहित्य का सृजन किया हो या संयम की साधना की हो। जिसके अन्तरंग में साहित्य-सृजन की प्रज्ञा न हो, न संयम-साधना का क्षयोपशम हो, उस व्यक्ति के लिए कहीं स्थान नहीं है। दो बातों का जीवन में ध्यान रखना। ज्ञान-आराधना, संयम-साधना। दोनों से जो शून्य है, वह इस पृथ्वी पर भारभूत है। श्रद्धान में न्यूनता हो, ज्ञान-शून्यता हो और चारित्रहीनता हो, ऐसा पुरुष धरा पर भारभूत है। जिसमें ये तीन दुर्गण हैं, वह तीनलोक में भ्रमण ही कर पायेगा, तीनलोक का स्वामी बनकर नहीं बैठ पायेगा।" जो अन्तरंग में विशुद्धि है, आनंद है, वह श्रद्धागुण का आनंद है। आत्मा में कितने ही गुण प्रकट हो; पर मुमुक्षुओ! ध्यान रखना, इन सब गुणों की सार्थकता तभी है, जब श्रद्धा गुण प्रकट हों। यदि श्रद्धा गुण का अभाव है, तो एक भी गुण संभव नहीं है। जैसे सोलह भावनायें तीर्थंकरप्रकृति के बंध में कारण हैं, उन सोलह भावनाओं में से यदि कोई चाहे कि मैं अंतिम भावना का पालन करूँ, ज्ञानी! विश्वास रखना, जिसकी दर्शनविशुद्धि भावना है, उसकी सभी भावनायें संभव हैं। जिसके पास दर्शनविशुद्धि ही नहीं है, उसके पास कोई भावना नहीं है।

दंसण मूलो धम्मो।

धर्म का मूल दर्शन है। वही धर्म है। दर्शनविहीनता अंतरंग में झाँक चुकी है तो ज्ञानी! विश्वास रखना, तीनलोग में कहीं भी आनंद नहीं है। जीवन कैसा हो? मरते-मरते मर गये, जीते-जीते भी मर गये। एक क्षण मात्र को भी पंचपरमेष्ठी से प्रीति हटी है तो विश्वास रखना, हम जीते-जीते भी मर चुके हैं। श्वास प्रमाण काल भी परमेष्ठी से भिन्न भाव आ रहा है, तो समझ लेना कि मेरा द्रव्यप्राण तो है, पर धर्मप्राण नष्ट हो चुका है। जितने अरबपति-खरबपति लोग आत्मघात कर रहे हैं, उस आत्मघात का कारण क्या है? आत्मघात का भाव रखने वाले से ज्यादा पुण्यहीन पापीजीव जगत में अन्य कोई नहीं है। जरा-से कष्ट में, पीड़ा में मरने के भाव करेगा, तो कर्म की फाँसी उसे लग चुकी है। जब कोई दूसरे को मारने के परिणाम करता है, तब कषाय की तीव्रता होती है। जीव जब स्वयं को मारने के भाव करता है, तो कषाय की अति तीव्रता होती है। बिना कषाय के कोई किसी को मारने के भाव नहीं करता। पर को तब मारा जाता है, जब अपनी रक्षा का भाव होता है, या अपनों की रक्षा का भाव आता है। निमित्तों के आने पर भी नैमित्तक प्रभावित न हो, यही तो उपादान की निर्मलता है। निमित्त न मिले और नैमित्तक शान्त बैठा हो, इसमें क्या विशेषता है? मुमुक्षु! गर्मी के दिनों में जब सूर्य तपता है और आप महाराज का पड़गाहन करके घर ले जाते हैं, तो आपकी चाल देखने लायक होती है। तब ज्ञानी कहता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, फिर नाच क्यों रहा है? ऐसे निमित्तों के आने पर तन सहन न कर पाये तो विकल्प मत करना, पर मन में भाव करना। तन गर्मी से भले ही व्याकुल हो रहा हो, पर मन आनन्दित न होता होता तो क्यों कड़काती धूप में बाहर खड़ा होता? यही निर्ग्रन्थों की अरिहंतों की मुद्रा पर आस्था बोल रही है कि पैर जल सकते हैं, पर परमेष्ठी को नहीं छोड़ सकता।

ज्ञानी! धर्म को अनुभव करके समझो। माँ ने घर में तेरी मनपसंद सामग्री बनाने की तैयारी शुरू की है। माँ ने कहा-बेटे! तुझे खाने को तो मिलेगी, पर पहले महाराज के आहार होंगे। आज आहार देने की शैली कुछ और ही होगी। अभी सुबह के 7 बजे हैं, मिलनेवाला तुझे 11 बजे है। हे ज्ञानी! अभी से परिणामों में मुख मीठा होने लगा है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव अपने निर्वाण लड्डू को संसार के चतुर्थ गुणस्थान की पर्याय

में ही, निहार लेता है और ऐसे जीव का उन लड्डुओं का आनंद लेते-लेते जीवन छूट भी जाये तो श्रद्धा के प्राण नष्ट नहीं होते। अगली पर्याय में जीकर भी आनंद लूटता है। वे जीव पापी हैं, जो श्रद्धाविहीन हैं। मुमुक्षु मानता है कि तपस्या करने के लिए शरीर सुखाना पड़ता है, पर हे श्रावको! धर्म पर श्रद्धा करने के लिए न शरीर सुखाना पड़ता है, न घर छोड़ना पड़ता है। तेरा मोक्ष/धर्म घर में ही प्रारंभ हो जाता है। श्रद्धा का नाश मत करना। इस खोटे काल में उत्कृष्ट कोई सामग्री है तो वह है -दृढ़ श्रद्धा।

भोगों का आनंद तो विनाशभूत है। चौबीस घण्टे का आनंद धर्म के प्रसाद में ही होता है। तुम सिनेमा हाल में फिल्म देखकर आते हो तो कुछ क्षण ही आनंदित रह पाते हो, लेकिन जिस दिन पड़गाहन करके मुनिराज को आहार दे देते हो तो दिनभर गद्गद भाव रहता है। उस खुशी को स्वयं अनुभव कर सकता है, दूसरा नहीं। जैसे माँ बेटे की किलकारी सुनकर प्रसन्न होती है, प्रसव की पीड़ा को भूल जाती है, वैसे-ही निर्ग्रन्थ के हाथ पर ग्रास रखने पर श्रावक प्रसन्न होता है, पर नाना पुरुषों में रमण करने वाली बाँझ/गणिका बेटे की किलकारी का आनंद नहीं ले पायेगी। वह वासना में लिप्त होकरके अपनी पर्याय का नाश कर लेगी। ऐसे-ही मुमुक्षुओ! नाना रागियों को, भोजन कराने में लिप्त व्यक्ति को दिगम्बर मुनि को भोजन कराने की अनुभूति तीनकाल में नहीं आयेगी।

जिसके मुनि या आर्यिका बनने के भाव हों, उसे पिच्छि लेने से पहले चौके लगा कर, मुनियों और आर्यिकाओं को आहार करा कर भाग्यवान बनना चाहिए। अज्ञानी को चौका लगाना जड़क्रिया दिखती है और ज्ञानी को चैतन्य की धारा दिखती है। योग भोजन तैयार कर रहा है, उपयोग योगी को निहार रहा है। योग चूल्हा जला रहा है, उपयोग कर्म के ईधन को जला रहा है। यदि क्रियायें मात्र क्रियायें होती, तो तीर्थंकर की देशना भी क्यों खिरती?

"दाणं पूया मुक्खं, सावय-धम्मे ण सावया विणा"

ज्ञानी! दान देना, पूजा करना श्रावक का मुख्य धर्म है। यह अरिहंत की देशना में खिरा है। जो पुरुष जीवन में कभी पंचपरमेष्ठी के चरण में न आया हो, वह भूल से मित्र के साथ भी आ जाता है, तो विश्वास रखना, यदि एक बार उसने अच्छे से निहार लिया है, तो बार-बार उसका मन कहेगा कि मुझे बार-बार चलना चाहिए। जैसे दरिद्री पुरुष को अचानक मुहरों का घड़ा मिल जाये, तो वह छिपाकर रखता है, लेकिन चेहरा

मुस्कुराता है। यह मुस्कुराहट किसकी है? तिजोरी में रखी हुई मोहरों की। रत्नत्रय धारी की अनुभूति श्रावक के चेहरे को प्रसन्न करा सकती है, तो फिर रत्नत्रयधारी का स्वयं का चेहरा कितना गद्गद होना चाहिए।

धर्म को समझो। जीवन में कभी मत मरना। अनंत भवों में भी मत मरना। ज्ञानियो! मरे वे हैं, जो धर्म से शून्य हैं। जो धर्म के साथ हैं, वे कितने ही भव धारण कर लें, पर अमर ही रहेंगे। कभी नहीं मरना, ऐसा पुरुषार्थ करो। जो मरने के भाव रखता है, उससे बढ़कर कोई पापी नहीं। पर को इसलिए मारता है कि मेरी मृत्यु न हो जाय, अथवा अपनों के राग में पर को मारता है तो कहीं-न-कहीं किसी के प्रति रक्षा का भाव है। **"जो जीव आत्मघात करने के परिणाम रख रहा है, वह तीव्र कषाय-भाव रख रहा है, इसलिए महापापी है। कोई यह सोचे कि मैं पर को नहीं मार रहा हूँ, अरे अभागे! पर के मारने में पाप नहीं पड़ता, पर के मारने में जो अध्यवसाय भाव है, तेरी कषाय की तीव्रता चल रही है, उससे पाप का बंध हो रहा है।"** यदि अध्यवसाय भाव न हो, तो बंध कैसा? यदि किसी के निमित्त से कोई मर जाय, तो उसे तो शासन भी फाँसी नहीं देता।

ज्ञानी! वध करने के परिणाम तुम्हारे हैं, तो नियम से बंध होगा। वध करने के परिणाम जिसके नहीं हैं, यदि उसके निमित्त से किसी जीव का घात भी हो गया है, तो वह बंध को प्राप्त नहीं होगा। जो जीव आत्मघात करने के भाव रख रहा है, वह महापापी है। **"हिंसा का तात्पर्य है परिणामों की कलुषता। यदि तू अपने आप का भी घात अपने परिणामों की कलुषता से कर रहा है, तो तू हिंसक ही है, नरकगामी ही है। हे मित्र! इस भ्रम में मत रहना कि मात्र दूसरे को मारने पर हिंसा होती है, स्वयं की हत्या करने पर हिंसा नहीं होती।"**

अहो पापियो! ध्यान रखो, यदि स्वयं के वध करने के परिणाम हो रहे हैं, पर को बदनाम करने के परिणाम हो रहे हैं, तुम दोनों घोर पापी नरकगामी जीव हो। न मैं किसी का वध करूँगा, न मैं स्वयं का वध करूँगा, न किसी को बदनाम करूँगा। सच्चा धर्मात्मा वही है, मरने के बाद भी जीता है। जो किसी का वध नहीं करता, वही मरने के बाद भी जीवित रहता है। आज ही कायोत्सर्ग कर लो, कि जीवन में कितने ही कष्ट आ जायें, तब भी कभी आत्मघात करने के परिणाम नहीं करेंगे। देव-शास्त्र-गुरु के

सानिध्य में कायोत्सर्ग कर रहे हो, जीवन की अंतिम श्वास तक प्रतिज्ञा का पालन करना।

धन्य हो सीता को। इतने कष्ट सहने के बाद भी उसने आत्मघात का विचार नहीं किया। क्या प्राणघात करके कर्म का अभाव कर पाओगे? जो कर्मबंध है, वह तो अगली पर्याय में भोगना पड़ेगा। वे अज्ञानी लोग हैं जो शीघ्र मरण चाहते हैं। वे सोचते हैं कि इस पर्याय में बहुत कष्ट हैं, यहाँ से निकल चलो। अरे! तुझे मालूम होना चाहिए कि अपघात करके बीच में ही तूने आयुकर्म का नाश कर लिया, तो कर्म का बंध जो रखा हुआ था, वह अगली पर्याय में पुनः उदय में आयेगा, तब क्या करोगे? अच्छा होता कि जब विवेक काम कर रहा था, मेरे भाव अच्छे थे, मेरा पुरुषार्थ काम कर रहा था, ज्ञान काम कर रहा था, ऐसे काल में संकट के क्षण आ जायें तो धैर्य के साथ सहन तो कर लेंगे और यदि विवेकहीनता में आये, तो हम सहन नहीं कर पायेंगे। मुमुक्षु! आज ही श्री जी के चरणों में निवेदन करना कि हे नाथ! यदि मेरे बुरे कर्म का उदय भी आने की संभावना हो, तो ऐसे समय में आ जाये जब मेरी बुद्धि और मेरा शरीर अच्छा साथ दे रहा हो, तो मैं उसे धैर्य से सहन कर सकूँ। ऐसे समय में मत आना जब मैं हाय-हाय करूँ। भैया! आपको विश्वास होना चाहिए, यदि विषाद के दिनों को भी शांति से सहन करोगे, तो उन दिनों को ही विषाद आ जायेगा और तेरा साता का उदय आ जायेगा। असाता को साता में संक्रमित किया जा सकता है

'बंधेऽधिको परिणामिकौ च'॥ त.सू.॥

ज्ञानी! तेरे घर में बहुत सारा गुड़ रखा है। यदि पानी गिरने लग जाये, गुड़ पिघलने लग जाये और आँधी चलने लग जाये, उसमें रेती/बालू गिर जाये, तो बताओ, बालू मीठी होगी कि नहीं? और यदि बोरी भर बालू उसमें पटक दी जाये, तो क्या होगा? अब तो गुड़ बालू का ही स्वाद दे पायेगा, क्योंकि गुड़ के शक्त्यांश कम थे। ऐसे-ही जब जीव ने तीव्र पाप किया, तीव्र कषाय की, ज्ञानी! एक अन्तर्मुहूर्त के बाद भी कर्म उदय में आता है। कम-से-कम अबाधा काल चाहिए, अन्तर्मुहूर्त चाहिए। ज्ञानी! सुन, तुझे एक श्लोक याद है, तू मात्र एक घण्टा गुस्सा कर ले, तुरन्त आपसे कोई कहे कि श्लोक सुनाइये, तो आप नहीं सुना पायेंगे, क्योंकि तेरे क्षयोपशम पर प्रभाव पड़ा है। ऐसे-ही दस दिन गुस्सा कर लेना तो तेरे दस क्या, तेरे पचासों श्लोक समाप्त हो जायेंगे। कषाय

से विद्या नष्ट हो जाती है। कारण ? पापांश बढ़ चुके हैं। शक्त्यांश तेरे विशुद्धि के थे, वे नष्ट हो चुके हैं, इसलिए क्षयोपशम तेरा नष्ट हो गया। क्या कारण है कि वृद्ध अवस्था में लगता है कि ज्ञान कम हो गया। संसार की बातें बहुत याद रहती हैं। तेरे पास गिलास है, उसमें चाहे दूध भर देना, चाहे मट्ठा भर देना। तूने मट्ठा भर कर रखा है, दूध रखा ही कहाँ है? ज्ञानी! तूने पाप की प्रकृतियाँ भर रखी हैं, खोलेगा तो वही मिलेगी। इसलिए यदि साता चाहिए, तो तपस्या करके असाता को साता में बदला जा सकता है। अशुभ कर्म की प्रकृतियों का क्षय करना पड़ेगा, शुभ प्रकृतियों का संचय करना पड़ेगा, तब वह उदय में पुण्यरूप में फलित होगा।

ज्ञानी! ठण्डे दिमाग से बैठकर देखो तो अपना किया हुआ पुण्य-पाप स्वयं को महसूस होता है। अशुभ करते ही स्वयं का चेहरा उदास होता है। वर्तमान तो दु:खी हो चुका है, तो भविष्य सुखी कैसे होगा? हे ज्ञानी! जब गलत सोचता है, तो नींद आती है क्या तुझे? गलत सोचने में भी नींद नहीं आती और तत्त्व के चिन्तन में भी नींद नहीं आती। अंतर इतना है, कि अशुभ सोचकर जागेगा तो पागल हो जायेगा और शुभ सोचकर जागता रहेगा तो परमात्मा हो जायेगा। धन्य हैं आचार्य विमलसागर जी महाराज, जो रात्रि में मात्र दो घण्टे विश्राम करते थे। गुणियों के गुणगान करने में जिनकी जुबान थकती है, उनसे बड़ा दरिद्री जगत् में कोई नहीं है। पौष की कड़कती सर्दी में योगी बाहर बैठा हो और शरीर से पसीना टपक रहा हो, क्या था वह? जिसने देखा बार-बार पूछने पर बताया- मैं अग्नि धारणा का ध्यान कर रहा था। बीजाक्षरों में विशुद्धि है। **"जहाँ यंत्र काम नहीं करते, वहाँ मंत्र काम करते हैं। एक-एक वर्ण मंत्र है। इसका जैसा प्रयोग करो, वैसी परिणति जीव की होती है। शब्द के माध्यम से आपको हँसाया जा सकता है, आपको रुलाया जा सकता है, स्तंभित किया जा सकता है, वशीकरण किया जा सकता है। शब्द के माध्यम से चट्टान को तोड़ा जा सकता है और टूटी चट्टान को जोड़ा जा सकता है। जब भी हृदय जुड़ेंगे, तो मधुर शब्दों की स्निग्धता से ही जुड़ेंगे। हृदय टूटते हैं, तो कटु शब्दों की रूक्षता से टूटते हैं। 'अंधों के अंधे ही होते हैं,' हे द्रौपदी! तेरे इन शब्दों ने महाभारत खड़ा कर दिया।"** मेरे मित्रो! इतना ध्यान रखना, शब्दों को बड़े सम्हालकर

बोलना। पाषाण की प्रतिमा को भगवान् बनाने की सामर्थ्य भी शब्दों में है। शब्द हैं पुद्गल की पर्याय, परन्तु यदि महत्व न होता तो आचार्य अमृतचंद्र स्वामी 'शब्दब्रह्म' न कहते। शब्दब्रह्म आत्मब्रह्म को प्रकट कराने की सामर्थ्य रखता है, इसलिए आप द्रव्यश्रुत की वन्दना करते हो। वह भावश्रुत को उद्घाटित करता है। उपदेश की शैली टूटती श्रद्धा को जोड़ सकती है और जुड़ी श्रद्धा को टूक-टूक भी कर सकती है। वट्टकेर स्वामी की भाषा में पुनः कह लें—

जेण तच्चं विवुज्झेज्ज, जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज, तं णाणं जिणसासणे॥ मू.॥

जिनेन्द्र के शासन में वही ज्ञान 'ज्ञान' है, जिससे तत्त्व का बोध होता हो, चित्त का निरोध होता हो, आत्मा विशुद्ध होती हो। इसलिए ऐसे शब्दों का प्रयोग करना गद्दी पर बैठकर, जिससे जीवों की श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र वृद्धिमान हो। जिसका संसार अल्प है, उसके श्रीमुख से ऐसी वाणी निकलेगी जैसे तीर्थंकर जिनेन्द्र की देशना खिर रही हो। भवावली को कहने वाली आपकी भावावली है, भावावली को कहने वाली आपकी भाषावली है। भाषा से भावों का और भावों से भव का बोध होता है। जो अपनी भाषा को अमृतभूत बोलता है, वह मरने के बाद भी जीवित रहता है।

वे जीव मरने के बाद भी नहीं मरते, जो धर्म से युक्त हैं। वे जीव जीवित होने पर भी मर चुके होते हैं, जो धर्म से रिक्त हैं।

धर्मामृतं सदा पेयं, दुःखातङ्क विनाशनम्।
यस्मिन् पीते परं सौख्यं, जीवानां जायते सदा॥ (63)

हे मुमुक्षुओ! हे आत्महितैषियो! अहो हंस-आत्माओ! धर्मामृत का पान सदा करो, जो दुःख और आतंक का नाश करने वाला है। धर्मामृत का पान करने से परमसुख प्राप्त होता है। जीवों को अविनाशी सुख प्रदान करने वाले धर्मामृत का पान सदा करना चाहिये। एक क्षण भी ऐसा मत छोड़ना जब धर्म साथ न हो। हमेशा अंतरंग में धर्म लेकर चलना। अशुभ मत सोचना, क्योंकि किसी का अशुभ तो नहीं कर पाओगे, अध्यवसाय भाव ही कर पाओगे, पर नाश किसी का नहीं कर पाओगे। यही परम शुद्ध द्रव्यदृष्टि

है। जिसको अपने कुल का ध्यान होता है, वह अपने द्रव्यसंयम से दूर नहीं होता। भाव-धर्म भले ही गड़बड़ हो जाये, पर द्रव्य-धर्म तो निभायेगा-ही-निभायेगा। मन न लगे, तब भी मंदिर जरूर जाते रहना। मंदिर जाते रहोगे तो कम-से-कम द्रव्य-धर्म जयवन्त रहेगा और यदि भीतर से भाव तुम्हारा एक क्षण को भी लग गया, तो भव-धर्म भी हो जायेगा।

अमरावती में मैंने देखा, अस्सी-पिच्यासी साल के एक दादा एक छोटे-से बच्चे को लेकर आदिनाथ स्वामी के चरणों में आते हैं और कहते हैं, देख-देख, बेटा! आँख खोल। जब तक आँख खुली रहे, तब तक इनको देखते रहना और जब आँख बंद होने लग जाये, तो निज को देखना और निज न दिखे तो इनको ही फिर देख लेना। ऐसे ही आपभी अपने बच्चों को शिक्षा देना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धर्म सुखकारी व तारक है"

सः धर्मो यो दयायुक्तः, सर्वप्राणिहितप्रदः।
सः एवोत्तारणे शक्तो भवाम्भोधौ सुदुस्तरे॥ 64॥

अन्वयार्थ—यः दयायुक्तः = जो दयाभाव से पूर्ण है **सः**= वही **सर्वप्राणिहितप्रदः** = सर्वप्राणीमात्र का हितकारी **धर्मः**= धर्म है **सः एव** = वही धर्म **सुदुस्तरे** = अत्यन्त कठिनता से तरने योग्य **भवाम्भोधौ** = इस संसार-समुद्र से **उत्तारणे** = पार उतारने में **शक्तः** = समर्थ है।

भावार्थ—जो दयाभाव से युक्त है, वही सर्व प्राणियों का हित करने वाला धर्म है, और वही अत्यन्त कठिनता से पार करने योग्य संसारसमुद्र से पार करने में समर्थ है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में भव्य प्राणियों को वीतराग मार्ग के प्रति उत्साहित कर रहे हैं। विश्व में कोई अमूल्य शक्ति है, उसका नाम उत्साहशक्ति है। चाहे बालक हो या वृद्ध, उत्साह भंग हो गया तो सब कुछ भंग हो गया। मोक्षमार्गी हो या संसारमार्गी, सबके अंदर सामर्थ्य देने वाला उत्साह ही है। अंतिम श्वासों तक उत्साह भंग मत करना। जब तक जीवन चले, उत्साह से जियो और मरण-समय आ जाये, तो उत्साह से मरो। जो उत्साहित होकर धर्ममय जीवन जी रहा है, वह मरण के काल में भी उत्साह के साथ समाधिमरण करेगा।

घुटने-चलते बालक के सामने जब तीन-पहिये वाली गाड़ी आती है, तो उसे कितने उत्साह से चलाता है। हे मुमुक्षुओ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ये तीनपहिये की गाड़ी है। इसे उत्साह से पकड़ेगा तो मोक्षमार्ग पर बहुत अच्छे-से चल पायेगा। यह ध्रुव सत्य है कि बालक जब पाटी लेकर पहली बार विद्यालय पढ़ने जाता है, उस काल में शोक नहीं होता, आनंद होता है। जो शीघ्र प्रभावना की भावना रखता है, वह प्रभावहीन हो जाता है।

ज्ञानियो! मिट्टी के अंदर हीरा जितना दबा रहेगा, उतना पक जाता है और कीमत करोड़ों में हो जाती है।

दिगम्बर जैन परम्परा में छः प्रकार का आहार है-ओजाहार, कवलाहार, कर्माहार, नोकर्माहार, लेपाहार, मानसिक आहार। 'लाटीसंहिता' -कर्त्ता आगमग्रंथों को न समझकर लिख तो गये, लेकिन तात्कालिक व्यवस्था पर ग्रंथ नहीं लिखा जा सकता, निबंध लिखा जा सकता है। चर्या में, क्रिया में अंतर आ सकता है, पर सिद्धान्त में कभी अंतर नहीं आ सकता। मध्यकाल में जब सात सौ वर्ष तक दिगम्बर साधुओं का अभाव था, तब भट्टारक हुए थे। उनकी चर्या बदली, भेष बदला, पर सिद्धान्त नहीं बदले थे। सात सौ वर्ष उनके हाथ में थे। वे चाहते तो सिद्धान्त बदल सकते थे, अपने भेष की प्रतिमायें स्थापित करवा सकते थे। जब उत्तर भारत में पुनर्जाग्रति और दिगम्बर योगियों का सद्भाव हुआ, तब धीरे-धीरे उनका (भट्टारक परम्परा का) अभाव होता गया।

जीवन में कहीं विषमता की घड़ियाँ आ जायें, तो आप अपने आप में बदलाव तो ला सकते हो, लेकिन हमारे दिगम्बर जैन आम्नाय के सिद्धान्तों में बदलाव लाने की चेष्टा मत करना। यदि आप कोई विषमता के कारण पंखे के नीचे बैठे सामायिक कर रहे थे और जिनवाणी लिखोगे, तो पंखे के नीचे बैठ कर सामायिक करने का आदेश नहीं करा पायेंगे। कथन और व्याख्या वही होगी, जो समीचीन होगी। गद्दी पर बैठकर विपरीत मार्ग का उपदेश नहीं दिया जा सकता। संघ में बैठकर अपनी विषमता रख सकते हो, लेकिन कथन तो राजमार्ग का ही होता है,उत्कर्ष का ही होता है। जैसे नदी पर बांध होता है, तो शासन की (बांध का निर्माण करने वाले की) दृष्टि होती है कि बांध से पानी रिसना नहीं चाहिए। लेकिन पानी इतना पतला होता है कि बांध से पानी की बूंद रिसती ही है। लेकिन यही कहा जाता है कि बांध पक्का होना चाहिए। ऐसे-ही मुमुक्षुओ! जिनेन्द्र के वीतराग शासन को रोकने के लिए कठोर चर्या का बांध होना चाहिए। व्याख्यान कठोर का ही होना चाहिए। मृदुलता तो अपने-आप छा जाती है।

ज्ञानी! आपके घर में नाली है? हाँ! जिस दिन नाली बनाई थी, उसी दिन से गंदी है क्या? नहीं। घर में गंदगी न फैले, इसलिए नाली बनाई थी। नाली बनाई थी, तब तो साफ थी। अब प्रतिदिन उसकी सफाई की जाती है। यदि सफाई न हो, तो घर में कीचड़ हो जायेगी।

ऐसे ही मुमुक्षुओ! हमारा धर्म कहता है कि मार्ग तो स्वच्छ ही है। जो रत्नत्रय धर्म को धारण करता है, वह यही धारणा करता है कि व्रतों का निर्दोष पालन करना है। सदोषता के लिये कोई भी दीक्षा नहीं लेता है। यदि कीचड़ होने लग जाये, तो झाड़ू लगाते हो, ऐसे ही दिगम्बर जैन परम्परा में प्रतिक्रमण और प्रायश्चित्त होता है। सफाई करना पड़ती है, नहीं-तो चारित्र किच-किच हो जायेगा। प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और प्रायश्चित्त में ही आपके भाव नहीं लग रहे हैं, तो विश्वास रखना, पंचमकाल में दीक्षा लेकर तुमने संख्या की वृद्धि की है, संयम की वृद्धि नहीं की है। कोई भी दोष लगता है, असंख्यात-लोक-प्रमाण परिणाम हैं, परिणाम ऊपर-नीचे ऊपर-नीचे हो सकते हैं।

हे ज्ञानियो! जीवन में रावण को गाली कभी मत देना। अपने हृदय से पूछो, बेटे की माँ के होते हुए भी आपने कितनी खोटी दृष्टि नहीं डाली हैं? आँख तेरी ही तो गई थी। दृष्टि बदल ले, आलोचना व प्रतिक्रमण करके शुद्ध कर ले। जिस तरह आँख आने पर तू आई-ड्राप डालता है, काला चश्मा लगाता है, उसे ठीक करने का उपचार तू ही करता है, उसी तरह दृष्टि नहीं चली जाये तो उसे शुद्ध करने का पुरुषार्थ भी तुझे ही करना पड़ेगा। अशुभ भाव आने के बाद भी अपने आप को अशुभ बनाकर मत बैठना। जिस प्रकार एक व्यापारी घाटा और फायदा दोनों सहन करता है। यदि घाटा होने पर दु:खी होकर दुकान ही बेच देगा, तो भाव बढ़ने पर तुझे क्या मिलेगा ? कुछ नहीं। इसलिए घाटा होने पर भी दुकान बेचना नहीं, बैठे रहना, कभी तो फायदा होगा।

हे त्यागियो! यदि परिणाम विकृत भी होने लगें, तो द्रव्य-भेष मत छोड़ना। द्रव्य-भेष रहेगा, तो भाव तो पुन: बदल जायेंगे, लेकिन यदि एक बार भेष बिगाड़ बैठे, तो पुन: मिलना कठिन हो जायेगा। मोक्षमार्ग की व्याख्यायें सुनो। गुरु की इसलिए आवश्यकता है कि वे आपको गहरी बात बतायेंगे। संयम की निंदा करने से चारित्रमोहनीय कर्म का तीव्र बंध होता है और त्यागियों की निंदा करने से दर्शनमोहनीय का तीव्र बंध होता है। बन सके तो साधक की साधना में सहयोग करना, लेकिन उपहास करके आप कर्मबंध मत करना।

कुन्दकुन्द स्वामी लिख रहे हैं 'रयणसार' जी ग्रंथ में- जैसे गर्भ में बैठा बच्चा, माँ उसका अधिक ध्यान रखती है। अपना चलना, खाना-पीना, सबका ध्यान रखती है। अशुभ भाषा नहीं बोलना। अधिक-से-अधिक जिनवाणी श्रवण करना चाहिए। **"गर्भस्थ शिशु की रक्षा करोगे तो तुम्हारा श्रावक धर्म चलेगा, व्यवहार धर्म पलेगा और कहीं मुनि बन गया, तो वीतराग धर्म चलेगा। हे माँ! जो मुनि बनकर विचरण कर रहे हैं, इनकी रक्षा तुम गर्भस्थ शिशु के समान करो। इनकी रक्षा करोगे तो तुम्हारा नमोस्तु शासन जयवंत होगा। मैंने अपने जीवन में दो की ही सोच को माना है। एक तो गुरु की सोच को स्वीकार किया है और दूसरा, स्वयं की सोच को स्वीकार किया है। जब तक तुमने दिगम्बर गुरु न बनाया हो, उसके पहले तुम्हारे माता-पिता तुम्हारे गुरु हैं। व्यवहार से गुरु हैं। जो बेटा माता-पिता की सोच से चलेगा, वह यश को वृद्धि को, कीर्ति को प्राप्त होता है।"**

"गुरुबुद्धि विशेषता" गुरु की बुद्धि से शिष्य चलता है तो हर समय विशेषता को प्राप्त होता है, क्योंकि आपको मालूम होना चाहिए कि मैं अपना सोच प्रारंभ करूँगा, जबकि गुरु सोच चुके हैं। क्योंकि मैं अब शिष्य बना हूँ और गुरु शिष्य बन चुके हैं। गुरुओं को अनुभव होना चाहिए कि नहीं? होना चाहिए। जिस प्रकार अंगूर का खट्टापन धूप में सूखकर किसमिस या मुनक्का का मीठापन बन जाती है, उसी प्रकार आपके अंदर की कमियों को दूर कर गुरू आपको मीठा बना देता है। जिस प्रकार किसान अंगूर की फसल को सुखाता है, उसकी देख-भाल करता है, स्वयं उठाने जाता है, उसी प्रकार गुरू भी आप पर दृष्टि रखता है। आपकी चर्या में कमी आ रही है, तो हीन-भावना से ग्रसित मत होना, कमी से निकलने का पुरुषार्थ करना।

अहो श्रावको! योगियों को गर्भस्थ शिशु के समान पालना। वात, पित्त, कफ के प्रकोप से अपने बेटे की जिस प्रकार रक्षा करते हैं, उसी प्रकार मुनिराज जब चर्या को आपके घर पहुँचें, तो उनको बेटा मानकर और स्वयं माँ बन कर उनकी चर्या कराना। माँ डाँट-डाँट कर भी खिलाती है कि बेटे! तुझे यह लेना पड़ेगा। यह कुन्दकुन्द स्वामी बोल रहे हैं। कुन्दकुन्द स्वामी जिस पक्ष की व्याख्या करते हैं, परिपूर्ण करते हैं। श्रावको! दान के बारे में विशद् व्याख्यान सुनना हो, समझना हो तो 'रयणसार' ग्रंथ

पढ़ना चाहिए। वृत्ति में अंतर आ सकता है, पर वृत्ति के अंतर से व्याख्यान में अंतर न आ जाये। तुम्हारी वृत्ति मात्र तुम्हारे लिये है, पर व्याख्यान तुम्हारी वृत्ति नहीं है, व्याख्यान (आगम) जिनेन्द्र की वाणी है। अपनी वृत्ति को आप व्याख्यान का विषय बनाओगे तो तुम्हारा प्रवचन अप्रमाणित होगा। वृत्ति 'व्याख्यान' नहीं होती है। व्याख्यान आगम का होता है और आगम के अनुसार वृत्ति होना चाहिए, यही मोक्षमार्गी का कार्य है। कुम्भकार घट बनाता है। एक एक कंकड़ बीनकर अलग करता है। कदाचित् एकाध रह जायेगा तो उसकी मेहनत बेकार हो जायेगी। यदि विवेकी होगा, तो कंकड़ वाले घट को अलग रख देगा, बाजार में बेचने नहीं जायेगा। ऐसे ही मुमुक्षु! निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्यों, योगियों ने क्या किया है ? यदि किसी शिष्य में कमी भी है, तो उसे अपने पास में रखा है। बाहर नहीं जाओगे। यदि बाहर चले जाओगे तो बाकी सभी शिष्य भी इसी रूप में देखे जायेंगे।

'मोक्षमार्गस्य नेतारं' आचार्य परमेष्ठी को, अरिहंत को नेता कहा है। नेता का अर्थ न टोपी है, न धोती है, न कुर्ता है। ध्यान रखना। कुछ लोगों ने भेष बनाकरके शब्दों को बदनाम कर दिया। वीतराग तत्त्वज्ञान ही परमागम है। ऐसा जगत् में कौन-सा सम्यग्दृष्टि जीव है, जो मोक्ष की आकांक्षा नहीं रखता है? नेता शब्द का अर्थ है 'मार्गदर्शक'। जो सच्चा मोक्षमार्ग का दर्शक होता है, वही सच्चा नेता होता है। लोकव्यवस्था का नेता अलग होता है। दोनों में महान् अंतर है।

'वृहद् स्वयंभू स्तोत्र' जैनदर्शन का न्यायशास्त्र है। इसमें नमिनाथ स्वामी की स्तुति करते हुए समन्तभद्र स्वामी ने स्तुति को न्याय के रूप में लिखा और अमृतचन्द्र स्वामी की शैली है कि स्तुति को अध्यात्म में लिखा। 'लघु तत्त्वस्फोट' में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति लिखी है, उसमें अध्यात्म भरा हुआ है। जिस ग्रंथ को हम अब प्रकाशित करवा पाये, रूस आदि देशों ने उनका अनुवाद करके कबका प्रकाशित करवा लिया है।

जिस परम्परा में 'सिरि भूवलय' ग्रंथ हो, उस परम्परा का क्या कहना। दूसरी परम्परा के लोगों ने इस ग्रंथ को उठाकर अपने यहाँ रख लिया। 'श्री भूवलय' में जिस भाषा को निकालना चाहो, वह भाषा निकलती है। जिस ग्रंथ में आयतें, श्लोक, गाथायें

सब पढ़ी जा सकती हैं। एक समय था जब उसकी रक्षा नहीं कर पाये तो भारत सरकार को सौंप दिया था। पुनः देशभूषण जी महाराज ने निकलवा करके फोटोकॉपी करवा कर पुनः काम किया है। काश! हमारे पास आचार्य समन्तभद्र स्वामी का 'गंधहस्ति महा भाष्य' ग्रंथ उपलब्ध हो जाये। अहो! आज पता नहीं चल रहा कहाँ चला गया? ऐसे अलौकिक ग्रंथ हमारे पास हैं। जैसे दुकानों पर घरों में सामग्री की पट्टियाँ लगी रहती हैं, ऐसे-ही घरों में ग्रंथों के नाम लिखकर पट्टियाँ टाँग लो। खेलते-कूदते बच्चे उन ग्रंथों के नाम पढ़ेंगे। कैसे अभागे लोग हैं, पैसे देकरके नेता-अभिनेता के फोटो घर में टाँगते हैं कि बिगड़ो बेटा। माँ! कहीं भी जाओ, तुम्हारा स्वाध्याय में मन भले ही न लगे, लेकिन एक ग्रंथ खरीद कर लाओ, उसे घर में विराजमान करो। यह आज के लिए नहीं, अपितु भविष्य के लिये रखना, क्योंकि साढ़े अठारह हजार वर्ष तक जिनशासन चलना है। ऐसे लोग भी आयेंगे, ज्ञानी! ये छोटी-छोटी उम्र के मुनिराज आपके सामने बैठे हैं। जब इनका जन्म हुआ होगा, तब क्या किसी ने सोचा होगा कि ये मुनिराज बनेंगे? ज्ञानी! घर में कोई-न-कोई ऐसे संस्कार अवश्य होंगे, जिन्होंने इन्हें इस राह पर आगे बढ़ा दिया है। नगर में कोई भी त्यागी आये, एक बार अपने बच्चे को लेकर अवश्य उनके पास जाना। जीवन के अंतिम समय तक वह याद रखेगा कि मैंने महाराज के दर्शन किये थे। ऐसा स्मरण करते हुए भी यदि उसकी अंतिम श्वास निकल गई, तो परमेष्ठी के चरणों में समाधि हो गई समझो।

ज्ञानी! बदलना नहीं, बदलके रहना। जिनशासन को नहीं बदलना, कलुषित भावों को बदलना। भैया! मुनि न बन पाओ तो प्रतिमाधारी बनकर समाधि अवश्य करना। लक्ष्य साधु बनने का ही रखना। निर्ग्रन्थों में अरिहंत को देखना। तुम्हारी परिणति सही होगी तो तुम्हारा कल्याण होगा। परिणति सही नहीं होगी तो निगोद में जाओगे। ज्ञानी! जो दिखता है, वह पर्याय होती है, परिणामों को कोई देख नहीं सकता। पर्याय को देखकर ही धर्मात्मा कहा जा सकता है। तू है या नहीं, तू स्वयं जानता है या स्वयंभू जानें। पर्याय को देखकर सबसे पहले अभिवादन कर लेना। 'धरती के देवता! मैं तुम्हारी वन्दना कर रहा हूँ। तुम वन्दनीय हो या नहीं, तुम जानो, बंध तुम्हें होगा।' ज्ञानियो! अपने को नमोस्तु कहना है। जैसा रोटी पर श्रद्धान है, ऐसा पंचपरमेष्ठी पर

श्रद्धान होना चाहिए। छोटा-सा बच्चा भी रोटी मुख की ओर ले जाता है, तो उसे मालूम है कि रोटी के खाने से ही भूख मिटेगी। कितना दृढ़ श्रद्धान है तुझे कि रोटी से भूख मिटती है। परमेष्ठी के चरणों में नमस्कार करने से भव मिटता है, यह श्रद्धान अकाट्य होना चाहिए।

सः धर्मो यो दयायुक्तः, सर्वप्राणिहितप्रदः।
सः एवोत्तारणे शक्तो, भवाम्बुधौ सुदुस्तरे॥ (64)

जो दया से युक्त है, वही धर्म है। 'अहिंसा परमो धर्मः' लिखित रूप में सबसे पहले महाभारत में मिलता है। इसमें कोई विरोध नहीं है, इसलिए मुझे स्वीकार है। तुम्हारा मूल सूत्र है–

'धम्मो दया विशुद्धो।'

धर्म वही है जो दया से विशुद्ध है।

'धम्मस्य मूलं दया।'

यह तुम्हारा मूल सूत्र गौतम स्वामी कृत है।

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संयमो तवो।
देवा वि तस्य पणमंति, जस्स धम्मेसया मणो ॥ वीर भक्ति॥

सम्पूर्ण जैन आम्नाय इस गाथा को स्वीकारता है। चाहे दिगम्बर हो, चाहे श्वेताम्बर हो, इस गाथा को सभी स्वीकारते हैं। बहुत सारी गाथायें परम्परागत महावीर स्वामी के काल से चली आ रही हैं। बहुत सारी गाथायें संग्रहित हैं। यह गाथा प्रतिक्रमण सूत्र में है।

जो सम्पूर्ण प्राणियों का हित करने वाला है, संसार से पार करने वाला है, भवरूपी समुद्र से पार करने वाला है, ऐसा समर्थवान कोई है, तो उसका नाम अहिंसा धर्म है। ज्ञानी! उस धर्म का आलंबन लो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''धर्म को नहीं छोड़ने का आदेश''

यदा कण्ठगतप्राणो, जीवोऽसौ परिवर्त्तते।
नान्यः कश्चित्तदा त्राता, मुक्त्वा धर्मं जिनोदितम्॥ 65॥

अन्वयार्थ—**यदा** = जब **असौ** = यह **कंठगतप्राणः** = मरण के सन्मुख होता हुआ **जीवः** = जीव **परिवर्तते**= इस शरीर को छोड़ कर दूसरे में जाता है **तदा** = तब **जिनोदितं धर्मं** = जिनेन्द्र कथित धर्म को **मुक्त्वा** = छोड़कर **कश्चित्** = कोई **अन्यः** = दूसरा **त्राता न** = रक्षक नहीं है।

भावार्थ—जब यह जीव मरण के मम्मुख होता हुआ, शरीर को छोड़कर दूसरे में जाता है, तब जिनेन्द्र कथित धर्म को छोड़कर इसका अन्य कोई रक्षक नहीं है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सारसमुच्चय' जी में परम धर्म की व्याख्या कर रहे हैं। जिसे लोक ने नाना रूपों में देखा, वह परमब्रह्म जगत् को सुखमय करने वाला है। उसका नाम अहिंसा है। जिस ब्रह्म की आपने कल्पना की है कि कोई चतुरानन ब्रह्म है, वह अन्य कोई नहीं है, समवसरण में विराजमान तीर्थंकर प्रभु हैं। उनका मुख चारों दिशाओं में दिखाई देता है। ऐसे तीर्थंकर देव ही चतुर्भुज ब्रह्म हैं। ऐसे चतुर्भुज ब्रह्म के श्रीमुख से उद्घाटित-'धम्मो दया विशुद्धो' सूत्र है। यही सूत्र जगत् का रक्षक ब्रह्मा है। लोक में कहा जाता है कि ब्रह्मा सबकी रक्षा करने वाला है। यथार्थ में रक्षा करने वाला ब्रह्मा है कौन? न कोई सृष्टिकर्ता ब्रह्मा है, न कोई जगत् की रक्षा करने आने वाला कोई ब्रह्मा है। जगत् में रक्षा करने वाला ब्रह्मा 'अहिंसा धर्म' है। जिसके माध्यम से सारे जगत् की रक्षा होती है, जो सम्पूर्ण प्राणियों को करुणामयी दृष्टि से देखता है, वह परमब्रह्म अहिंसा है। कुलभद्र स्वामी ने कहा, उस परम धर्म का आश्रय लो। जब तक श्वास चल रही है, तब तक ज्ञानियो! पर की श्वासों पर भी ध्यान दो।

संसार में सबसे बड़ा भय है तो मृत्यु का भय है। हर व्यक्ति को अपनी रक्षा के परिणाम हैं, आयु को बचाने के भाव हैं। मृत्यु के काल की पीड़ा जीव को ही विदित है या परमात्मा को विदित है। जब आत्मप्रदेश शरीर से संकुचित होते हैं, वह वेदना जीवन की अतुलनीय वेदना है। संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को और-ज्यादा वेदना होती है। जिसके प्रति ममत्व नहीं है, उसका वियोग हो जाये, तो पीड़ा है। जिसके प्रति परिचय है, उसका वियोग हो जाये, तो पीड़ा की तीव्रता है। समझो, जिस वस्तु को नहीं जानते हो, उसके संयोग-वियोग में न सुख है न दु:ख है। जिससे संबंध है, उसके संयोग में सुख महसूस करते हो। स्वयं पंचेन्द्रिय जीव है, उसको विवेक अधिक है, चिन्तन अधिक है, क्षमोपशम अधिक है, उस जीव को निज देह के वियोग काल में पीड़ा द्रुत गति से बढ़ती है, जबकि जीव को मालूम है कि जो जन्म हुआ है, वह मरण से युक्त है। ऐसा कोई काल नहीं आया, जिस काल में प्राणी द्रव्यप्राणों से रहित न हुआ हो।

जो भी पर्याय में आया है, पर्याय की दृष्टि से उसका विनाश सुनिश्चित होता है। पर्यायदृष्टि से जगत् में कोई भी द्रव्य शाश्वत नहीं है। जब मुत्यु निश्चित है, संयोग निश्चित है, वियोग निश्चित है, तो डर किस बात का? ज्ञानी! हर व्यक्ति को विवेक है कि वियोग नियत है, तब भी मुस्कुरा रहा है। यह हर्ष-विषाद कर्म-बंध का तीव्र साधन है। अपनों में राग, पर में द्वेष है। संसार का मुख्य केन्द्रबिन्दु यही है। यदि अंतरंग में किंचित् भी धर्म का प्रवेश हो रहा है, तो विषय को समझने का प्रयास करो। पूरी पर्याय निकल चुकी है, अल्प समय अब शेष है। किंचित् तो स्वाद ले लो कि मैं मनुष्यजीवन में आया हूँ। किंचित् तो विवेक जाग्रत कर लो कि मनुष्यजीवन-पर्याय में आया हूँ। एक क्षण भी अहिंसा ब्रह्म से दूर मत होना।

ज्ञानी! विषय गंभीर है। जीवों की रक्षा करो, यही तुम्हारा धर्म है। शरीर की वेदना को मिटानेवाले कोटि-कोटि दयालु जीव मिल जायेंगे; पर जिसके भावों में पीड़ा है, उसकी वेदना को मिटानेवाले जगत् में कहीं दिखाई नहीं देते। कषाय की पीड़ा से झुलसने वाले प्राणी की पीड़ा को दूर करने वाले नहीं मिलते। आँख के आँसूओं को पोंछने की करुणा की है। राग में मुस्कुराने वाले को, परिग्रह की गद्दी पर बैठकर अपने आप को सुखी कहने वाले को तुमने आज तक हिंसक नहीं कहा।

''बह्वारम्भ परिगृहत्वं नारकस्याऽयुषः।'' (त. सू.)

बहुत आरंभ-परिग्रह करने वाले जीव को नरक आयु का बंध होगा कि नहीं ? नरक में जायेगा कि नहीं ? जिस जीव को न देव से प्रयोजन था, न शास्त्र से प्रयोजन था, न गुरु से प्रयोजन था, ऐसे जीव पर तुम्हारी करुणा क्यों नहीं जाग रही कि हे जीव! तू द्रव्य में मस्त होकरके द्रव्यदृष्टि को खो रहा है, आत्मद्रव्य से शून्य हो रहा है, तुझे अपने पर करुणा क्यों नहीं आ रही है? और देखने वालो! आपको करुणा क्यों नहीं आ रही है? कभी तो उसके कान में जाकर कह दिया करो कि पुण्य के नियोग से तुझे सम्पत्ति मिली है, यदि सम्पत्ति में ही बैठा रहेगा, तो विपत्ति में ही जायेगा। यदि रोना कषाय है, तो हँसना भी कषाय है। दोनों ही संसार के कारण हैं। यदि आप दुःखी हो रहे हो, तो हिंसक और यदि आप पर को दुःखी देखकर के सुख महसूस कर रहे हो, तो हिंसक।

ज्ञानी! कह देना अपने पिताजी से-हे तात! मार्ग में चलते-चलते तूने एक घण्टे अपने व्यापार की चर्चा की है, आपको मालूम होना चाहिए था कि इतने मार्ग में तू भगवान् का नाम ले लेता तो कर्मों की निर्जरा हो जाती। माँ जिनवाणी से चर्चा कर लेता तो तेरे जीवन में अहिंसा धर्म उतर जाता।

'धम्मो दया विशुद्धो'

ज्ञानी! यदि तेरा मित्र तुझसे कहे कि आज मेरा मन अशान्त है, हे मुमुक्षु! यदि तू सच्चा मित्र है, तो कहना भैया मेरे! तुझे मालूम होना चाहिए **'धम्मो दयाविशुद्धो।'**

हमने दूसरे के शरीर की पीड़ा पर मरहम-पट्टी अनेक बार की, अस्पताल में मरीजों को फल भी वितरित किये हैं, अनन्तों पर दया की है, पर आज दया करने वाले पर दया करने का दिन आ गया है। जब तेरे जीवन में मरण की घड़ियाँ आयें, तब अपने मित्र से कह देना, मित्र! हमने साथ में अनेक कार्य किये हैं, आज तीर्थ बनने का समय आ गया है। तीर्थवन्दना करने इसलिए जाते हैं कि जब मेरा इस पर्याय से प्रयाण हो, तब अपने को तीर्थभूत देख सकूँ। योगियों ने उपसर्ग/परीषह सहन करते हुए 'धम्मो दयाविशुद्धो' में प्रवेश किया था।

जो दया से विशुद्ध है, वही धर्म है। जब मेरी व्यवहार से आँख खुलती है, तो जगत् के प्राणियों के परिणामों पर दया होती है। जब निश्चय की आँख खुलती है, तब निज

के परिणामों पर दया होती है। मित्र! एक समय ऐसा आता है जब दया अदया हो जाती है। ज्ञानी! जब मेरी अंतिम श्वास निकलने का समय हो, उस समय आप मुझसे यह पूछने मत आना महाराज! अहिंसा के लिए क्या-क्या कार्य करना है? हे ज्ञानी! उस समय अहिंसा के बारे में पूछोगे, दूसरे जीवों के प्राणों की रक्षा के बारे में आप पूछोगे, पर मेरे प्राण जा रहे हैं। यदि मैं परप्राणों की रक्षा में चला गया, तो मेरे आत्मप्राण शुद्धोपयोग की दशा से विचलित हो जायेंगे, वह दया भी मेरे लिये अदयाभूत हो जायेगी। जब मेरी समाधि का समय आये, मेरे हितैषियो! न मेरे हित के बारे में पूछना, न मेरे अहित के बारे में पूछना। यही तुम्हारा परम हित धर्म होगा, क्योंकि दया का भाव जो आ रहा है वह दूसरे पर आ रहा है, जब दूसरे पर आ रहा है, यदि उस समय हंस निकल गया, तो पर को देखते-देखते पर प्रमेय में मरण हो जायेगा, निज को भूल जायेगा, पर-प्रमेय में जीवन नष्ट हो जायेगा।

'धर्मस्य मूलं दया, धम्मो दया विशुद्धो'

मन में जब यह भाव आये कि आज मेरी माँ ने सुबह से दूध पीने को क्यों नहीं दिया है? ज्ञानी! उस समय तू विचार कर लेना कि दूध पीने के राग में तू माँ के प्रति अशुभ भाव कर रहा है। उस समय विचार कर लेना 'धम्मो दयाविशुद्धो'। तूने कुभाव करके निज स्वभाव-भाव की मृत्यु कर दी है। निज परिणामों की हत्या मत करो। शरीर को नष्ट होते देखकर हर कोई कहेगा कि इसने हिंसा की है, पर तेरे भावों ने कितनों की हिंसा की है, इस पर किसी ने तुझे सांत्वना नहीं दी है। विश्वास रखना, जो भी पुचकारने वाले मिलेंगे, वे शरीर मात्र की रक्षा करने वाले मिलेंगे, लेकिन निज की रक्षा करने वाला तेरा भाव ही तुझे संभाल पायेगा, जगत् का कोई तुझे नहीं संभाल पायेगा। पर के परिणाम तेरी निज परिणति को बदलने में अकिंचित्कर हैं। पर के परिणामों से मेरी परिणति नहीं बदलती है। मेरी परिणति जब भी बदलती है या बदलेगी, निज के परिणामों से ही बदलेगी। पर आलम्बन हो सकते हैं, पर पराश्रित हो सकते हैं, लेकिन स्वाश्रित दशा कोई है, तो निज भावों की ही है। जब-जब विपत्ति का समय आये, उस समय अपने भावों को संभालने का पुरुषार्थ करना। शरीर से गिरते को लाखों लोग उठा लेंगे, लेकिन परिणाम गिरते को कोई उठानेवाला नहीं मिलेगा। शरीर की वेदना जगत्

को दिखती है, लेकिन मन की वेदना किसी को नहीं दिखती।

निज की वेदना दूसरे को सुनानेवाला हिंसक ही है स्यात्। वह दुगुनी हिंसा कर रहा है। यह जिनागम है, इसे आप जगत् की आँख से मत देखना। इसे आप स्याद्वाद, अनेकांत दर्शन की आँख से देखना। ज्ञानी! यदि तेरे शरीर में पीड़ा है, यदि तू उस पीड़ा को शांति से सहन कर रहा है, तो विश्वास रखना, तेरे पिता को कष्ट नहीं होगा। वह अपनी पर्याय का सुख भोग रहा था, पर तूने कह दिया–मुझे बहुत वेदना है, तो बेटा! तूने अपनी वेदना बोलकरके एक अपीड़ित को पीड़ित कर दिया। हिंसा प्रारंभ हो गई, इसलिए निर्ग्रन्थ योगी अपनी पीड़ा को वेदक-भाव से देखते हैं, किसी को सुनाते नहीं, क्योंकि वह सोचता है कि मैं तो पीड़ित हूँ ही, यदि मेरी पीड़ा को सुनकर दूसरा पीड़ित हो गया, तो हिंसा होगी। मुमुक्षुओ! अपनी खुशी को, अपने दुःख को दूसरे को सुनाने मत जाना, नहीं–तो हिंसा का दोष लग जायेगा। इस तत्त्व को आज सुन लो। अपनी सुख की बातें भी किसी से मत कहना, क्योंकि उसे सुनकर किसी के मन में हीनभावना आ गई, तो हिंसा होगी।

जब सारे जगत की अहिंसा की परिभाषायें समाप्त हो जाती हैं, तब तीर्थंकर महावीर के शासन की अहिंसा प्रारंभ होती है। ज्ञानी! प्रतिक्षण परिणामों को संभालने की आवश्कता है। लोगों ने क्या मान लिया? चलती चींटी, मच्छर आदि की रक्षा करना, वह अहिंसा तो अहिंसा है, लेकिन चलते परिणामों की रक्षा करो, इसका नाम अहिंसा है। स्वयं की प्रशंसा भी हिंसा है। स्यात् पर की प्रशंसा भी हिंसा है।

अहिंसा परमधर्म है। तुम अपने आपको अहिंसक मान बैठे थे कि मैं तो पानी छान कर पीता हूँ, मुमुक्षु! मन को छानना और प्रारंभ कर दो। कलश पर कपड़ा पानी छानने के लिए लगाया है। एक कपड़ा मुख-कलश पर और लगा ले, जिससे छनी वाणी निकले। हमारे आगम में लिखा है कि कम-से-कम बोलो। तो कम-से-कम व्यर्थ ही न बोलो। आज से नियम ले लो कि जब भी बात करेंगे, छान कर करेंगे। पानी ही छानकर नहीं पीऊँगा, वाणी भी छानकर बोलूँगा। वाणी छानने से तात्पर्य है विचार करके, सोच करके। मेरे शब्दों को सुनकरके किसी जीव को खेद न हो, पीड़ा न हो।

एक बार बाण का घाव तो भर जायेगा, पर वाणी का घाव नहीं भरता।

ज्ञानियो! ख्याति ऐसी खाई है जिसमें विशुद्ध परिणामों की हड्डी भी नहीं मिलेगी। परम अहिंसा तब आयेगी, जब 25 कषायें अन्दर से पलायन कर जायेंगी। कोई धार्मिक अनुष्ठान करके आप लोगों से अपनी प्रशंसा सुनना चाहते हो, प्रशंसापत्र चाहते हो, वह हिंसा है। जन्म-मरण से रहित होने का पुरुषार्थ कर, तब अहिंसामय हो पायेगा।

'धम्मो दयाविशुद्धो' कहते -कहते धीरे-से कह रहे हैं कुलभद्र स्वामी, जैसे पूज्यपाद स्वामी ने 'समाधि भक्ति' में लिखा है—प्रभु! मेरे प्राण भी कण्ठ में कुण्ठित हो जायें, तब भी प्रभो! तेरा नाम मेरे हृदय से न निकले। भैया! इतना ध्यान रखना। बच्चों के नाम महावीर, अरिहंत, पारस रखो, तो अंतिम समय में अभागे को भगवान का नाम याद न रहे, भले ही मोहवश अपने बेटे/पोते को बुलाये, तो कम-से-कम उसके मुख से मंगल शब्द तो निकलेगा। ज्ञानी! जब तक प्राण कण्ठ में हैं, मंगल शब्द बोलना—

यदा कण्ठगतप्राणो, जीवोऽसौ परिवर्त्तते।
नान्यः कश्चित्तदा त्राता, मुक्त्वा धर्मं जिनोदितम्॥ (65)

आचार्यमहाराज कह रहे हैं—जब तक प्राण कण्ठगत नहीं होते हैं, इस शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश नहीं करता, तब तक भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कहे गये धर्म को छोड़कर जगत् में कोई त्राता नहीं है। जब तक तेरी पर्याय का परिवर्तन न हो, जब तक जीवन विलीन न हो, तब तक हे ज्ञानी! भगवान् जिनेन्द्रदेव के धर्म को मत छोड़ना। अरिहंत के धर्म का आश्रय हर समय लेना। 'धम्मं शरणं पव्वज्जामि।' केवलीप्रणीत धर्म की शरण में चले जाना।

पुनः पुनः समझना। संकट के काल में, विपत्ति के काल में पड़ौसी और मित्र के घर मत जाना। जा सको तो अरिहंत की शरण में चले जाना। संकट के काल में कोई किसी का होता नहीं। मुस्कुराओ, आनंद का जीवन जियो। जगत् में स्वतंत्र हो कर जियो जगत् में मेरा द्रव्य स्वतंत्र है। जिस पर्याय में मैं रह रहा हूँ, वह पर्याय भी मुझे छोड़ेगी। मेरा तो मात्र एक निजद्रव्य है। एकत्वविभक्त ही सबसे सुंदर है। वही मेरा है। ज्ञानियों! किसी की परवाह नहीं करना। वन-खण्ड में भी रहना पड़े तो यही सोचना

कि छूटनेवाला ही तो छूटा है। जो छूटने वाला नहीं है, वह मेरे से कहाँ छूटा है? 'ज्ञायक स्वरूपोऽहम्।' यह कहने की ताकत आपके अंदर आ जाये, समझ लेना कि आपसे बलवान जगत् में कोई पुरुष नहीं है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मृत्यु का समय नहीं जाना जाता"

अल्पायुषा नरेणेह, धर्मकर्मविजानता।
न ज्ञायते कदा मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥ 66॥

अन्वयार्थ—इह = इस जगत् में **धर्म-कर्म-विजानता** = धर्म-कर्म को जाननेवाले **अल्पायुषा** = थोड़ी आयु वाले इस **नरेण** = मानव द्वारा **न ज्ञायते** = नहीं जाना जा सकता कि **कदा** = कब **मृत्यु** = मरण **भविष्यति** = होगा **संशयः न** = इस बात में संशय नहीं करना चाहिए।

भावार्थ—धर्म-कर्म के ज्ञाता, अल्प आयुष्क मनुष्य के द्वारा यह नहीं जाना जाता है कि मृत्यु कब आयेगी। इसमें संशय नहीं है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज "सार समुच्चय" में उस ओर इंगित कर रहे हैं, हे ज्ञानी! चाहे श्रमण हो, चाहे श्रावक; चाहे धर्मात्मा हो, चाहे धर्मविहीन हो; चाहे राजा हो, चाहे रंक हो, आयुकर्म को कोई जान नहीं पाता है। वे प्रबल पुण्यात्मा जीव विरले हैं, जो अपनी मृत्यु के पहले मृत्युबोध को प्राप्त हो जाते हैं। जिस जीव के जन्म से लेकर के अंतिम श्वास के निकलने के पूर्व तक भद्र परिणाम रहे हों, मंद कषाय रही हो और चेहरे पर प्रतिक्षण प्रसन्नता झलकती हो और रत्नत्रय की आराधना में तीव्र आस्था हो, ऐसे पुरुष को मृत्युबोध हो जाता है। वह ये जान सकता है कि मेरी मृत्यु आज पाँच बजे होगी कि दो बजे होगी। श्रमण होगा तो कह देगा, हे साधुओ! आप चर्या को उठ जाओ। श्रावक होगा तो अपने घर में कह देगा-जाओ, भोजन कर लो।

ज्ञानियो! दो दृश्य मैंने प्रत्यक्ष में देखे हैं। एक वृद्ध माँ हर समय सभा में भजन गाया करती थी और तत्त्व-उपदेश सुना करती थी, जिनवाणी सुना करती थी। जब उस जीव

का रात्रि के आठ बजे स्वास्थ्य खराब होता है तो वह यह नहीं कहती मेरे बेटों को बुला दो, मेरे परिवार को बुला दो। वह कहती है–भैया को बुला दो, मुझे कुछ सुना देगा। प्रातः सात बजे बोलती है वह माँ कि भैया से बोल दो, भगवान् की पूजन कर ले। उनके घर में ही चैत्यालय था। उनकी सोच थी कि यदि अंतिम श्वास निकल गई तो भगवान् की पूजन में विघ्न आ जायेगा। जैसे ही मैं अभिषेक–पूजन करके नीचे उतरा, वृद्ध माँ का 'अरिहंत नाम सत्य' हो गया।

अमरावती महाराष्ट्र में प्रातः छः बजे सूचना आई कि एक माँ को महाराज के दर्शन करना है। मुझे शुद्धि के लिए जाना ही था, वहीं से निकल गया, माँ ने दर्शन किए। महाराष्ट्र में घर–घर में चैत्यालय हैं। श्रीजी का अभिषेक हुआ गृह चैत्यालय में और शांतिधारा देखते–देखते माँ शांत हो गई।

आचार्य सुमतिसागर महाराज सोनागिर में विराजते थे। बड़े भद्रपरिणामी जीव थे। सबसे पहले मैंने दिगम्बर मुनिराज को आहार दिये हैं, उन्हीं के हाथ पर ग्रास रखा था। आचार्य सुमतिसागर महाराज चर्या को उठ रहे थे। पूरे संघ की शुद्धि करा दी। योगी का रहस्य कुछ और था। यदि मैं शुद्धि नहीं करता हूँ, तो सभी लोग बैठे रहेंगे। इसलिये उन्होंने शुद्धि की और शुद्धि करने के उपरांत जिनालय में पहुँचे तो कहते हैं– आज मेरी इच्छा नहीं है, आप सभी महाराज आहार को निकल जाओ। तो साधुओं ने कहा– नहीं, आचार्य महाराज! आपने शुद्धि की है। आपको चलना होगा। आपके बिना हम कैसे चर्या को जायें ? गुरु बोले– देखो, शिष्यों का कर्त्तव्य गुरु–आज्ञा होती है। आप पहले आहार को उठिये। धन्य हो उस योगी को। धन्य हो उस श्रमण की साधना को। मैं तो यह मानता हूँ कि जीवनभर आपने क्या किया है, यह उसका प्रमाण–पत्र है कि हमारी अंतिम समाधि पवित्र है, हमारी जीवनसाधना पवित्र हुई है। **'यथा मति, तथा गति। यथा गति, तथा मति।'**

अंतिम श्वास के समय जिसके परिणाम पवित्र हो रहे हैं, सुनिश्चित मानिये उसने उत्कृष्ट गति का बंध किया है। अंतिम श्वास के काल में परिणाम विकृत हो रहे हैं, जब कि जीवन भर धर्म किया है, तो समझ लेना कि मायाभूत चर्या रही है। परिणामों की विशुद्धि अंतिम समय में देखी जाती है।

धन्य हो निर्ग्रन्थ तपोधन को जैसे ही संघ चर्या को गया, अपने कक्ष में पहुँच कर पिच्छिका से मार्जन किया, अपने कमण्डलु के जल से भूमि की शुद्धि की और बैठ गये। जब तक साधुओं की चर्या चल रही थी, वे अनसन की प्रवृत्ति में लीन थे, अनशन स्वभाव में लीन थे। संघ के साधक असन कर रहे थे और वे अनशन स्वभाव में लीन हो रहे थे। यही तो ध्यान की धारा है।

"चिद् रस-रसायन स्वरूपोऽहं"

जो मेरा चेतन रस है, उसी का रसपान करना आत्मा का सहज स्वभाव है। उस जमीन पर पद्मासन से बैठकर श्रमण ने किसी से सुना नहीं, निज ज्ञायक-भाव में लीन हो गये। जब संघ लौटकर आया तो शरीर मात्र बचा, हंस जा चुका था। हे प्रभू! चाहे श्रमण हो, चाहे श्रावक हो, अंतिम श्वास निकले तो ऐसे निकले। किसी का आलंबन नहीं लिया। किसी से यह नहीं कहा कि मुझे णमोकार सुना दो। इसलिए मैं बार-बार कहता हूँ कि यह त्याग-तपस्या तो करना ही पड़ेगा। लेकिन आश्रयी जो है, आत्मा का परिणाम जो है, इसे संभाल-संभाल कर रखना। अपने हृदय-आंगन में बैठ करके अपने हृदय से यही कहना- मैंने दूसरे की आँखें बंद होते अनंत बार देखी हैं, ऐसा दिन आये कि मैं स्वयं की आँखों को बंद होते देखूँ। मैं ही निर्यापकाचार्य बनूँ और मैं ही क्षपक बनूँ और बुद्धिपूर्वक यह कह सकूँ कि आज से मेरा पानी पीने का भी त्याग है। धन्य हो उस जीव की परिणति को। ज्ञानी! एक घण्टे को भी तुम्हारा पानी का त्याग करने का परिणाम हो जाये, तो कर देना। पाँच मिनिट को भी भोजन-पानी त्याग करने के परिणाम हो जायें, तो कर देना। मैं क्यों कह रहा हूँ?

ज्ञानी! जिस जीव से बैठते नहीं बनता, वह भी दो-दो मिनिट को बैठता है, उसका शरीर ढलना प्रारंभ हो जाता है। ज्ञानी निर्ग्रन्थ को तो परिणामों को व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। सल्लेखना परिणामों के व्यवस्थित होने पर आलंबित है। ज्ञानी! घर में किसी का सिर दर्द कर रहा हो, तो घर के सब काम छोड़ कर उसका सिर दबाने पहुँच जाना, कहीं सिर के दर्द के विकल्प में उसके परिणाम विकृत न हो जायें। परिणामों को संभाल लेना। यदि पीड़ित काल में आत्मा निकल गई, तो कलुषित भावों से कुमरण हो जायेगा। आपने सिर को दबा दिया तो शांत परिणाम रहे और प्राण निकल गये तो

जीव का अकषाय भाव से मरण होगा तो समाधिमरण हो जायेगा।

जीवन के किसी भी क्षण में वैराग्य उमड़ सकता है। मैं वही तत्त्व-उपदेश समझता हूँ, जिसको सुनते-सुनते भीतर का भगवान् उद्वेलित होना प्रारंभ हो जाये।

राजा मधु को युद्ध करते-करते रक्तरंजित भूमि पर नजर पड़ी तो वैराग्य हो गया, कि पृथ्वी के लोभ में कितने पृथ्वीधरों का नाश कर रहा हूँ। शत्रुघन के बाण को देखकर राजा मधु की दृष्टि फिर गई और हाथी पर बैठे-बैठे केशलुंचन प्रारंभ हो जाता है। शत्रुघन का धनुष छूट गया, हाथ जुड़ गये।

मंदिर तो रोज जाते हो। महिने में एक-दो बार शमशान घाट भी हो आया करो। बड़े-बड़े सम्राट चले गये। कितने भी ऊँचे महलों में रह लो, कितने ही विमानों में उड़ लो, लेकिन संस्कार के लिये भूमि पर ही आना पड़ेगा।

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रियः॥ स.तं./26॥

जगत् में कोई मेरा शत्रु नहीं, कोई प्रिय नहीं। कोई प्रिय है तो शुभ भाव है और शत्रु है तो अशुभ भाव। अशुभ परिणाम कषायभाव है। आज सबके चरण स्पर्श करके क्षमा माँग लेना सबसे, क्योंकि जाना नियत है। वे विरले ही जीव हैं जो जान पाते हैं। जिनने जीवन साम्यभाव से जिया है, उसको ही मृत्यु का बोध होता है। इसलिए जिनको अपनी सल्लेखना प्रशस्त करना है, तो उपवास/ऊनोदर के साथ-साथ दूसरों की गाली सुनने की क्षमता लाना पड़ेगी और प्रशंसा सुनने की भी क्षमता लाइये। गाली में कूलना नहीं और प्रशंसा में फूलना नहीं। इतनी ताकत आ जाये, तो समाधि सुनिश्चित है। हे ज्ञानी! विश्वास रखना कि समत्वभाव ही समाधि है।

घर में देवी ने खीर बनाई। अग्नि के संयोग से खीर गर्म थी। तू भी गर्म हो गया। थाली उठाकर फेंक दी। खीर भी गई,तेरे परिणाम भी गये, देवी का अनुराग भी गया। इसके स्थान पर यदि तू कहता अरे! णमोकार की माला फेर लेता हूँ, तब तक खीर भी ठण्डी हो जायेगी, देवी भी ठण्डी रहेगी और ठण्डी खीर भी खा पाऊँगा। भगवान् की माला भी हो गई, खीर भी ठण्डी हो गई। ऐसा काम क्यों नहीं कर लेता? इतना धैर्य लाना पड़ेगा। ज्ञानी! इतना धैर्य नहीं है, तब तक काम बननेवाला नहीं है। एक सिक्का

कमाने के लिए आपको कितना धैर्य रखना पड़ता है? कपड़े का व्यापारी कितने थान खोलता है? नहीं बिकने पर लपेटता है। ऐसे-ही तू कषाय को लपेट कर रखे, तो घर तेरा क्यों बर्बाद हो? मुनि बनने के पहले सबकुछ देखना चाहिए। ज्ञानी को हर वस्तु को ज्ञेय का विषय बनाना चाहिए।

मृत्युबोध तभी संभव है, जब आज से ही पुरुषार्थ करेगा। 'कल्याण कारकम्' जैन आयुर्वेदशास्त्र में लिखा है कि जितने भद्र परिणामों से जीव जीता है, उस जीव को अपने मृत्यु के काल का बोध हो जाता है। इसलिए बहिरंग निमित्तों को निज अर्थ-क्रिया-कार्य से भिन्न निहारना चाहिए (समयसार की भाषा में)। ये हमारे निज अर्थ-क्रिया-कारक नहीं हैं। ज्ञानियो! जो भी मेरे निमित्त से संकल्प-विकल्प कर रहा है, वे उसके भीतर के संकल्प-विकल्प हैं, मेरे भीतर के नहीं हैं। ज्ञानी! एक बार जीवन में सबको वैराग्य आता है, चाहे घर की विषमता से हो, चाहे तत्त्वज्ञान से हो। एक समय के लिए व्यक्ति को लगता है कि सब बेकार है। ज्ञानी सोच रहा था कि मैं दिगम्बर मुनि ऐसे काल में बनूँ जिस काल में मौसम साम्य रहता हो, सारे जगत् से कलुषित प्राणियों का अभाव हो जाये, किसी प्रकार की विषमता न हो। हे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिए कि पौरुषत्व वह नहीं जिस ओर हवा बह रही है उस ओर साइकिल चलाना। विपरीत दिशा में साइकिल चलाओ, तब समझ में आये कि तुममें ताकत है।

युवाकाल में चने चबाने की ताकत होने पर चने चबाने का त्याग करना। युवावस्था के तूफान के काल में जो शील को स्वीकार कर ले, उससे बड़ा जगत् में त्यागी कौन होगा? इसका नाम त्याग है। इन्द्रियों के दुर्बल होने पर, शरीर के शिथिल होने पर किया गया त्याग 'त्याग' संज्ञा का प्राप्त नहीं होता।

"यमस्य करुणा नास्ति, धर्मस्य तुरता गतिः।"

आयुकर्म के पास, यम के पास करुणा नहीं है, इसलिए शीघ्र ही धर्म में गमन करो। छोटी-छोटी विषमताओं में आकरके निज के परिणामों को विकृत मत करो। जो काम तेरे बेटे से बिगड़ सकता है, उसको तो डाँटने के अवसर हैं, यदि तेरे से बिगड़ता, तो किसको डाँटता? क्यों माँ! बहू से काम बिगड़ता है तो तू उसे डाँट देती है और तेरे से बिगड़ता तो फिर? निमित्तों को नाश करके जो साधु बनने के भाव रखता है, वह दीर्घ

काल तक साधु बनकर नहीं रह पायेगा। निमित्तों की उपस्थिति होने पर भी जो नैमित्तिक को प्रभावित नहीं होने देता है, उसका नाम साधु है। यही साधन है, यही पुरुषार्थ है, ज्ञानी! यही श्रमण है। श्रमणसंस्कृति आशावादियों का दर्शन नहीं है, यह पुरुषार्थ अनेकांतवादियों का दर्शन है। आप्त मीमांसा (देवागम स्तोत्र) की भी वाचना होना चाहिए। ज्ञानी! जिस दिन आप 'आप्त मीमांसा' समझ लोगे, सारे विश्व में तेरा पाण्डित्य छा जायेगा।

जिस योगी को न्याय का ज्ञान होगा, उसके श्रद्धान को कोई शक्ति डिगा नहीं सकती। न्याय के अभाव में श्रद्धान हो गया, यदि कोई अन्यायी ने अपनी तर्कबुद्धि चला दी, तो उसका श्रद्धान डगमग हो जायेगा। पंचमकाल में तुम घर छोड़ने की सामर्थ्य नहीं रखते, पर्वत पर बैठने की सामर्थ्य नहीं रखते, कोई बात नहीं, लेकिन अकाट्य श्रद्धान है उसमें चलायमान मत होना। जीवन में साधु न बन पाओ तो कोई विकल्प नहीं है, लेकिन साधुओं के चरणों को छोड़कर मत जाना। पंचपरमेष्ठी पर श्रद्धा तो रखना। इस खोटे काल में तीर्थंकर नजर नहीं आते, उच्च कोटि के देव/विद्याधरों के गमन का अभाव है। धर्म का सार्थक फल दिखाई नहीं देता है। फिर भी धन्य हो, ऐसे खोटे काल में भी आप लोग तत्त्वदेशना सुन रहे हैं। ये आपकी पीठ ठोकने लायक कार्य है।

सल्लेखना के लिए न गंगा के पानी का मन चाहिए, न क्षीरसागर के पानी का। सल्लेखना के लिए चाहिए है तो—

मुनि-मन सम उज्जवल नीर, प्रासुक गंध भरा।

जब भी प्रवचन करने बैठो, स्वयं को श्रोता बनाकर बैठो, तब ही आनंद आयेगा। श्रोताओं को श्रोता बनाकर बैठोगे तो आनंद नहीं आयेगा। पर का सुनना या न सुनना मेरे कल्याण के लिए अकिंचित्कर है। पर मेरा निज में निज का सुनना अकिंचित्कर नहीं है। साध्य के लिए स्यात् साधकतम करण भी बन सकता है।

आज के श्लोक में आचार्यमहाराज यही कह रहे हैं, चाहे साधक हो, चाहे विराधक हो, मरणसमय किसी को पता नहीं चलता। इसलिए आज से ही मरण को स्वीकार करके आज से ही परिणाम सँभालो।

'मूलाचार' जी में आचार्य वट्टकेर स्वामी कह रहे हैं भगवान् की भक्ति में बैठे हमारे योगियों ने ऐसे प्रशस्त निदान भी कर लिए—

दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइगमणं, समाहिमरणं,
जिणगुण सम्पत्ती होदु मज्झं।

यह प्रशस्त निदान है। वट्टकेर स्वामी क्या निदान कर रहे हैं? हे वर्द्धमान! जो गति अरिहंत की हुई है, जो गति सिद्ध की हुई है, वह गति मेरी भी हो। हे प्रभु! मेरे संघ की उत्कृष्ट समाधि हो। हे जिनवर देव! मैं जानता हूँ कि आप समाधि नहीं करायेंगे, लेकिन मेरी प्रशस्त भक्ति का भाव है, इसलिए मैं ऐसा कह रहा हूँ। 'मैं जीऊँ, मेरे जियें' ऐसा कहने वाले रागी तो कोटि-कोटि मिलेंगे, लेकिन मेरे संघ की उत्कृष्ट समाधि हो, ऐसा प्रशस्त निदान करने वाले बहुत कम मिलेंगे। आपको समाधि चाहिए तो आज से ही पुरुषार्थ करना। आयुकर्म के निषेकों का कोई नियत नहीं है। ज्ञानियो! पर्याय की दृष्टि से कोई शाश्वत नहीं है। अनित्य अनुप्रेक्षा पर चिन्तन करना।

अल्पायुषा नरेणेह, धर्म-कर्म-विजानता।
न ज्ञायते कदा मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥ 66॥

हे नर! तेरी आयु अल्प है। धर्म-कर्म को जानता हुआ भी, कितना ही धर्म कर लो, पर तू नहीं जान सकता है कि तेरी मृत्यु कब हो जायेगी। इसलिए प्रतिक्षण मानकर चलो, आवीचि मरण तो चल ही रहा है। सत्रह प्रकार के मरण होते हैं, उनमें एक आवीचि नाम का मरण है। जो प्रतिक्षण आयुकर्म के निषेक नष्ट हो रहे हैं, उसका नाम आवीचि मरण है। तो आवीचि मरण पल-पल में हो रहा है। जो मैं कल था, वह आज नहीं बचा हूँ। नय की दृष्टि से हम बदलते हैं। परन्तु बौद्ध जो है, वह पर्याय का नाश नहीं मानता, द्रव्य का ही नाश मानता है। पंचास्तिकाय, छः द्रव्य, नौ पदार्थ, सात तत्त्व से हटकरके जगत् में कोई वर्णन किसी का होता नहीं है और बहिः प्रमेय की अपेक्षा से सम्यक् मिथ्या भाव होता है। भावप्रमेय की अपेक्षा से कोई मिथ्याभाव होता ही नहीं है। वस्तु का स्वभाव जो है, सो है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''निमित्तान्तर से मृत्यु''

आयुर्यस्यापि दैवज्ञैः परिज्ञाते हितान्तके।
तस्यापि क्षीयते सद्यो, निमित्तान्तर-योगतः ॥ 67॥

अन्वयार्थ—यस्य अपि आयुः = जिस किसी की भी आयु **दैवज्ञैः** = भाग्य के ज्ञाता निमित्तज्ञानियों के द्वारा **हितान्तके** = हित से अन्त होगी व अमुक समय पर छूटेगी **परिज्ञाते** = ऐसा जान लिया जावे **तस्य अपि** = उसकी भी आयु **निमित्तान्तर योगतः** = किसी विपरीत निमित्त के संयोग होने पर **सद्यः** = शीघ्र **क्षीयते** = क्षय हो जाती है।

भावार्थ—जिस किसी की भी आयु निमित्तज्ञानियों के द्वारा हितरूप वा अहित रूप नष्ट होगी वा इस समय पर पूर्ण होगी, ऐसा जान लेने पर भी उसकी आयु का किसी निमित्तान्तर के संयोग से शीघ्र ही क्षय हो जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रंथ में उस जीव को समझा रहे हैं जिसका जीने का और मरने का, दोनों विवेक समाप्त हो चुके हैं। जीव की धारा को स्वतंत्र होकर चिन्तन करने की आवश्यकता है। संबंधों के साथ, परिवार के साथ रहो और वात्सल्य/प्रेम के साथ भी रहो, अलगाव करके मत रहो, लेकिन स्वतंत्रता का अभाव करके मत रहो। शीत की बाधा हो, उष्ण की बाधा हो, तो हम भवन का आलंबन लेते हैं। प्रतिक्षण भवन में रहते हैं, तब भी इतना ज्ञान रहता है कि मैं भवन में हूँ, पर मैं भवन नहीं हूँ, भवन मैं नहीं हूँ। भवन मेरे में नहीं है, मैं भवन में नहीं होने पर भी भवन में ही हूँ। दीवार गिरती है, तब तत्त्वज्ञानी कहता है कि जिसका संघात हुआ था, उसका गिरना निश्चत था। आप कितना ही मजबूत भवन बनवायें, उसे हमेशा कायम नहीं रख सकते। हम शरीर को बाल्यावस्था, किशोरावस्था युवावस्था में दूध-घी पिलाकर, कसरत करके सुदृढ़ तो बना सकते हैं, पर सुदृढ़ रख नहीं पायेंगे।

भवन को बनाने के पूर्व इतना ही विचार करना कि जब मेरी आयु हो, तो इसकी भी आयु है इस अहं का परित्याग कर देना कि मैंने जिस भवन का निर्माण कराया है, वह लंबे समय तक रहेगा। इस भारत की भूमि पर बड़े-बड़े खण्डहर पड़े हुए हैं, उन्हें भी देखकर आया करो, जिससे तुम्हारा मन भी मान से विहीन हो जाए। मेरे पास कितनी-सी संपत्ति है? राजा-महाराजाओं के विशाल भवन खण्डहर हुए पड़े हैं।

आचार्य उमास्वामी महाराज कहेंगे—

"स्निग्ध रूक्षत्वाद् बंधः"

स्निग्ध और रूक्ष का संयोग होता है, तब बंध होता है। जो भवन बना है, वह और आपकी देह, जो कर्म का पिण्ड है, वह स्निग्ध और रूक्ष से ही बनी है। राग-परिणाम स्निग्ध है और द्वेष परिणाम रूक्ष है। बालू रूक्ष है, सीमेंट स्निग्ध है। जैसे-जैसे स्निग्धता समाप्त होती जायेगी, वैसे-वैसे भवन गिरने लगता है। ऐसे-ही ज्ञानियो! तुम्हारे राग की स्निग्धता कमजोर पड़ने लग जाये तो कर्मों की बालू अपने आप झड़ने लग जाये। ज्ञानी! आप उल्टा करते हो। स्निग्धता कम होने ही नहीं देते, तुरन्त पानी छिड़क देते हो। एक से राग कम हो नहीं पाता कि दूसरे से राग बढ़ना प्रारंभ हो जाता है।

ज्ञानी! जगत् में कोई भी परद्रव्य, परवस्तु, परव्यक्ति मेरे दुःख का कारण किंचित् भी नहीं है। जो बंध है, वह स्निग्धता और रूक्षता से है। वियोग स्निग्ध-रूक्षता के संयोग का अभाव है। जैसे-जैसे संयोग हटता जायेगा, स्निग्धता घटेगी और स्निग्धता हटेगी, मोह हटेगा, राग हटेगा। जब तुम राग के संयोगी द्रव्यों को नहीं हटाना चाहते, तो राग त्रैकालिक हटने वाला नहीं है। राग हटाने का भाव तो मन में आता है, पर राग के द्रव्य को हटाने का भाव नहीं आता। जो राग के साधनों का परित्याग किये बिना राग के परित्याग की बात कर रहा है, वह गाय के सींग से दूध निकालने की बात कर रहा है। जो राग की सामग्री से निज आत्मा को भिन्न नहीं कर पा रहा है और राग को अपने से भिन्न करना चाह रहा है, अरे ज्ञानी! यही तेरा महान् अपराध है। मोह हटाना चाहते हो, राग हटाना चाहते हो, तो मोह/राग के निमित्तों से दूर होना प्रारंभ कर दो। वस्तु का अभाव तेरे हाथ में नहीं है, वस्तु से दृष्टि को हटा पाना तेरे हाथ में है।

ज्ञानी! क्या तू जगत् के द्रव्यों का नाश कर पायेगा? जगत् के द्रव्यों का नाश तेरे हाथ में नहीं है, जगत् के द्रव्यों से अपनी आँख को बंद कर लेना तेरे हाथ में है। सम्यक्-दृष्टि जीव जगत् के द्रव्यों से, परिणाम विकृत हो रहे हैं उन परद्रव्यों से, अपनी दृष्टि को हटा कर शांति अनुभव करता है। जितने वैरागी हुए हैं, वे भवन या परिवार का नाश करके नहीं हुए हैं, वे अपनी राग की भावना को विराम देकर साधु बने हैं। ज्ञानी! जब तुम उपवास करते हो तो क्या घर से रसोईघर का अभाव करते हो? रसोई तो बनी, लेकिन तूने अपनी इच्छा पर ताला डाला था। इसका नाम उपवास है। जगत् की वासना, आकांक्षा के द्रव्यों का नाश नहीं करना। कर सको तो आकांक्षा को विराम देना, इसका नाम साधना है। मित्र। जो 'पर' पर आलंबित होकर साधना करता है, वह निर्जरास्थान नहीं बना पायेगा। साधना स्वयं के लिए स्वयं से है। ऐसा नहीं है कि आज मेरा उपवास है तो सबको उपवास करना पड़ेगा।

भैया। तूने गर्मी के मौसम में किसी को बलात् उपवास करवा दिया, वह सहन नहीं कर सका, उसके प्राणपखेरू उड़ गये, तो तुझे हिंसा का दोष लगेगा कि नहीं? इसलिए जैनदर्शन के गूढ़ रहस्यों को जगत् के सामने लाना पड़ेगा, क्योंकि लोगों की धारणा बन गई है कि जैनियों की समाधि अकाल मरण है। इस भ्रम को निकालना पड़ेगा। जैनदर्शन में किसी को मारा नहीं जाता। जब चींटी तक के प्राणों की रक्षा के परिणाम रखते हैं, तो फिर आत्मघात तो महान् पाप होता है, फिर समाधि को आत्मघात कैसे कह सकते हैं? फाँसी, जहर, अग्नि के माध्यम से प्राणों का वियोग होता है, उसका नाम अपघात है, कुमरण है। सल्लेखना में कुछ भी नहीं होता। जब आयुकर्म के निषेक मालूम चल चुके हैं, बचना संभव ही नहीं है, मरना नियत ही है, तो ज्ञानी! हाय-हाय की जगह णमो अरिहंताणं। मृत्यु सुनिश्चित है कि नहीं? उन आयुकर्म के निषेकों की पूर्णता में पर्याय का परिणाम होगा। जिस तरह वस्त्र जीर्ण होते हैं तो नये वस्त्र पहनना अच्छा लगता है। वृद्ध लोगों को यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि पता नहीं कितने दिन जीना है, अब तो मैं चला जाऊँगा। दादा! ऐसा कभी मत सोचना। जिस शरीर से अब चलते नहीं बनता, उठने-बैठने खाने सबमें कष्ट है, यह देह कष्टप्रद हो गई है, इसलिए अब मृत्यु-मित्र कब पधार जाये और इस पुराने तन-पिंजर से मुक्ति दिला दे। ऐसा सोचना। क्यों डरते हो मृत्यु से? मृत्यु तुम्हारा मित्र है।

ज्ञानियो! जैसे वस्त्र के परिणमन से शरीर में परिणमन नहीं होता, वैसे ही शरीर के परिणमन से आत्मा में परिणमन नहीं होता है। ऐसा ज्ञानीपुरुष का चिन्तन होता है। बुद्धिमान मृत्यु के आने के पूर्व अपनी आत्मा की रक्षा कर लेता है। विद्वान् चर्चा में ही लवलीन रह गया और बुद्धिमान ने जान लिया था कि कब मेरा बुलावा आ जाये, इसलिए उसने 'णमो अरिहंताणं' का पाठ शुरू कर दिया था। ज्ञानियो! चर्चा में अधिक समय नष्ट मत कर देना। जितना समय तुम्हारे पास है, णमो अरिहंताणं की जाप करो दिन में कई बार।

'सल्लेखना' कुमरण/अपघात नहीं है। **"समीचीन रीति से जीवन का अंत करना सल्लेखना है। कषायों के साथ-साथ शरीर को कृश करना सल्लेखना है। शरीर कृश कर लिया, कषाय कृश नहीं कर पाये, तो कुमरण हो जायेगा। इसलिए आज से ही प्रारंभ कर देना। जिसका रसना-इन्द्रिय पर नियंत्रण नहीं है, वह तीनकाल में समाधिमरण नहीं कर पायेगा।"** इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, गुप्तियों में मनोगुप्ति, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत और कर्मों में मोहनीय कर्म, इनको जिसने वश कर लिया है, उससे बड़ा जगत् में कोई वीर पुरुष नहीं है।

रसना पर नियंत्रण कीजिये। अंतिम समय में वासना नहीं सतायेगी, रसना सतायेगी। और जीने का रागी जिनवाणी नहीं सुनेगा, अस्पताल जायेगा। स्वाध्याय के काल में समाधि किया करो। दस मिनिट स्वाध्याय करते हो तो पाँच मिनिट समाधि के लिए दीजिये। जो आपने स्वाध्याय किया, उसे आँख बंद करके ध्यान करो कि मेरी अंतिम श्वास का समय कैसे निकलेगा? जब तीर्थयात्रा के लिए घर से बाहर जाते हो तो घर की व्यवस्थायें व्यवस्थित करके जाते हो, तो इस देह से पूर्ण यात्री बनकर निकलो तो परिणामों की व्यवस्था करके निज की यात्रा प्रारंभ कीजिये। मलिन मन को साफ करने के लिए माँ जिनवाणी के साबुन को लेकर चलिये। भावों में रूखापन न आ जाये, इसलिए निर्ग्रन्थ गुरु की वात्सल्यता लेकर चलना। परिणाम विकारों से तिरछे न हो जायें, इसलिए भेदविज्ञान की कंघी लेकर चलिये। तब कहीं तुम्हारी समाधि हो पायेगी, अन्यथा कुमरण हो जायेगा। घर से यात्रा पर निकलने से पूर्व तू तेल, साबुन, कंघा, नाश्ता, सबकुछ रखता है। हे ज्ञानी! तू सल्लेखना करना चाहता है, तो पुण्य का नाश्ता

बांध ले। जिसका पुण्य प्रबल नहीं है, वह मृत्यु के काल में हाय-हाय करेगा। जिसका पुण्य प्रबल है, वह जिनदेव, जिनवाणी की जय बोलेगा। कौन मायावी है, कौन आर्जवी है, इसका बोध तेरी अंतिम श्वास के समय पता चलेगा। ज्ञानी! नाई के पास जाकर नाई को मत सताना कि कितने बाल हैं, कितने काले हैं, कितने सफेद हो चुके हैं? थोड़ा रुक जाना। उस्तरा चलेगा, नीचे टपकेंगे, स्वयं देख लेना कि कितने काले कितने सफेद। किसी व्यक्ति से मत पूछना कि कितना धर्म किया, कितना कर्म किया। अंतिम श्वास का समय आ जाये तो देख लेना कि कितना हाय-हाय कर रहा है। बस, समझ लेना कि पापीजीव है, पाप में जिया है। पुण्यात्मा जीव अंतिम श्वास के काल में कहेगा—

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहांत के समय में, तुमको न भूल पाऊँ॥ स.पा. ॥

अपने आप्त जनों से कह देना कि आप मेरे सच्चे आप्त नहीं हो। मेरे सच्चे आप्त तो वीतराग अरिहंत देव हैं। ज्ञानियो! जीवन जीने की शैलियाँ तो कोई भी बता सकता है, परन्तु शांति से मरण की कला जिनशासन ने बताई है। जिनशासन से बाहर शांति से मरण की कोई कला नहीं है। अग्निसमाधि, जलसमाधि जानते हो क्या है? हमारे आगम में ध्यान ही अग्नि समाधि है। वे वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन ध्यान की अग्नि में कर्म-कलंक को जलाते हैं। अग्निसमाधि से तात्पर्य ध्यानाग्नि। मैं प्रतिदिन हवन करता हूँ

ये नित्यं व्रत मंत्र होम-निरता ध्यानाग्नि होत्रा कुलाः।
षट् कर्माभिरतास्तपोधनधनाः साधुक्रियाः साधवः॥ आ.भ. ॥

जो नित्य ही व्रत, मन्त्र, ध्यान, का हवन करते हैं, जिसमें कर्मों की समिधायें जलती हैं, वह हवन मैं रोज करता हूँ। यह तो साधु की क्रिया ही है।

जहाँ-जहाँ विपर्यास होता है, वहाँ कहीं-न-कहीं सम्यक् तत्त्व को उल्टा किया जाता है। जलसमाधि भी स्वीकार है। आत्मा नदी है और संयम का नीर भरा हुआ है। उसमें योगी निमग्न हो जाते हैं, यह जलसमाधि है, न कि नदी/सरोवर में डूबकर मर जाना

जलसमाधि है। इसका नाम कुमरण है जो जड़ पानी में डूबकर मर रहा है। यदि आपके मन में करुणा है, तो अपने संपर्क में आने वाले जीवों को जरूर समझाना कि कुमरण मत कर लेना। ज्ञानी! यह भी नहीं सोचना कि जल्दी मेरी समाधि हो जाये। ज्ञानी! जो जल्दी समाधि समाधि चिल्लाता है, लगता है कि वह अभागा संयम के पालन में कष्ट महसूस कर रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव कभी शीघ्र समाधि की भावना नहीं भाता है। बल्कि यह कहता है कि मेरी संयम की साधना निर्मल हो और जब भी मरण हो, तो समाधिपूर्वक हो। जो जीने की आकांक्षा, मरने की आकांक्षा, इहलोक सुख, परलोक की आकांक्षा कर रहा है, ये सब समाधि के अतिचार हैं। जीवन जीना चाहिए संयम के लिये, संयम धारण करना चाहिए समाधि के लिये।

"संयमाय श्रुतं धत्ते।"

ज्ञानी! जगत् की रीति उल्टी हो गई है। ऐसे लोग मैंने अपनी आँखों से देखे हैं। एक सज्जन ने तीन प्रतिमा धारण कर ली और किसी विद्वान् ने उनसे बोल दिया कि तुम तीन समय सामायिक करोगे तो स्वाध्याय कब करोगे ? स्वाध्याय का समय तुम्हारा गया। वह कुंथलगिरी में मेरे पास आया और कहने लगा- महाराज श्री! एक प्रतिमा कम कर लो मेरी। मैंने कहा-क्यों? कहने लगा—'पूरा समय हमारा शुद्ध भोजन की व्यवस्था और सामायिक करने में निकल जायेगा तो मैं स्वाध्याय कब करूँगा?' बेचारा भोला ठगा गया। कितना सहज सरल जीव होगा।

महाराष्ट्र में भोंसेगाँव में आदिसागर जी महाराज हुए हैं। उनसे किसी विद्वान् ने कह दिया-'महाराज श्री! पंचमकाल में मुनिराज निगोद जायेंगे।' बेचारा भोला जीव घर आ गया और अपनी धर्मपत्नी से कहते हैं- 'मुझे भाखरी दो (ज्वार की रोटी)।' उनकी पत्नी तो धर्मपत्नी थी। जो पतन से बचाये, वह पत्नी। वह नारी कहती है- स्वामी! जिनमुद्रा में अंजुली पर ग्रास दिया जाता है, रोटी नहीं दी जाती। आप ऐसा विचार क्यों कर रहे हैं? मात्र एक ही प्राणी है जो वमन करके चाटता है। श्वान। इंसान नहीं चाटता। आपको मालूम नहीं है। पण्डित जी ने ठीक कहा है कि पंचमकाल के मुनिराज निगोद जाते हैं। धन्य हो उस नारी को। उसने विद्वान् को गलत नहीं बोला। स्वामी। पंडित जी ने ठीक कहा है, लेकिन आप उसके अर्थ को नहीं समझे। पंचमकाल के ही मुनि निगोद

जाते हैं, परन्तु जो मुनि बनकर भी मुनि नहीं बन पाते हैं। मुनि बनकर मुनि सल्लेखनापूर्वक परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करते हैं। बोले-'ऐसा है क्या?' ऐसा ही है। 'तो उठाओ मेरे पीछी-कमण्डल।' मुनियराज वापस चले गये। बाद में उपवास किये, तपस्या की, सल्लेखना को प्राप्त हुए।

"जे धम्मे सूरा, ते कम्मे सूरा"

युवाओ! जिस शक्ति का दुरुपयोग तुम पापों में करते हो, उस शक्ति का उपयोग संयम में करोगे तो भगवान् बन जाओगे।

हे भटकते भगवन्तो! ग्रंथों की गाथाओं को, ग्रंथों के अक्षरों को आँखों के आगे से निकाल देने का नाम स्वाध्याय नहीं है। मुमुक्षुओ! स्वाध्याय है स्व-अध्याय। निज आत्मा को विषय-कषाय से बचाकर रखना ही परम स्वाध्याय है। उसकी प्राप्ति के लिए आलंबनभूत द्रव्यश्रुत है। द्रव्यश्रुत का अध्ययन तो करना। संयम की रक्षा के लिए द्रव्यश्रुत का स्वाध्याय है, संयम के नाश के लिए नहीं। आचार्यभगवन् कुंदकुंद स्वामी, पूज्यपाद स्वामी, विद्यानंद स्वामी, अकलंक स्वामी। सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक तीनों ग्रंथों को निहारो। उन्होंने क्या उल्लेख किया? प्रशस्त प्रज्ञा के अध्यवसाय के लिये, संयम की रक्षा के लिए, वीतराग शासन की प्रभावना के लिए स्वाध्याय करना चाहिए। चित्त विक्षिप्त न हो, परिणामों के खोटे अध्यवसाय-भाव से बचने के लिए स्वाध्याय है।

ज्ञानी! ज्ञान पर्यायातीत नहीं कर सकेगा। पर्यायातीत होना है तो पर्याय को संयम से शृंगारित करना पड़ेगा। संयम के लिए श्रुत धारण करना चाहिए। स्वाध्याय इसलिए करते हैं ताकि संयम जाग्रत रहे, परिणाम पवित्र रहें।

पंडित आशाधर जी ने अपने श्रावकाचार में लिखा है- प्राणों का अंत भी क्यों न हो, लेकिन गुरु की साक्षी में अंगीकार किये गये व्रत को प्राणों का वियोग होने पर भी छोड़ मत देना। प्राण के भंग होने पर तत्क्षण दु:ख होता है, परन्तु व्रत का भंग करने पर भव-भव में दु:ख होता है। जो भी व्रत लेना, प्राण-प्रण से पालन करना। प्राण छोड़ देना, पर प्रण मत छोड़ना।

एक जीव का कैसे स्थिलीकरण होता है? वह भोला प्राणी, जो एक प्रतिमा कम करवाने आया था, बोला—महाराज! पंडित जी ने समझाया था, क्योंकि उनके स्वाध्याय के समय मेरा सामायिक का समय हो जाता था, तो उनका एक सदस्य कम हो जाता था। श्रोताओं का राग देखो, एक जीव से सामायिक छुड़वाने को कह दिया, जबकि यह भी कह सकते थे भैया! आपके आने से तत्त्वरुचि और बढ़ती है, हम आपका इंतजार करेंगे, अपने समय को 10/15 मिनिट आगे-पीछे कर लेते हैं। ज्ञानी! आप अपने समय को ठीक कर लेना, पर किसी भी व्यक्ति के व्रत भंग का विचार मन में मत लाना। अंतराय पड़ेगा। आपकी व्यवस्था है तो कर्म की भी व्यवस्था है।

कर्म कर्म हिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्व-स्व प्रभाव-भूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥ इष॰/31॥

कर्म कर्म का हित चाहता है, जीव जीव का हित चाहता है। स्वार्थ को कौन नहीं चाहता? ज्ञानी! ध्यान रखना, सम्यग्दृष्टि जीव को अपने घर में तोते आदि नहीं पालना चाहिए। कुत्ते, बिल्ली आदि पालने वाले अहिंसक नहीं, हिंसक हैं। उस जीव ने किसी का वध किया तो उसका पाप पालनहारे को लगेगा। जिस घर में कुत्ते पले हों, मैं वहाँ आहार करने नहीं जाता। ज्ञानी! व्यवस्था के राग में अंतराय कर्म का बंध मत कर लेना। सर्वाधिक अंतराय का बंध जीव व्यवस्था के राग में कर रहा है।

बुन्देलखण्ड में कहते हैं कि टोका और टपका से बड़ा डर लगता है। भगवान् के चरणों में कभी किसी को टोका-टोकी मत करना। कोई बालक पूजा करने आया, जल की जगह फल चढ़ा दे, तो टोकना मत। बाद में चाहो तो धीरे से समझा देना। बहुत सारे मंदिर टोका-टोकी के कारण खाली हो गए। आप भी तो सीखे थे कभी। सिखाने का प्रयास तो करना, पर भगवान् के समाने अपने और उसके परिणाम खराब मत करना।

सल्लेखना करना है तो स्वाध्याय को जीवन की अंतिम श्वास तक मत छोड़ना। आगम-वचन है। 'भगवती आराधना' जी में लिखा है। निर्ग्रन्थ योगी की अंतिम साधना तक भी कोई क्रिया अवशेष बचती है, तो वह है स्वाध्याय। आप कहोगे कि कैसे करेंगे स्वाध्याय? हे ज्ञानी! जब आँख में अक्षर देखने की सामर्थ्य न हो, तो आँख बंद कर लेना और णमोकार की माला फेर लेना, यह भी स्वाध्याय है। णमोकार की माला फेरने

की भी सामर्थ्य समाप्त हो जाये, तो हे ज्ञानी! ॐ ॐ। आचार्य शांतिसागर जी को अपने स्मृति पटल पर लाओ। जो अंतिम उपदेश था, उसमें हर वाक्य के साथ 'ॐ नमः सिद्धेभ्यः,' संयम धारण करो। पर-उपदेश देने के साथ-साथ निज पर भी लक्ष्य था। भैया! एक समय काल प्रमाण भी तुम्हारे परिणाम हो जाएँ कि आज मैं अमुक वस्तु छोड़ना चाहता हूँ, तो छोड़ देना। भले ही दूसरे समय सेवन कर लेना, पर एक समय को छोड़ देना। क्यों? एक समय-प्रमाण-काल में भी आपकी आत्मा में संस्कार आ गया। कई बार धारण किया, कई बार छोड़ा, वह भी श्रेष्ठ है। जिसने धारण किया, लेकिन छूट गया, कभी-न-कभी प्रायश्चित लेने के परिणाम होंगे। नहीं है जीवन भर छोड़ने की सामर्थ्य, एक मिनिट की तो है। प्रवचन सुनने बैठे हो, तब कुछ ग्रहण नहीं कर रहे हो तो त्याग करके बैठो। जब तक प्रवचन सुनने बैठा हूँ, चारों प्रकार के आहार-पानी का त्याग। ज्ञानी! तेरी सल्लेखना प्रारंभ हो गई। तत्त्व को सुनते-सुनते कहीं अंतिम श्वास निकल गई तो निर्वाण प्राप्त होगा।

आयुर्यस्यापि दैवज्ञैः, परिज्ञाते हितान्तके।
तस्यापि क्षीयते सद्यो, निमित्तान्तरयोगतः॥ 67॥

यहाँ पर आचार्यमहाराज कह रहे हैं, हे ज्ञानी! कभी-कभी आपने ज्योतिषी को अपनी कुण्डली दिखा ली उसने कह दिया कि तुम तो 90-100 वर्ष तक जियोगे। ठीक है, परन्तु ज्योतिषियों की वह गणना भी फेल हो जाती है। मनुष्य व तिर्यञ्च के अपघात/अकाल मरण भी होता है। कोई दुर्घटना घट गई तो जितने आयुकर्म के निषेक थे, अन्तर्मुहूर्त में खिर गये। विष की वेदना, शस्त्र के घात द्वारा, श्वास के निरोध से, हिमपात, उष्णता, आहार का निरोध, इनके निमित्त से असमय में आयु की उदीरणा हो जाती है। ज्ञानी! ध्यान रखना, जब भी मरण होगा, अंतर्मुहूर्त के अंदर-अंदर अगले भव की आयु का बंध करेगा, तभी मृत्यु होगी। बिना आयुबंध के मरण नहीं होगा। यह मत सोचना कि अपघात हो गया तो आत्मा भटक रही होगी। आत्मा कहीं नहीं भटकती। 1-2-3 समय तक जीव अनाहारक होता है, चौथे समय में जीव नियम से आहारक होता है। इसलिए ध्यान रखना, कर्मसिद्धान्त को भी समझते चलो।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि जिस किसी की भी आयु ज्योतिषियों के द्वारा ज्ञात कर ली गई, तब भी नष्ट होगी। ज्योतिषी ने भले ही बोल दिया हो कि तुम 100 वर्ष तक जियोगे, लेकिन वह भी शीघ्र क्षय को प्राप्त हो जाती है, क्योंकि कोई ऐसा निमित्त मिल गया। जितनी सुख-सुविधायें हैं, सब दु:खभूत हैं।

ज्ञानियो! ध्यान रखना, निमित्तों के मिलने पर असमय में भी आयु का क्षय हो सकता है, इसलिए प्रतिक्षण अपने आप में सजग रहो। सीमा पर खड़ा सैनिक हर समय तैयार रहता है। ऐसे-ही निर्ग्रन्थों का धर्म कहता है कि चाहे मृत्यु आई हो या न आई हो, प्रतिक्षण सजग रहो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''जन्म की निरर्थकता''

जिनैर्निगदितं धर्मं, सर्वसौख्य महानिधिम्।
ये न तं प्रतिपद्यन्ते, तेषां जन्म निरर्थकम्॥ 68॥

अन्वयार्थ—जिनैः = श्री जिनेन्द्रों ने **सर्वसौख्य महानिधिम्** = सर्वसुख का भण्डार स्वरूप **धर्म** = धर्म को **निगदितं** = कहा है **ये** = जो **तं** = उसे **न प्रतिपद्यन्ते** = नहीं धारण करते हैं **तेषां** = उनका **जन्मनिरर्थकं** = जन्म वृथा है।

भावार्थ—जिनेन्द्र भगवान् ने धर्म को सर्व सुख की महानिधि कहा है। सर्वज्ञ प्रणीत इस धर्म को जो धारण नहीं करते हैं, उनका जन्म निरर्थक (निष्फल) है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रंथ में उस परम महोत्सव की चर्चा कर रहे हैं, जिसके अभाव में पंचमकाल में आये हैं। मुमुक्षुओ! कोटि-कोटि भव तपस्या की, लेकिन जीवन में एक बार भी सल्लेखना-मरण नहीं किया है। जिस जीव ने समाधि-मरण कर लिया हो, तो वह श्रावक भी 2-3 या 7-8 भव में निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

दिगम्बर मुनि का समाधि मरण करना 'पण्डित मरण' है और तीर्थंकर केवली का मरण है, वह पण्डित-पण्डित मरण है। समाधि की प्रक्रिया व्यवहार में आँखों के सामने दिखा देना भिन्न विषय है और श्रद्धानपूर्वक आस्थापूर्वक आत्मा का आत्मा में लीनतापूर्वक मरण का नाम समाधिमरण है। साधन से साध्य का ज्ञान होता है। यह यथार्थ है कि पंचमकाल में आये हो तो यह अनुमान-ज्ञान है कि आपने सल्लेखनापूर्वक मरण नहीं किया। अभी भी आपके हाथ में है, बचा सकते हो। अनंतों पर करुणा की है, आज मेरी बात मान लो, इस पर्याय में अपनी आत्मा पर करुणा कर लो। कोटि-कोटि भव आपने भोगों की बलिवेदी पर आहूत किये हैं। हे मित्रो! एक भव अरिहंत की

देशना के अनुसार सल्लेखना को सौंप दो। जिनालय में भी प्रवेश किया तो पंखा देखकर उसके नीचे बैठा। हे ज्ञानी! तूने घर में तो भोग भोगे ही हैं, तीर्थंकर के पादमूल में भी तूने स्पर्शन इन्द्रिय के भोग को नहीं छोड़ा। आस्रव कहेगा, बंध कहेगा कि आपको मालूम रहे या न रहे, पर मुझे तेरी हर क्षण की प्रवृत्ति व परिणति दोनों का ध्यान है। जिसकी प्रवृत्ति ही अशुभ हो, उसकी परिणति शुभ कैसे हो सकती है? ज्ञानी! प्रवृत्ति क्रिया है, परिणति परिणाम है। जिसकी प्रवृत्ति अब्रह्मभूत है, हिंसा-चोरीभूत है, जिसकी प्रवृत्ति अशुभ दिख रही है, उसकी परिणति अशुभ होगी ही। जब भी तत्त्व की व्याख्या करो, हेतु-हेतु मत दो, भाव से करो।

नय-प्रमाणाभ्यां वस्तु सिद्धर् इति सिद्धः सिद्धान्तः (न्यायदीपिका 87)

जो भी वस्तु की सिद्धि होती है, वह नय व प्रमाण से होती है। यह सिद्धान्त सिद्ध है। जैनदर्शन में न्याय का, बालक से लेकर वृद्ध तक के लिए, उत्कृष्ट ग्रंथ है 'न्याय दीपिका'। अष्टसहस्री, अष्टशती, प्रमेयकमलमार्तण्ड, न्यायकुमुदचन्द्र, सिद्धि विनिश्चय जैसे गंभीर ग्रंथ यदि प्रज्ञा में प्रवेश न कर पायें, तो 'न्यायदीपिका' का अध्ययन करना चाहिए। इन महान् ग्रंथों का निचोड़ 'न्यायदीपिका' में है। अभिनव यति धर्मभूषण आचार्य महाराज कृत 'न्याय दीपिका' ग्रंथ की पण्डित दरबारीलाल कोठिया जी ने जो हिन्दी की है, उसे पढ़ना।

युवाओ! कटनी में चूने की भट्टे हैं। वहाँ की तपन दूर-दूर तक फैली रहती है। भट्टे को देखते ही आपके शरीर में उष्णता प्रारंभ हो जाती है संवेदना प्रारंभ होती कि नहीं? सरोवर के सामने से निकलता है तो ठंडक महसूस होती है कि नहीं?

साधन से साध्य का ज्ञान। शीतल पानी से स्पर्शित हुई वायु भी शीतल हो जाती है, ऐसे ही मुमुक्षुओ! तुमको दो दृष्टियाँ देखना है। भट्टे से टकराई वायु तपन दे रही है, सरोवर की वायु शीतलता दे रही है। वायु प्रवृत्ति है और भट्टे में जो हो रहा है, वह परिणति है। प्रवृत्ति आपको तपन दे रही है, तो परिणति कितनी तप रही होगी? अहो नारद जी! आपकी प्रवृत्ति का साक्षी इतिहास है। आपने पिता-पुत्र का युद्ध कराया है। आपकी प्रवृत्ति कितनी विचित्र थी, तो उसकी परिणति कितनी विचित्र होगी? माँ! रोटी पकाने के लिए तवा तपाना पड़ता है, लेकिन उस पर अंगुली रखोगे तो जलेगी ही।

यदि तुम किसी निमित्त को लेकर कषाय कर रहे हो,यदि गुरु शिष्य को भी डाँटता है, तो कर्म का बंध होगा ही, इसमें कोई शंका नहीं। करणानुयोग है। यदि आप उनको समझाने का विकल्प कर रहे हो तो उतनी साधना आपको अलग से करना पड़ेगी, क्योंकि शिष्य परवस्तु है, पर के राग में निज की विडम्बना कर लेना ज्ञानियों का काम नहीं। इस बात को नहीं जानते क्या?

ज्ञानी! तू बेटे को पहले खिलायेगा, लेकिन जब भूख लगेगी तो तू स्वयं खायेगा कि नहीं? खायेगा। बेटे को भूख लगने पर खिलाता है और स्वयं भी खाता है। जब तुझे इतना ज्ञान है, तो उस पिता से कहना, हे तात! तू मुझे सुधारने में क्रोध करेगा, पर पिताजी! विश्वास रखना, जितना तुम क्रोध करोगे, उतना तुम्हारा बुरा निश्चित है। मैं सुधर सकूँ या न सुधर सकूँ, मेरी योग्यता है, पर तुम्हारा बिगाड़ सुनिश्चित है। हे लकड़ी! तू रोटी पकाने के लिए जल रही है, रोटी पक पाये या न पक पाये, पर तेरा जलना सुनिश्चित है।

आगम में कहा है कि यदि **''मुनिराज की साधना पाँच मिनिट होती है, तो आचार्य को दस मिनिट करना चाहिए। क्यों? ज्येष्ठत्व गुण सिंहासन पर बैठने मात्र के लिये नहीं है। आचार्य के 36 गुणों में ज्येष्ठत्व नाम का गुण भी है। साधुओं की साधना की अपेक्षा से आचार्य की साधना विशेष होना चाहिए।''**

ज्ञानी! एक समय था जब छप्पर डालते थे और आधार देने के लिए वजन टाँगते थे। वजन अधिक रखा जाता था ताकि छप्पर उड़ न जाये। हे आचार्यभगवन्! शिष्य छप्पर-स्थानीय है, आप वजन-स्थानीय हो। वजन नहीं होगा तो ये उड़ जायेंगे और वजन होगा तो ये टिक जायेंगे, इसलिए ज्येष्ठत्व गुण कहता है कि आपमें ज्ञान के साथ चारित्र का भी वजन होना चाहिए। गुरु वही होता है, जो गुरू यानि वजनदार होता है। साधना के काल में निज साध्य को देखना चाहिए। जो निज साध्य को भूल जाता है, उसका भेष अवशेष रह जाता है, भाव नष्ट हो जाता है। अनुमान कह रहा है कि परिणति कैसी होगी। यह प्रवृत्ति बता रही है। अनुमान-ज्ञान को यदि नहीं मानते हो, तो तुम जैन नहीं हो।

परोक्षप्रमाण के 5 भेद हैं। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, अनुमान, तर्क और आगम। इन पाँच प्रमाणों में अनुमान भी प्रमाण है। यदि अनुमान-प्रमाण को तुम खो गये, तो जगत् में न जीवन जी पाओगे न अनुमान का जीवन जी पाओगे। साँवले व्यक्ति के मन में कषाय भड़क जाये तो और-अधिक (दोगुना) साँवला हो जायेगा। चेहरे को देखकरके ज्योतिषी से पूछने की क्या आवश्यकता है? निमित्तज्ञान, अनुमानज्ञान लगा लीजिए।

जितना ज्योतिष है, आठ प्रकार का निमित्त है। वह आठ प्रकार का निमित्त कैसे जाना जाता है ? माना कि आज आपके वस्त्र को चूहे ने काट लिया है, तो निमित्तज्ञानी बता देगा कि यह छेद नाम का निमित्त है। तुम्हारे वस्त्र को काटा है तो तुम्हारे साथ क्या घटना घटने वाली है। ध्यान रखना, चूहे के द्वारा वस्त्र काटने से कुछ नहीं हो रहा, जो होने वाला है उसको इंगित कर रहा है। पुरुष की बायीं आँख फड़क रही है, बायीं आँख फड़कने से घटना नहीं घटने वाली है, ज्ञानी! घटना घट रही थी, उसकी सूचना है, सँभल जा। जब रावण युद्ध के लिए लंका से निकला, उस काल में भूकम्प हुआ, सूखे वृक्ष पर कौआ कर्कश आवाज कर रहा था। निमित्तज्ञानी जान गया था। उत्तरीय वस्त्र खिसक रहा है, माला टूट रही है, यह संकेत है कि आपकी माला टूटने वाली है। यही तो रिष्ट है।

विद्वान् प्रवचन करने मंच पर आता है तो वही नहीं होता जो घर में होता है। मंच पर बदल कर आता है। यदि मन से बदल कर आ जाये, तो भगवान् कहलाये। विद्वान् भाषा बदल कर आता है और निर्ग्रन्थ तपोधन भाव बदल कर आते हैं।

प्रवृत्ति साधन है, परिणति साध्य है। प्रवृत्ति के माध्यम से परिणति को जाना जाता है। जिसकी प्रवृत्ति अशुभ है, उसकी परिणति शुभ कैसे हो सकती है? सम्यक्त्वाचरण के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। प्रवृत्ति का बोध परिणति से हो या न हो, लेकिन परिणति का बोध प्रवृत्ति से होता है। परिणति भीतर की वस्तु है, वह दिखाई नहीं देती, पर प्रवृत्ति तो दिखाई दे रही है। अब यहाँ नहीं चल सकेगा कि मेरे भाव विशुद्ध हैं, पर पानी छान कर नहीं पी पाता हूँ। ज्ञानी! बिल्कुल विशुद्ध नहीं हैं। परिणाम विशद्ध होते, तो करुणारूप प्रवृत्ति तेरी होती।

ज्ञानी! कषाय में शान्तता नहीं होती। कषाय में भी पुरुष शांत बैठता है। चिड़िया मारने वाला शिकारी क्या शांत नहीं बैठता? शांत नहीं बैठेगा तो चिड़िया कैसे पकड़ेगा? ऐसे ही किसी की योग की क्रिया को शांत कह कर उपयोग की शांति मत स्वीकार कर लेना। ज्ञानियो! अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए कषाय भी शांत बैठती है। ज्ञानियो! लोभकषाय क्रोधकषाय को कैसे जीतती है? परिग्रह के लोभ में, परिग्रह संज्ञा के राग में और क्रोधकषाय की साक्षीपूर्वक मान सामने खड़ा था। **''हे लोभ! तूने उच्च कुल भी नहीं देखा। कीटनाशक, खाद, बीज,ब्यूटीपार्लर, चप्पल-जूते की दुकान, हे लोभी! तू क्या कर रहा है? सुबह से अरिहंत का अभिषेक, निर्ग्रन्थ को दान, जिनवाणी का स्वाध्याय चल रहा है और जूते-चप्पल की दुकान खोले बैठा है। हे म्लेच्छी! तू जन्म से, जाति से उच्च आर्य है, धर्म से आर्य है, लेकिन कर्म से म्लेच्छ है। उच्च कुल के पुरुषों को न ईंट के भट्टे लगाना चाहिए न आटाचक्की। जिसमें कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती हो, ऐसा व्यापार नहीं करना।''** सन्तान से कह देना कि भीख माँग कर खा लेना, पर ऐसे व्यापार नहीं करना जिससे हमारा जिनशासन बदनाम हो जाये।

युवाओ! सुन रहे हो ? सब तुम्हारे ऊपर है कि इस धर्म को कैसे लेकर चलना है। प्रवृत्ति तुम्हारी परिणति को बता रही है। तटस्थ होकर सुनना। यदि बेटे की प्रवृत्ति अशुभ दिख जाये, तो पुनः 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' की ओर निहार लेना। बेटा तमंचा लेकर खेल रहा है, कि गुलेल लेकर खेल रहा, कि माला लेकर खेल रहा है? ये मैं नहीं कह रहा, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती कह रहे हैं। जिसकी प्रवृत्ति सहज ही विषकूट या पंजररूप जा रही है, ज्ञानी! उसका कुमतिज्ञान काम कर रहा है। यह मिथ्यादृष्टि जीव है, खोटी गति से आया जीव है। एक वह संतान है जो झाड़ू उठाकर अंजली लगाकर कहता है कि मैं महाराज हूँ। अरिहंत की प्रतिमा के साथ दिनभर बैठता है। एक वह बालक है जो मचल रहा है कि मुझे महाराज के पास जाना है, दूसरा वह बालक है जो मचल रहा है कि मुझे सिनेमा हॉल जाना है। परिणति को बताने वाली प्रवृत्ति है।

"साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम्" (प.मु.सू.)

साधन से साध्य का ज्ञान 'अनुमान' है। तुम शांत तटस्थ होकर बैठना और अपने परिणामों को ज्ञेय बनाना, कि मेरी प्रवृत्ति क्या करने की हो रही है? समय खाली है तो मंदिर जाऊँ कि किसी होटल में जाऊँ? प्रवृत्ति मंदिर से हटकर होटल की ओर जा रही है, इसका तात्पर्य है, जयसेन स्वामी की भाषा में, पापजीव है। पुण्यजीव, पापजीव। जो सहज ही पाप की ओर अपनी परिणति ले जा रहा है, हे जीव! किसी से मत पूछना तू क्या है? तू पापजीव है। यदि तेरे अध्यवसाय परिणाम पंचपरमेष्ठी की ओर जायें तो समझ लेना पुण्यजीव हूँ। क्रियावती शक्ति क्या कर रही है? गमनागमन में उदासीन रूप सहकारी साधक बन रही है।

''आचार्य श्रीविद्यासागर जी महाराज ने भोजपुर तीर्थ पर एक बात कही थी मुझसे, जीवन में श्री और स्त्री, इन दो से दूर रहना। भैया! योगियों के पास जाओ तो उनसे बात कम करना, उनसे लेना ज्यादा। जहाँ तुम्हें सद्गुण मिलें, भर लेना। यह पंचमकाल चल रहा है, इसमें निर्वाण नहीं होता, लेकिन इतना ध्यान रखना कि निर्वाणमार्ग अबाधित है। इस खोटे कलिकाल में हम निजी साधना निज की करेंगे ही, पर ऐसा कार्य करना जिससे जगत के भटकते जीव भी उन्मार्ग से बचें। धर्मप्रभावना से शून्य जीवन मत जीना।''

विद्वानों से कह रहा हूँ, ज्ञानी! विद्या का मिलना तो पुण्य है, फिर भी कमजोर है। क्यों? तालाब में पानी गहरा है, सीढ़ियाँ भी हैं, लेकिन इतनी गहरी हैं कि गाय जाकर पानी नहीं पी सकती। विद्वत्ता मिले, चारित्र मिले और व्यक्तित्त्व मिले, प्रभुत्व मिले, तो आप ऐसे सरोवर बनाना जिससे पानी फैल जाये और गाय पानी पी सके। ज्ञानी! विद्वत्ता के साथ-साथ सरलता मिल जाये, तो कोई भी जीव तुमसे तत्त्व का पानी पीकर चला जाये। ज्ञान मिलने पर लोग अहंकार में डूब जाते हैं। परिणामस्वरूप उनसे कोई कुछ पा नहीं पाता। परिणाम सरल नहीं, प्रवृत्ति सरल नहीं, उस विद्वान् से कोई सीख नहीं पाता है। ज्ञान रहे, पर ज्ञान का ज्ञानीपना न झलके, फिर भी ज्ञानीपना हो। आँखों की मृदुलता यानि अत्यंत तीव्र पुण्य का दान दिया होगा, साथ में कषाय भाव को भी सहन करने के परिणाम किये होंगे, इसलिए भद्रपरिणाम मिले होंगे।

मोक्ष नहीं है, पर मोक्षमार्ग है। हे श्रावको। ऐसा उपक्रम करना जिससे बिखरती समाज अखण्डता की ओर बढ़ती रहे, क्योंकि जब दया आती है, तो व्यवहार से तो परसापेक्ष होती है, लेकिन जब दया भीतर से आती है तो परनिरपेक्ष होती है। जब तक भीतर से दया नहीं फूट रही है, तब तक परसापेक्ष दया को छोड़ मत देना।

जिनैर्निगदितं धर्मं सर्वसौख्यमहानिधिम्।
ये न तं प्रतिपद्यन्ते, तेषां जन्म निरर्थकम्॥ 68॥

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि भगवान् जिनेन्द्रदेव कथित जो धर्म है, वही सम्पूर्ण सुखों का खजाना है। जो ऐसे धर्म को जानकर भी नहीं स्वीकारता, उसका जन्म व्यर्थ है, निरर्थक है। खोटे काल में आकर भी वीतराग धर्म मिला है, इससे बड़ा पुण्य अपना क्या होगा ? इस पुण्य को व्यर्थ मत जाने देना। जहाँ तुम आये हो, जो तुम्हें मिला है, इसे व्यर्थ मत जाने देना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''पापकर्म की दशा''

हितं कर्म परित्यज्य, पापकर्मसु रज्यते।
तेन वै दह्यते चेतः, शोचनीयो भविष्यति॥ 69 ॥

अन्वयार्थ—हितं कर्म = आत्मा की हितकारी क्रिया को **परित्यज्य** = छोड़कर **पापकर्मसु** = पापकर्मों में **रज्यते** = जो रंजायमान हो जाता है **तेन** = उसने **वै** = यथार्थ में, **चेतः** = अपने आपको **दह्यते** =दग्ध कर दिया **शोचनीयः** = शोककारक यह बात **भविष्यति** = भविष्य में होगी।

भावार्थ—जो मानव अभी आत्महितकारी क्रियाओं को छोड़कर पापक्रियाओं में रंजायमान होते हैं (लीन होते हैं) वे निश्चय से अपने चित्त को व्यर्थ में दग्ध करते हैं, भविष्य में उनकी दशा शोचनीय होगी।

''जिनधर्म को धारण करने की प्रेरणा''

यदि नामाप्रियं दुःखं, सुखं वा यदि वा प्रियम्।
ततः कुरुत सद्धर्मं, जिनानां जितजन्मनाम्॥ 70 ॥

अन्वयार्थ—यदि = यदि **नाम** = वास्तव में **दुःखं** = दुःख **अप्रियं** = अच्छा नहीं लगता है **वा यदि सुखं वा प्रियम्** = तथा यदि सुख प्यारा लगता है **ततः** = तो **जित जन्मनाम्** = संसार को जीतने वाले **जिनानां** = जिनेन्द्रों के **सद्धर्मं** = सच्चे धर्म को **कुरुत** = पालो।

भावार्थ—हे आत्मन्! यदि वास्तव में तुझे दुःख अच्छा नहीं लगता है और सुख प्यारा लगता है, तो संसार (जन्म) को जीतने वाले जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए सद्धर्म को धारण कर।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर

कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रंथ में भव्य जीवों को तत्त्वदेशना में समझा रहे हैं— अहो! अनंत पूर्वभवों के पुण्य के संस्कारों के वश हुआ यह जीव उत्तम कुल को प्राप्त हुआ है। क्या-क्या तपस्या/साधना की होगी जोकि यह पुण्यभोग का काल चल रहा है। पुण्यभोग के काल में पुण्य के संचय पर दृष्टि नहीं है। जो भोजन करता है, उसे अग्नि की तपन का वेदन नहीं होता है। उस माँ से मत पूछो जिसने रसोई को नहीं बनाया है। जिस-जिस पर्याय में पुण्य किया हो, उस पर्याय से पूछो कि तुमने कितनी साधना की है।

जितना द्रव्य का उपभोग कर रहे हो, जितना सुख भोग रहे हो, अपने अन्तर्मन में प्रश्न करो कि जो सुख-सुविधायें आपको प्राप्त हैं, उनकी जो अनुभूति आप ले रहे हो, तद्रूप पुण्य का कार्य भी आप कर रहे हो कि नहीं? जितना उपभोग चल रहा है, उतना संचय चल रहा है कि नहीं? यदि पूर्व समाप्त हो गया, तो भविष्य क्या होगा? यह किसी से पूछने मत जाना, तुझे मालूम है कि कर क्या रहा है? वर्तमान जैसा है, भविष्य वैसा होगा। अहो कृषक! जब तूने आषाढ़ के मास में बीज का वपन नहीं किया, तो तू कार्तिक/क्वांर के महीने में हरी-भरी खेती देख सकेगा क्या? पुण्य की फसल भोगों में खर्च कर चुके हो, भविष्य के लिए संचय हो नहीं रहा है, तो आगामी परिणति क्या होगी? इसके लिए पुनः कह रहा हूँ, 'त्रैकाल्यं' पर दृष्टि जाना चाहिए। त्रैकालिकता पर जिसकी दृष्टि नहीं है, वह चार्वाक है। जो द्रव्य की त्रैकालिकता को मानता है, उसी से धर्म की चर्चा करना चाहिए। पुण्य-पाप की व्याख्या जीव की शाश्वतता स्वीकारने वाले के लिए है। आप कब से हो? जो सिद्ध भगवान् हैं, वे भगवत्ता की पर्याय की दृष्टि से त्रैकालिक नहीं हैं। मैं जीवंत भाव से त्रैकालिक हूँ। कालचक्र निहार रहा है। माँ! आपके बेटे को स्मृति कब से है? जब से वह जन्मा है। जब से जानना सीखा है। ज्ञानी! आपको स्मृति कब से है? तू जो भी बात करेगा, मध्य की ही करेगा। प्रारंभ की बात माँ जाने, अंत की बात तेरे बेटे की माँ जाने। तू न अपना जन्म देख पाता है, न अपना अंत देख पाता है। हे जीव! जब तुझे समझ आती है, इसके पूर्व बहुत कुछ हो चुका होता है। तुझे मात्र इतना मालूम है जब तू बीच में था।

ज्ञानी! जो भूत नहीं जान रहा है, भविष्य को नहीं जान रहा है, वर्तमान को मात्र समझ रहा है, वह तत्त्वज्ञान से शून्य हो रहा है। काल कह रहा है कि जिसे तेरे पिता नहीं जान पाये, तेरा कोई संबंधी नहीं जान पाया, उसे मैं जानता हूँ। ज्ञानी! जब तू नरक में था, तब भी मैं तुझे देख रहा था और जब तू स्वर्ग में था, तब भी मैं तुझे देख रहा था। तू दुनियाँ की आँखों में धूल झोंक सकता है, पर काल कह रहा है कि मैंने तुझे त्रिकाल देखा है। ब्रह्माण्ड में (विश्व में) ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे काल ने अपने परिणमन में न देखा हो। गरीबी-अमीरी सब देखा है। वह ठहरता नहीं, चल रहा है।

कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खाओ अतिदीन।

यह मात्र तिर्यंचों पर मत लागू कीजिये, स्वयं पर भी लागू कीजिये। सबके दिन एक-से नहीं होते। जब तुम्हारे दरवाजे पर कोई भिखारी आये, उससे यह मत कहना कि आगे जाओ। वह तुम्हें सीख देने आया है।

जब तक जीव के अंतस् में धर्म का निवास है, तब तक देहरूपी भवन सुरक्षित है। जिस दिन देहरूपी भवन से आत्मधर्म निकल जायेगा, उस दिन परिणाम और देह शून्य हो जायेगी। त्रैकाल्य (भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों) में छः द्रव्य हैं। उन छः द्रव्यों में आत्मा भी एक जीवद्रव्य है। कब से है? सनातन है, त्रैकाल्य है।

ज्ञानी! जब आपको अपना बेटा दिखता है, वह शिशु दिखता है। कुछ समय बाद वह शिशु नहीं बचा, तू युवा नहीं बचा और जिस पिता को तूने युवा देखा था, वह युवा नहीं बचा। काल कह रहा है कि मैंने सबको देखा है, सबकी सत्ता विद्यमान है। अस्ति-गुण से युक्त है। वस्तु के नाश पर रोना नहीं, उत्पत्ति का हर्ष नहीं करना। यह रागी के राग का रोना है, राग का हँसना है। काल कह रहा है कि मैंने नाम लिखते भी देखे हैं और नाम मिटते भी देखे हैं। चक्रवर्ती का बेटा कभी भी चक्रवर्ती नहीं बनता ।

हे वर्द्धमान! आपने जो सत्य की गवेषणा की है, उसे यदि जीवों ने समझ लिया तो कभी आँख से आँसू नहीं गिरेगा। जिसका पुण्य बड़ा है, उसे सब जानते हैं। जो अपना नाम करना चाहता है, वह भगवान् का नाम ले, तो पुण्य बड़ा होगा, तो तेरा नाम होगा। न पिता से पुत्र का नाम है, न पुत्र के नाम से पिता का नाम है। विश्वास रखना, पुण्य के द्वारा तेरा नाम होता है। पर काल कह रहा है कि मैंने नारायण को, चक्रवर्ती को,

सबको जाते देखा है। आज ये काम कर लो, काल से मिल लो। दुनियाँ के लोगों से मिलना बंद कर दो। ये क्या बता पायेंगे?

गौतम जब मिथ्यात्व की सत्ता में बैठे थे और वर्द्धमान से प्रथम दिन मिलने गये थे, उस दिन उनसे उनकी पाठशाला में यही तो प्रश्न किया था—

त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं, नव पद सहितं, जीव षट्काय लेश्याः,
पञ्चान्ये चास्तिकाया, व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः।

उस सूत्र को सुनते ही गौतम कहता है कि मैंने अठारह पुराण व चौदह वेदों के अध्ययन में ये शब्द नहीं पढ़े।

ज्ञानी! दूसरे की उन्नति देखकर दुःखी मत होना। मुर्दा होने के पहले मुनि बन जाये, तो सल्लेखनापूर्वक मरण हो जायेगा। मुझे तो आश्चर्य होता है कि तुम लोग घर में जी कैसे लेते हो? कितनी विषमतायें हैं? अब इतना करना, गले में फंदा तो डाल ही लिया है, अब समता से सहन करना, आत्मघात के परिणाम मत करना। ज्ञानी! अब इतना ही कह पाओगे 'जो है, सो है।' सबकी यही व्यथा है। 'महाराज! मैं तो उसे सुख मान रहा था, लेकिन यह तो मायाजाल है।' एक कोने में शांत बैठकर काल से प्रश्न करना है, कि हे काल! मेरा क्या होगा ? अपने आप उत्तर मिल जायेगा। जन्म-मरण से बचना है तो रत्नत्रय धर्म को स्वीकार करो।

उन जीवों का जन्म निरर्थक है जिन्होंने अपने जीवन में उच्च कुल को प्राप्त किया, फिर भी धर्म के मार्ग पर नहीं चल पाये। ज्ञानी! तुम्हारी प्रवृत्ति ही परिणति को बता रही है। आप घर भी नहीं छोड़ पा रहे हो, क्योंकि परिणति तुम्हारी वैराग्य से परे है। ज्ञानी! कितने ही बहाने बनाओ कि महाराज! घर की विषमता है, अरे ज्ञानी! घर की विषमता नहीं, तेरी निज की विषमता है। तेरे भीतर कषायभाव बैठा है, इसलिए घर दिख रहा है। **''जिस दिन राग और विषय हट जाता है, तब घर 'घर' नहीं होता है, घर भी 'मरघट' हो जाता है। कब? ज्ञानी! साधन से साध्य का ज्ञान होता है। तात्पर्य यह कि घर नहीं रोकता, वैभव नहीं रोकता, रोकता तो विषय-कषाय है। तू क्या व्यवस्था कर पायेगा? व्यवस्था करते-करते ही यमराज अपनी व्यवस्था करने आ जायेगा, तो तू क्या व्यवस्था कर पायेगा।''** ये बालक कहता है कि महाराज!

आपकी बातों में आता हूँ तो लगता है कि आपके साथ चलना चाहिए, यही सही है और जब मित्रों के साथ जाता हूँ तो भूल जाता हूँ। मिट्टी में पानी पड़ा रहता है तब तक मुलायम रहती है। पानी सूखा, तो मिट्टी कड़क हो जाती है। मुझे विश्वास है कि पानी व्यर्थ नहीं जायेगा। एक समय का उपदेश भी कार्यकारी होगा। आचार्य महाराज कह रहे हैं—

हितं कर्म परित्यज्य, पाप कर्मसु रज्यते।
तेन वै दह्यते चेतः, शोचनीयो भविष्यति॥ 69॥

जो जीव हितकारी कर्म को छोड़कर पापकर्म में लिप्त हो रहा है, उसके चित्त को व्यर्थ में जलते देखकर लगता है कि बड़ी सोचनीय दशा है। व्यक्ति को पाप में पड़ा देखकर आचार्य महाराज कह रहे हैं, अहो! आश्चर्य। जैसे पतंगा दीपक पर जल रहा है तो आप सोचोगे कि बेचारे जीव की क्या दशा हो रही है, क्यों दीपक की लौ के पास मंडरा रहा है? क्यों जल रहा है? हे मेरे मित्रो! तुम भी विषयों की लौ पर क्यों मंडरा रहे हो ? क्यों जल रहे हो? वही विषय, वही कषाय, वही राग-द्वेष।

यदि नामाप्रियं दुःखं, सुखं वा यदि वा प्रियम्।
ततः कुरुत सद्धर्मं, जिनानां जितजन्मनाम्॥ 70॥

पुनः कह रहे हैं आचार्यमहाराज, हे ज्ञानी! यदि तुझे दुःख अच्छा नहीं लगता है, सुख अच्छा लगता है, तो संसार से पार होने के लिए भगवान् का नाम क्यों नहीं लेता है? धर्म को धारण क्यों नहीं करता है? तू कष्ट से मुक्ति चाहता है तो धर्म को धारण क्यों नहीं करता है?

ज्ञानियो! वीतराग श्रमणपरम्परा में अनेकानेक महान् योगी हुए, जिन्होंने तत्त्व की गवेषणा को अंतस् में बैठकर समझा। वस्तुस्वरूप की प्ररूपणा समीचीन रूप से की। पदार्थ की जो सत्ता है, उस सत्ता को समझने की आवश्यकता है। चाहे भूतार्थ कथन हो, चाहे अभूतार्थ कथन हो, पर कथन सद्भूत है। अवस्तु का कभी कथन नहीं होता। अभूतार्थ जो कथन है, वह असत्ताभूत नहीं है, सत्ताभूत है। जो भूतार्थ कथन है, सत्ता नहीं है, सत्ताभूत है। जिस जीव को कुन्दकुन्द स्वामी के हृदय को समझने की सामर्थ्य नहीं है, वह कुंदकुंद देव के 'अभूतार्थ' शब्द को सत्यार्थ समझ लेता है। जो असत्यार्थ भूतार्थ

सत्य है, अवस्तुभूत असत्यार्थ नहीं है। निज प्रयोजन से भिन्न होने से असत् है, परन्तु जो-जो असत् होगा, वह सत् ही होगा। असत् का कथन तभी होगा, जब सत् का कथन होगा।

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात्।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यतिष्ठते॥ आ.मी./15 ॥

समंतभद्र स्वामी की इस गाथा पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। पदार्थ असत् है, पर-चतुष्टय की दृष्टि से। पदार्थ सत् है, स्व-चतुष्टय की दृष्टि से। असत् से तात्पर्य अवस्तु नहीं। सत् का विनाश नहीं होता, असत् का उत्पाद नहीं होता। निश्चय भूतार्थ है, व्यवहार अभूतार्थ है। उस व्यवहार को असत्भूत अभूतार्थ मत समझ लेना। असत्ताभूत अभूतार्थ होता है, वहाँ मोक्ष का भी लोप होता है। जब भी सिद्धि होगी, असिद्ध की सिद्धि होगी। असिद्ध की जब सिद्धि होगी, इसके पहले असिद्ध वस्तु स्वीकार करना होगी। असिद्ध को असिद्ध ही स्वीकार लेना मिथ्या भाव है। असिद्ध में सिद्ध को स्वीकार कर लेना सम्यक् भाव है। अवस्तु को अवस्तुभूत मानिये। जो भी अवस्तु है, वह वस्तु कहाँ? जिसे झूठ कहा जा रहा है, उसे पहले सत्य स्वीकारना होगा, तभी झूठ कह पाओगे। अमुक पुरुष झूठ बोल रहा है, इसका तात्पर्य यह है कि पुरुष कोई है, वह बोल रहा है, वह तो सत् है। जो बोल रहा है, उस वस्तु को स्वीकारिये और जिसको बोल रहा है, उसे स्वीकारिये। अब झूठ क्यों है? क्योंकि आपके अनुसार नहीं है अथवा आपके अभिप्राय के अनुसार नहीं है, इसलिए झूठ है। उसके अभिप्राय में है, इसलिए वह भी सत्य है। जब भी तत्त्व का व्याख्यान हो और वर्तमान युवा पीढ़ी को तत्त्व प्रदान करना चाहते हों तो सबसे पहले आवश्यकता है कि 'त्रैकाल्य' शब्द पर व्याख्या होना चाहिए और जब तक 'त्रैकाल्य' शब्द पर व्याख्या नहीं हो रहा है, तब तक हम कहीं-न-कहीं यह प्ररूपणा तो कर पायेंगे कि हमने कथन किया है, लेकिन कथन किया क्यों है? किसके लिये किया है? इस पर कोई चिन्तवन नहीं चलेगा। जैनदर्शन का मूल सिद्धांत है यह, इसलिए सबसे पहले 'त्रैकाल्य' शब्द की व्याख्या होना चाहिए। ज्ञानियो ! आज मानसिकता बन रही है कि वस्तु नष्ट हो जाती है। ज्ञानी! एक क्षण की

पर्याय नष्ट हो गई, यह शब्द क्यों था? किसके लिए था? क्या उपयोगभूत था? एक क्षण का उपयोग कहीं सोनोग्राफी की मशीन रूप न हो जाये। प्रशस्त अध्यवसाय भाव से मशीन का निर्माण किया गया होगा, कि विश्व में कोई गर्भस्थ शिशु भी रोगी न रहे, लेकिन उपयोग की जगह दुरूपयोग होने लगा।

ज्ञानी! तत्त्व की गवेषणा करते समय अंतरंग में करुणादृष्टि हो, तो प्रवचन करने बैठना। करुणादृष्टि न हो, तो प्रवचन करने मत बैठना। जिसने शास्त्र का विपर्यास किया है, वह श्रद्धा को विदीर्ण कर देगा। सोनोग्राफी की मशीन भ्रूणहत्या के लिये नहीं थी। एक क्षण की पर्याय का जो व्याख्यान है, क्यों था?

यहाँ बुला लीजिये पंडित टोडरमल जी को। सामने हाथी खड़ा हुआ है, जमीन पर विद्वान् पड़ा हुआ है, पर हाथी पैर नहीं रख रहा है। हे गज! तुझे तो करुणा है, पर हे काल! तुझे कोई करुणा नहीं। भवितव्यता को कोई करुणा नहीं। सूत्र याद कर लेना—

"अलंघ्य शक्तिर्भवितव्यतेयं" (बृ.स्.स्.)

ज्ञानी! आँखों में आँसू उसी के आयेंगे जिसको यह सूत्र याद नहीं है। चेहरा उसी का अट्टहास करेगा, जिसको सूत्र याद नहीं है। हाय-हाय वही करेगा, जिसको यह सूत्र याद नहीं है।

हाथी को करुणा आ रही है, वह पैर नहीं रख रहा है। यह ध्यान रखना, पुद्गल पिण्डों से तरंगें निकलती हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। यदि इस दृष्टि को आप नहीं समझ पाओगे, तो विश्वास रखना, तीर्थवन्दना, अरिहंत की प्रतिमा की वन्दना बंद हो जायेगी। ज्ञानी! जितना प्राचीन जिनबिंब होगा, जितने विशुद्ध परिणामों से प्रतिष्ठा कराई होगी, संस्कार किये होंगे, जितने विशुद्ध परिणामों से आचार्य महाराज ने सूरि मंत्र दिया होगा, विश्वास रखना, उस प्रतिमा के पास बैठो तो लगता है कि मुझे कुछ प्राप्त हो रहा है। जगत् के समस्त पदार्थों को जानते-जानते, ज्ञेय बनाकर सुनो। प्रवचन सुन रहे हो तो दो ज्ञेय तुम्हारे सामने हैं। एक विशुद्धसागर बोल रहे हैं, यह ज्ञेय बनाइये और इस काल में तुम्हारे परिणामों में क्या चल रहा है, उसे ज्ञेय बनाइये। प्रवचनकारों के प्रवचन लोगों को प्रभावित क्यों नहीं कर पा रहे हैं? और संवेदनायें क्यों शून्य होती जा रही हैं? क्योंकि प्रवचन को तो ज्ञेय बना लेते हैं, पर प्रवचन का जो विषय

ज्ञान में आता है, उस ज्ञान को ज्ञेय नहीं बना रहे हैं। प्रवचनकार को ज्ञेय बना रहा है, प्रवचन की शैली को ज्ञेय बना रहा है, पर प्रवचन का जो ज्ञेय है, उस ज्ञाता के परिणाम प्रवचन के काल में क्या चल रहे हैं, उस परिणामों को ज्ञेय नहीं बना रहा है। यदि ज्ञेय बना लेगा, तो ज्ञाता तू प्रवचनकार से शून्य होकर स्वयं ही प्रवचनकार हो जायेगा।

ज्ञानियो! उपदेश सुन रहे हो, या सामायिक कर रहे हो, ध्यान कर रहे हो हाथी सामने खड़ा है उस दृश्य को भी देखते जाओ। ज्ञानी! जो तत्त्व ग्रंथों में प्रारूपित/गुम्फित है, वही ज्ञेय है। जो बैठे हुए हैं, वे अंतर में हैं, इसलिए अंतस्त प्रमेय है। बहिर्ग्रन्थ के ज्ञेय से ज्ञाता को शब्दब्रह्म का बोध तो हो जायेगा, लेकिन आत्मब्रह्म का बोध ग्रंथों से नहीं, आपके अंदर बैठे निर्ग्रन्थ स्वभाव पर दृष्टि जायेगी तब होगा।

पं. टोडरमल जी हाथी से कहते हैं—विलंब क्यों कर रहा है? ज्ञानी! ऐसे दो ही जीव देखने को मिलेंगे। एक पं टोडरमल जी और दूसरे आचार्य महावीरकीर्ति महाराज। म. प्र. के कटनी में पार्श्वनाथ जिनालय में सामायिक करने खड़े हो गए और सामायिक के काल में एक कालिया नाग ने आचार्य महाराज की अंगुली पकड़ ली। आचार्य महाराज कहते हैं कि—हे सर्पराज वैर है तो देर क्यों! ओर वैर नहीं है, तो देर क्यों ! यही जीवन्त समयसार है। इसलिये आचार्यभगवन् अमृतचंद्र स्वामी को लिखना ही पड़ गया, हे श्रावको! आप समयसार-उपासक हो और निर्ग्रन्थ योगी समयसार है। रत्नत्रय से मण्डित आत्मा समयसार है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''परम आश्चर्य''

विशुद्धादेव संकल्पात्समं सद्भिरुपार्ज्यते।
स्वल्पेनैव प्रयासेन चित्रमेतदहो परम्॥ 71॥

अन्वयार्थ—अहो एतत् परम्चित्रं = यह बड़े आश्चर्य की बात है कि **स्वल्पेन एव प्रयासेन** = थोड़े ही प्रयत्न से **विशुद्धात् संकल्पात् एव** = शुद्ध भावों के द्वारा और **सद्भिः** = संतपुरुषों के द्वारा **समं** = समभाव **उपार्ज्यते** = प्राप्त कर लिया जाता है।

भावार्थ—अहो! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि विशुद्ध संकल्प से समभाव रूप यह धर्म सज्जन पुरुषों के द्वारा थोड़े ही प्रयत्न से उपार्जित कर लिया जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। श्रमण परम्परा में महान्-महान् योगीश्वर हुए हैं, जिन्होंने अत्यन्त गहनतम गवेषणा की है। तत्त्व की गहराई में प्रवेश करके वस्तुस्वभाव की व्याख्या की है। बड़े-बड़े विद्वान् हुये जिन्होंने स्वात्मा को अज्ञानी घोषित करने के लिए बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखी हैं, अहो! आश्चर्य। अपने आपको अज्ञानी सिद्ध करने के लिए अपने ज्ञान का उपयोग किया है। कैसे जाना कि आप ज्ञानी नहीं हो? वह कहता है कि मैंने अपने ज्ञान से जाना। जब तूने ज्ञान से जाना ही है कि तू ज्ञानी नहीं है, तो तू स्ववचन बाधित हो रहा है। मेरा पिता बालब्रह्मचारी है। जब तू है ही, तो पिता बालब्रह्मचारी कैसे? जब तू ज्ञान से जान ही रहा है कि में अज्ञानी हूँ, तो अज्ञानी कैसे? लोक की मिथ्या धारणा को तो देखो, मिथ्याज्ञान को देखो, ज्ञान के विपर्यास को देखो, कहीं ऐसा न हो जाए कि उत्साह शक्ति को भंग करके आप अपने आप को अज्ञानी मान बैठें? जिसने यह मान लिया है कि में अज्ञानी हूँ, वह पुरुषार्थ कब करेगा? निज की कमजोरी, शरीर की दुर्बलता स्वीकार है। ज्ञान की (क्षयोपशम की) कमी मुझे स्वीकार है, परन्तु ज्ञानभूत आत्मा को ज्ञानशून्य स्वीकार लेना, ऐसा जिनशासन का सूत्र नहीं है।

घृत तो घृत है। दुग्ध घृत नहीं है, यह बात स्वीकार है; पर दुग्ध में घृत नहीं है, यह बात स्वीकार नहीं है। मैं भगवान नहीं हूँ, स्वीकार है। आराधक हूँ। आराधक वही होता है, जो साध्य की सिद्धि को प्राप्त नहीं हुआ होता है। जो साध्य की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है, वह आराधक नहीं होता है, वह आराध्य होता है। **''यदि तू अपने आपको आराधक नहीं स्वीकारना चाहता है, तो आराध्य स्वीकारिये। ज्ञानी! अष्टद्रव्य से लोग तेरी पूजा करने लग जायें, तो तुझे स्वीकार है क्या? नहीं है, तो क्यों? कोई कमी है। आराधना हर व्यक्ति नहीं स्वीकार सकता। जो साध्य की सिद्धि प्राप्त कर चुका है या साधना कर रहा है, वही आराधना स्वीकार कर सकता है। जिसमें साधना भी न हो, आराधना भी न हो और आराध्य भी न हो, वह किसी की आराधना स्वीकार करने की शक्ति ही नहीं रखता। आराध्य जब चारित्रवान होता है, तो आराधक चारित्रविहीन कैसे हो सकता है?''** जीवन में उत्कर्ष का जो मापदण्ड बनाते हो, उसके साथ इतना निर्णय और कर लेना कि मुझे नीचे कितना गिरना है? मौसम विभाग की तरह, कि जिसकी उठने की भी सीमा है और गिरने की भी सीमा है। अरे मुमुक्षु! इन परिणामों की भी सीमा बनाइये। पारे की सीमा परसापेक्ष है, परिणामों की सीमा स्वसापेक्ष है। ज्ञानी! मेरी आत्मा का ध्रुव स्वभाव अहेतुक है। धर्म अहेतुक है। जैनदर्शन के मूलभूत शब्दों को सुनिये।

ज्ञानी! तेरा मित्र तुझे खाने पर बुलाये, शुद्ध बासमती चावल की खीर खाने का आमंत्रण दे और उसमें ज्वार के, चने के, गेहूँ के दाने भी डाल दे, तो तुझे कैसा लगेगा? सिर्फ खाने की कह कर बुलाता तो कोई बात नहीं थी, लेकिन बासमती चावल की खीर खाने के लिए बुलाया है और ज्वार की खीर खिलायी है। मुमुक्षु! तुम्हें यह कह कर बुलाया जाये कि तत्त्व उपदेश होना है, जिनवाणी का उपदेश होना है और तत्त्व-उपदेश का वहाँ एक शब्द भी न हो, बाहरी बातें आ जायें, तो यह ऐसा हुआ कि खीर के स्थान पर ज्वार के दाने खिलाये। श्रावको! युवा यही सोचेंगे कि मंदिर में फिल्मी गानों पर भजन आदि होते हैं, जगत् की बातें होती हैं। ज्ञानी! मंदिर में जब भी उपदेश हो, तत्त्व उपदेश होना चाहिए।

गुरुओं के मुख से परमागम निकलता है। जितना प्रमाणित होते जाओ, उतना कम बोलना सीखो। जितना प्रमाणित होते जाओ, उतना प्रमाणित बोलना सीखो, क्योंकि लोक में कहा जाता है—**''नान्यथा मुनि भाषणं''**

मुनि के वचन अन्यथा नहीं होते हैं। दिगम्बर परम्परा में नियत है कि तीर्थंकर जब तक गृहस्थ होते हैं, तब तक जगत की बातें तो करते हैं, लेकिन धर्म की बात नहीं करते। मुनि बनते ही मौन हो लेते हैं। तीर्थंकर की प्रमाणिकता गर्भकल्याणक से प्रारंभ हो चुकी है। करणानुयोग कहता है कि जब तक उनको कैवल्य प्रकट नहीं होता है, तब तक भगवान् नहीं हैं, छद्मस्थ होते हैं। छद्मस्थ अवस्था में तीर्थंकर मुनि हो सकते हैं, तीर्थंकर बालक हो सकते हैं, तीर्थंकर सम्राट हो सकते हैं, लेकिन भगवान् नहीं होते। फिर भी छद्मस्थ के ज्ञान में भी केवली जैसा उनको भगवान् मानते हैं।

मित्रो! वृद्ध दादाओ! जैसे-जैसे लोक की सम्मानदृष्टि बढ़ती जाए, वैसे-वैसे अन्वेषण करना प्रारंभ कर देना। गंभीरता से अपनी ओर देखिये। प्रमाणपुरुष जो कह गया, आगामी पीढ़ी उसे आगम के रूप में देखती है। लेखनी चलाने के पूर्व करुणा है, दया है, तो यह ध्यान रखना कि वक्ता और लेखक से बड़ा कोई करुणाशील नहीं होता। वक्ता और लेखक से बड़ा कोई हिंसक भी नहीं होता। वह चाहे तो कोटि-कोटि जीवों को मिथ्यात्व के गड्ढे से निकाल सकता है और चाहे तो मिथ्यात्व के गड्ढे में डुबा सकता है।

ज्ञानी! जबसे मैंने बोलना और लिखना प्रारंभ किया है, तबसे कभी कुंदकुंद स्वामी झलकते हैं, कभी अमृतचन्द्र स्वामी झलकते हैं। चिंतवन शांत नहीं रहता। जब एक राजा की वेशभूषा में कलाकार मंच पर उतरता है, तो उसके अंदर राजा का जोश भर जाता है। तो मैं वर्द्धमान के वेश में हूँ। ढाई द्वीप में जितने निर्ग्रन्थ साधु विचरण कर रहे हैं, वे तीर्थंकर के भेष को धारण किये हैं। उनके अंदर वीतरागता का जोश भरना चाहिए। अपरिचित-से-अपरिचित व्यक्ति भी सामने आता है तो जल्दी से उसके हाथ नमोस्तु की मुद्रा में आ जाते हैं। वह महाराज से भले ही परिचित न हो, लेकिन वह तीर्थंकर की मुद्रा से परिचित है। आपके अंदर जो रत्नत्रय धर्म है, उसकी वन्दना बाद में करूँगा, पहले तीर्थंकर मुद्रा की वन्दना करूँगा। इसी तरह निर्ग्रन्थ को स्वयं की मुद्रा देखकर ही आनन्द आना चाहिए कि यह मुद्रा मेरी नहीं है। मैं जिसे धारण किये हूँ, यह

मुद्रा वह है जिसे तीर्थंकर अरिहंत ने धारण किया था। जब तक भारत की भूमि पर 'नमोस्तु' शब्द सुनाई देता रहेगा, निर्ग्रन्थ मुनि दिखाई देते रहेंगे, तब तक हे मुमुक्षु! यह मत सोचना कि भावलिंगी हैं या द्रव्यलिंगी?

हे परमेश्वर! मेरी परिणति भी विशुद्ध हो और प्रवृति भी विशुद्धि हो। जब तक संयोग चल रहा है, तब तक निहार लो। जिनसे किंचित् भी विकल्प आये हों, उनसे आज ही घर जाकर क्षमा माँग लेना। शोक समाप्त करना है तो सोच को बदलना होगा। सोच को पवित्र करना पड़ेगा। जैसे यहाँ सभा में बैठे हो, वैसे ही चौबीस घण्टे बैठे रहो। पानी को मत सुखाओ, पंखा को मत चलाओ, समय दे दो, पानी सूख जायेगा। भैया! कभी घर में क्लेश हो जाये, तो बहुत जल्दी उसे शांत करने के चक्कर में मत पड़ना। इतना अवश्य करना कि यदि द्वेष की वृद्धि हो रही है, तो भैया के चरण छूकर तीर्थवन्दना को निकल जाना। समय दे दो, सब ठीक हो जायेगा। ज्ञानी! पाप के फल के लिए तो तू समय देता है, गर्भाधान के पश्चात नौ माह इंतजार करता है। समय यदि नहीं देता और तू कहता कि आज ही बेटा आ जाये, तो कहाँ से तू खिला पाता?

ऐसे ही तुम पुण्य के काम करो, फल की कामना मत करो। विश्वास रखो, सब अच्छा होगा। ज्ञानी! घर में क्लेश बढ़ जाये, अशांति फैल जाए, तो यात्रा को निकल जाना। समय दे दो, सब शांत हो जायेगा। जो समय देना नहीं जानता, वह स्वसमय से दूर हो जाता है। निर्ग्रन्थ समय देने मात्र के लिए बना जाता है। समय के लिए समय देने के लिए मुनि बनना पड़ता है। स्वयं कारण-समयसार से कार्यसमयसारभूत प्रकट हो जाता है। यह निर्ग्रन्थ अवस्था कारणसमयसार है। अशरीरी सिद्ध दशा कार्यसमयसार कैसे प्रकट होगा? इसलिए मुमुक्षु! कारणसमयसार को अपने हाथ में लाइये। विषमताओं के काल में भी परिणामों को विषम मत होने दीजिये।

हे माँ! छैना बनाया कभी? हाँ। कभी ऐसा भी होता है कि रखा हुआ दूध खट्टा होने लगता है, तो आप अपने विवेक का उपयोग कर उसमें नीबू निचोड़ देते हो, तो क्या होता है? छैना बन जाता है। **''ज्ञानी! यदि बेटा माता-पिता से अलग होना चाहता है, तो क्या माता-पिता को समझ में नहीं आता? आता है। तो वहाँ आप अपने विवेक का उपयोग कीजिये। बेटा आप से आकर कहे, पिताजी! मुझे अलग कर**

दीजिये। उसके पहले ही आप उसे व्यवस्थाएँ सौंप दीजिये।'' बेटा! अब यह दुकान या ये मकान की व्यवस्था तुमको देखना है। मैं कहाँ-कहाँ देखूँ? 'अलग' शब्द ही नहीं आया, व्यवस्था ही सौंपी है। हे पिता! कदाचित् बेटा अलग हो भी जाए, तो खिन्नता मत लाना। अच्छा ही हुआ। अभी तक नगर में मेरा एक ही मकान था, अब दो हो गए। कमी कहाँ आई है? वृद्धि ही तो हुई है। सोचने वालों का सोच छोटा है। जैनी का सोच सकारात्मक होता है। पुरुषार्थ सम्यक् होना चाहिए, फिर भी कार्य सिद्ध न हो तो दैव पर छोड़ देता है, पर हाय-हाय नहीं करता। आप पुरुषार्थ तो कर सकेंगे, पर फल उतना ही मिलेगा जितना भाग्य होगा।

हे मुमुक्षुओ! अब आपको ज्ञात होना चाहिए कि प्रवृत्ति ही नहीं, निवृत्ति भी चाहिए। निवृत्ति हुए बिना स्वात्मा में प्रवृत्ति होती नहीं। पर से निवृत्ति होना पड़ेगी। ज्ञानी! अपनी सोच को सुधारो। आगम का कठिन विषय लोगों को समझ में नहीं आता है, यह आपकी स्वयं की भूल है। यह श्रोताओं की भूल नहीं है। निर्ग्रन्थों से यह मत पूछना 'स्वामी! दुकान कैसे चले?' निर्ग्रन्थों से यह पूछना 'स्वामी! भगवान् कैसे बनें? अरिहंत कैसे बनें?'

हे ज्ञानी! यदि तुझे दु:ख अच्छा नहीं लगता, तो सुख से दुलार कर और सुख से दुलार है तो वह सुख तुझे जिनेन्द्र के धर्म से मिलेगा। ज्ञानी! विकल्प मत करो। एक शब्द भी अंदर चला गया, तो तुमको नियत ही केवली बनायेगा। यदि भव्य हो तो, निश्चित केवली बनायेगा

विशुद्धादेव संकल्पात्समं सद्भिरुपार्ज्यते।
स्वल्पेनैव प्रयासेन, चित्रमेतदहो परम्॥71॥

आचार्य कुलभद्र स्वामी पुन: 'सारसमुच्चय' जी में कह रहे हैं-अहो! आश्चर्य। विशुद्ध संकल्प से, साम्य भाव से धर्म थोड़े ही प्रयत्न से प्राप्त कर लिया जाता है। उद्यमी पुरुष एक फोन पर करोड़ों कमा लेता है और विवेकहीन पुरुष दिनभर मेहनत करके भी आधा पेट ही भर पाता है। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी सम्यग्दृष्टि विशुद्ध परिणामों से युक्त होकर अल्प समय की साधना से ही अरिहंत/सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। जो विवेकी सज्जन पुरुष काम कम करते दिखते हैं, पर काम अधिक हो जाते हैं। स्कंध

की गति बड़ी धीमी होती है और परमाणु दिखाई नहीं देता, पर एक समय में चौदह राजू गमन करता है। जितने शक्त्यांश बढ़ जाते हैं, उतना विस्तार कम हो जाता है। विस्तार कम हो जाता है, संघात बढ़ जाता है।

जयपुर की समाज तो वह समाज है जिसने महावीराष्टक के रचयिता भागचन्द्र जी का मान बढ़ाया था। बुन्देलखण्ड की माटी का वह लाल अपनी गरीबी के दिनों में जयपुर आ गये थे। चौराहे पर खड़े थे मजदूरी के लिए, लेकिन सोचते हैं कि पहले दर्शन कर लूँ मंदिर में। 15-20 मिनिट स्तुति में निकल जाता है। फिर स्वाध्याय चल रहा था, उसमें बैठ जाते हैं। सभा में एक प्रश्न ऐसा उठता है जिसका जबाब नहीं मिल रहा था। वे पीछे बैठे फटेहाल, कहते हैं भैया! आप सभी की अनुमति हो तो मैं जबाब दूँ। सभा कहती है, हाँ-हाँ बताइये। फिर वह सभी की शंका का समाधान कर देते हैं। सभा उनसे परिचय प्राप्त कर उन्हें कपड़े की दुकान खुलवा देती है कि हमारा विद्वान् मजदूरी नहीं करेगा, रोज मंदिर जी में स्वाध्याय करेगा। तो इस प्रकार से स्वल्प प्रयास से ही ज्ञानीजन धर्म को प्राप्त कर लेते हैं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''धर्म ही त्राता है''

धर्म एव सदा त्राता, जीवानां दुःखसंकटात्।
तस्मात् कुरुत भो यत्न, तत्रानन्तसुखप्रदे॥ 72 ॥

अन्वयार्थ—जीवानां = जीवों को **दुःख संकटात्** = दुःखसंकटों से **सदा त्राता** = सदा रक्षा करने वाला **तस्मात्** = इसलिए **अनन्तसुखप्रदे तत्र** = अनंत सुख देने वाले उस धर्म में **भो** = हे भाई! **यत्नं कुरु** = तू पुरुषार्थ कर।

भावार्थ—दुःख-संकटों से जीवों की निरन्तर रक्षा करने वाला एक धर्म ही है, इसलिए हे आत्मन्! अनन्त सुख को देने वाले उस धर्म में तू पुरुषार्थ कर।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सार समुच्चय' जी में वस्तुतत्त्व की गवेषणा करते हुए समझा रहे हैं, अहो ज्ञानियो! शरीर को स्वस्थ करने के पुरुषार्थ अनेक किये हैं, अशरीरी को स्वच्छ करने का पुरुषार्थ क्यों नहीं कर रहा है? जिस देह को तू स्वच्छ कर रहा है, संवार रहा है, विश्वास रखना, एक दिन उसकी राख होना निश्चित है। जिस पर राग चल रहा है, उसकी राख होना निश्चित है। यदि राख के पूर्व राख के दर्शन हो जाते तो राग किस पर होता है? देह को देखकर विदेही को भूल रहा है।

ज्ञानी! चैतन्य की धारा तुझे प्रभावित नहीं कर रही है, देह की धारा तुझे प्रभावित कर रही है। देह में आकर्षण है और नेत्र आकर्षित हो रहे हैं। जिह्वा रस चखती है। मुख के अंदर ग्रास होता है, तब जिह्वा रस चखती है। आँख के अंदर नहीं होता है तब। यह अस्पष्ट है अबद्ध है, अस्पष्ट अबद्ध को विषय बना रही है आँख। आँख ने किसी विषय में प्रवेश नहीं किया है, आँख किसी विषय में प्रवेशित नहीं हुई है। दूर से ही नाना द्रव्यों

का भोग कर रही है, उसका नाम आँख है। ज्ञानियो! तुम्हारे शीलधर्म का नाश करने वाली आँख है। यदि आँख को संभाल लेता, तो दुनियाँ में घूमने की आवश्यकता नहीं होती।

ज्ञानी! कितना ही बड़ा पुरुष हो, लेकिन अपनी संतान के आगे झुकता है। ज्ञानियो! तेरा मान-सम्मान, अभिमान तभी तक है, जब तक तेरे घर में खोटी संतान ने जन्म नहीं लिया। तेरा मान-सम्मान तभी तक है, जब तक तेरा हाथ किसी के सामने माँगने के लिए नहीं उठा। तेरा मान सम्मान तभी तक है जब तक तेरी नारी के पैर घर की देहली के बाहर नहीं पड़े।

पर्याय के प्रभाव के लिए ध्रुव स्वभाव के प्रभाव को भूल जाना सबसे बड़ी विडम्बना है। पर्याय को देखा है, क्या आनंद है? ज्ञानी! तेरे बड़े भाई की शादी हो रही थी, तब तू आनन्दित हो रहा था और जब तेरी स्वयं की शादी हो रही थी, तब भी तू आनंदित था। दोनों समय के आनंद में अंतर था कि नहीं? था। तो हे ज्ञानी! जब एक निर्ग्रन्थ मुनि को देखकर तेरा मन मुस्कुरा जाता है क्योंकि इनकी शादी मुक्तिवधू के साथ होने जा रही है, इनको देखकर तू आनंदित हो रहा है और जब तू स्वयं निर्ग्रन्थ मुनि बनकर मुक्तिवधू का वरण करने जायेगा, तब कितना आनंद आयेगा?

हे ज्ञानी! जब तेरे भाई की शादी के बाद तेरी भाभी आ रही थी, तब गद्गद भाव आ रहा था, उसमें आस्रव हो रहा था कि नहीं? पाप का बंध हो रहा था कि नहीं? पर के लिए पर की देह देखने गया, धिक्कार हो उस जीव को। हे वृद्धो! तुम्हारी भोगाशक्ति तो नष्ट हो गई, लेकिन भोगानुभूति की शक्ति नष्ट नहीं हुई है, स्मृतियाँ नष्ट नहीं हुई हैं। और जब तक स्मृतियाँ नष्ट नहीं हुई हैं, तब तक भगवान-आत्मा की अनुभूति बहुत कठिन है। छोड़कर बैठ जाना महत्वपूर्ण नहीं है, छूट जाना महत्वपूर्ण है।

जब ज्ञानानंद का आनंद प्रारंभ होता है, तो जगत् के सारे आनंद ठण्डे पड़ जाते हैं, समाप्त हो जाते हैं। जिसकी राख होना है, उस पर राग किस बात का? मेरी राख होगी, कि मेरी देह की राख होगी? हे ज्ञानी! जो देह से संबंध रखते हों, उस पर्याय में विलीन होने से पूर्व एक बार शमशान घाट की राख दिखा देना।

इस देह के संसर्ग से इष्ट और पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाते हैं। जिसके राग में अरिहंतों और निर्ग्रन्थों को नहीं देखा, उस देह का क्या हाल हुआ है? जब तक विभक्त भाव पर चिन्तवन नहीं है, तब तक सम्यक् श्रद्धा ज्ञान चारित्र नहीं है। गणधर की गद्दी पर बैठकर न उनकी कहना, न निज की कहना, जिनदेव की ही बात कहना। विभक्त भाव पर चिन्तवन करना। मैंने इस जड़ शरीर के अभिमान में लिप्त होकरके कितने जीवों का अपमान किया है। ज्ञानी! सत्य का ज्ञान करना है तो या तो जन्म के समय का पता करना या मरण के समय का पता करना। हे ज्ञानी! तेरी निज की संज्ञा क्या है? तू अपनी आत्मा को आत्मा मान लेता तो संसार में न भटकना पड़ता।

अरिहंत को जान लिया ज्ञान से, सिद्ध को जान लिया श्रुतज्ञान से, पर उसे नहीं जाना जिसने जाना है पंचपरमेष्ठी को। भैया! इष्ट के वियोग होने पर उसे जलाने क्यों चले जाते हो? जबकि उसके उपचार में तुमने लाखों खर्च कर दिये थे। अब उसको संभालकर क्यों नहीं रख रहे हो? हे ज्ञानी! जैसे आज तुम अपने संबंधी की देह को बाहर निकाल रहे हो, उसे जला रहे हो, तो तेरी देह को कौन रखेगा? और मैंने अपनी इस देह के राग में पता नहीं कितने लोगों का अपमान किया है। अविकारी पर विकार मत लाना। जब तक शरीर में विभक्त भाव जन्म नहीं लेगा, तब तक मोक्षमार्ग प्रारंभ नहीं होगा। तात्पर्य समझिये। जब तक अपने शरीर को परवस्तु नहीं स्वीकारेगा, तब तक सम्यग्दर्शन नहीं होगा। कितना ही पूजा-पाठ, भक्ति कर ले, इससे पुण्यास्रव होगा और नरक निगोद से बचेगा; लेकिन सम्यग्दर्शन तभी प्रकट होगा, जब तू अपनी देह को भिन्न मानेगा, स्वीकार करेगा। ज्ञानी! छेद वाले मटके में पानी नहीं भरते, क्योंकि उसमें से पानी निकल जाता है, जिस देहरूपी मटके से भगवान-आत्मा निकल जाता है, वह देह अशुद्ध हो जाता है।

अपने सुन्दर शरीर को देखकर अहं मत करना और दूसरे के असुन्दर शरीर को देखकर ग्लानि मत करना। न तेरा शाश्वत है, न उसका शाश्वत है। जो शाश्वत है, वह अशरीरी है। यही समयसार है, यही सामायिक है। निज समय का बोध हो जाये,वही सामायिक है। निज समय का बोध नहीं है तो घंटों आँखें मींचे बैठे रहना, हो सकता है, कि शत्रु के बारे में चिन्तन चल रहा हो। विभक्त करना सीखो।

हे मुमुक्षु! किसी की पापपर्याय को देखकरके पापी मत कह देना। पाप की पर्याय बदलने में देर नहीं लगती। एक क्षण की पर्याय बदलने में देर नहीं लगती है। वह तो प्रायश्चित/प्रतिक्रमण करके तिर गया, अब तुम पापी कहते रहो।

जिस समय तेरे ज्ञान में जैसा तू ज्ञेय बनायेगा उस समय तेरा भाव वैसा होगा, तेरी परिणति वैसी है। खाली पड़ी हवेली को आप नगरनिगम के कचरे से भरना पसन्द करोगे या एक अगरबत्ती जलाकर उसकी सुगंध से भरना पसंद करोगे या खाली रखना पसंद करोगे? खाली रखना। ज्ञानी! अपनी प्रज्ञा को खाली रखना सीखो। दूसरों की निंदा करके अपनी प्रज्ञा को गंदा क्यों करूँ? ज्ञानी! जिस पाटे पर जिनवाणी विराजमान करते है, उस पर पैर लग जाये तो प्रायश्चित करना पड़ता है, कायोत्सर्ग करना पड़ता है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि इस विशाल संसार से निकालने वाला कोई है तो वह धर्म है। धर्म ही सुख देने वाला है। हे धर्म! मेरा पालन करो। अब भाषा बदल दो। अभी तक आप कहते रहे हो कि मैं धर्म का पालन करता हूँ। अरे! तू इतना महान कब से हो गया, कि इतने विशाल धर्म को तू पालने लग जाय?

अरे! ऐसा बोल, हे धर्म! मम पालय।

दुखों से, संकटों से जब भी तेरी रक्षा होगी, धर्म ही करेगा। न मित्र करेगा, न सगा। पारसनाथ क्या थे ? सगे थे कमठ के? गजकुमार के सिर पर सिगड़ी किसने रखी थी? ससुर ने। पाण्डवों पर लोहे के गरम आभूषण किसने डाले थे? कौन किसका है? संयोग तो संयोग है, स्वभाव नहीं है।

ज्ञानी! जलने से पहले जलना छोड़ दो। इस देह में आग लगे, इससे पहले ईर्ष्या की आग में जलना छोड़ दो।

जिस धर्म से सुख मिलता है, हे ज्ञानी! उस धर्म में यत्न करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''दु:खी होने का कारण''

यत्त्वया न कृतो धर्मः, सदा मोक्षसुखावहः।
प्रसन्नमनसा येन, तेन दु:खी भवानिह॥ 73॥

अन्वयार्थ—यत्येन = जिस कारण से **त्वया** = तूने **मोक्षसुखावहः** = मोक्षसुख के देने वाले **धर्मः** = धर्म को **प्रसन्न मनसा** = प्रसन्न मन से, **सदा न कृतः** = सदा नहीं पाला है, **तेन** = इसी कारण से, **इह** = इस लोक में **भवान्** = तू **दु:खी** = दु:खों का पात्र बन रहा है।

भावार्थ—हे आत्मन् ! तूने प्रसन्न चित्त से मोक्ष सुख को देने वाले धर्म का सदा पालन नहीं किया, इसलिए तू इस लोक में दु:खों का पात्र बन रहा है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' जी में जीव के उस परम सत्-स्वभाव की प्ररूपणा कर रहे हैं, जिसे जीव ने समझने का प्रयास ही नहीं किया। मैं धर्म को नहीं जानता हूँ, यह दृष्टि भिन्न है, पर सबसे बड़ी कठिनाई यह है, कि मैं धर्म को जानने का प्रयास ही नहीं करता हूँ। जितना समय धर्म की व्यवस्थाओं को जमाने में व्यतीत कर दिया, मुमुक्षु! धर्म की व्यवस्थाओं का पेट बहुत बड़ा है, जबकि धर्म का पेट बहुत छोटा है। जितना समय धर्म की व्यवस्थाओं में लगाया है, उतना समय धर्म में लगा दिया होता, तो तेरा उद्धार हो जाता। एक विधान करवाने के लिए कितनी व्यवस्थायें की? यह धर्म नहीं था। धन के माध्यम से धर्म के साधन तो जुटाये जा सकते हैं, लेकिन धन के माध्यम से धर्म किंचित् भी नहीं होता। यदि धन के माध्यम से धर्म होता, तो धन छोड़ना क्यों पड़ता? धर्म के साधन जुटाने के लिए जब धन छोड़ना पड़ता है, तो धर्म के लिए धन का संग्रह कैसा?

माँ! भोजन की तैयारी कर लेना, भोजन को बना लेना, यह भोजन का स्वाद कहाँ है? ऐसे-ही धर्म की सामग्री को जुटा लेना धर्म की अनुभूति नहीं है। हो सकता है कि सामग्री का संग्रह करने के काल में अधर्म ही हो जाए और सामग्री अधिक जुड़ जाए तो भी अधर्म हो जाए। हे ज्ञानी! तेरे मन में आ जाये कि जैसा सिद्धचक्र विधान जयपुर में मैंने कराया है, वैसा किसी ने भी नहीं कराया। हे ज्ञानी! सिद्धचक्र विधान तो तूने कराया, पर सिद्धों की आराधना किंचित् भी नहीं की। क्योंकि जो मन में भाव आ रहा था, वह निज में अहंबुद्धि थी और पर में हीनबुद्धि थी। धर्म कहाँ था? मानकषाय की अनुभूति का नाम धर्म नहीं है। मायाकषाय की अनुभूति का नाम धर्म नहीं है। लोभ या क्रोध कषाय की अनुभूति का नाम धर्म नहीं है। आर्जव,मार्दव धर्म को मार करके धर्म करने जा रहा है, वह धर्मात्मा कैसा? सामग्री का संग्रह पूर्व पुण्य के नियोग से मिला था, लेकिन धर्म तो उतना है जितनी परिणामों में विशुद्धि है।

संक्लेष स्थान की हानि है,विशुद्धि स्थान की वृद्धि है,उतना शुभ धर्म है। संक्लेश और विशुद्धि स्थानों के विकल्प का भी अभाव है, वह आत्मा का भूतार्थ धर्म है। वही सम्यक् धर्म है। वही आत्मा की अरिहंत/सिद्ध अवस्था है। किंचित् भी श्रीजी के सिर पर कलश ढारते समय कलश से दृष्टि इधर-उधर जाती है, तो कलश देखने वाला तो कर्मों की निर्जरा कर रहा था, लेकिन कलश ढारने वाले को भगवान् ही नहीं दिख रहे थे। उसे तो यही दिख रहा था कि कौन-कौन मुझे देख रहा है। आज टी.वी. चैनलों के कारण तो धर्म का और-भी नाश हो रहा है। धनवान् कलश करते थे तो गरीब हाथ ही लगा लेता था, अब तो वह कहता है कि हट यहाँ से, मेरा फोटो अच्छा नहीं आयेगा। हाँ ज्ञानी! तू पुद्गल की पर्याय का फोटो ही खिंचवा पायेगा, पर परिणामों का फोटो तो केवली के ज्ञान में झलक रहा है। ज्ञानी! कषाय की क्रिया में इतना आनंद है तो निष्कषाय में कितना आनंद होगा? धर्म के क्षेत्र में, अभिषेक के समय में किंचित् भी दृष्टि इधर-उधर जाती है, तो तीव्र अन्तराय का बंध होता है। पुण्य के कार्य करते समय किंचित् भी दृष्टि बाहर चली गई, तो तीव्र अन्तराय कर्म का बंध हो चुका। धर्मात्मा हो, तो रोगी क्यों दिखते हो? धर्मात्मा के मस्तक में दर्द क्यों हो रहा है? सम्पत्तिशाली है, धर्म भी चल रहा है, तब भी शरीर पीड़ित है, क्या कारण है?

एक वीतरागी तपोधन ने जंगल में एक मास का उपवास धारण किया। उनके नेत्र गड्ढों में चले गये, शरीर सूख गया, लेकिन साधना की चमक बराबर है। एक व्यापारी व्यापार की सामग्री लेकर दूसरे गाँव जा रहा था, रास्ते में जंगल में मार्ग भटक गया। सम्पत्ति से धर्म मिला है, कि धर्म से संपत्ति मिली है? आप जानते हैं कि धर्म से संपत्ति मिली है। ज्ञानी! तू सुबह से व्यापार के लिए दौड़ता है। पहले अभिषेक-पूजन कर, गुरुओं को आहार दे, फिर व्यापार पर जाना। तू धर्म से दूर होगा तो संपत्ति तुझे छोड़कर चली जायेगी।

वह व्यापारी जंगल में मार्ग भटक गया। उसे वीतरागी तपोधन कायोत्सर्ग मुद्रा में दिखे, तो वह सब भूल गया। कुछ देर पहले परेशान था क्योंकि मार्ग भटक गया था। अब खुश हो रहा है, क्योंकि मार्ग मिल गया। मासोपवासी मुनि के चरणों में बैठकर सामायिक करने लगा। यह नहीं सोचा उसने कि व्यापार का समय जा रहा है। वह व्यापार करने जाता, तो पुण्य व्यय करके आता। यहाँ जो व्यापार कर रहा है, इसमें पुण्य अर्जित कर रहा है। कब-कब मिलता है तपोधन के चरणों में बैठने को? विश्वास रखो, भैया! यह सुकृत का तीव्र उदय चल रहा है जो दिगम्बर मुनियों के सामने बैठे हो। बनारसी दास जी, दौलतराम जी से अधिक पुण्यशाली आप हैं। वे कह-कह कर चले गये, उनको दिगम्बर मुनियों के दर्शन नहीं हुए। आज के श्रावक इतने अहोभाग्यशाली हैं कि वे दर्शन ही नहीं, उपदेश भी सुन रहे हैं, चर्या भी करा रहे हैं। वह व्यापारी-श्रावक मुनि को नमस्कार करता है। हर व्यक्ति का भाव रहता है कि मेरे घर में मुनिराज के चरण पड़ जायें। वह श्रावक सामायिक के उपरांत विचार कर रहा है। 'हे भगवन्! मेरे जीवन में भी धर्म का फल हो। जब ये मुनिराज के एक मास के उपवास का पारणा हो तो मेरे घर में हो जाये।' प्रशस्त परिणाम थे। ऐसा परिणाम किया और व्यापार करने चला गया। उसने प्रतिदिन का वही मार्ग बना लिया। वह प्रतिदिन मुनिराज के दर्शन कर, सामायिक कर, व्यापार करने जाने लगा।

पुराना वैद्य, प्राचीन प्रतिमा, पुराना साधु। उनके अंदर अपने-आप कुछ होता है। विद्यार्थियों को एक बात जरूर समझा देना कि बुद्धि को पवित्र रखना है तो अरिहंत के बिम्बों को देखकर जाओ। जितना प्राचीन जिनबिम्ब होगा, उसके मस्तक को निहारोगे,

तो तुमको अलग से तरंगें प्राप्त होंगी। बेटा! वृद्धों की अविनय कभी मत करना। जितना हम सीख रहे हैं वह सब ये सीख चुके हैं। जो ज्ञान आपको जीवन के पूर्ण होने पर मिलेगा, वह इनसे सीख लीजिये। वृद्ध योगी को देखकर और प्राचीन जिनप्रतिमा को देखकर जो अनुभव आता है, वह अलौकिक होता है। माँ! बेटे को ऊपर देखना चाहती हो तो प्रातः उठकर बेटे को जिनमंदिर ले जाओ। चित्रों को देखकर चित्त चलायमान होता है कि नहीं? इस बात को जैनदर्शन मानता है। जब भी जीव पापकर्म की ओर प्रवृत्त होगा, विश्वास रखना, शीघ्र पाप नहीं कर पायेगा। जब भी जीव पुण्य में प्रवृत्त होगा, शीघ्र पुण्य नहीं कर सकता।

ज्ञानी! पहले दर्शन, फिर उपयोग, फिर साधन, फिर प्रवृत्ति। ऐसा क्रम है। यदि आप अशुभ दर्शन न करें, तो महिनों-महीनों तक आप शील के साथ जी सकते हो। उपयोग से पहले दृष्टि विकृत होती है। दृष्टि के जाते ही चित्त विकृत होता है और चित्त विकृत होते ही चारित्र विकृत हो जाता है। ज्ञानी! वीतरागी की मुद्रा को देखेगा तो वीतराग भाव आयेंगे। **''जो व्यक्ति जिनालयों में वेशभूषा की सादगी से नहीं आता है, वह घोर पापी है, हत्यारा है। आपके भेष को देखकर, आपकी देह, आपकी भावभंगिमा को देखकर भोले प्राणियों के परिणामों का घात हो रहा है, इसलिए हिंसक है। यहाँ सजकर आने की क्या आवश्यकता थी? जिनके चित्त साजे हैं, जिनके परिणाम साजे हैं, वे शरीर नहीं सजाते। जिनके परिणाम फूट चुके हैं, वे शृंगार करके मंदिर में आते हैं। जिनके चित्त पवित्र हैं, वे शरीर नहीं सजाते। जिनके चित्त विकृत हैं, वे शरीर सजाकर आते हैं।''** यह अनुमान-ज्ञान है। श्रृंगार स्वयं के लिए होता ही नहीं है। क्यों ज्ञानी! तुझे तेरा चेहरा दिख रहा है क्या? नहीं। दूसरे की आँखों में मैं सुन्दर दिखूँ, इसलिए तू शृंगार करके आता है। पर की चर्म की आँखों में सुन्दर दिखने के लिए तू श्रृंगार करके आता है। अरे ज्ञानी! तू सुन्दर दिखना ही चाहता है तो केवली के ज्ञान में तेरी सुन्दर पर्याय झलकती, तो आनंद आता। जहाँ मन को सुमन करके आना था, वहाँ तू मन को सुवासित करके आया। भगवान को देखेगा कि शरीर की सुगंध सूँघेगा अभागे? और तेरे सेंट की खुशबू से दूसरे श्रावकों का ध्यान भी तेरी तरफ चला गया, तो तूने उनको भी अंतराय डाला कि नहीं? तुझे कर्म का बंध होगा कि नहीं?

ये मुनिराज मेरे घर पधारें। उस श्रावक के परिणाम श्रेष्ठ थे कि नहीं? हे भगवान्! ऐसे परिणाम हर श्रावक के हों, क्योंकि धर्म ही त्राता है। भक्त की भावना पूरी होती है। देर हो सकती है, अंधेर नहीं। वह गरीब श्रावक सोचता है कि नगर में बहुत से सेठ हैं। मासोपवासी मुनिराज हैं। पता नहीं मेरे घर पारणा हो पायेगी कि नहीं?

ज्ञानी! मालूम होना चाहिए कि चंदना के घर में महावीर पहुँच सकते हैं, भक्तिभावना चाहिए। श्रावक पारणा वाले दिन व्यापार करने नहीं गया, कलश लेकर पड़गाहन के लिए खड़ा हो गया। फिर भी मन में यही आ रहा था कि राजा पड़गाहन करने खड़ा होगा तो मेरे यहाँ क्या आ पायेंगे? परन्तु भक्त की भक्ति देखिये। मुनिराज की आंकड़ी थी—जहाँ एक पुरुष शीश पर कलश लिये खड़ा होगा, वहीं चर्या को जाऊँगा। वे ऋद्धिधारी मुनिराज थे। जैसे—ही श्रावक ने अपने नयनों के नीर से गुरुदेव के चरण पखार दिये, सब देखते रह गये। आज कहाँ धन काम में आया? भावना काम आई । मुनिराज को आहार देना प्रांरभ किया, परन्तु मन में विकल्प आ गया 'कहीं मेरी माँ न आ जाये।'

सुनो भैया! वे सब पूर्वभव के तपस्वी लोग हैं जिनकी माँ भी धर्मात्मा हो, पत्नी भी धर्मात्मा हो, पिता भी धर्मात्मा हो। आप चाहते हो कि महाराज का पड़गाहन कर लूँ, लेकिन पत्नी कहती है कि मेरे से नहीं होता। ज्ञानी! अब कर लो क्या करोगे? बेटा चाहता है कि रोज पड़गाहन करूँ, लेकिन माँ कहती है-शांत बैठ। उनको कितना पापास्रव होगा जिन्होंने आज निश्चय-व्यवहार के राग में आज हमारे घर-घर में बँटवारे करवा दिये हैं? कुंदकुंद देव ने कहा है, निगोदिया में भी भगवान्-आत्मा देखना चाहिए, तो तुझे अपने भाई में भगवान् क्यों नहीं दिखते? ज्ञानियो! जब निगोदिया में भगवान् दिख सकते हैं, तो इन निर्ग्रन्थों में सिद्ध क्यों नहीं दिखते? दृष्टि को पवित्र कीजिये। पत्थर की प्रतिमा में तुम भगवान् खोज रहे हो और वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि तुम्हें दिख जायें तो तुम आँख बंद कर रहे हो। कैसे अभागे लोग हो?

ज्ञानी! सामायिक करने बैठा तो वन्दना करता है—पूर्व दिशा में विराजमान अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, कृत्रिम-अकृत्रिम जिनबिम्ब, जिनालय जहाँ-जहाँ विराजमान हैं, सबको नमोस्तु। चारों दिशाओं में वन्दना कर रहा

था और सामने मुनिराज बैठे थे उनको पीठ दिखा रहा था। बताओ, जो दिखाई नहीं दे रहे हैं, उनकी तो वन्दना कर रहा है और जो सामने बैठे हैं, उनको पीठ दिखा रहा है। ज्ञानी! जहाँ पंचपरमेष्ठी होते हैं, वहाँ दिशा का विकल्प नहीं होता है। जीव कितना धर्म से च्युत हो रहा है।

मेरी देह तो परद्रव्य है ही, मेरे परिणाम भी परद्रव्य हैं, फिर जगत् की परिणति मेरा स्वद्रव्य कैसे? वह गरीब व्यापारी श्रावक आहार दे रहा था। वह सेठ जिनदत्त हुआ और उसे राज्यपद मिला। जैसे ही उसे राज्यपद मिला, उसका अपहरण हो गया। अपहरण करने वाले ने अटवी में उसे छोड़ दिया। उसका पुण्योदय था तो वहाँ भी उसे मुनिराज मिल गये। वह मुनिराज से पूछता है-मैंने कौन-सा पुण्य किया था जो वणिकपुत्र होकर भी राज्यपद को प्राप्त हुआ और कौन-सा पाप किया था जो राजा बनके मेरा अपहरण हो गया?

बेटे! तूने पूर्व पर्याय में मासोपवासी मुनिराज की पारणा करायी थी, उस पुण्य से तू वणिकपुत्र होकर भी सम्राट बना है। जब तू मुनिराज को आहार दे रहा था, तब तेरे मन में विकल्प आया था कि कहीं मेरी माँ न आ जाये, क्योंकि माँ दान का विरोध करती थी। माँ के आने से महाराज के आहार में विघ्न न आ जाये, दान के काल में जो शुभ धारा बह रही थी, उसके बीच में यह अशुभ धारा आ गई। तूने शुभ भाव का अपहरण किया, इसलिए तेरा अपहरण हो गया। मेरे मित्रो! तुम दान देते समय, पूजा करते समय कितने कितने भाव बिगाड़ते हो। फिर कहते हो कि हमारे घुटने दर्द कर रहे हैं, आँखें दर्द कर रही हैं, मैं इतना धर्मात्मा हूँ। सुनो, जब तुम जिनवाणी सुन रहे थे, उस समय दूसरों की निंदा भी सुनी थी, इसलिए आज तुम्हें कान में मशीन लगाना पड़ रही है। कर्म किसी से समझौता नहीं करता। कर्मसिद्धान्त को मानते हो? जो-जो करणानुयोग में लिखा है, वह सत्य है कि नहीं? श्रीपाल ने जरा-सी निंदा की, सात सौ लोगों ने ताली बजाई, तो सात सौ साथ में कुष्ठी हो गये कि नहीं? अपने जीवन पर दृष्टि डालो कि मैंने जीवन में क्या किया, मेरे साथ क्या होगा? आपने 'तत्त्वार्थ सूत्र' पढ़ा है। तो बताइये, नीचगोत्र के आस्रव के हेतु कौन-कौन से हैं? उसमें यह नहीं लिखा कि निंदा किसकी करना, किसकी नहीं करना। चाहे वह दोषी हो, चाहे अदोषी हो, ज्ञानी! किसी

भी जीव के बारे में तुम अशुभ बात करोगे तो वहाँ नियम से नीचगोत्र का ही बंध होता है। इसलिए अब सोचिए, तुम्हें अपने नीचगोत्र के आस्रव के प्रति भय नहीं है क्या? नहीं है, तो तुम्हारा काम तुम जानो। यदि है, तो आज से ही "तस्समिच्छामि दुक्कडम्", कह कर प्रत्याख्यान कर लेना।

दूसरे पर दया हो या न हो, स्वयं पर तो होना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि, अशुभ आदमी को देखकर भी शुभ भाव होते हैं। जैसे- सम्मेद शिखर, कैलाश, गिरनार आदि का पत्थर, प्रथम गुणस्थान में एकेन्द्रिय जीव, वहाँ जाकर तुम सिद्धों की आराधना करते हो कि नहीं? तुम्हें एकेन्द्रिय पत्थर और उसके गुणस्थान से प्रयोजन नहीं, सिद्धों से प्रयोजन होता है। उस पाषाण खण्ड को तीव्र यश:कीर्ति नामकर्म का उदय है, जो भगवान् की प्रतिमा बनने के लिए आया है। जिसको अरिहंत की प्रतिमा बनने का क्षयोपशम पैदा हुआ है, लोग सिर टेक रहे हैं और जिस जीव का नीच नामकर्म का उदय (अयश:कीर्ति नामकर्म का उदय) होता है, वह पत्थर संडास में लगा होता है। यह मैं 'अष्ट पाहुड' से बोल रहा हूँ।

जो धन भगवान् की पूजा के काम में आ रहा है, उस जीव का पुण्य-उदय होता है जो उसका द्रव्य पूजा में काम आ रहा है। एक वह हाथी है, जो गजरथ खींच रहा है और एक वह हाथी है, जो किसी बारात में जा रहा है।

कहीं मेरी माँ न आ जाये, इतने में तेरा शुभ-उपयोग भंग हो गया, उससे तूने तीव्र कर्म का बंध किया, इससे तेरा अपहरण हो गया। अब सोचिये, जो पूजन, दान आदि करते-करते किंचित् भी परिणाम इधर-उधर करते हैं, वे पुण्यात्मा तो होते हैं, किन्तु किसी के घुटने, किसी की आँख, किसी का सिर, किसी का पेट दर्द कर रहा है, ज्ञानी! यह सब धर्म के समय में अशुभ परिणाम किये थे, उसका परिणाम है। 'वृहद् द्रव्यसंग्रह' गाथा नं. 11 की टीका पढ़ लेना। जो जीव जिस इंद्रिय के विषय में लिप्त थे, उस काल में आयु बंध हो गया, तो वहीं आकर जन्म लेना पड़ गया। कहीं ऐसा न हो जाये आप लोगों के साथ कि एक शरीर के साथ दो शरीरों के संस्कार हो जायें। तू शरीर के शृंगार में लिप्त था और तेरा अंतिम समय आ गया, तू अपने ही शरीर में सम्मूर्च्छन जीव बनकर जन्म ले चुका है और तेरे पूर्व शरीर के साथ तेरा अंतिम संस्कार हो गया।

इसलिए आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं–

यत्त्वया न कृतो धर्मः, सदा मोक्षसुखावहः।
प्रसन्नमनसा येन, तेन दुःखी भवानिह॥ 73॥

धन से धर्म के साधन उपस्थित किये जा सकते हैं, लेकिन धर्म तो परिणामों की विशुद्धि है। हे जीव! जो कोई भी कार्य करो, प्रसन्नचित्त से करो, चेहरा लटका कर नहीं। पुण्यक्रिया महान् होती है ऐसी पुण्य क्रिया करते समय किंचित् भी परिणामों की विकृति हो गई, तो सब व्यर्थ हो जायेगा। दूध में एक बूँद नीबू की गिर जाये तो क्या होता है?

'तत्त्वार्थ सूत्र' के पाँचवें अध्याय की गवेषणा होना चाहिए। जो जीव प्रसन्नचित्त से मोक्ष को देने वाले धर्म का पालन नहीं करता, उसे तो दुःखी ही होना है। संसार में धर्म किसी को दुःखी नहीं होने देता है। सम्पूर्ण आत्माओं को सुख देने वाला धर्म प्रसन्नचित्त होकर नहीं किया, इसलिए दुःखी है। जब भी दुःखी होगा, स्वयं के कर्म के द्वारा ही होगा।

धर्मक्रिया करते-करते अशुभ मत सोचना। धर्म धन से नहीं, मन से होता है। धन से धर्म होता, तो मुनि सब अधर्मी हो जाते, क्योंकि इनके पास कुछ भी नहीं है। परिणामों की विशुद्धि से धर्म होता है। धन से धर्म के साधन जुटाओ और मन से धर्म करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''कर्मोदय होने पर रक्षक कौन''

यत्त्वया क्रियते कर्म, विषयान्धेन दारुणम्।
उदये तस्य सम्प्राप्ते, कस्ते त्राता भविष्यति॥ 74 ॥

अन्वयार्थ—विषयान्धेन = विषय में अन्ध होकर **त्वया** = तेरे द्वारा **यत् दारुणम् कर्म** = जो भयानक तीव्र कर्म **क्रियते** = बाँधे जाते हैं **तस्य उदये सम्प्राप्ते** = उन कर्मों के उदय आने पर **कः** = कौन **ते** = तेरा **त्राता** = रक्षक **भविष्यति** = होगा?

भावार्थ—हे आत्मन् ! पञ्चेन्द्रिय-विषयों में अंधा होकर तूने जो कर्मबन्ध किया है, उस कर्म के उदय में आने पर तेरा रक्षक कौन होगा? अर्थात् कोई नहीं होगा।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो ! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। दिगम्बर जैन श्रमणपरम्परा में तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर अनन्तानंत योगियों के होने के बाद भी जो सनातन तत्त्व है, उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। जो परिणमन दिख रहा है, आपके निजी परिणामों का परिणमन है। भावों का परिणमन शाश्वत है, पर्याय का परिणमन भी शाश्वत है। निजी परिणामों का परिणमन भी शाश्वत है। ज्ञानी! द्रव्य की द्रव्यता शाश्वत होने पर भी ध्रुवत्व परिणमनशील है, फिर भी अपरिणमनशील है।

परमेष्ठी के होने पर भी, चत्तारि शरण के होने पर भी, शरणभूत नहीं है जब तक शरणागत स्व की शरण में नहीं जाता। जो शरण को स्वीकारता ही नहीं है, उनको शरणभूत क्या है? मुट्ठी का जहर मृत्यु का कारण नहीं है। मुख में रखा जायेगा जहर, तभी मृत्यु होगी। ज्ञानी! सामने विराजे पंचपरमेष्ठी बंध के कारण नहीं, मोक्ष के कारण नहीं। श्रद्धा में जायेंगे, तो परमेष्ठी मोक्ष का कारण हैं। यदि अश्रद्धा में जायेंगे, तो परमेष्ठी बंध के कारण होंगे। वस्तु तटस्थ है, व्यक्ति तटस्थ है, प्रत्येक द्रव्य अपने में तल्लीन है। आपकी तल्लीनता जब भग्न होती है, तब पर में मन की परिणति जाती

है। ज्ञानी! परवस्तु से बंध होता नहीं है। जब तक पर में परिणति तेरी जाये नहीं, तब तक परवस्तु बंध का कारण होती नहीं।

मुमुक्षु! तुम इस मनुष्यपर्याय में आये हो। यहाँ बहुतकुछ है। पाँच पाप भी हैं, पाँच महाव्रत भी हैं, पाँच अणुव्रत भी हैं, पंचपरमेष्ठी भी हैं। यहाँ तू क्या सोच कर आया है? किनको तू अपना विषय बनाना चाहता है? ज्ञानी! तपन पंचमकाल की है। जितनी भोग-भावना कर रहा है, उतना भोग नहीं सकेगा। भोग प्रमाण से जान रहा है, भोग इन्द्रियों में कहाँ है? ज्ञानी! सेवन कितना किया और सेव्यमान का भाव कितना किया? सेवन तो अल्प किया, लेकिन भाव अनंत किये। सेवन का बंध तो होगा ही, पर जो सेवन नहीं कर सका है, उसका भी बंध निश्चित है। जितना पापबंध करते हो, उतना पाप कहाँ कर पाते हो? जितना द्रव्य आप कमा कर रखे हो, उतना भोगने का समय नहीं है। ज्ञानी! कोई अन्य भाग्य का फल भोगेगा। बेटों का विवाह करने को आप कहते हो कि हमारा लोककर्त्तव्य है। कर्म कहता है कि तुम अपना कर्त्तव्य नहीं भूलते, तो मैं अपना कर्त्तव्य कैसे भूल सकता हूँ? जब भोगने का समय था, तो स्व के लिए पाप किये और अब भोगने का समय चला गया, तो पर के लिए पाप क्यों कर रहे हो? जैनदर्शन में कन्यादान कोई दान नहीं है। यह लोकव्यवस्था हो सकती है, पर धर्मव्यवस्था नहीं है। धर्मव्यवस्था भिन्न है और लोकव्यवस्था भिन्न है। बड़ी प्रीतिपूर्वक समझना। समझना तो आज ही पड़ेगा। अपने दु:ख को तो तू भूल गया, पर के दु:ख में आँख में आँसू ला रहा है।

अहो मुमुक्षुओ! जो आपने दया की थी, वह आपकी दया नहीं थी। पर के पानी को तो आँखों में देखता रहा, पर तड़पती हुई भगवान्-आत्मा को नहीं देख सका। वह कैसा ज्ञानी है, घर में सुन्दरी बैठी तड़प रही है कि मेरा स्वामी मुझसे क्यों नहीं मिलता है और तू व्यभिचारी परनारी पर दृष्टि फेंक रहा है? अहो व्यभिचारी तू लोक से भी व्यभिचारी, निज में भी व्यभिचारी। बिना विचारे जो कर रहा है, वही व्यभिचारी। मेरा प्रश्न है आपसे कि घर की सुन्दरी को छोड़कर जो पर पर दृष्टि डाले, वह क्या कहलायेगा? व्यभिचारी।

ज्ञानी! तेरे निज घट में बैठी भगवान्-आत्मा सुन्दरी तड़प रही है और तू परद्रव्यों पर दृष्टि फेंक रहा है। हे व्यभिचारी ! तेरा क्या होगा? निज सुन्दरी को भूल रहा है और देह

सुन्दरी पर दृष्टि फेंक रहा है। ज्ञानी! अपनी देह को जो देख रहा है, वह व्यभिचारी है, तो पर की देह को देखने वाला ब्रह्मचारी कैसे होगा? स्वयं के शरीर को देखने वाला भी व्यभिचारी ही है।

जगत् के जीवों के मध्य में तू एक जीव है या नहीं ? मेरे मित्रो! जिस देश का, जिस समाज का कोई नायक न हो, उसका विनाश निश्चित है। अथवा जहाँ हर व्यक्ति नायक है, उसका भी विनाश निश्चित है, बुद्धिहीन नायक और जिन घरों में स्त्री की चलती हो, उनका नाश निश्चित है। माँ! बुरा नहीं मानना। स्त्री से तात्पर्य यह है कि जो स्वयं दोषों से युक्त है।

हे मुमुक्षु! जब तक पुण्य ही मिठास तेरी आत्मा में है, तब तक जगत् की सारी चींटियाँ चिपकेंगी और जिस दिन तेरी पुण्य की मिठास समाप्त हो जायेगी, सब छोड़कर भाग जायेंगी। भो ज्ञानी! अपना मत मान लेना किसी को। जो अन्तस् में माधुर्य है, वही जगत् की प्रीति है। माधुर्य समाप्त हुआ, कि प्रीति समाप्त हुई? ज्ञानियो! घर जाकर तटस्थ होकर निहारना कि कितने लोग अपने हैं? जब तक तेरे अन्तस् में शुभ परिणति है, स्व पर लक्ष्य है, तभी तक तेरी आत्मा तेरे से प्रसन्न है और तेरे द्वारा ही कोई अशुभ हो जाता है तो तेरी आत्मा ही तुझसे नाराज हो जाती है। इसे ज्ञेय बनाइये। तेरे द्वारा तेरे से अशुभ होता है तो स्वयं के द्वारा स्वयं पर अप्रसन्न होता है। ऐसा कभी अनुभव किया क्या? यदि नहीं किया है, तो आज कर लेना। ज्ञानी! स्वयं के द्वारा कोई अच्छा कार्य हो जाता है तो कोई न भी पूछे, तब भी चित्त प्रसन्न होता है। ज्ञानियो! पर से पर की खुशियाँ।

मेरे द्वारा मैं खुश हो जाऊँ, इसी का नाम धर्मात्मा है। पापी पुरुष का पापी मन भी उसके पाप को स्वीकार नहीं करता। एक क्षण को ग्लानि आती ही है। समुद्र के समान। समुद्र में कितना ही कचरा फेंक देना, वह स्वीकार नहीं करता, किनारे कर देता है। ऐसे-ही मेरा अंतरंग मन पाप को स्वीकार नहीं करता, उसे उछाल देता है। ज्ञानी! आज मेरी इतनी-सी बात मान लेना कि चौबीस घण्टों में से मात्र पाँच मिनिट अपने लिये दे देना। उन पाँच मिनिट में मौन रहना, घर के एक कोने में आँख बंद करके बैठ जाना और सोचना कि मैंने मनुष्यपर्याय को प्राप्त तो किया है, पर पूर्णता किस परिणति में की है?

भूत के पुण्य ने तुझे मनुष्यपर्याय दी है, आज तू क्या कर रहा है जिससे भविष्य की पर्याय सुधर सके? इन पाँच मिनिट में पाँच पापों का निर्णय हो जायेगा और पंचम गति का भी निर्णय हो जायेगा।

यत्त्वया क्रियते कर्म, विषयान्धेन दारुणम्।
उदये तस्य सम्प्राप्ते, कस्ते त्राता भविष्यति॥ 74॥

हे जीव! पूरी पर्याय तूने पर को दे दी है। विषयों में अंधे होकरके तूने कर्म किये हैं। ज्ञानी! जब तक सम्यक्त्वाचरण नहीं है, तब तक स्वरूपाचरण नहीं है। विषयों में अंधे होकर तूने दारुण कर्म किये। दुनियाँ पर्याय के धर्मात्मा को देख सकती है, लेकिन परिणामों के धर्मात्मा को कौन देख पायेगा? तू स्वयं से स्वयंभू को ही देख पायेगा। आगम के वचन हैं कि पूज्यता के अभाव में पूजा कराओगे तो निगोद जाओगे।

तत्त्व की बड़ी-बड़ी बातें हो जाती हैं, पर ज्ञानी! व्यवहार तत्त्व की चर्चा नहीं करोगे तो निश्चय तत्त्व की प्राप्ति संभव नहीं है। ज्ञानी! जो तूने कर्म किये विषयों में अंधे होकरके, जब वे उदय में आयेंगे, तब तुझे बचाने वाला कौन होगा?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

''भोगों से तृप्ति नहीं होती''

भुक्त्वाऽप्यनन्तरं भोगान्, देवलोके यथेप्सितान्।
यो हि तृप्तिं न सम्प्राप्तः स किं प्राप्स्यति सम्प्रति॥ 75 ॥

अन्वयार्थ—देवलोके = स्वर्गलोक में **यथेप्सितान्** = इच्छानुसार **भोगान्** = भोगों को **अनन्तरं** = निरन्तर **भुक्त्वाऽपि** = भोग कर भी **यः** = जो कोई **हि** = निश्चय से **तृप्तिं न सम्प्रातः**= तृप्त नहीं हुआ, **सः** = वह **सम्प्रति** = वर्तमान तुच्छ भोगों से, **किं** = किस तरह, **तृप्तिं** = तृप्ति को, **प्राप्स्यति** = प्राप्त कर सकेगा?

भावार्थ—हे आत्मन् ! स्वर्गलोक में इच्छानुसार भोगों को निरन्तर भोगकर भी जो निश्चय से तृप्त नहीं हुआ, वह प्राणी क्या वर्तमानकालीन मनुष्यभव में प्राप्त होने वाले तुच्छ भोगों से तृप्त हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

श्रमणपरम्परा में, तीर्थंकर भगवन्तों की परम्परा में अहिंसा परमब्रह्म है। उस अहिंसा को समझने के लिये, अहिंसा परमब्रह्म की प्राप्ति के लिये शेष चार व्रत हैं। जैसे किसान का खेत में बाढ़ लगाने का उद्देश्य यह होता है, कि फसल की रक्षा हो। फसल की रक्षा के लिये खेतों में काँटों की बाढ़ लगा देते हैं। सारे विश्व में यदि कोई धर्म है, तो 'धम्मो दयाविशुद्धो।' जो दया से विशुद्ध है, ऐसा अहिंसा धर्म ही परमब्रह्म है। उस अहिंसा धर्म की रक्षा के लिये चार व्रतों की व्याख्या है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।

ज्ञानियो! विश्व में जब-जब अहिंसा की बात चलती है, विश्वास रखना, एक दिगम्बर जैन आम्नाय ही उस परम अहिंसा के लक्ष्य को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। जब तक धागा मात्र भी तुम्हारे पास है, तो अहिंसा की सिद्धि नहीं है। एक धागा भी होगा तो उसे धारण करने पर, उसके खिंचने पर, शरीर पर विराजे कोटि-कोटि जीवों

की हिंसा होगी। उस धागे को धारण करने में हिंसा, उस धागे को उतारने पर हिंसा। वस्त्र स्वच्छ नहीं होंगे तो परिणामों में कालुष्य होगा, सो परिणामों की हिंसा। और फट जाने पर माँगना। आपका मन कह सकता है कि महाराज! यह जैनसमाज बहुत धनपति समाज है, यह तो सबकुछ दे सकती है आपको। ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिए कि सबसे बड़ी हिंसा है-'दे दो' । जगत् के सारे सम्मान नष्ट हो जाते हैं 'दे दो' शब्द आने पर। 'माँगना' महा हिंसा है। माँगने पर स्वयं का मान भंग हो जाता है। यह पुरुष-जगत् अपने देह की चिन्ता नहीं करता है, अपने परिवार की चिंता नहीं करता है। कितना पुरुषार्थ धन के कमाने में लगाता है। कितना श्रम करता है। एक सिक्का भी गिर जाये तो धक्का-सा लगता है। आपके द्वार पर कोई रसीद-कट्टा लेकर पहुँच जाये, तो आप सोचते 'आ गया माँगने।' आपको अपनी कमाई गँवाने में बड़ा कष्ट होता है, इसलिये दिगम्बर साधु न किसी को देने का भाव रखता है, न किसी से लेने का भाव रखता है। जहाँ लेने-देने का भाव समाप्त हो जाता है, उसका नाम दिगम्बर साधु है। जहाँ अपने शरीर को भी पहचानने के भाव का अभाव हो चुका है, शरीर के पोषण के भाव का अभाव हो चुका है, वहाँ दुनियाँ में माँगने की क्या आवश्यकता है?

अहिंसा की बात करें। चिन्तन करो-वर्द्धमान स्वामी ने जो चार सूत्र प्रदान किये 'युक्त्यनुशासन' ग्रन्थ में। दया, दम, त्याग, समाधि। पहला सूत्र दया है। यह दया सूत्र इतना विशाल है कि श्रावक के व्रत से लेकरके महाव्रत की पूर्णता दया से होती है। आपके नल में छन्ना लगा है, इसका उद्देश्य क्या है? पानी को स्वच्छ करना उद्देश्य है, कि रोगों से बचना उद्देश्य है, कि जीवों की रक्षा का उद्देश्य है? इस बात का ध्यान रखना कि कोटि-कोटि द्रव्यों को खर्च करके, लाखों-लाखों बैंड बजा करके, उन बैंडों में अनन्त जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा **''जैनदर्शन में सबसे बड़ी प्रभावना यह है-कि नवयुवकों की टोली नगर में गमन कर रही हो, प्यास लगने पर छन्ना लगा कर पानी पी रहे हों, तो समझ लेना कि जैनदर्शन की प्रभावना हो गई। किसी को पूछना नहीं पड़ेगा कि कौन है? अपने आप समझ जायेंगे कि कोई जैन श्रावक है।''** नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो गया। बैंड की प्रभावना तो सारे दर्शनों में हो रही है,

जुलूसों की भीड़ तो सारे दर्शनों में हो रही है, परन्तु पानी छानने वाले तो जैनदर्शन में ही हैं। वर्षाकाल के इन चार महिनों में जीवराशि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होती है। यही चार माह का योगियों का चातुर्मास योग है। आप साथ में चातुर्मास करेंगे कि नहीं ? आठ महिने तो साधु विहार करते रहते हैं। गुरु शिष्य के योग का मास ही चातुर्मास है। श्रावक और साधु के एकसाथ रहने का लम्बा समय ही चातुर्मास है।

श्रमणचर्या कैसी हो और श्रावक चर्या कैसी हो ? कम-से-कम जब तक चातुर्मास चले, माताओ! सूर्य के अस्त होने के अड़तालीस मिनिट पूर्व रसोईघर में ताला पड़ जाये। कोई मेहमान भी रात्रि में आये, उसको भी भोजन नहीं कराना। सुबह हो जाये तो दुगना भोजन करा देना। जितना राग रात्रि के भोजन में होता है, उतना दिन के भोजन में नहीं होता है। जो रात्रि में ग्रास का सेवन करता है, वह माँस के पिण्ड का सेवन करता है। आप गृहस्थ थे, रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे थे, शाम को पाँच बजे और टिफिन खोलना प्रारंभ कर दो, तो लोग अपने-आप समझ जायेंगे कि ये कोई जैन श्रावक है जो अनथऊ करता है, ब्यारू नहीं करता। आपके यहाँ अनथऊ होती कि ब्यारू होती ?ब्यारु रात्रि में होती है और अनथऊ शाम को होती है। यह अहिंसक जीव की प्रवृत्ति है।

अरहंतों की प्रतिमाओं के दर्शन तो ढाई द्वीप के बाहर भी हो सकते हैं, परन्तु निर्ग्रन्थों के दर्शन तो मात्र ढाई द्वीप में ही हो सकते हैं। ज्ञानी! भावना भाना कि पूरे ढाईद्वीप में जितनी चातुर्मास स्थापना हो रहीं हों, सभी योगियों की साधनायें निर्विकल्प पूर्ण हों। आत्मप्रभावना धर्मप्रभावना के साथ पूर्ण हों, ऐसी भावना भाना। आषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी जहाँ आ जाती है, वहीं चातुर्मास स्थापना कर लेते हैं। पाँच दिन श्रावण कृष्णा पंचमी तक जो आपको मिलते हैं, वह इसलिये मिलते हैं कि विहार करते हुये कोई संघ उचित स्थान पर न पहुँच पाये, तो श्रावण कृष्णा पंचमी तक स्थापना कर सकते हैं, परन्तु यदि स्थान पर पूर्व से विराजमान हैं और काल का अतिक्रमण करते हैं, तो जिनाज्ञा का उल्लंघन करते हैं साधु और योगी। क्या करूँ ? यह पंचमकाल है। अन्यथा चातुर्मास स्थापना धर्मशाला में नहीं, किसी वृक्ष के नीचे होनी चाहिए थी।

गिम्हे गिरि सिहरत्था, वरिसायाले रूक्ख-मूल रयणीसु।
सिसिरे वाहिर सयणा, ते साहू वंदिमो णिच्चं॥ योगि भक्ति॥

ग्रीष्मकाल में पर्वत की चोटी पर बैठे हों, शीतकाल में नदी के किनारे बैठे हों और वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे योग धारण करके बैठे हों, ऐसे योगियों को त्रिकाल नमोऽस्तु। पंचमकाल में हीन संहनन है। तपन को देखकरके कक्ष में बैठे-बैठे आपको पसीना झर रहा है, पर्वत की चोटी पर बैठने का साहस समाप्त हो चुका है। पद्मनन्दि स्वामी ने 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' में लिखा है कि योगियों के जंगलवास, पर्वतवास ये सब समाप्त हो चुके हैं। यह तो उत्तरगुण की साधना है, मूलगुण पर ध्यान रखना। त्रस जीवों का, विकलत्रय जीवों का बाहुल्य होता जायेगा, यही कारण है कि आज जंगलवास का निषेध है। जितने जीव नगरों में दिखाई नहीं देते हैं, उतने जीव तीर्थों में जंगलों में दिखाई देते हैं। इसी कारण पद्मनन्दि स्वामी को स्पष्ट कथन करना पड़ गया कि आप जंगल में विचरण करोगे तो जीवों का घात अधिक होगा। इसलिये वर्तमान में नगरों में विचरण करना चाहिए।

जो साधु योग धारण करते थे ऐसे-ऐसे महाश्रमण हुये जिन्होंने एक वृक्ष के नीचे योग धारण कर लिया। चार मास तक एक आसन से बैठ करके उपवास धारण कर लिया। अब वह आहार को भी नहीं उठेंगे। सामर्थ्य के अनुसार एक माह का भी उपवास करते थे, एक पक्ष का भी और प्रतिदिन भी आहार को उठते थे। चतुर्थ काल में भी चतुर्मास हुआ करते थे। ऋद्धिधारी मुनियों को चतुर्मास करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उनके द्वारा किसी जीव की हिंसा नहीं होती है। पंचमकाल में कोई ऋद्धियाँ नहीं होती हैं। कोई यह न सोचे कि अभी बारिस नहीं हुई तो अभी विहार कर सकते हैं। नहीं, आगम की आज्ञा है कि पानी गिरे या न गिरे, लेकिन तद्रूप मौसम में परिवर्तन होता है, जीवराशि उत्पन्न होती है। आगम की आज्ञा का विरोध न हो, इसलिये आपको समय पर चातुर्मास आवश्यक है। लोग कहते हैं कि पहले कच्चे मकान होते थे इसलिये लोग चँदोबे लगाते थे, अब तो पक्के मकान हो गये हैं इसलिए अब चँदोबे की आवश्यकता नहीं है। पहले कच्चे मार्ग होते थे, अब पक्के मार्ग हो गये हैं, अब चातुर्मास की भी आवश्यकता नहीं है। क्यों कर रहे हो? ज्ञानी! चक्रवर्ती के भवन कच्चे नहीं होते थे। हमारा श्रावक कच्चे मकान में मूँग की दाल का पानी पीकर तो रह गया होगा, लेकिन अरिहन्त के मंदिरों को विशाल बना कर रखा है।

ज्ञानियो! तर्क वही है, जिससे आगम की सिद्धि होती हो। दादा जी! आप तो मुस्करा कर अपना समय निकालो, विकल्प नहीं करना। तीर्थंकर की दिव्य देशना, चक्रवर्ती के सोलह स्वप्न और चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न। उन स्वप्न में एक स्वप्न था कि रथ की धुरा को बछड़े खींच रहे थे। उसका अर्थ था कि पंचमकाल में धर्म रथ को खींचने वाले बछड़े ही होंगे। श्रमणसंघ में देखो तो बछड़े, समाज में देखो तो बछड़े, आहार में देखो तो बछड़े ही मिलेंगे। जो बिखरे हुये परिणामों को जोड़कर रखे, वह योगी है।

'कायवाङ्मनः कर्मयोगः॥ (त.सू)

काय, वचन, मन इन सबका योग, इनको एकाग्र कर लेना, इसका नाम योग है। साधुओं की परिभाषा कहीं पढ़ने मत जाना, सीखने मत जाना। कन्नौज का सेंट बेचने वाला आगरा की गलियों में निकल पड़े, कोई लोभी एक भी पैसे की न खरीदे, तो भी उसको मालूम पड़ ही जाता है कि यहाँ सुगन्ध है। वह गली ही महकने लगती है। ऐसे ही साधु को देखकरके असाधु के परिणाम भी साधुरूप होने लग जायें, यही साधु की पहचान है।

संगत ऐसी कीजिए, ज्यों गंधी की वास।
गंधी कुछ भी न दे, तब भी वास सुवास॥

कुछ भी न ले, तब भी मालूम तो चलता है कि सुगंध कैसी है? ऐसे-ही साधु कुछ भी न दें, लेकिन उसका मुस्कराता चेहरा ही कह देता है-कि इनका अन्तर भी मुस्कुराता होगा; इतना आनन्दमयी होगा। भारत की भूमि पर जितने चातुर्मास हो रहे हों, मेरी यह भावना है कि यदि आप योगी हो तो जुड़ती समाज को तोड़ना मत, टूटी समाज को जोड़ कर रखना, इसका नाम चातुर्मास का फल है।

जब महाराज पधारें, तब लोग रोयें और जब महाराज जायें, तब मुस्कायें, तो समझना कि कितने बढ़िया महाराज आये थे। जब पधारें, तब ट्रस्टी सोच रहे कि अब फुर्सत हो गये। नहीं, ज्ञानी! आपकी पहचान ऐसी होनी चाहिये कि जब आप पधारें, तब लोग मुस्कुरायें और आप जब जाने लगें, तो उनकी आँखों में आसूँ हों। तब आप समझ लेना कि आप कैसे हो? यह अन्तरंङ्ग का विषय है। चातुर्मास-योग अहिंसा के लिये है।

समाज से मेरा कहना है-चातुर्मास किसका स्थापित करा रहे हो ? अधिकारियों का, कि योगियों का ? मुनियों को मुनि बने देखना, चातुर्मास में उन्हें मुनीम बनाने का प्रयास मत करना। समाज की कोई भी विषमता, कोई भी बात आप साधुओं के पास लेकर मत आना। समाज की बात समाज में रहना चाहिये। ये साधना के लिये आये हैं, आपके समझौते के लिये या आपके विखण्डन के लिये नहीं आये हैं। ये देखते हैं तो अपनी साधना मात्र को। इसलिये आपके बीच की कोई भी बात हो तो उसे साधुओं के कान तक भेजने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ न तन्त्र माँगने आना, न मन्त्र माँगने आना, न जादू-टोना माँगने आना। यहाँ तो अरहन्त की देशना मात्र सुनने आना। मुझे यह भी जानने की आवश्यकता नहीं है कि किस संघ में क्या हो रहा है? दुनियाँ की सूचनायें लेकर आने की भी आवश्यकता नहीं है। योगी का तात्पर्य निज में लीन होना है। आचार्य विमलसागर जी महाराज कहते थे-कि हाथी को बाँध लेना सरल है, परन्तु एक साधु को रोकना कठिन है।

भैया! यदि कोई आपके कान में कह जाये कि विशुद्धसागर महाराज आपके बारे में ऐसा कह रहे थे, तो तू उनसे कह देना-कि मैं महाराज के पास जाकर पूछ लूँगा। अपने ही तो गुरुमहाराज हैं। जाता क्या है? आप तो सीधे मेरे से बात कर लेना, किसी की सुनी-सुनाई मत सुनना। ये पंचमकाल है। क्या आप हड़िया जानते हो ? आचार्यमहाराज 'कुरल काव्य' में लिखते हैं कि, हड़िया के मुख पर पारा (ढक्कन) होता है, लेकिन जगत् के लोगों के बोलने पर कोई पारा(ढक्कन)नहीं होता, कि कौन क्या बोल दे ? सागर के (म. प्र.) में चातुर्मास हुआ था। वहाँ पाँच संघों के त्यागी थे। मैं भी उसमें था। लोग सोच रहे थे कि पता नहीं चातुर्मास में क्या होगा ? एक संघ के साधु तो शान्ति में नहीं रह पाते, पाँच संघ के साधुओं का कैसे चातुर्मास कराऊँगा ? मैंने पाँचों स ंघों की मीटिंग ली और कहा सुनो-चातुर्मास सफल करना है तो इतना ध्यान रखना-जो छोटे-छोटे मच्छर होते हैं, वे तो सूचित करके काटते हैं और बड़े मच्छर तो बिना बोले ही काट जाते हैं। वे तुम्हारे कान में कुछ कहने आयें, तो कह देना कि मैं तो विशुद्ध सागर महाराज से बात करके फिर आप से बात करूँगा। पाँचों संघों के साधुओं ने उस

नियम का पूर्ण पालन किया। पूरी समाज मुस्कुराती रही और देखती रही कि एकसाथ पाँच संघ के साधु प्रतिक्रमण, नमोस्तु, प्रतिनमोस्तु करें। एकसाथ प्रवचन व एकसाथ चर्या को निकलें। पूरी समाज गद्‌गद् होकर मुस्कुराती रही–हे महाराज! क्या यह भी हो सकती है कि पंचमकाल में भी पाँच संघों के साधु एकसाथ चातुर्मास कर सकते हैं?

जब अचेतन पानी एकसाथ मिल करके 'प्रयाग' बन सकता है, तो चेतन निर्ग्रन्थ 'सागर' बनकर एकसाथ न बैठ पायें, तो महासागर कैसे बन सकते हैं?

इस सभा में आकर कुछ समझ में न आये, तब भी आकर बैठना। जब अपने छोटे से बच्चे को बिठाना सिखाते हो, वैसे ही पंचमकाल में चाहे श्रमण हों, चाहे श्रावक हों, यहाँ एकसाथ बैठना सीख लेंगे, वे ही सिद्धशिला पर एकसाथ बैठ पायेंगे। जो यहीं नहीं बैठ पा रहे हैं, वे सिद्धशिला पर क्या बैठ पायेंगे? बैठना सीखो और समाज की अखण्डता पर ध्यान देना। मेरा भाव है कि समाज अखण्ड रहनी चाहिये। भेद से अभेद की ओर तो जाना, परन्तु अभेद से भेद की ओर मत जाना। जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त है भेद से अभेद की ओर जाना। अभेद से भेद करना, यह जैनदर्शन का सिद्धान्त नहीं है। यदि चातुर्मास की बात कर रहे हो तो कुन्दकुन्द स्वामी की 'रयणसार' की बातें ध्यान रखना–हे श्रावको! **''बेटा कैसा ही हो, माँ उसका पालन करती है। जैसे गर्भिणी माँ अपने गर्भ में शिशु को लिये हुये है, उसके स्वयं का भोजन बदल जाता है कि अधिक तीखा न जाये। स्वयं की चाल बदल जाती है। पैर को ऐसे उठाती है, ऐसे रखती है कि कहीं उदरस्थ बेटे को कष्ट न हो जाये। ऐसे ही! तुम श्रमणों के पास आओ तो माँ बन कर आना उस गर्भिणी माँ के समान, ताकि हमारे मुनिराज-शिशुओं को किसी प्रकार का कष्ट न हो जाये, उनकी साधना में कोई विकल्प न आ जाये। जब माँ ही बेटे को दुतकारने लग जाये, तो पालन कौन करेगा?''** सभी श्रावक इस बात का ध्यान रखना कि जब हम साधुओं की सेवा में रहेंगे तो माँ बन कर लगेंगे, क्योंकि जगत् में सर्वाधिक प्रीति माँ की होती है। दादाजी! आपका बेटा चार मकान बनवा ले, लेकिन जब कोई रिश्तेदार आयेगा तो यही कहेगा

कि घर चलो। घर चलो तात्पर्य है कि जहाँ हमारे पिताजी रहते हैं, वह घर कहलाता है।

यशोदा के यहाँ कृष्ण पले, परन्तु बेटा तो देवकी का ही था। मेरा समाज से कहना है कि कोई भी यशोदा पालन करे लेकिन बेटा तो देवकी का ही है। इस नगर में जितने श्री जिनालय हैं, सभी हमारे मंदिर हैं। हम सभी के भक्त हैं। हम 'साधु' के भक्त नहीं हैं, हम 'साधुओं' के भक्त हैं। हम अरहन्त की 'प्रतिमा' के भक्त नहीं हैं, हम 'प्रतिमाओं' के भक्त हैं। हम 'शास्त्र' के भक्त नहीं हैं, हम 'सम्पूर्ण शास्त्रों' के भक्त हैं। ऐसी अखण्डता का बोध हमारे भारत के प्रत्येक श्रमण के मुख से निकलने लग जाये, तो आज भारत की भूमि में नमोस्तु शासन ऐसे-ही जयवन्त रहेगा। ज्ञानियो! किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प मत करना। भारत की भूमि पर साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष तक ऐसे ही जिनबिम्ब जिनालय रहेंगे और निर्ग्रन्थ गुरु विचरण करेंगे जैसे आज कर रहे हैं।

आगम का विधान है कि चातुर्मास की निष्ठापना कार्तिक कृष्ण अमावस्य की अपर रात्रि में और प्रतिष्ठापना आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी की पूर्व रात्रि में की जाती है। चातुर्मास में जो रात्रि में खाते नहीं हैं, वे खानेवालों का सहयोग भी नहीं करेंगे। नशीले द्रव्य का सेवन नहीं करेंगे। गुटका, पान, सिगरेट, तम्बाकू, चाय, अफीम, कॉफी का सेवन नहीं करेंगे। चार महीने किसी प्रकार की पत्ती का सेवन नहीं करना। साधु भी खड़े धान्य, पुराने मेवा, पत्ती आदि का सेवन नहीं करते हैं। चातुर्मास स्थापना का उद्देश्य अहिंसा है। यदि विशुद्धसागर बाह्य प्रभाव में आकरके आचार्य महाराज के पास गाड़ियाँ भेजें, तो मात्र चातुर्मास वास हो गया, अहिंसा का पालन कहाँ हुआ? कोटि-कोटि जीवों की हिंसा चल रही है। इसलिये श्रमणों को भी चाहिये कि यात्रा का आदेश न करें

चातुर्मास में बाहर की सामग्रियों का आना-जाना तो बन्द ही हो चुका है, क्योंकि इच्छाओं का दमन व दया का पालन तभी होगा, जब इन्द्रियों का दमन होगा, कषायों का शमन होगा, तभी समाज में एकता आयेगी। चातुर्मास का तात्पर्य निवास करना मात्र नहीं है, चतुर्विध आराधनाओं में सहयोगी बनना है।

श्रावक और श्रमण एक रथ के दो पहिये हैं। जिनशासन की प्रभावना में आप सबका भी हाथ है। श्रावको! सभी से मेरा कहना है कि इन श्रमणों के साथ आप भी साधना करना, भगवान् की आराधना करना आत्मकल्याण की भावना के साथ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"विष से भी अधिक दुःखद विषय-भोग"

वरं हालाहलं भुक्तं, विषं तद्भवनाशनम्।
न तु भोगविषं भुक्तमनन्त-भवदुःखदम्!॥76॥

अन्वयार्थ—तद्भवनाशनम् = उसी एक जन्म के नाश करने वाले, **हालाहलं विषं** = हलाहल विष को, **भुक्तं** = खा लेना, **वरं** = अच्छा है, **तु** = परन्तु, **अनंतभवदुःखदम्** = अनन्त जन्मों में दुःख देने वाले, **भोगविषं** = भोगरूपी विष को, **भुक्तं** = भोगना, **न** = ठीक नहीं है।

भावार्थ—हे भव्य! एक ही जन्म को नष्ट करने वाला हलाहल विष खा लेना अच्छा है, परन्तु अनन्त भवों में दुःख देने वाले भोगरूपी विष का पान करना अच्छा नहीं है।

॥ सद्-देशना ॥

मनीषियो! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन-काल में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी जगत्कल्याणी है।

यह सर्वज्ञ शासन नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमण-संस्कृति।

आचार्य कुलभद्र स्वामी वस्तुस्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं। ज्ञानियो! विषय-भोग विष से भी विषाक्त हैं। विष तो एक भव का ही घात करता है, परन्तु विषय-कषाय का भोग भव-भव में भ्रमण कराता है।

ज्ञानियो! जो आत्मा को पवित्र करे, उसका नाम धर्म है। जिससे आत्म-उन्नति हो, आत्मविकास हो, आत्म-उत्थान हो, उसका नाम धर्म है। विश्व में आज का दिन एक अभूतपूर्व दिन है। जो पूर्व में कभी नहीं हुआ हो, उसका नाम है अभूतपूर्व। जगत् में अनेक गुरु और अनेक शिष्य की व्याख्या है, लेकिन आज गुरु-शिष्य का समागम हुआ है। तीर्थंकर-जैसे गुरु हों, गणधर-जैसे शिष्य हों, वह है गुरुपूर्णिमा।

चाहे तीर्थंकर भगवान् भी क्यों न हों, एक पर्याय की साधना से कोई परमात्मा नहीं बनता। गुरु के अभाव में ज्ञान की पूर्णता नहीं होती है। वर्तमान की पर्याय की दृष्टि से देखेंगे तो स्वयंभू होने के पहले उनको कोई गुरु स्वीकार करना पड़ता है।

गुरूपदेशादभ्यासात्, संवित्तेः स्वपरांतरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्ष-सौख्यं निरन्तरम्॥ (33/इष॰)

जो गुरु के उपदेश से, अभ्यास से तथा आत्मज्ञान से अपने और पर के अन्तर को जानता है, वह मोक्ष सम्बन्धी सुख का अनुभव करता है।

जो व्यक्ति गुरु-उपदेश के बिना गुरु बनने का पुरुषार्थ प्रारम्भ कर देता है, वह चालक के बगल में बैठे-बिना चालक बन बैठता है। तो वह अनेक यात्रियों को गड्ढे में गिरा देता है। जो गुरु में भगवत्ता की खोज करता है, उसका नाम शिष्य है। ब्रह्माण्ड में (विश्व में) आपको देव अलग मिलेंगे, शास्त्र अलग मिलेंगे, गुरु अलग मिलेंगे, परन्तु दिगम्बर जैन आम्नाय में पंचपरमेष्ठी भगवान् में गुरु को भी भगवान् कहा है।

जिनलिङ्ग को प्राप्त होने से पहले मन के विकारी भावों का नाश कर देना। जीवन में एक बार गुरु बनाना, लेकिन गुरु बनाने के पहले उसकी पहचान कर लेना और जिसे गुरु बनाया है, फिर प्राण छोड़ देना, लेकिन गुरुचरणों को मत छोड़ना।

यह वीतराग श्रमणपरम्परा है। पाषाण की प्रतिमा को भगवान् बनाने के पूर्व, जब तक संस्कार नहीं हुये तब तक प्रतिमा की खूब परीक्षा करलो। संस्कार के बाद अब 'पाषाण' संज्ञा नहीं, अब 'परमात्मा' संज्ञा है। अब कोई परीक्षा नहीं। अब तो वह भगवान् हैं।

पानी पीजिये छान कर और गुरु कीजिये जान कर। यह भारतीय संस्कृति है। एक पत्नि के कितने पति हो सकते हैं? एक। भारतीय संस्कृति में एक पत्नि का एक पति हो सकता है, लेकिन एक पति के अनेक पत्नियाँ हो सकती हैं। चक्रवर्ति के छियानवें हजार रानियाँ होती हैं। परन्तु ध्यान रखना, ऐसी कोई रानी

नहीं होगी जिसके छियानवें हजार पति हों। एक गुरु के अनेक शिष्य तो हो सकते हैं, परन्तु एक शिष्य के अनेक गुरु नहीं होते हैं। गुरु एक हमारा दिगम्बर गुरु ही होता है। पहले पहचान करना, फिर गुरु को चुनना।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान-ध्यान-तपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते॥ (10/र. श्रा.)

जो विषयकषायों से रहित है, आरम्भ-परिग्रह से रहित है, ज्ञान ध्यान तप में लीन है, उसकी जिनशासन में 'तपस्वी' संज्ञा है। जो विषयों की आसक्ति से विरक्त हैं, वे ही वीतरागी तपोधन हैं। जहाँ कनक व कामिनी से प्रयोजन न हो, जहाँ श्री और श्रीमती से प्रयोजन न हो, ज्ञानियो! वही मोक्षमार्ग है। जहाँ श्री और श्रीमती विराजमान हो जाती है, वहाँ मोक्षमार्ग अवरुद्ध हो जाता है। जब तक दृष्टि श्री और श्रीमती में है, तब तक आत्मश्री पर दृष्टि नहीं है, मोक्ष तो दूर है। मोक्ष के परिणामों को रोकने वाले स्थान श्री और श्रीमती हैं। भैया! आपको जो कुछ करना हो, अभी कर लेना, लेकिन दिगम्बर मुनि बनकर भिखारी का भेष बनाकर मत बैठना, कि किसी मन्दिर और मठ के राग में इन सेठों के हाथ जोड़ो। जो करना हो, अभी कर लेना, फिर दिगम्बर मुनि बनने के उपरान्त जैसे पाषाण की प्रतिमा स्थिर होती है, वैसे वीतराग श्रमण जिनके तन की स्थिरता को देखकर मृग भी तन की खाज खुजाते हों, ऐसे स्थिर हो जाना। उनका नाम दिगम्बर गुरु है। अरहंत की मुद्रा को भिखारी की मुद्रा मत बना लेना। मेरा सभी योगियों से भी कहना है कि जगत् के प्रपञ्चों के राग में परमेष्ठी पद को दूषित मत करो।

कालिया नाग बिल की खोज में दीवाल-दीवाल पर सिर पटकता है। जब तक बिल नहीं मिलता, तब तक दीवाल पर फन पटकना पड़ता है। ऐसे ही दिगम्बर-दीक्षा लेने के उपरान्त भी तुम मन्दिर/मठ के राग में पड़े हुये हो, इसका तात्पर्य है कि तुम्हें अभी स्वात्मानुभूति का बिल नहीं मिला। यदि स्वात्मानुभूति का बिल मिल जाये, तो योगी जगत् में अपना चेहरा न देखे। यह निर्ग्रंथों का मार्ग है; आडम्बरविहीन मार्ग है।

कहीं म्यूजियम में मुनियों की तस्वीर देखने जाना न पड़ जाये, कि निष्पृह योगी कैसे होते थे ? इसलिये हे श्रावको! अपने गुरुओं की रक्षा करना, प्रपञ्चों से अपने गुरुओं को दूर रखना।

भवसागर से तारनेवाले गुरु ही हैं। कैसा गुरु? कागज की नौका, कि पाषाण की नौका,? कि काष्ठ की नौका ?

जो विषय-कषाय, आरम्भ-परिग्रह से युक्त हैं, वे पाषाण की नौका के समान गुरु हैं। न स्वयं तिरेंगे, न शिष्यों को तिरा पायेंगे। एक वे हैं जो ऊपर-ही-ऊपर दिखते हैं गुरु। वे कागज की नाव हैं। जरा-सा पानी पड़ा और नष्ट हो जाती है। जो भव से तारने वाले गुरु हैं, वे काष्ठ की नौका के समान हैं, जो अन्दर व बाहर से विषयकषाय से शुष्क हैं, आत्मस्वरूप में लीन हैं। ऐसे निर्ग्रन्थ गुरु ही भवसागर से तारने वाले गुरु हैं। उनका चित्त विषयों की आसक्ति से दूर हो चुका है, रत्नत्रय से मण्डित हैं

कोई प्यासा व्यक्ति आये और पानी पीने के लिए अंजुली बना ले, तो उससे कहते हो कि पहले हाथ धो लो, फिर पीना। सब जगह पानी नहीं छोड़ा जाता है, बर्तन/पात्र को देखकर पानी दिया जाता है। जैनशासन में तो पात्र की परीक्षा के बिना पानी दिया ही नहीं जाता है। पहले पात्र को निहारो, फिर पानी देना। जब पानी देने के लिये पात्र की परीक्षा होती है, तो श्रद्धा के सिर को टेकने के पहले पहचान कर लेना। बिना गुरु की पहचान किये सिर मत टेक लेना। मुझे तो सद्गुरु की पहचान करना है। सद्गुरु की पहचान हो जायेगी, तो असद्गरु अपने-आप छूट जायेगा।

जो विषयकषाय से रहित है, आरम्भ-परिग्रह से रहित है, जगत् के प्रपञ्च से दूर है, अखण्डता में लीन है, वह सद्गुरु है, सच्चा गुरु है।

गुरु नेता नहीं होता, राजनेता नहीं होता। वह तो धर्मनेता होता है। वह एक्टर/अभिनेता नहीं है। गुरु तो वीतरागी अरहन्त की मुद्रा को धारण करनेवाला होता है। यह सद्गुरु की व्याख्या है।

इस युग के अन्तिम गुरु हैं तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी। जब आचरण का अभाव हो जाता है, लोक में मिथ्यात्व की वृद्धि हो जाती है, धर्म के प्रति ग्लानि उत्पन्न

होने लगती है, ऐसे काल में तीर्थंकर अरहन्त का जन्म होता है, अवतार नहीं होता। यह अवतार वाली संस्कृति नहीं है, यह उद्धार वाली संस्कृति है।

'चले आना महावीर बनके, पारसनाथ बनके' इस भजन का आज से त्याग कर दो। यह जैनपरम्परा का भजन नहीं है, यह श्रमणपरम्परा का भजन नहीं है, यह सम्यक् का भजन नहीं है। हमारे तीर्थंकर उतर-उतर कर नहीं आते हैं। एक बार सिद्ध बनने के उपरान्त उनके आने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। संगीतकार सम्यक्त्व को बढ़ा रहा है, कि मिथ्यात्व को बढ़ा रहा है? मालूम ही नहीं चलता। बच्चे थिरक रहे हैं उस मिथ्यात्व की भाषा सुन-सुन करके। कहाँ गये वे भैयालाल के भजन, कहाँ गये वे दौलतराम के भजन ? भूधरदास, बनारसी दास इनके भजन सुनते ही अन्दर का आत्मदेव प्रगट होने लगता है।

उन तीर्थंकर भगवान् को जब कैवल्य प्रकट हो गया। एक सभा में मुनि या आचार्य वक्ता आकरके बैठ जाये, तो आपके अन्दर उत्सुकता होती है कि ये कब बोलते हैं? इसी तरह जिस सभा में 'मोक्षमार्गस्य नेतारं' मोक्षमार्ग का नेता विराजा हुआ हो और वह मौन लिये हो तो उत्सुकता होती है। तीर्थंकर का नियम होता है कि वे दीक्षा लेते ही मौन ले लेते हैं। वे जीव परम पुण्यात्मा हुआ करते हैं। जब बोलते हैं तो सर्वाङ्ग से बोलते हैं। जिनकी सर्वाङ्ग से बोलने की इच्छा हो, वे आज से मौन लेना प्रारम्भ कर दें। जब ढक्कन बन्द होता है, तो वाष्प बनकर साग जल्दी पक जाती है। जिनके ढक्कन खुले होते हैं, उनकी वाष्प बाहर निकल जाती है। वे ही जल्दी भगवान् बन पायेंगे, जो मन्दिर में मौन रहते हैं, धर्मकार्यों में मौन रहते हैं। जिनको भगवान् बनना है, वे यह नियम ले लें कि भगवान् के सामने घर की बातें नहीं करेंगे।

तीर्थंकर वर्द्धमान मौन बैठे हैं समवसरण सभा में। जिस सभा में जगत् के प्राणी-मात्र को समान शरण मिलती है, उसका नाम है समवसरण सभा। वहाँ भेदभाव नहीं होता है। चाहे अमीर हो, चाहे गरीब हो, चाहे अरबपति हो या खरबपति। यदि अरहन्त और निर्ग्रन्थ के स्थान पर ही भेदभाव दिखेगा, तो जंगल में अभेददृष्टि देखने कहाँ मिलेगी? भैया! जितने तीर्थ हों, उनमें VIP कमरे कभी

मत बनाना। इसलिये नहीं बनाना कि कम-से-कम तीर्थों में तो सबके समान भाव ही रहेंगे। जब सेठों को अलग से व्यवस्था मिलती है, तो गरीबों को लगता है कि अपन को तो भगवान् के घर में भी ऐसा ही मिला जैसा घर में है। लेकिन गरीबों से कहना है कि तुम ऐसे भाव मत करना, क्योंकि बात ऐसी है कि जैसे भाग्य होंगे, वैसा ही तुमको सब जगह मिलेगा।

एक मुनिराज पधारे। वहाँ सेठों की भीड़ लगी। जंगल में भेड़ बकरी चराने वाले गडरिया के बालक ने देखा कि इनके पास तो कुछ भी नहीं है, तब भी सेठ, मन्त्री, संत्री सब आ रहे हैं। अपन को तो जब भेड़ चराओ, तब सूखी रोटी खाने को मिलती है। अपन एक काम करते हैं, देखते हैं कि ये जाते कहाँ हैं। सो वह पीछे-पीछे लग गया। मुनिराज का तो पड़गाहन हो गया, वह बेचारा चबूतरे पर बैठा रहा, सोचता रहा कि यह क्या ? एक श्रावक ने उसे देखा कि यह महाराज के साथ आया था। हो सकता है कि कोई श्रावक हो। आहार के बाद थाली में जो भोजन बचा था, वह श्रावक को पकड़ा दिया। उसने खाया और पुनः जंगल में आ गया। अब कहता है, महाराज! यह तो बताओ, हमारे पास तो इतने कपड़े हैं, आपके पास तो वह भी नहीं हैं, फिर भी आपको आनन्द से दोनों हाथों से खाने को मिल रहा था। आपके पीछे-पीछे गया तो मेरी भेड़ें और चली गई। वहाँ भी मुझे तो सूखा-सूखा ही मिला। बोले-भैया! सुना तू चाहे जहाँ चला जाये, न कोई भोजन देता है, न कोई पानी देता है। भाग्य होता है तो जंगल में भी भोजन-पानी मिलता है, भाग्य नहीं होता है तो वही मिलता है जो तेरे भाग्य में होता है। भैया! भीड़-भाड़ को देख करके महाराज मत बन जाना।

तीर्थंकर भगवान् मौन थे। पैंसठ दिन निकल गये, देशना नहीं खिरी। सौधर्म इन्द्र के मन में भाव आया कि क्या कारण है, वीर प्रभु की देशना क्यों नहीं खिर रही है? अपने अवधिज्ञान से निहारता है। सिंहनी का दुग्ध स्वर्णपात्र में ही ठहरता है, लोहे के पात्र में नहीं ठहरता। अब क्या करूँ? ये ज्ञानी लोग तीनलोक के नाथ अरहन्त देव को भी कुधातु में विराजमान कर अभिषेक करते

हैं। जो स्टील की थाली में भगवान् को विराजमान करके अभिषेक करता है, मुनियों को आहार दे रहा है, आगम में लिखा है कि कोई शूद्र क्षुल्लक-आदि बन जाये, तो उसको लोहे के पात्र में दान देना पड़ता है। आप तो तीर्थंकर जैसी आत्मा को लोहे पर विराजमान करते हो। कुछ न हो तो ताँबे का ही पात्र ले लो, परन्तु स्टील के पात्र में अभिषेक मत किया करो। आप कौन गरीब हो, आप तो सोने के पात्र में किया करो जब तक श्वासें चल रही हैं। क्या मालूम अगली पर्याय में अरहन्त देव मिले या न मिले। तू तो सोने का कलश बनवा ले। सोने-चाँदी के बर्तन से ही अभिषेक-पूजन करना। कोई ले जाये, तो ले जाये, भाव होंगे तो पुनः ले लूँगा। जिनकी सामर्थ्य है, सो ठीक है। कुछ न मिले तो ताँबे के बर्तन में अभिषेक-पूजन कर लेना, लेकिन लोहे के बर्तन में अभिषेक-पूजन नहीं करना।

तीर्थंकर वर्द्धमान मौन थे। सौधर्म इन्द्र ने अवधिज्ञान से जान लिया कि उत्तम पात्र की आवश्यकता है। जब तक योग्य निमित्त नहीं मिलता, तब तक उपादान अपना कार्य नहीं करता है और निमित्त तभी कार्यकारी बनता है, जब उपादान योग्य होता है।

सौधर्म इन्द्र ने निहारा कि इस भूमण्डल में ऐसा कौन-सा जीव है जो अरहन्त की देशना को ग्रहण करने की योग्यता रखता हो। इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति—ये गौतम कुल में उत्पन्न हुये ब्राह्मणपुत्र विद्वान् थे। अन्दर का गुरु तो अहंकार से भरा हुआ था। 500-500 शिष्यों के गुरु थे, चारों वेद के ज्ञाता थे। कहते थे कि इस ब्रह्माण्ड में मेरे से बड़ा कोई विद्वान् नहीं है। भैया! रेगिस्तान के ऊँट कब तक बड़े? जब तक पहाड़ के नीचे नहीं खड़े। जैसे ही पहाड़ मिलता है, ऊँट अपने-आप छोटा हो जाता है। ऐसे-ही अहंकारी तभी तक अहंकार में जीता है, चाहे ज्ञान का मद हो, चाहे चारित्र का मद हो, चाहे सम्पत्ति का मद हो, जब तक उसको उससे बड़ा नहीं मिलता। सौधर्म इन्द्र ने सोचा कि इस अहंकारी को समवसरण में कैसे लाया जाये? एक वृद्ध का भेष बनाया और समय देखकर के लाठी टेकते-टेकते पहुँच गये इन्द्रभूति गौतम के आश्रम में, ध्यान

रखना, जिसको समय का बोध नहीं होता, वह हर समय निष्फल होता है। जीवन में एक बहुत बड़ी विद्या का बोध होना चाहिये। रीति-नीति का ज्ञान होना चाहिये। जिसको रीति-नीति का ज्ञान नहीं है, वह ज्ञानी होकर भी अज्ञानी है। प्रसङ्ग देखकर बात करना चाहिये। शिष्यों को पढ़ा रहे थे। कुछ भी हो, विद्वान् तो था। धीरे-से सौधर्म इन्द्र कहता है-स्वामी! एक निवेदन है। मेरे गुरु ने एक सूत्र पढ़ाया है, मुझे उसका अर्थ समझ में नहीं आया। यदि आपकी अनुकम्पा हो जाये, तो मुझे आप सूत्र का अर्थ समझा दीजिये। बोले- क्या सूत्र है ?

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीव षट्-काय-लेश्याः,
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रतसमिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः,
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान यः स वै शुद्धदृष्टिः॥1॥

सूत्र पूरा नहीं हो पाया, वह तो घबरा गया-मैंने अट्ठारह पुराण और चार वेदों का अध्ययन किया है, लेकिन तीन काल, छह द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, षट्लेश्या आदि क्या है?

अज्ञानी गुरु की अपेक्षा से ज्ञानी शिष्य श्रेष्ठ होता है। 'ज्ञानी शत्रु भी श्रेष्ठ है अज्ञानी मित्र की अपेक्षा से'। बस, काम बन गया सौधर्म इन्द्र का। इन्द्रभूति सोचता है कि मैं इसको क्या कहूँ? यदि मैं यह कहता हूँ कि मेरे से नहीं बनता, तो मेरे पाँच सौ शिष्य क्या कहेंगे? कि मेरे गुरु आज फेल हो गये। भीतर का गुरु बोल रहा था कि अपनी हँसी मत करा लेना। वह कहता है कि आपको क्या उत्तर दूँ? इसका उत्तर तो मैं आपके गुरु को दूँगा। सौधर्म इन्द्र मुस्करा जाता है कि मैं तो यही चाहता हूँ, तुम चलो तो मेरे गुरु के पास।

सौधर्म इन्द्र आगे-आगे जा रहा था। तीर्थंकर वर्द्धमान के समवसरण को देखते ही सबसे पहले मानस्तम्भ भूमि को निहारा 'मानं स्तभितं इति मानस्तम्भाः।' जिससे मान स्तम्भित हो जाये, उसका नाम है मानस्तम्भ। प्रत्येक मन्दिर में मान-स्तम्भ होना चाहिये, जिससे सारे अहंकारियों के मान स्तम्भित हो जायें। सौधर्म इन्द्र से गौतम पूछता है कि यह क्या है? 'यह मेरे गुरु की प्रवचनसभा है, यह समवसरण सभा है।' जैसे-ही मानस्तम्भ के सामने पहुँचे, उनका मान

स्तम्भित हो गया, गुरु बनकर गये थे, वर्द्धमान को समझाने गये थे, लेकिन वे स्वयं समझ गये और मानस्तम्भ भूमि पर ही केशलोंच प्रारम्भ हो गया। साथ में पाँच सौ शिष्य थे, उनके भी मान विगलित हो गये। वे भी केशलोंच करके बैठ गये। ज्ञानी! जब वायुभूति को मालूम चला कि नाथपुत्र महावीर स्वामी ने हमारे भैया को कीलित कर दिया है, मैं नैयायिक हूँ, मन्त्रशास्त्री हूँ, मैं अभी वर्द्धमान को परास्त करके आता हूँ। वायुभूति भी पाँच सौ शिष्यों को लेकर पहुँचे। उनके भी मानस्तम्भ भूमि में ही केशलोंच हो गये। अग्निभूति ने सोचा कि मैं तो शास्त्रार्थ करके वर्द्धमान को परास्त करूँगा और अपने दोनों भाइयों को लौटा कर लाऊँगा। उनके शिष्य भी साथ में चले गये। उन्होंने भी मानस्तम्भ भूमि को देखते ही केशलुंचन कर लिये। आज गुरुपूर्णिमा का दिन था, आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा। एक ही दिन में महावीर स्वामी को पन्द्रह सौ तीन शिष्यों की प्राप्ति हुई थी। वह गुरुपूर्णिमा है जिस पूर्णिमा को गौतम ने महावीर को गुरु बनाया था। गौतम-जैसा शिष्य और महावीर-जैसा गुरु, हे भगवान्! कैसी अद्भुत पुण्य की झलक होगी गौतम स्वामी के अन्दर जिसे साक्षात् तीर्थंकर जैसे परमगुरु की प्राप्ति हुई।

गुरु शिष्य का मिलन तो हो गया, लेकिन वाणी आज नहीं खिरेगी, वाणी कल खिरेगी। आज तो पैंसठवाँ दिन है, कल विचार करेंगे। भगवान् ने अपनी देशना में क्या कहा है? भगवान् महावीर ने जो कहा, गौतम स्वामी ने उसे झेल करके श्रुत का निबन्धन किया। आज आचार्यपरम्परा से जो भी श्रुत प्राप्त है, वह वर्द्धमान की वाणी है। सादि की अपेक्षा और अनादि की अपेक्षा आगम शाश्वत है।

जीवन में आत्म-उत्थान करना है तो गुरु बना कर चलना, गुरू (अहंकार) मिटा कर चलना, गुरु बना कर चलना। हर-एक जीव को गुरु मिले। शिष्य का स्वभाव गुरुभक्ति हो। विनीत हो, सुशील हो, सुधी हो, धार्मिक हो, वह सच्चा शिष्य है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"इन्द्रियसुख सुखाभास हैं"

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं, सुखाभासं न तत्सुखं।
तच्च कर्मविबन्धाय, दुःखदानैकपण्डितम्॥ 77॥

अन्वयार्थ—इन्द्रियप्रभवं = इन्द्रियों के भोगों से होने वाला, **सौख्यं** = सुख, **सुखाभासं** = सुख-सा दिखता है, **तत्** = परन्तु वह, **सुखं न** = सच्चा सुख नहीं है, **तत् च** = वह तो, **कर्मविबन्धाय** = कर्मों का विशेष बन्ध कराने वाला है, **दुःखदानैक-पण्डितम्** = तथा दुःखों के देने में एक पण्डित है अर्थात् महान् दुःखदायक है।

भावार्थ—इन्द्रियों के विषय-भोगों में उत्पन्न सुख सुखाभास हैं, वास्तविक सुख नहीं हैं और वह सुखाभास विशेष कर्मबन्ध का कारण है तथा दुःख देने में पण्डित है।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बन्धुओ!

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन काल में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमण-संस्कृति।

गुरुपूर्णिमा के दिन गुरु शिष्य का मिलन तो हो गया, परन्तु जिनेन्द्र की देशना वीरशासन जयन्ती से प्रारम्भ हुई। जैनियों का सम्वत् शुरू होता है श्रावण कृष्णा एकम् से।

भगवान् के जन्म से शासन प्रारम्भ नहीं होता, दीक्षा से शासन प्रारम्भ नहीं होता, जब तीर्थंकर को कैवल्य प्रकट हो गया, तब भी उनका शासन प्रारम्भ नहीं हुआ। जिस दिन उनकी देशना खिरती है, उस दिन से उनका शासन प्रारम्भ होता है। आज भगवान् तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी की देशना खिरी। उनकी देशना में द्वादशाङ्ग सूत्रों की व्याख्या हुई। उन सूत्रों के अन्दर वस्तु की त्रैकालिक व्यवस्था

की व्याख्या हुई। ये श्रुत ऋषभदेव ने कहा है या महावीर स्वामी ने कहा है, इसलिये आगम नहीं है। वर्तमान के युग की दृष्टि से ऋषभदेव ग्रन्थकर्ता हैं, वर्तमान की दृष्टि से महावीर स्वामी ग्रन्थकर्ता हैं। तीर्थंकर की देशना में कभी भेदवृत्ति नहीं होती है। जो ऋषभदेव ने कहा है, वही शेष तीर्थंकरों ने कहा है। यदि दो तीर्थंकर की वाणियों में भिन्नता हो जाये, तो जिनागम की सत्यता समाप्त हो जायेगी, सर्वज्ञता पर प्रश्नचिह्न खड़ा हो जायेगा। चार व्यक्तियों के नम्बर बराबर हैं, तो चारों के चश्में एक-से हैं और चारों को एक-सा दिखाई दे रहा है। जिसको कैवल्य का लैंस लगा हुआ हो, उन तीर्थंकर की वाणी में भेद कहाँ हो सकता है? तीर्थंकर पुरुष भिन्न-भिन्न हैं, परन्तु तीर्थंकर की देशना भिन्न-भिन्न नहीं है।

हे वर्द्धमान! यदि आप यूँ कहते कि मैं कथन कर रहा हूँ इसलिये सत्य है, तो मैं आपकी बात को स्वीकार नहीं कर सकता। हे वर्द्धमान! आपके कहने से सत्य 'सत्य' नहीं होता, लेकिन हे वर्द्धमान! सत्य होने से आपका कथन 'सत्य' है। जो वस्तु जैसी है, वैसी व्याख्या भगवान् ने की है। भगवान् की व्याख्या के कारण जगत् का परिणमन नहीं है। आपकी आँखों पर चश्मा होने से पदार्थ में वैसा परिणमन है, कि पदार्थ का जैसा परिणमन चल रहा है वैसा तू अपने चश्में से देख रहा है? श्रोता, वक्ता के वक्तत्त्वपने को न निहारे, वक्ता की प्रामाणिकता को देखे। जिनशासन में वचन प्रमाण नहीं है, वक्ता प्रमाणिक है तो उसके वचन प्रमाण हैं। यदि वक्ता ही प्रमाणिक नहीं है, तो वचन को सुननेवाला भ्रमित हो जाता है। इसलिये जिनशासन में सबसे पहले वस्तु की प्रामाणिकता की बात नहीं कही गई है, वक्ता की प्रामाणिकता की बात की गई। आप्त के वचन आगम हैं। यदि आप्त प्रमाणिक है, तो आगम प्रमाणिक है। जो आप्त प्रमाणिक नहीं है, उसका आगम भी प्रमाणित नहीं है। मधुर कण्ठ को प्रमाण मत बना देना, व्यक्तित्व को प्रमाण मत बना देना। लोक में मधुर कण्ठ प्रमाण नहीं होता, व्यक्तित्व प्रमाण नहीं होता। मानी पुरुष प्रमाण नहीं होता है। हमारे यहाँ अट्ठारह दोषों से रहित आप्त ही प्रमाण है और उनके वचन ही प्रमाणिक हैं।

बुद्धि के विकास भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, क्षयोपशम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, लेकिन भिन्न-भिन्न चिन्तकों के चिन्तन (वचन) आगम नहीं होते। अरहन्त की देशना के अनुसार जिसका चिन्तवन चलता है, वही आगम-कथन है। जो अरहन्त-देशना से विपरीत चिन्तवन चल रहा है, वे स्व-वचन तो हो सकते हैं, लेकिन जिनवचन नहीं है। स्व-वचन 'प्रवचन' नहीं होते, जिनवचन 'प्रवचन' होते हैं। इसलिये हे विद्वानो! इस भोली समाज पर करुणा करना। जितनी आगमग्रन्थों की वाणी हो, उन्हें ही जिनवाणी कहना। अपने हृदय की बात को जिनवाणी कहने का प्रयास मत करना। कारण क्या है? अस्त्र चलानेवाला यदि अस्त्र का विपर्यास करे,तो मात्र तन का नाश होगा, लेकिन शास्त्र बोलने वाला यदि शास्त्र का विपर्यास करता है तो श्रद्धा-गुण का नाश हो जायेगा। श्रद्धा ही हमारा सबसे बड़ा मित्र है और हमारा सबसे बड़ा शत्रु 'बकता' है। जो आगम के अनुसार कह रहा है, वह तो वक्ता है और आगम से रहित बोल रहा है तो 'बकता' है। प्रवक्ता जो है, आपके यहाँ प्रवक्ता की कितनी कीमत होती है?

जिस जीव को जन्म से ही तीन ज्ञान होते हों-मति, श्रुत, अवधि। तीर्थंकर को जन्म से ही तीन ज्ञान होते हैं। तीन ज्ञान का धारक होने के बाद भी कभी गृहस्थ-अवस्था में तत्त्व का उपदेश नहीं देते। क्या कारण है? गृहस्थिक चर्चा कर लेंगे, लेकिन धर्म की चर्चा नहीं करेंगे। जितने-जितने प्रमाणिक होते जायें, उतने-उतने अल्प बोलना सीखो। प्रमाणिक पुरुष विपरीत बात कर गया तो लोगों को विपरीत बातें ही प्रमाण हो जायेंगी। 'प्रभवः मित-भाषणम्।' प्रभावक पुरुष मित (अल्प) भाषी होते हैं। अधिक बोलना अपने प्रभाव को कम करना है। माँ! बहू से सम्मान चाहती हो, तो बहू के साथ बेटी का व्यवहार करो, कम भाषण करो। जब तुम्हारी ही जन्मी बेटियाँ तुम्हारी ज्यादा बात पसन्द नहीं करती, तो दूसरे की बेटियाँ क्यों पसन्द करेंगी?

यदि आपको अपनी वृद्ध-अवस्था सम्मान के साथ पूर्ण करना हो, तो आज से ही बहू बेटों से कम बोलना प्रारम्भ कर दो।

तन चलता नहीं, मन मानता नहीं, सो बोल पड़ते हैं; लेकिन कोई सुनता नहीं, सो रोते हैं।

बात कम करना। संकेत में ही काम चल जाये तो ठीक है। हर व्यक्ति को उसकी अपनी सोच से भी जीने दो, आप अपनी सोच से मत जिलाओ। यदि शौचधर्म को प्राप्त करना है तो अपनी सोच को शौच करो, कम बोलना सीखो। वृद्धावस्था में कम बोलोगे तो आप देवता की तरह पुजोगे। यदि वृद्धावस्था में ज्यादा बोलोगे तो कोई तुम्हें पूछेगा नहीं। कम बोलना सीखो। **'प्रभवः मितभाषणम्'** प्रभावी पुरुष सीमित बोलते हैं। ज्ञानी! आपके नाम के आगे 'पण्डित' प्रमाणिक पुरुष, शब्द जुड़ चुका है, तो आगम का ध्यान रखना। जब तक तुम्हारे वाक्य प्रमाण है, वचन प्रमाण है, जब तक तुम्हारी आस्था वीतराग वाणी से हट कर नहीं है, तब तक आप के वचन प्रमाण हैं। यदि तुम्हारी आस्था देह या जाति का प्रभाव दिखाने के राग में कुछ हट कर कह रही है, उसी दिन से तुम्हारा प्रभाव समाप्त हो जायेगा।

ज्ञानी! आनन्द का काल है, ससुर अपने घर में स्वतन्त्र है। जब तक बेटे की पत्नि घर में नहीं आती है, तब तक तुम घर के राजा हो। पुत्रवधू के आते ही अब तुम्हारी हालत बदल चुकी है। अपना सम्मान चाहते हो तो घर के अन्दर खाँस करके आना चाहिये। जिस घर में तुम स्वतन्त्र प्रवेश करते थे, उस घर में आपको संकेत करके आना पड़ता है। एक ओर उत्कर्ष हुआ, दूसरी ओर आपको अंतरङ्ग के अनुशासन में बाँधा है। जो ससुर अनुशासनविहीन जीवन जीता है, उसका सम्मान पत्नि भी नहीं कर पाती है।

तीर्थंकर भगवान् मृदु बोलते हैं। जिन जीवों के पुण्य क्षीण हैं, उन जीवों के कण्ठ से आवाज भी फटे-बाँस-जैसी निकलती है। भगवान् का भक्त भी पुण्य का आलम्बन लेता है। पुण्यात्मा जीव को सुनने के लिए कोटि-कोटि जीव तरसते हैं और एक जीव ऐसा है जो सुनाने के लिये तरसता है।

तीन ज्ञान का धारक जीव मौन है। ऐसा क्यों? जब मैं सत्य को स्वयं नहीं समझा, तो सत्य की व्याख्या कैसी? भैया! तेरे चश्मे का नम्बर क्या है? आप चश्मे को उतार कर देखो, बराबर देखोगे क्या? नहीं। आप तो यही कहोगे कि मैंने अपनी आँखों से देखा है। यदि तेरी आँखें सत्य ही होती, तो चश्मा के नम्बरों में अन्तर क्यों? वीर की वाणी प्रमाण कैसे? जब आपने चश्में को उतार कर रखा और आप कह रहे थे कि मैंने अपनी आँखों से देखा है, ज्ञानी! तेरी आँखें

भले ही तेरी हों, लेकिन तेरी आँखें सत्य नहीं देख पा रही हैं, क्योंकि चश्मे के नम्बर तेरे हैं। चश्मे के नम्बर अलग हैं, इसका तात्पर्य है कि उनकी दृष्टि अलग-अलग है। चश्मे लगे हैं, उपनेत्र लगे हुये हैं, सबका नम्बर अलग-अलग है, इसका तात्पर्य है कि तुम्हारे देखने की दृष्टि भी अलग-अलग है। उपनेत्र लगे हुये हैं, इसका तात्पर्य है कि तुम्हारे नेत्रों के क्षयोपशम समान नहीं हैं। जिसके क्षयोपशम समान नहीं हैं, वह पदार्थ को एकरूप कैसे देख सकता है? इसलिये तीर्थंकर भगवान् जब तक छद्मस्थ-अवस्था में रहते हैं, ग्रहस्थ-अवस्था में रहते हैं, जब तक आँखों से पदार्थ को देखते हैं, तब तक वे धर्म की बात नहीं करते हैं। जब आत्मा से देखना प्रारम्भ कर देते हैं, तब धर्म का उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं। जब तक कैवल्य प्रकट नहीं होता, तब तक तीर्थंकर मौन रखते हैं।

बेटे की शादी हुई, नई बहू घर में आयी। घूँघट डाल कर आती है तो उसे खूब पैसे मिलेंगे, क्योंकि ये सब मातायें चेहरा देखने जाती हैं। यदि प्रथम दिन ही घूँघट खोल कर आ जाये, तो चेहरा कौन देखने आयेगा? जैसे नववधु (दुल्हन) का घूँघट में पड़ा चेहरा गूढ़ होता है, इसलिये लोग उसे देखना चाहते हैं, ऐसे-ही अरहंत की वाणी के कठिन शब्द गूढ़ हैं, उसे लोग समझना चाहते हैं। पहले से सीधे-साधे शब्द बोल दोगे तो लोग कहेंगे ये तो हमारे-जैसी भाषा है। इसलिये मूल-आगम की व्याख्या होना चाहिये।

वर्द्धमान मौन थे। जैसे ही भगवान् महावीर को कैवल्य प्रकट हुआ और गौतम गणधरपद पर आसीन हुये, महावीर की वाणी (दिव्यध्वनि) खिरी वीरशासन जयन्ती के दिन। तीर्थंकर की दिव्यध्वनि सर्वभाषामयी होती है। उसकी यह विशेषता है कि ओष्ठों का स्पंदन होता नहीं, शब्द का स्पन्दन होता नहीं।

तव वागमृतं श्रीमत्, सर्वभाषा-स्वभावकम्।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि॥ 97/स्व. स्तो.॥

हे वर्द्धमान! आपके वचन सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी-अपनी भाषा में समझ में आ रहे हैं। ऐसी तीर्थंकर की देशना होती है। वर्तमान का विज्ञान इन सबको खोज रहा है, बना नहीं रहा है। हमारे तीर्थंकरों के वीतरागविज्ञान में बहुत पहले खिर चुका है। जब वर्द्धमान की दिव्यध्वनि खिरी, तब वस्तुतत्त्व की व्याख्या हुई। चार वेदों की व्याख्या की। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग

ये चार वेद हैं। विद् धातु 'ज्ञान' अर्थ में होती है। जिससे वेदन हो, उसी का नाम 'वेद' है। वेद की भी व्याख्या की और वेदान्त की भी व्याख्या की। वेदान्त, 'अन्त' शब्द का अर्थ होता है धर्म-अनेकान्त, अनेक धर्म। मेरे आत्मधर्म का जिसमें व्याख्यान होता है, उसका नाम वेदान्त होता है। मुमुक्षु! द्रव्यानुयोग ही वेदान्त है, समयसार ही वेदान्त है। परमब्रह्म की व्याख्या वर्द्धमान स्वामी ने की। पहले वक्ता नहीं बनना चाहिये, पहले ज्ञाता बनना चाहिये। जो ज्ञाता नहीं होता है, उसे इधर-उधर की बातें करनी पड़ती हैं। तीर्थंकर पहले केवलज्ञान को उपलब्ध होते हैं, फिर दिव्यध्वनि खिरती है।

"वक्तृ प्रमाणं वाक्य प्रमाणं॥

वक्ता प्रमाणिक है तो वचन प्रमाणिक है। वक्ता प्रमाणिक नहीं है तो वचन प्रमाणिक नहीं है। ज्ञानियो! पहले वक्ता को निहाराना, फिर वचन स्वीकार करना। ध्यान रखना जीवन में, आपसे यदि किसी तत्त्व का निर्णय नहीं हो रहा हो, तो भरी सभा में यह बात मत सोचना कि मेरी इज्जत का सवाल है, मेरे सम्मान का सवाल है। यदि तू अपने सम्मान की सोच में कुछ-भी बोलने को तैयार हो जायेगा तो अनन्त आत्माओं का अहित हो जायेगा। ज्ञानी! वहाँ बोलना कि मैं सोचकर बताऊँगा, देखकर बताऊँगा, बड़े ज्ञानियों से पूछकर बताऊँगा। वहाँ वीर स्वामी से प्रश्न करना—हे वर्द्धमान! आपने अपनी मारीचि की पर्याय में 363 मिथ्यामत चलाये थे, आप महावीर बन कर भी उन्हें नहीं मिटा पाये। अपने पुण्य के उदय में तुम तो महावीर बन जाओगे, परन्तु अनन्तों को भटका जाओगे। तुमसे नहीं बनता हो तो बोल देना कि मैं आगम में देखकर बताऊँगा। विश्वास रखना, आपके प्रति लोगों की असंख्यात गुणी श्रद्धा बढ़ जायेगी। कदाचित् तुम विपरीत बोलकर चले भी गये और किसी दूसरे ने ग्रन्थ खोल कर दिखा दिया, तो उसी दिन से तेरे सारे भक्त तेरे से विमुख हो जायेंगे। जो मुख से आगम को नहीं बोलते, उनका अपना चिन्तवन हुआ करता है। इनका अवलम्बन लेकर बोलना जिनवाणी के साथ आपका धोका है। समझ में नहीं आये तो समझने का प्रयास करना, तब भी समझ में नहीं आये तो वीरसेन स्वामी बन जाना। 'गौतमोपुच्छ'-गौतम से पूछो, मैं नहीं बता सकता हूँ। इसके लिये भी बहुत शक्ति चाहिये। मार्दव-आर्जव

धर्म जब तक भीतर नहीं आयेगा, तब तक आप अपने आपको छोटा नहीं मानोगे। प्रवचनकार नहीं बनना, ज्ञाता बनना।

टंकी, जो छतों पर रखी रहती हैं, उसका पानी कब तक चलेगा? उस टंकी में पानी तो बाहर से भरा गया है, खाली हो जायेगी तो फिर सूखी मिलेगी। ऐसे-ही बाहर की पुस्तकें पढ़कर बाहर के प्रवचनकारों को सुनकर जो प्रवचन करने बैठ जाते हैं, वे उस खाली टंकी के समान हैं। यदि तेरी प्रवचनकार बनने की इच्छा है, तो कुए की भाँति बनो। कुए में पानी भरा नहीं जाता, कुए में से स्वयमेव निकलता है। ऐसे-ही आगम पढ़ेगा तो तेरे भीतर से स्वयमेव जिनवाणी निकलेगी। आगम पढ़ना चाहिये। बिना आगम पढ़े प्रवचन करेगा तो इसने पूरी सभा को धोका दिया है। मुमुक्षु! तू प्रवचन सुनने आया है, कि बाहर की बातें सुनाने आया है? देखो, भाई! उसमें भी मुस्कुराहट आती है, उसमें भी आनन्द आता है, उसमें भी ताली बजती है। ताली तो बज जायेगी, लेकिन अन्दर के कर्म नहीं निकलेंगे? अन्दर में आह्लाद-भाव अरहन्त की देशना से ही होता है।

वर्द्धमान ने जो सूत्र दिया, उस पर ध्यान दो-'त्रैकाल्यं'। जब तक कोई भी वक्ता त्रैकालिक की सिद्धि नहीं कर पाता, षट्द्रव्य की सिद्धि नहीं कर पाता है, तब तक वर्तमान के इस युग में अपनी सन्तान को चार्वाक से रहित नहीं कर पाओगे। आपने अपने बेटे से कहा-बेटा! मन्दिर जाओ। वह प्रश्न करता है क्यों जाऊँ? मैं तो सुख से रहूँगा, खाऊँगा-पिऊँगा, आप ही जाओ। अपने सिर पर हाथ पटक लेना, ओ हो! मुझे ये नहीं था मालूम कि जिस कुल में अरहन्त का अभिषेक होता हो, जिस कुल में निर्ग्रन्थ को दान दिया जाता हो, जिस कुल में जिनवाणी सुनी जाती हो, उस कुल में यह चार्वाक कहाँ से आ गया?

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥

चार्वाक का सिद्धान्त है कि जब तक जिओ, सुख से जिओ। घर में खाने को न रहे तो ऋण लेकर घी पिओ। यह शरीर भस्म हो जायेगा, फिर मरण होने पर कुछ नहीं बचेगा।

त्रैकाल्यं, तीन काल हैं और तीनों कालों में छहों द्रव्यों की सत्ता है। आत्मा की सिद्धि करना चाहिये। आत्मा की सिद्धि हो जायेगी, तो आत्मा की सारी बातें समझ में आयेंगी। जब उसको आत्मा की ही सिद्धि नहीं है, जीवत्व की सिद्धि नहीं है, तो धर्म की व्याख्या क्यों? पुण्य-पाप की व्याख्या क्यों? श्रमण-धर्म की व्याख्या क्यों? आप सभी से मेरा कहना है जितने भव्य बैठे हुये हैं, कि अपनी पीढ़ी के लोगों को जब सिनेमा हॉल ले जा सकते हो, दुनियाँ के स्थानों में ले जा सकते हो, यदि सच्चे मित्र हो तो जिनवाणी सुनने भी लेकर आना। आत्मा की सिद्धि समझना चाहिये। मैं अपने आप को त्रैकालिक मानता हूँ, तो मेरा सारा-का-सारा पुरुषार्थ निष्फल है। जिससे मैं सारे जगत् को जान रहा हूँ, जिससे तुम सारे द्रव्यों का वेदन कर रहे हो, उसको भी जानो। जीते-जीते जिओ। हर क्षण को जीते-जीते जिओ। वर्षों वर्ष निकल गये हैं, विचार करो कि मैं जीवद्रव्य हूँ कि नहीं?

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं—

मेरे मित्रो! हलाहल (जहर) को पी जाना श्रेष्ठ है, क्योंकि विष का सेवन तो मात्र उसी पर्याय का नाश करता है, लेकिन भोग तो अनन्त भव में दुःख देने वाला है। तुम मुस्कुरा-मुस्कुरा कर इन्द्रियविषय-भोगों में लिप्त हो रहे थे, अब आप अपने चिन्तन को बदल देना।

भैया! एक बात पूछूँ ? वर्तमान में पंचमकाल में जितने सुखी जीव दिख रहे हैं, इसका तात्पर्य यह तो मानना पड़ेगा कि इन लोगों ने खोटे काल में भी कोई अच्छा काम किया है।

वर्तमान में इतना सुख भोग रहे हैं, तुझे कुछ करना है कि नहीं? पुण्य का द्रव्य शुद्ध अगरबत्ती है। यदि आप अगरबत्ती जला रहे हो, तो सुगन्ध आयेगी, लेकिन उस अगरबत्ती की सुगन्ध में मस्त मत हो जाना। अगरबत्ती की सुगन्ध के साथ-साथ कुछ नीचे भी देखना चाहिये कि नीचे क्या है? राख हो रही है। हे मुमुक्षु! पुण्य की सुगन्ध में तुम जी रहे हो, परन्तु जो भोग चुके हो, उसकी राख हो चुकी है, उस पर भी ध्यान दो। लगता ये है कि सुगन्ध बढ़ रही है, लेकिन सुगन्ध राख हो रही है। घर के कोने में बैठकर चिन्तन करना। खुशामदी लोग (प्रशंसक) आपके शत्रु हैं। तू तो महाराज के दर्शन करने आया, भगवान्

की वन्दना करने आया, इन लोगों ने इतना फुला दिया कि अहंकार का जन्म हो गया, तो देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में भी भगवान् को नहीं देख पाया। भोपाल में नेता लोग तो आते-जाते रहते थे। एक बार उस जीव ने इतना सुन्दर शब्द बोला-'ज्ञानी! मुझे महाराज जी के दर्शन तो कर लेने दो। मुझे नीचे नेता देख लेना, अभी मुझे मत देखो। ये मोक्षमार्ग के नेता बैठे हुये हैं। मैं तो पाँच साल का हूँ, ये तो जीवनपर्यन्त के हैं।' बोले—'महाराज! मैं क्या करूँ? ऐसा पुण्य है कि में पुण्य से पुण्य भी नहीं कर पाता हूँ। जहाँ देखो वहाँ माला पड़ जाती है। मैं माला (जाप) भूल जाता हूँ।' अपन को यहीं सम्भलकर रहना है। मैं स्वतन्त्र हूँ। ज्ञानी! समय मिले तो समय मत खो देना। ये ग्रन्थों के प्रवचन चल रहे हैं। जिन ग्रन्थों को सग्रन्थों से अनन्त बार सुना, अब निर्ग्रन्थ की वाणी निर्ग्रन्थ के मुख से सुनो तो कितना आनन्द आता है। क्या मालूम कौन-से समय, कौन-सा शब्द मेरे हृदय में चला जाये और मुझे भगवान् बना दे। अन्धघोटक न्याय। गरीब के घोड़े के नेत्रों की ज्योति चली गई। बेचारा वैद्य के यहाँ गया घोड़े को लेकर, लेकिन वैद्य नहीं था। उसके बेटे से कहा कि जितने अंजन रखे हों, एक-एक करके घोड़े की आँखों में लगाता जा, तू टेंसन (तनाव) मत कर। एक शलाका ऐसी फँस गई कि घोड़े के नेत्रों की ज्योति आ गई। ऐसे ही ये शलाका है, 'ज्ञानाञ्जन शलाका'। पता नहीं कौन-सी शलाका से सम्यक्त्व की ज्योति जाग्रत हो जाये। मेरा भाव है कि श्रुत का अध्ययन ऐसा करो कि भविष्य के केवली बनो और नमोऽस्तु शासन को जयवन्त करो।

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं, सुखाभासं न तत्सुखं।
तच्च कर्मविबन्धाय, दुःखदानैकपण्डितम्॥ 77 सा. स.॥

आचार्यमहाराज कह रहे हैं—इन्द्रियों के द्वारा भोगा गया सुख तो सुखाभास मात्र है, सुख नहीं है। इन्द्रियों का सुख कर्मबन्ध का ही कारण है और दुःख देने में पण्डित है। इन्द्रियों के सुख (विषयासक्ति) संसार के कर्मबन्ध में और दुःख देने में पण्डित है। इस पण्डित से बचना चाहते हो तो इन्द्रिय-सुखों से आत्मा की रक्षा करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"इन्द्रियों को धर्मकार्यों में लगाने की प्रेरणा"

अक्षाश्वान्निश्चलं धत्स्व, विषयोत्पथगामिनः।
वैराग्यप्रग्रहाकृष्टान्, सन्मार्गे विनियोजयेत्॥ 78॥

अन्वयार्थ—**विषयोत्पथगामिनः** = विषयों के कुमार्ग में ले जाने वाले, **अक्षाश्वान्** = इन्द्रिय रूपी घोड़ों को, **निश्चलं** = निश्चल होकर, **धत्स्व** = पकड़ो, **वैराग्यप्रग्रहाकृष्टात्** = और वैराग्य रूपी लगाम से खींचकर उन्हें, **सन्मार्गे** = सच्चे मार्ग में, **विनियोजयेत्** = लगाओ अथवा चलाओ।

भावार्थ—हे आत्मन्! विषयरूप कुमार्ग में जानेवाले इन्द्रियरूपी घोड़ों को पकड़ो और वैराग्यरूपी लगाम से खींचकर उन्हें सन्मार्ग में लगाओ।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' ग्रन्थ में तत्त्व की गवेषणा करके समझा रहे हैं। अहो मनीषियो! ज्ञान की धारा अमृतभूत है और यदि विपर्यास कर दिया तो विषभूत है। तेरा निज का ज्ञान ही अमृत-तत्त्व को प्रदान कराता है, वही विषाक्तता को भी प्रदान करता है। वस्तु में कोई विकार नहीं है। एक क्षण का विकार तेरे ज्ञान को विपरीत कर देता है। पाप में प्रवृत्ति कर रहा था तो ज्ञान ही साथ दे रहा था और पुण्य में प्रवृत्ति कर रहा है तो ज्ञान ही साथ दे रहा है। अशुभ करने जा रहा है तो ज्ञान ही साथ दे रहा है, शुभ कर रहा है तो ज्ञान साथ दे रहा है। बिना ज्ञान के उत्कृष्ट अशुभ नहीं कर पाओगे, क्योंकि अशुभ करने के लिये छल-कपट की विद्या भी ज्ञान से मिलती है। ज्ञान को संभाल लीजिये। जो अपने ज्ञान को नहीं संभाल पाते हैं, वे अज्ञानता को प्राप्त होकरके दुर्गति को प्राप्त होते हैं। जो अपने ज्ञान से ज्ञान को संभाल लेते हैं, वे भगवान् बन जाते हैं। ज्ञान से ज्ञान को सम्भालिये।

देह से पाप तो कराये जा सकते हैं, इन्द्रियों से नहीं। यदि देह और इंद्रियों से पाप हों तो फिर ये सब पापी हो जायेंगे, फिर मुनिराज कैसे बचेंगे? शरीर

और इन्द्रियाँ पापभूत परिणत नहीं होती हैं। तेरे चित्त की परिणति ही पुण्यरूप परिणत होती है, तेरे चित्त की परिणति ही पापरूप परिणत होती है। जो जगत् को सम्भालने की बात कर रहा है, उसे सम्भाल लीजिये। ज्ञानी! बेटे को, पोते को पुचकार रहा था कि बेटा! मत रोओ। वह इतनी तेजी से रो रहा है कि कान फोड़े डाल रहा है, फिर भी बेचारा पुचकार रहा है। दूसरे का बच्चा होता तो डाँट देता कि हल्ला मत करो, परन्तु स्वयं के नाती-पोते को छाती पर रख कर पुचकार रहा है, 'बेटा! मत रो।' मचले पोते को कैसे पुचकार रहा है? हे ज्ञानी! मचले मन को पुचकार लिया होता, तो आज ये पोता क्यों पुचकारना पड़ता? जो मचले मन को नहीं पुचकार पाते, उन्हें जगत् को पुचकारना पड़ता है। जो मचले मन को पुचकार लेते हैं, उन्हें जगत् पूजता है, उसका नाम योगीश्वर होता है। दुनियाँ को मत मनाओ। एक को मना लेता, तो दुनियाँ क्यों मनाना पड़ता? जितने जीव कष्ट में जी रहे हैं, कोई नौकरी कर रहा है, कोई कुछ कर रहा है, ये सारे-के-सारे जीव पराधीन जीवन जी रहे हैं। इसका केन्द्रबिन्दु कारण है कि मचले मन को नहीं मना पाये। डर उसे लगता है, जिसका मन मचला होता है। शत्रु वहाँ होते हैं, जिसका मन मचला होता है। मित्र वहाँ होते हैं, जिसका मन मचला होता है। जिसका मन अचला होता है, वह अपने आप में निमग्न होता है। **'न मे शत्रुः न च प्रियः॥** (समाधितन्त्र)।

ज्ञानियो! न कोई मेरा शत्रु है, न कोई मेरा प्रिय है, क्योंकि मैं तो मैं हूँ। मैं किसी से मिला नहीं हूँ, कोई मेरे में मिला नहीं है। इस विद्या को भी सीखो, युवाओ! यह रासायनिक तत्त्व है। आँख को उतना ही खोलो, जितनी आवश्यकता है। तूफान चल रहा है, तू आँख खोले देखता रहेगा तो आँखों में कचड़ा जायेगा, तो आँख बन्द होगी। जो आँखों को खोल-खोल करके वासनाओं के तूफान को देख रहा है, तो उसके हृदय-आँगन में विकारों का कचड़ा आयेगा। आँख को बन्द रखो। माँ! जब नगर में आँधी-तूफान आता है, तो शीघ्र खिड़कियाँ-दरवाजे बन्द कर लेती हो। हे ज्ञानियो! इन नवद्वारों को बन्द रखो, अन्यथा वासनाओं के तूफान का कचड़ा तेरे आँगन में प्रवेश कर जायेगा और ऐसा कचड़ा प्रवेश

करेगा कि उसमें शुद्धात्मा रूपी परमात्मा विराजमान नहीं हो पायेंगे। न तुझे कोई स्वर्ग भेजता है, न तुझे कोई नरक भेजता है। नरक भेजनेवाला तेरा परिणमन है, स्वर्ग भेजनेवाला तेरा परिणमन है, निगोद भेजनेवाला तेरा ही परिणमन है और परमात्मा बनानेवाला तेरा ही परिणमन है।

'कण-कण स्वतन्त्र है।' इस विद्या को कहनेवाला जैनदर्शन है। 'मेरे में मिल जाओ, मेरे बन जाओ' जो यूँ कहता है, वह तुझे भटका रहा है। एक यूँ कहे कि मेरे में मिल जाओ, दूसरा यूँ कहे कि मेरे बन जाओ, दोनों 'मेरे' भटकानेवाले हैं। जो परमात्मा यूँ कहे कि मेरे में मिल जाओ, यदि मैं तेरे में मिल जाऊँगा, तो मेरी सत्ता समाप्त हो जायेगी, जबकि मैं अपनी सत्ता समाप्त करना नहीं चाहता हूँ। जैनदर्शन का यह अलौकिक सिद्धांत है।

सत्ता सव्वपयत्था, सविस्सरूवा अणंतपज्जाया।

भंगुप्पपाद *धुवत्ता,* सप्पडिवक्खा हवदि एक्का॥ 8॥ पंचास्तिकाय॥

सम्पूर्ण पदार्थों की सत्ता स्वतन्त्र है। मिलना पसन्द नहीं। 'मेरे में मिल जाओ', ज्ञानी! मैं तेरे में कैसे मिलूँगा? यदि मैं तेरे में मिल गया, कहीं मेरे में रागादिक भाव हैं, तो आप में भी रागादिक हो जायेंगे, तो फिर 'प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है', यह सिद्धान्त नष्ट हो जायेगा। जिनवाणी के रहस्यों को समझिये। आज दो ही व्यवस्थायें समाज में चल रही हैं। एक कहता है कि मेरे में मिल जाओ, दूसरा कहता है कि मेरे बन जाओ। दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। इस मिथ्यात्व को छोड़ो। जिस शरीर में तू बैठा हुआ है, वह शरीर भी तुझे नहीं स्वीकारेगा, उससे भी तुझे निकल कर जाना पड़ेगा। तू किसको अपने में मिला रहा है? तू किसको अपना बना रहा है?

कामवासना छूट भी जाये, मेरे में मिल जाओ, मेरे बन जाओ, यह वासना तगड़ी है। मेरे में मिल जाओ यानि अपनी सत्ता खो दो। मेरे बन जाओ, हे ज्ञानी! अपना बनाने के चक्कर में अपने को क्यों खो रहे हो? हे मुमुक्षु! परस्पर में वात्सल्य तो रखना, अनुराग रखना, लेकिन अपना बनाना मत सीखना। जो पुरुष पर को अपना बनाना छोड़ देगा, उससे बड़ा धर्मात्मा जगत् में कोई दूसरा नहीं

होगा। धर्म के स्थान पर अन्य धर्मात्माओं को अपना बनाने का राग बन जाता है, वहाँ धर्म में विकार आ जाते हैं। किसी को भक्त नहीं बनाना चाहिये, भक्त बन जाना चाहिये। यदि भगवान् भक्त बनाते हैं, तो वे भगवान् 'भगवान्' नहीं बचते, क्योंकि भक्त बनाओगे तो राग होगा और भगवान् रागी होता नहीं है। जो भक्त होता है, वह भगवान् को देखता है, वह तो कर्म की निर्जरा करता है।

योगियों के भक्त देश में बन जायें, तो योगीपना समाप्त हो गया। फिर जगत् के रागियों और निर्ग्रन्थों में क्या भेद? तुम्हारा मन जब-जब निर्ग्रन्थ बनने का करे, तब-तब मन से कह देना—मेरे मन! निर्ग्रन्थ ही बनना। निर्ग्रन्थता में सग्रन्थता को प्रवेश मत देना। भक्त आ जायें तो आशीष दे देना, परन्तु भक्तों को बुला करके आशीष देने मत बैठना। जब तक यह राग तुम्हारा नहीं उतरा कि मेरे बन जायें, मेरे बन जायें, तब तक घर छोड़ सकता है, द्वार छोड़ सकता है, लेकिन घर-द्वार का राग नहीं छोड़ सकता। घर छूट सकता है, द्वार छूट सकता है, नगर छूट सकता है, परन्तु नाना नगरों का राग तो तुम्हारे भीतर विराजमान हो चुका है। 'मेरे बन जायें।' सत्य बताना, जीवन के आयुकर्म के निषेक आपने किसको प्रदान किये हैं? चमकते चेहरे कहाँ नष्ट कर दिये? 'मेरे में मिल जायें', तू यह तो नहीं बोल पाता, लेकिन 'मेरे बन जायें' तू इसमें कसर नहीं छोड़ता। मेरे में मिल जायें। एक विद्यार्थी से लेकर राजनेता तक, योगियों तक यह सूत्र गूँज रहा है 'मेरे में मिल जायें', मेरे बन जायें। हर पार्टी चाहती है कि जीत मेरी हो जाये। हर ग्रुप चाहता है कि समाज मेरी हो जाये। परन्तु ज्ञानियो! किञ्चित् भी विवेक नाम की वस्तु तुम्हारे पास हो तो, न किसी के बनना, न किसी में मिलना, क्योंकि जो बन जाता है और मिल जाता है, उसकी निज की बुद्धि का उपयोग होता ही नहीं है। मुझे सुनो ही नहीं, मेरे साथ चल कर सुनो। जो पानी बहता रहता है, वह समुद्र का रूप ले लेता है। जिस नदी पर बाँध बन जाता है। उस बाँध का पानी नहरों में जाता है और नहरों का पानी खेतों की क्यारियों में जाता है। उस पानी को अन्त में सूखना ही पड़ता है। सीमा बंध गई, सागर नहीं बन पाया।

जो व्यक्ति सम्प्रदायों में, पंथों में, संतों में अपने आपको बाँधकर रोक लेता है, उसका तो महासागर सिद्धालय में मिलन होना था, वह इन राग की क्यारियों में जाकर सूख जाता है। बाँधकर नहीं रखना, पानी को बहने दो। 'बहता पानी निर्मला।' जो पानी बहता रहता है, वह निर्मल होता है। वही पानी रुक जाये तो समल हो जाता है। दिगम्बरों का तो धर्म ही है कि वे विचरण करते रहते हैं। वे एक स्थान पर दीर्घ समय तक निवास नहीं करते हैं। यह निर्ग्रन्थों का धर्म है। वसनों की वासनायें तो उतर गई, परन्तु वसनधारियों की वासनायें जब तक नहीं उतरीं, तब तक दिगम्बरत्व नहीं आया। स्वयं के वस्त्र तो जीव ने उतार दिये, लेकिन वस्त्रधारी मेरे बनकर रहें, यह वासना नहीं उतरी तब तक मात्र बाहर का दिगम्बरत्व है, भीतर का दिगम्बरत्व तो आया ही नहीं। मेरा क्षेत्र हो, मेरा स्थान हो, मेरी समाज हो, मेरा प्रभाव हो, यह बहुत बड़ी वासना है। यह द्रव्य जो आप लोग अपनी बना रहे हैं, उससे बहुत सावधान रहना। माताओ! धिक्कार हो तुम्हारी पर्याय को, जिस घर में जन्मी हो, वह घर आज तुम्हारा नहीं है। जिसमें मरना पड़ेगा, उस घर को अपना कह रही हो। इस पर्याय में ही तुमने देख लिया कि एक भव में मैं एक स्थान की नहीं रही हूँ, तो भव-भव में मैं कितने स्थान की रही हूँगी? तब भी परिवार के राग में माया नहीं छोड़ पायी, तेरी अगली गति क्या होगी? यह सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा। ज्ञानी! छोड़ो यह राग। जब मेरी निज की देह का राग मुझे रोके हुये है, तो पर की देहों का राग मुझे भगवान् कहाँ बनायेगा? धर्म का बोध ही नहीं है। पण्डित जी! यदि आपको विशुद्धसागर की देह में राग हो गया है, तो ध्यान रखना, वह भी अशुभ उपयोग है। विशुद्धसागर के शरीर को मत देखना, रत्नत्रय धर्म को देखना। रत्नत्रय धर्म देह में है, देही में नहीं है, परन्तु देही देह के बिना संसार में होता नहीं है। इसलिये आपको स्वीकारना पड़ता है, फिर भी दृष्टि रखनी पड़ेगी, देह में प्रीति नहीं करना, रत्नत्रय धर्म में ही प्रीति करना।

एक माँ से मैंने प्रश्न किया, माँ! इस भव में ही तू एक घर की नहीं बची, तो नाना भवों में कितने घर छोड़े होंगे? जिसको अपना कह रही हो, जिसे तूने

पति चुना है, वह पति भी छोड़ देता है। जिसके लिये तूने अपना धर्म बेंच डाला है, वह धर्मपत्नि भी तुझे छोड़ देती है। आज अपने घर जाना और बेटे से कहना, बेटे! आज से तू मेरे से कुछ नहीं माँगना। जो मैंने तुझे दिया है, वो शायद तुझे न देता तो मैं आज इस भारत भूमि का महान् आचार्य बन कर बैठा होता।

क्यों? क्या दे दिया? मेरे लाल! तुझे जन्म देने के राग में मैंने अपने शील-धर्म का नाश किया है, इससे बड़ी सम्पत्ति क्या हो सकती है? तू आज आँख उठा कर देख रहा है। बेटो! अपने माता-पिता को अशुभ आँख से मत देखना। उन्होंने अपने शीलधर्म का नाश करके तुम्हें जन्म दिया है। नव कोटि जीवों की हिंसा करके तुम्हें जन्म दिया है, अपने बन्ध पर ध्यान नहीं गया। बन्धु के राग में अपने बन्ध पर ध्यान नहीं गया।

बन्धु तुझे छोड़ देगा, लेकिन बन्ध नहीं छोड़ेगा। ये बन्धु कोई काम के नहीं हैं। जब-जब महायोगियों पर उपसर्ग हुये हैं, बाहर के लोग नहीं थे, भीतर के ही बन्धु थे। पाण्डवों पर उपसर्ग किसने किया? मामा था, मामा। जितने नजदीक रहते हैं, परिचित रहते हैं,उनसे थोड़ी दूरी बनाकर रहना। जब-जब मुझे कोई दगा देगा, तो वह निश्चित ही कोई सगा होगा। इसलिये पहले से दूरियाँ बना कर रखो। जब हमें लम्बे समय तक फोटो सुरक्षित रखनी पड़ती है, तो हम दो फोटो के बीच में एक कागज रख देते हैं, नहीं तो उसका प्रिंट चला जायेगा। ऐसे-ही हे मुमुक्षु! यदि आपको जगत् के लोगों से प्रीति सुरक्षित रखना है, तो थोड़ी दूरी का कागज लगा दो, नहीं तो प्रीति का प्रिंट नष्ट हो जायेगा। जितने नजदीक आओगे, तो फोटो चिपक जायेगा और प्रिंट नष्ट हो जायेगा।

ज्ञानियो! प्रीति को सुरक्षित रखना है तो दूरियाँ रखिये। धर्म को सुरक्षित रखना है तो दूरियाँ रखिये। अपने सम्मान को सुरक्षित रखना है तो थोड़ी दूरियाँ रखिये। मिल कर रहो, परन्तु मिल कर मत रहो। पाँचों पाण्डव जब ध्यानस्थ थे, पाँचों के ऊपर गर्म लोहे के आभूषण थे। तीन तो अपने में लीन थे, दो के मन में विकल्प आ गया 'मैं तो सहन कर रहा हूँ, मेरे बड़े भैया का क्या हो रहा होगा?' बड़े भैया के राग ने क्या किया? तीनों बड़े भैया तो सिद्धालय में पहुँच गये,

आप सर्वार्थसिद्धि में रह गये। इसलिये ध्यान रखना, जब तक तुम संसार में हो, 'मिल जाओ, मेरे बन जाओ' इस सूत्र को हटा देना। मत किसी में मिल जाओ, मत किसी को मिलाओ। 'स्वतन्त्रः कर्ताः', प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है। यह बात समझ में क्यों नहीं आ रही है? इसलिये नहीं आ रही है, महाराज! जब तपन तीव्र होती है, तो मस्तिष्क में गर्मी चढ़ जाती है और सामने रखी वस्तु दिखाई नहीं देती।

हे ज्ञानियो! जब इस भवन में आते हो, तो हर व्यक्ति को वैराग्य झलकता है, सब वैराग्य से भर जाते हैं। जैसे-ही घर पहुँचते, फिर देखो। रोज कुटता है, रोज पिटता है और फिर वहीं पहुँच जाता है। कभी तो श्रावको! सिर पर हाथ रख कर कहो, हे भगवान्! कहाँ फँस गया संसार में? जैसे ही शाम को थोड़ी शान्ति हुई, फिर हा-हा। कितना कष्ट है? आप लोग अपने घर में जी कैसे लेते हो? इतना सब ज्ञान होने के बाद भी यह जीव निर्णय क्यों नहीं कर पाता है?

ज्ञानी! जिसके अन्दर कामनाओं वासनाओं की गर्मी चढ़ जाती है, तो उसको वीतराग स्वभाव का ज्ञान होने पर भी भान नहीं होता है, अंधा हो जाता है। क्यों?

दुःख को देने वाला कोई पण्डित है तो इन्द्रियसुख। घर में लड्डू बने, माँ ने छोटे भाई को ज्यादा दे दिया, फिर देखो कैसा लगता है तुझे? क्षण मात्र में माँ बँट जाती है। युवाओ! बहुत अच्छा है, व्यर्थ के शादी-बादी के चक्कर में नहीं पड़ना। कदाचित् करना भी पड़े, तो जिसके घर में शादी कराने जाओ, वहाँ अपने घर की हँसी करवाके मत आ जाना। लोग सिखायेंगे कि ऐसे रूठना, ऐसे माँनना। एक बार छोटे में मैंने देखा कि एक व्यक्ति (दूल्हा) भोजन नहीं कर रहा था। मैंने एक भैया से पूछा, यह भोजन क्यों नहीं कर रहा? वो हँसने लगे, बोले, इसको चैन चाहिये है। मैंने कहा कि धिक्कार है इस भिखारी को, जो दूसरे के घर में चैन के पीछे चैन खो रहा है, शान्ति से भोजन भी नहीं कर रहा है। सुनो, रूठा-राठी कभी नहीं करना। माताओ! करो कायोत्सर्ग, ये उल्टी-सीधी बातें बच्चों को नहीं सिखायें। तुम क्या भिखारी के बेटे हो जो चैन के पीछे रोटी छोड़कर

बैठ जाओगे? सभी युवा कायोत्सर्ग करो इस बात का कि माँगा-मूँगी नहीं करेंगे। अपने घर की इज्जत को डुबाना नहीं।

दु:ख के पण्डित हैं इन्द्रियसुख

अक्षाश्वान्निश्चलं धत्स्व, विषयोत्पथगामिनः।
वैराग्य प्रग्रहाकृष्टान्, सन्मार्गे विनियोजयेत्॥ 78 सा. स.॥

ज्ञानी! किसी उद्यान से आप निकल रहे हो। कोई पुष्प नहीं चुना, फिर भी बगीचे की सुगन्ध आपको महसूस हो रही है, आनन्द आ रहा है। जिनेन्द्र की वाणी की ध्वनि सारे विश्व की शान्ति का साधन है। इसलिये सारे ब्रह्माण्ड में यह स्वर गूँजना चाहिये। आपने अनादि से अशुभ शब्द बोलने के संस्कार डाले, उनका उपशमन जिनवाणी के श्लोक को पढ़ने से होगा। और जहाँ तक बने, श्लोक को याद करना।

आज के बुजुर्ग जब चाट के ठेले पर चाँटते मिलें। अब इन्हें बच्चे कहें कि बुजुर्ग कहें? धिक्कार हो, सब धुला दी। कभी बफर में नहीं जाना। वे दिन कहाँ गये जब तेरी दादी तेरे दादा से कहती थी कि यह कलेवा लेकर जाओ। पाथेय, छन्ना, डोरी साथ लेकर जाते थे।

कनक-कलेवा और छन्ना, ये जैनी के चिह्न हैं।

जब पुण्य का योग होता है, तो पूछनेवाले हजारों मिल जाते हैं। जब आपको अच्छी भूख लगी हो और सामनेवाले के घर में सबकुछ रखा है, तब भी वह आपको पूछेगा नहीं। क्यों? उसका दोष नहीं है, तेरा भाग्य ही ऐसा है। यदि तेरे हाथ में कलेवा है, तो कोई तनाव (टेंशन) नहीं है। कोई पूछे या न पूछे, अपना कलेवा खोलकर खा लूँगा, भूखा तो नहीं रहूँगा। ऐसे-ही हे मुमुक्षु! जिनवाणी को बार-बार याद करो। कदाचित् तेरी अन्तिम श्वास जंगल में निकल गई, किसी पर्वत के ऊपर निकल गई, कोई णमोकार सुनानेवाला नहीं मिला, यदि जिनवाणी को सीख कर रखा है, तो जैसे अपना कलेवा खोल कर खा लिया था, ऐसे ही स्वयं की समाधि स्वयं कर लेगा। इसलिये ये श्लोक याद करना। और यही भावना रखना कि जो उपदेश आप सुन रहे हैं, वह आज के लिये नहीं

सुन रहे हैं। इन्वर्टर में जो विद्युत संग्रहीत करते हो, वह उसी समय के लिये नहीं करते हो, उस समय तो विद्युत होती है। जब विद्युत चली जायेगी, तब यह विद्युत काम में आयेगी। ऐसे-ही जो आज प्रवचन सुन रहे हो, वह आज के लिये नहीं सुन रहे हो। जब कोई सुनानेवाला नहीं मिलेगा, तब मैं स्वयं को स्वयं सुनाऊँगा। इसलिये सुन रहे हो। अपने इन्वर्टर को सुरक्षित रखना, सब संग्रहीत कर लेना। पहले के मस्तिष्क इतने महान् होते थे कि हमारे आचार्य भगवन्तों की वाणी को अपने मस्तिष्क में सुरक्षित कर लिया। अब बुद्धियाँ न्यून हो गई हैं। तीन-तीन कैमरे लगा कर बैठे हैं, भूल जाऊँगा तो सी.डी. से सुन लूँगा। सी. डी. में कितने शब्द आयेंगे? लेकिन मस्तिष्क कितना विशाल होता है। हमारे एक आचार्यमहाराज के मस्तिष्क में कितने ग्रन्थ समाविष्ट होते हैं। मानव के मस्तिष्क से कम्प्यूटर बना है, तो जिससे कम्प्यूटर बना है, उसका उपयोग करो, क्यों कम्प्यूटर के पीछे अपनी बुद्धि नष्ट कर रहे हो? आज के युवा तो मस्तिष्क का प्रयोग ही करना नहीं चाहते। जितनी बुद्धि अपने पास है, उसका पाँच प्रतिशत भी उपयोग नहीं कर रहे हो। स्वच्छ कुल, स्वच्छ भोजन, स्वच्छ भाषण करने वाले की प्रज्ञा अत्यन्त विशद् होती है। जो निज के ज्ञान का उपयोग निज में कर लेता है, वही केवलीभगवान् बन जाता है।

विषयरूपी खोटे मार्ग में इन्द्रियरूपी घोड़े बेलगाम दौड़ रहे हैं। युवाओ! अपनी शक्ति व विवेक का ध्यान रखो। मेरे भैया! आप चाहो तो पानी को वाष्पित करके जेम्सवॉट जैसे इंजन बना करके रेल चला सकते हो। नहीं चाहो तो बटलोई में रखा पानी, उसमें छेद कर दो तो, आग को ही बुझा देगा। बटलोई के पानी की वाष्प से ढक्कन फिक गया, तो जेम्सवाट ने वाष्प की शक्ति को देखकर गाड़ी खींच दी। यदि उसी बटलोई में छेद कर दिया जाता, तो चूल्हा ही बुझ जाता।

मेरे मित्रो! जो आपके शरीर में वीर्य है, शुक्र है, शक्ति है, यदि तुमने ध्यान किया, तो उसमें ओज बना करके, वाष्पित करके तुम्हारी इस आत्मा को सिद्धालय में विराजमान कर देगा और यदि तूने छेद करके बाहर फेंक दिया, तो नरक के गड्ढे में जाकर गिर जायेगा।

ज्ञानी! ब्रह्म की रक्षा करो। बुद्धियाँ क्यों क्षीण हो गई हैं? स्मृतियाँ क्यों नष्ट हो रही हैं? क्योंकि हम अपनी शक्ति की रक्षा नहीं कर रहे हैं। जल्दी चश्मे क्यों लग रहे हैं? आँखें क्यों क्षीण हो रहीं हैं? क्योंकि हम अपनी शक्ति का सम्यक् उपयोग नहीं कर रहे हैं। युवा-अवस्था में सिर दर्द होना चाहिये क्या? जिसका मानसिक संतुलन व्यवस्थित नहीं है, उनकी आँखें और सिर दर्द करते हैं। जिनका भोजन का संतुलन व्यवस्थित नहीं है, उनका पेटदर्द करता है। वैद्य के यहाँ तो तुम्हें कभी जाना ही नहीं पड़ेगा यदि मानसिक संतुलन और भोजन का संतुलन बनाये रखो तो। मन को और पेट को शुद्ध रखो, तो पूर्ण स्वस्थ रहेगा। जिसका मन और पेट स्वस्थ नहीं है, वे परिपूर्ण स्वस्थ तो हो ही नहीं सकते।

जो विषयरूपी पथ में गमन करने में लगे हैं, ऐसे इन घोड़ों से मनरूपी अश्व का कितना विपर्यास होता है। भवितव्यता को कौन टाल सकता है? यदि सुअवसर मिला है तो समझो कि लोक में तत्त्व का कितना विपर्याय होता है। 'धवला' जी की नवमी पुस्तक में लिखा है कि समवसरण में बलिपीठ होते हैं, तो आपकी दृष्टि कहाँ चली गई? क्या समवसरण में जीवों का घात होता है? नहीं। जहाँ प्राणीमात्र को शरण दी जाती हो, वहाँ घात का प्रश्न कहाँ? बलिपीठ शब्द के साथ लोगों ने कैसा व्यभिचार किया? परमात्मा के सामने जो द्रव्य चढ़ाई जाती है, उसमें नैवेद्य भी होता है। उस नैवेद्य का नाम बलि है। 'बलि ग्रहण-ग्रहण।' परन्तु अज्ञानियों ने क्या किया? बलि के स्थान पर जीवों का घात कर दिया। इसलिये हमने नैवेद्य शब्द का प्रयोग किया, बलि शब्द को समाप्त कर दिया। बलि का अर्थ जीव घात नहीं है। बलि का अर्थ है नैवेद्य चढ़ाना। जिस स्थान पर द्रव्य समर्पित की जाती है, उस स्थान का नाम है बलिपीठ। लोगों ने जीव-घात अर्थ कर लिया। यह शब्द का दोष है, कि शब्द के अर्थ निकालने वालों का दोष है? शब्द कहाँ बोलते हैं कि मेरा यह अर्थ है। ये तो रागियों ने अपने अर्थ निकाल लिये हैं। अश्वमेघ यज्ञ का अर्थ था—'अक्षः अश्वः' अक्ष यानि इन्द्रियाँ, अश्व यानि घोड़ा। इन्द्रियों की चंचलता। मन की दौड़ घोड़े के समान है। इसका

निरोध कर देना, यही अश्वमेघ यज्ञ है। न कि घोड़ों को हवन में पटक देना। आप होम करते हो? **"ये नित्यं व्रत मन्त्र होम निरतः ध्यानाग्नि होत्राकुला।"** ये निर्ग्रन्थ योगी प्रतिदिन ध्यान की अग्नि में व्रत समिति गुप्तियों से होम करते हैं और कर्म की समिधाओं को जलाते हैं। वे और-कोई होम नहीं करते, क्योंकि वे षट्काय जीवों की हिंसा के त्यागी हैं। पूरी बात सुनना चाहिए। जो अधूरी बात सुनते हैं, उनने सबका नाश कर दिया। अधूरी बात नहीं सुनें, पूरी बात सुनें।

ये इन्द्रियरूपी घोड़े खोटे मार्ग में दौड़ रहे हैं, इनको कैसे सुरक्षित करें? कैसे पकड़ें? इनको वैराग्य रूपी लगाम से सन्मार्ग में लगा दो।

तुम्हारा यह पुण्योदय है कि तुम उत्तम जैनकुल में जन्मे हो। उससे बड़ा पुण्योदय है कि तुम्हारे यहाँ बैठने के परिणाम हुये। मेरा वृद्धों से कहना है कि इन युवाओं को कभी पापी मत कहना। इनको सन्मार्ग दिखाने की आवश्यकता है। इनकी शक्ति तो बहुत है। एक अच्छे आदमी को दस बार पागल-पागल बोल दो, तो वह भी सोचेगा कि मैं पागल हूँ क्या? और एक अच्छे आदमी की प्रसंशा कर दो तो उसकी भी शक्ति बढ़ती है। आप इस शक्ति का दुरुपयोग मत करना। युवाओं को कभी पापी/पागल मत कहना। यह वह शक्ति है कि जो आप कभी नहीं कर पाओगे, वह करके दिखानेवाली शक्ति है। ज्ञानी! अपनी शक्ति को सम्यक् क्षेत्र में समर्पित करना। समझो, अग्नि पाचक है, अग्नि दाहक है, अग्नि प्रकाशक है। अग्नि एक है, फिर भी कार्य तीन हैं। अब ज्ञानी वस्तु का प्रयोग कहाँ, कैसे, कब करना है, यह तुम्हारी प्रज्ञा पर आश्रित है। प्रज्ञा से बंध है, प्रज्ञा से निर्बंध है।

आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि—**"अक्षाश्वान्निश्चलं धत्स्व विषयोत्पथगामिनः"** हे आत्मन्! विषयरूप कुमार्ग में जाने वाले इन्द्रियरूपी घोड़ों को पकड़ो। **"वैराग्य प्रग्रहाकृष्टान् सन्मार्गे विनियोजयेत्!"** वैराग्य रूपी लगाम से खींचकर उन्हें सन्मार्ग में लगाओ।

ज्ञानियो! जैसे लगामरहित अश्व अपने ऊपर सवार होने वाले व्यक्ति को कुमार्ग में ले जाकर गड्ढ़े में पटक देते हैं, परन्तु घोड़े की लगाम घुड़सवार के हाथ में हो तो घुड़सवार घोड़े को अच्छे मार्ग से चलाकर स्वस्थान में पहुँच जाता है। उसी प्रकार पाँच इन्द्रियरूपी घोड़े की लगाम जिनके वश में नहीं है, वह बेलगाम होकर विषयों के गड्ढे में गिरते हैं और अपनी आत्मा को दुर्गति में पहुँचाते हैं।

हे भव्य! वैराग्यरूपी लगाम के द्वारा इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने-अपने विषयों से हटाकर जिनेन्द्रकथित धर्ममार्ग में लगाओ। मुमुक्षुओ! वैराग्य के बिना इन्द्रियाँ वश में नहीं हो सकती हैं।

हे मित्रो! इन्द्रियसुखों को छोड़कर वैराग्यभावना को बढ़ाओ। संसार के और शरीर के परिणमन का विचार करने से वैराग्य का वर्द्धन होता है।

ज्ञानियो! अपनी इन्द्रियों को धर्म-कार्यों में लगाओ, अपनी प्रज्ञा का अच्छे कार्यों में प्रयोग करो। विकास करना है तो सम्यक् सोचो, सम्यक् समझो, सम्यक् बोलो और सम्यक् आचरण करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"इन्द्रियविषय ही शत्रु हैं"

अक्षाण्येव स्वकीयानि, शत्रवो दुःखहेतवः।
विषयेषु प्रवृत्तानि, कषायवश-वर्तिनः॥ 79॥

अन्वयार्थ-कषायवशवर्तिनः = कषायों के वश में रहनेवाली, **अक्षाणि** = इन्द्रियाँ, **एव** = ही, **विषयेषु प्रवृत्तानि** = विषयों में रत होती हुई, **दुःखहेतवः** = दुःखों का कारण है और, **स्वकीय शत्रवः** = वे अपने आत्मा की शत्रु हैं।

भावार्थ-कषायों के वश में रहने वाले आत्मा की अपने-अपने विषयों में प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियाँ ही दुःख की कारणभूत होने से शत्रु हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' जी में जीव की उस अखण्ड धारा की प्ररूपणा कर रहे हैं जो मोह से आच्छादित है, कषाय के वशवर्ती है। लगता ऐसा है कि जगत् में कोई मेरा शत्रु है, कोई मेरा मित्र है, परन्तु न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। निज के विकारों के दर्प जब प्रबल हो जाते हैं, तो परवस्तु में राग उमड़ता है। ध्यान देना, परवस्तु में राग उमड़ा, उस वस्तु की प्राप्ति का भाव तो बना, लेकिन उस वस्तु की प्राप्ति का पुण्य नहीं था। जब पुण्य के अभाव में पदार्थ नहीं मिलता और पदार्थ की कामना तीव्र होती है, तब जीव अपने आप में स्वयं ही क्लेश को प्राप्त होता है, फिर निहारता है कि ये मुझे मिल जाता, वो मुझे मिल जाता। वह वस्तु तुझे कैसे मिलती? क्योंकि मिलन तभी होता है, परद्रव्य भी तुझे तभी मिलेगा, जब पुण्य का द्रव्य तेरे पलड़े में होगा। चाहे लोक का संयोग हो, चाहे तेरे घर की सामग्री का संयोग हो। देखने को अनन्त द्रव्य मिल सकते हैं, सुनने को अनन्त द्रव्य मिल सकते हैं, लेकिन भोगने को तभी मिलेंगे, जब पुण्य का द्रव्य तेरे साथ होगा। सारे नगर में तुम घूमकर आ सकते हो, नगर के प्रत्येक भवन में आप आँख डाल सकते

हो, परन्तु नगर के प्रत्येक भवन में आप निवास नहीं कर सकते हो। क्या भिखारी आपके नगर में नहीं घूमता? क्या वह विशाल भवनों को नहीं देखता? बड़ी समझदारी की बात है। देख सकते हो, सुन सकते हो, लेकिन भोग नहीं सकते हो, क्योंकि योग नहीं है। जब भोग नहीं सकते हैं, तो देखो ही क्यों? जब भोग नहीं सकते हैं, तो सुनो ही क्यों? जिसे भोगा नहीं जा सकता, जिसे प्राप्त नहीं किया जा सकता, तब तक उसे जीव देखता भी नहीं है, सुनता भी नहीं है। देखकरके, सुनकरके व्यर्थ में बंध क्यों करें? जितना आपको खाने को नहीं मिला, जितना आपको पहनने को नहीं मिला, उतना आपने देख लिया है, उतना आपने सूँघ लिया है, उतना आपने सुन लिया है। भोग उतना ही कर पाओगे, जितना भोग-अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा, इसलिए भिखारी—जैसे हर भवन को देखकरके, आँख फेंककरके आत्मा की वञ्चना मत करो। भैया! तू भैया के पुण्य को नहीं भगा सकता। मेरे मित्र! तुम यह तो कह सकते हो कि वहाँ तो मेरा भैया सम्राट है, वह सहयोग कर देगा, परन्तु तुम विश्वास रखना, सम्राट सहयोग नहीं करता है, सहयोग करने वाला कोई है तो वह पुण्य का सम्राट है। यदि किसी के मन में सहयोग के भाव भी आ गये और उसने सहयोग कर भी दिया, परन्तु तेरा जितना पुण्य होगा, उतना ही तेरे पास बचेगा, उतना ही ले जा सकते हो।

इस नगर में अमीर लोग भी हैं, इस नगर में गरीब लोग भी हैं। एक व्यक्ति कह रहा है कि मैं आगरा नहीं छोड़ सकता हूँ, क्योंकि यहाँ—जैसा सुख कहाँ मिलेगा? दूसरा कह रहा है कि मैं आगरा में नहीं रह सकता, क्यों? ऐसा दुःख कहाँ मिलेगा? हे मुमुक्षु! क्यों तू भूमि को दोष दे रहा है? क्यों तू नगर को दोष देता है? नगर में सुख होता तो सारे नागरिकों को होना चाहिये था। नगर में दुःख होता, तो सारे नागरिकों को दुःख होना चाहिये। नगर में न दुःख है, न सुख है। साता में सुख है, असाता में दुःख है। जिसको साता का उदय है, उसको श्मसान घाट में भी आनन्द आता है और जिसको असाता का उदय है, उसको महल में भी दुःख है। सुनना मात्र नहीं है, अपने भीतर के भ्रम को मिटाना है। आपका जो नगर के प्रति राग-द्वेष परिणाम चल रहा है, उसका प्रत्याख्यान

कीजिये। नगर का क्या दोष है? आगरा ने किसी को गरीब नहीं बनाया किसी को अमीर नहीं बनाया। इसलिये गरीबों से कह देना कि अमीरों को देखकरके अशुभ भाव मत करो। अशुभ भाव करने से तुम अमीर नहीं बन पाओगे। वहाँ चिंतन करो कि यह धनपति बन कैसे गया? धन से धनपति नहीं बनता। जो पूर्व में धर्म-पति होता है, वह वर्तमान में धनपति हो जाता है। भैया! पैसेवालों को भी देखना, सुखी जीव को भी देखना, दु:खी जीवों को भी देखना। यह दु:खी कैसे हो गया, कंगाल कैसे हो गया? यह धन से कंगाल नहीं हुआ है, यह धर्म से कंगाल हो चुका था, उसका फल कंगालीपन है।

ज्ञानी! दो दृष्टियाँ हैं आपके पास। पुष्पवाटिका में पुष्प खिले हुये हैं। चुन-चुन करके या तो कानों के फूल बना लो या कण्ठ का हार बना लो। पुष्पों को चुन लिया, तो फल कहाँ से मिलेंगे? उन्हीं पुष्पों में तो फल लगने वाले थे, जिससे मेरे उदर की पूर्ति होने वाली थी। आपने पुष्पों के आते ही कर्णफूल बना लिया, कण्ठहार बना लिया। जब तुम फूल ही नष्ट कर चुके हो, अब फल खाने को कहाँ से मिलेंगे? ज्ञानियो! जब तुम्हारे पुण्य का पुष्प खिला, उस पुण्य के पुष्प में मोक्ष का फल नहीं लगने दिया, तुमने भोगों के कर्णफूल बना लिये और भोगों के कण्ठहार बना लिये, जब फूल ही नष्ट कर लिया है, तो मोक्ष का फल कहाँ से मिलेगा? फल चाहिये तो पुष्प की रक्षा कीजिये।

ज्ञानी! जो पुष्प की रक्षा नहीं कर पाते, उनके आँगन में कभी बालक क्रीड़ा नहीं करते। माताओ! ध्यान से सुनो, बाँझ उसी को होना पड़ता है, जो पुष्प की रक्षा नहीं करते। उभय कोटि से समझना। नारी पुष्पवती हुई और गर्भपात करवा दिया। जब पुष्प का ही नाश कर दिया है, अब तो तेरी अगली पर्याय बंध्या की होना ही है। जैसे वृक्ष के पुष्प को नाश करने से खाने को फल नहीं मिलते, वैसे ही संतान का नाश करने वाले को मोक्ष का फल नहीं मिलता। जीवन की अन्तिम श्वास लेने से पूर्व यह प्रायश्चित ले लेना और यह निर्णय कर लेना कि जो मेरे गर्भ में आयेगा, अपने भाग्य से खायेगा, तेरे भाग्य से नहीं खायेगा। हे ज्ञानी! संतान को जन्म दे देना, सन्तान का नाश नहीं करना। चाहे अष्टमी

करो, चाहे चतुर्दशी करो, रोहणी करो, पर्युषण करो, जिस कुल में अपने ही सन्तान के टुकड़े कराये जाते हों, उस कुल में कभी सूतक-पातक समाप्त नहीं होता। इस जीव की पर्याय का क्या होगा, वह सर्वज्ञ के ज्ञान में झलक रहा है।

तेरे जीवन का शत्रु कौन है? तेरे जीवन का मित्र कौन है? इस बात पर चिंतन कीजिये। ज्ञानियो! हम यूँ समझते हैं कि हमारे सामने शत्रु बैठा हुआ है। नहीं। क्या कहूँ? तत्त्व की गहराइयों का चिन्तन नहीं है, वक्ता चिन्तन दे नहीं रहे हैं। उनको ताली चाहिये और आपको चेहरे पर मुस्कुराहट देने वाला शब्द चाहिये। परन्तु ध्यान दो, मोह का ताला जिससे नहीं टूट रहा है, वह उपदेश 'तत्त्व-उपदेश' नहीं है। मात्र प्रत्यक्ष को देख रहे हो, कि महाराज! मेरा बेटा मुझे परेशान कर रहा है, मेरी पत्नि मुझे परेशान कर रही है, मेरा भैया मुझे परेशान कर रहा है। तुम जैनकुल में जन्मे हो, थोड़ा स्वाध्याय करके तत्त्व का निर्णय करो। पिता तुझे कष्ट दे रहा है, यह तुम वर्तमान की आँख से देख रहे हो, इसलिये आँख को सम्बन्धी कष्ट देते दिखाई दे रहे हैं। सम्बन्धी कष्ट दे सकता है क्या? सम्बन्धी कष्ट नहीं दे रहा है, तो कष्ट कौन दे रहा है? आप भूल चुके हो कि सम्बन्ध स्थापित होकर अवश्य आया है, परन्तु वह सम्बन्धी नहीं आया है। जिसको तुमने पूर्व में सताया था, वह पुत्र/मित्र/भाई बनकर आया है, कोई दूसरा व्यक्ति नहीं आया है। कष्ट दिया किसने है?

दुनियाँ में कष्ट देनेवाला कोई है, तो मात्र मेरी ही कषाय है। उस कषाय और वासना ने जो बन्ध किया है, वो नाना रूपों में उदित होकर प्रकट हुआ है। कोई कष्ट देते हुये भी मिल जाये, उसके भी हाथ जोड़ लेना और यूँ कहना—तू भी भगवान्-आत्मा है। ये तेरा दोष नहीं है, ये मेरे पूर्वबद्ध कर्मों का दोष है। काश! मेरा पुण्य प्रबल होता। तीर्थंकर भगवान् भी इसी मिट्टी में जन्म लेते हैं। अवधपुरी में जन्मे हैं ऋषभदेव। उनसे पृच्छना करना—हे प्रभो! जब आपका विहार होता था, तो भूमि कण्टकाकीर्ण होने पर भी निर्मल हो जाती थी। दसों दिशायें स्वच्छ हो जाती थीं और आपको कभी कोई दु:खी प्राणी नहीं मिला, आपने कष्ट देखा ही नहीं। उस भूमि पर कष्ट नहीं था क्या? भैया मेरे! भूमि में कष्ट नहीं होता,

क्षेत्र में कष्ट नहीं होता, काल में कष्ट नहीं होता। वही क्षेत्र, वही काल। एक के लिये कैवल्य प्रकट करा रहा है, दूसरे को नरक भेज रहा है। इसमें काल का क्या दोष? सातवें नरक में जाने वाला जीव भी चतुर्थ काल में होता है और पंचमकाल में उत्पन्न हुआ कोई भी जीव सातवें नरक जाने की सामर्थ्य नहीं रखता है। यदि तीर्थंकर, केवली, सर्वार्थसिद्धि का देव नहीं बन सकता, तो सातवें नरक भी नहीं जा सकता है। सातवें नरक जाने के लिये चतुर्थकाल चाहिये। एक जीव चतुर्थकाल में सातवें नरक जा रहा है, दूसरा जीव सिद्धशिला जा रहा है, इसमें काल क्या कर रहा है? तेरी परिणति जैसी थी, तेरी गति वैसी हुई है। पंचमकाल में आप सब गृहस्थ बैठे हुये हो, यहाँ साधु भी तो बैठे हुये हैं। पंचमकाल में यदि असंयम-ही-असंयम होता, तो साधुओं के लिये कौन-सा काल आ गया? यह सर्वथा पंचमकाल का दोष नहीं, मेरे उपादान की कमजोरी है। उपादान की कमजोरी को परमात्मा ठीक करने नहीं आयेंगे, तेरी परिणति को तू ही ठीक कर सकेगा।

माताओ! आज से घर में किसी को दोष मत देना कि आपने मेरे साथ ऐसा किया है। आप जैन हो, जिनवाणी को मानते हो, जिनवाणी सत्य है तो ध्यान से सुनिये-स्वयं के कर्म के उदय से स्वयं को पाप-पुण्य का फल मिलता है, तो घर में विसंवाद क्यों करते हो? बड़े भैया को पिता जी ने इतना दे दिया, मुझे कम दिया है। मेरे छोटे भैया! गलती पिता जी की नहीं है, तेरी है। जब बड़ा भैया आया था, तब तू आ जाता, तो तू बड़ा बन जाता, छोटा क्यों बना? गल्ती किसकी है? पिता जी से बराबर हिस्सा ले सकते हो, लेकिन हिस्से को बराबर रख नहीं सकते हो। यदि तेरी सास ने दो बहुओं को बराबर आटा दे दिया और कहा कि इसकी रोटी बनाकर लाओ। सासू माँ बराबर आटा तो दे सकती है, रोटी का आदेश दे सकती है, परन्तु तुम विश्वास रखना, वही आटा है, एक ही स्थान से दिया गया है, परन्तु दोनों की रोटियों के आकार व स्वाद भिन्न-भिन्न हैं। उसे सासू नहीं दे पायेगी, उसे तेरे हाथ ही दे पायेंगे।

आप तो एक ही घर में भोजन करते हो, मैं तो प्रतिदिन नये-नये घर में करता

हूँ।जिसका पुण्य प्रबल होता है, उसके हाथ का भोजन भी स्वादिष्ट बनता है और जिसका पाप का उदय होता है, वह उसी सामग्री को जला कर रख देगा, उससे बनेगा ही नहीं। बेचारी, उसके तो भाग्य ही फूट गये। जिसकी माँ सुन्दर भोजन खिलाती हो और उसके बेटे की माँ ऐसी फँस गई जो रोज रोटी जलाती हो, उसका तो जीवन बर्बाद हो गया। अब तू चिल्ला रहा है कि ऐसा भोजन क्यों बनाया? नहीं, भैया! चिल्लाने का काम मत करो। सत्यता यह है कि तेरा पुण्य क्षीण हो चुका है। हर हाथ से सुन्दर काम नहीं होते। पुण्यात्मा जीव का काययोग पुण्यकार्य में लगेगा, जिसका पुण्यानुबन्धी पुण्य का उदय चल रहा है, उसका काययोग पुण्य में लगेगा, उसका मनोयोग पुण्य में लगेगा, उसका वचनयोग पुण्य में लगेगा और जिस जीव का पाप का तीव्र उदय आ चुका है, उसके पुण्य की सत्ता होने पर भी पाप का उदय आने पर उसका मनोयोग विपरीत होगा, काययोग भी उल्टा काम करेगा और वचन भी अशुभ-ही-अशुभ निकलेगा। आप चाहो भी कि मैं अच्छा बोलूँ, अच्छा कहूँ, तब भी मुख से अच्छे शब्द नहीं निकलेंगे। गुस्सा भी आ जाये तो मौन ले लेना, लेकिन बोलकरके, अशुभ वचन का प्रयोग करके, घर में विष मत घोलना। जब आपका नया मकान बनता है तो मैंने सुना है कि आप भक्तामर जी का पाठ करा लेते हो, आपका उद्देश्य क्या है?

माताओ! यदि आपके अन्दर करुणा हो, मातृभाव से भरी हो, दया हो, तो मेरी बात ध्यान से सुनना। आपने भक्तामर या णमोकार का पाठ कराया, शान्तिविधान किया, कुछ भी किया हो। घर में प्रवेश करने से पूर्व उन प्रशस्त शब्दवर्गणाओं को भरना चाहता हूँ जिसमें प्रवेश करने से परिवार के परिणाम विशुद्ध रहें, क्योंकि पुण्यवर्गणा स्पर्श करेंगी तो परिणाम अच्छे रहेंगे, इसलिये तो भक्तामर का पाठ कराया था। आप यहाँ उपदेश सुनते हो तो एकदम शान्त हो जाते हो। जो मैं कह रहा हूँ, वह शब्द ही तो हैं। अभी कोई पुरुष यहाँ गाली देने लग जाये, तो पूरी सभा उद्वेलित होने लग जायेगी। बीच में कोई खड़ा हो जाये, महाराज! ऐसा कैसा? आप विश्वास रखना, सारे श्रोताओं के भाव बिगड़ जायेंगे।

हे ज्ञानी! शब्द 'मन्त्र' है, शब्द 'गाली' है। वे ही चौंसठ वर्ण हैं जिससे गाली

बना लो, वे ही चौसठ वर्ण हैं जिससे मन्त्र बना लो। पराठा बनाते हो तो बीच-बीच में घी लगाते हो, क्यों? महाराजश्री! खस्ता बनाने के लिये मोन डालते हैं। हे ज्ञानी! जब तू बीच में घी लगाकरके आटे को खस्ता बनाने की सामर्थ्य रखता है, तो तेरे वचनों में भावों की माधुर्यता का मोन होना चाहिये, जिससे उस खस्ता वाले पराँठे को सब खाना पसन्द करें। ऐसे—ही तेरी बात को सब पसन्द करें। जो मोन लगाना नहीं जानता है, वह ऐसे पराठे बनायेगा जिससे दाँत तुड़वायेगा या जीभ छिलायेगा। भक्तामर कराने का उद्देश्य था कि हमारे भवन में ऐसी वर्गणायें फैल जायें, मेरा भवन अभिमन्त्रित हो जाये, जिसमें प्रवेश करते ही सबके परिणाम विशुद्ध हों। मन्दिर में प्रवेश करते ही पुरुष तनावमुक्त होता है। साधु के पास आते ही चित्त प्रसन्न होता है। कब? जब साधु स्वयं प्रसन्नचित्त रहता है तब। कोई अपरिचित-से-अपरिचित भी मुनिराज मिल जायें, तब भी ऐसा प्रसन्न होता है जैसे कई वर्षों से परिचित हो। योगी को देखकर मुस्कुराहट न आये, तो अभी हमने योगी को देखा ही नहीं। वे आँखें 'आँखें' नहीं, गड्ढे हैं, वे नेत्र- गोलक 'गोलक' नहीं, काँच के कंचे हैं जिन आँखों से दिगम्बर मुनि को देखने के परिणाम न हों। कुछ सीखो भैया। मुनिराज को चाहिये कि आपको देख करके अपरिचित पुरुष भी प्रसन्न हो जाये। मुनिराज पूछें-तू कब-से मेरे से परिचित है? तो तू मुस्कुराकर कहेगा, स्वामी! मैं आपसे परिचित नहीं हूँ, लेकिन मैं आपकी मुद्रा से अनादि से परिचित हूँ। यह भेष अरहन्तदेव का है। उसको देखकर मुझे गद्गद् भाव आता है।

तुम्हारे घर में भी जब चौका लगा होता है, तो बच्चे भी कहते हैं कि महाराज जी के आहार होंगे, तब मैं भोजन करूँगा। उसकी भूख कहाँ चली गई? जब महाराज के आहार हो गये, तब कहो-बेटे! भोजन कर लो, तब वह कहता है मुझे भूख नहीं लग रही। 'तो कैसा लग रहा है?' आनन्द आ रहा है। यह किस बात का आनन्द है? जो मेरे अन्दर गुरु की आस्था बैठी थी, उस आस्था की अनुभूति यह आत्मा का आनन्द है। आत्मा का आह्लाद है।

मरघट जानते हो? जहाँ मरे, वह मरघट। जहाँ जलाया जाता है, वह तो जलघट है। मरघट पर कोई नहीं मरता, वहाँ जाना अच्छा नहीं मानता और जहाँ मर रहा है, उसे मरघट नहीं मानता। जहाँ मरण होता है, यथार्थ में मरघट तो वही है, परन्तु उस मरघट को मरघट बना कर मत रखना।

कुन्दकुन्द देव ने 'रयणसार' जी ग्रन्थ में लिखा है कि **''जिस घर में निर्ग्रन्थ मुनि के चरण नहीं पड़ते हैं, वह मकान मरघट होता है। मरघट की वर्गणायें तो मरघट-भूत ही होंगी। जब आपके घर में योगी के चरण पड़ते हैं, उस समय परिवारवालों के बच्चों के चेहरे देखना। क्या मिल गया? जड़ रत्न तो अनन्तों ने कमाये हैं, आज मेरे घर में रत्नत्रयधारी के चरण पड़े हैं, उसकी अनुभूति ले रहा हूँ।''**

भक्तामर का पाठ एक दिन किया, चौबीस घण्टे किया, अड़तालीस घण्टे किया, लेकिन उस घर में निवास जीवनपर्यन्त करोगे। मिश्री डली बालू को चबाने पर कैसा लगेगा? अरे! उसमें तो मिश्री का कण था। कितने ही मिश्री के कण डाल दो, भले ही मिश्री तो मीठी ही है, लेकिन बालू में मिश्री झलकती कहाँ है? छुप गई। मुख में बालू चबाने पर कैसा लगेगा? अरे! उसमें तो मिश्री का कण था। कितने ही मिश्री के कण डाल दो, लेकिन बालू में मिश्री का स्वाद नहीं आता। इसी प्रकार आपने भवन की शुद्धि के लिये भक्तामर पाठ किया, परन्तु वह तो चौबीस घण्टे में बन्द हो गया, आप जीवनपर्यन्त उस घर में किन शब्दों का प्रयोग कर रहे हो? आपने ही अपने घर के वातावरण को विकृत किया है, दूसरे ने नहीं किया। अच्छा शब्द बोलने से पुरुष तनावमुक्त हो जाता है। विश्व में हिंसा तो अहिंसक शब्दों से ही समाप्त होगी। अन्त में समझौता तो करना ही पड़ता है। जैसे भक्तामर का पाठ करने से भवन प्रशस्त हो रहा था, आपने पति-पत्नि में झगड़े किये, बच्चों को पीटा, भाइयों से झगड़ा किया, वे कलुषित वर्गणायें उसमें संग्रहीत हो चुकी हैं, उन अशुभ वर्गणाओं से वातावरण विषाक्त हो गया है। उसे विषाक्त बनाने वाले आप ही हो। किञ्चित् भी दया/करुणा हो, तो घर की भाषा पर सुधार कीजिये।

आप विश्वास मानिये, क्षण भर में हजारों-हजारों लोगों को रुलाया जा सकता है और लाखों-लाखों लोगों को हँसाया जा सकता है और लाखों लोगों को गम्भीर किया जा सकता है। यह शब्दों में शक्ति है। यदि जरा भी करुणा है, तो आज से नियम ले लो, आज से अशुभ शब्द का प्रयोग नहीं करना। सुगन्ध के लिये अगरबत्ती जला रहे हो, सेंट छिड़क रहे हो ये कोई काम के नहीं हैं। आप घर में उन शब्दवर्गणाओं का प्रयोग करो जिनसे अपने मन में शान्ति उद्भूत होती हो। दूसरा तुम्हारे घर में प्रवेश करेगा तो उसे लगेगा कि यह भवन है कि मन्दिर है। पुण्यात्मा पुरुष, धर्मात्मा जीव जिस कक्ष में बैठा हो, उस कक्ष में प्रवेश करने पर शान्ति महसूस होती है। कोई क्रूरपरिणामी जीव जिस कक्ष में बैठा हो, तो लगता है कि कब यहाँ से खिसक जाओ। किसी को आप मिठाइयाँ खिला सको या न खिला सको, लेकिन किसी के ऊपर वाणी के पत्थर मत पटकना। मुख में खिलाई गई मिठाई तो मल बन जायेगी, वाणी का माधुर्य तुझे अमल परमात्मा बना देगा। धर्म वाणी से चलता है।

केवलिपण्णत्तं धम्मं शरणं पव्वज्जामि।

केवलीप्रणीत धर्म ही जिनवाणी है। कितना अच्छा होगा कि हर पुरुष के अंदर एकमात्र जिनवाणी गूँजे। घर को निर्मल करना चाहते हो तो आज से घर में अच्छे शब्द बोलना प्रारम्भ कर दो। गुस्सा आ रही हो तो मौन ले लेना। गुस्सा आये तो घर के बाहर निकल जाना, किसी तीर्थभूमि में निकल जाना, वहाँ शान्त बैठ जाना। उस परिवार के लोग घोर हिंसक/पापी हैं जो घर में वातावरण को कलुषित किये रहते हैं। कितने लोगों को मानसिक तनाव होते हैं। जब मानसिक तनाव बढ़ता है, तो पेट का पाचन कमजोर हो जाता है। जब पाचन कमजोर होता है, तो गैस बनती है। जब गैस बनती है, तो वह पागल होने लगता है। ये सारा श्रेय माताओ! आप लोगों को मिलता है। यदि आपके अन्दर किञ्चित् भी दया/करुणा हो, तो अपने घर के वातावरण को परिवर्तित करिये। जिनवाणी का पाठ करो, स्वाध्याय शुरू कर दो। वे घर कितने पवित्र होते हैं, जिन घरों में

शाम को स्वाध्याय हुआ करते हैं। वह मनुष्यों का घर नहीं, देवों का घर है। जिस जिनालय में स्वाध्याय नहीं होता, वह समवसरण कैसा? प्रत्येक जिनालय में स्वाध्याय होना चाहिये। जहाँ तीर्थंकर की देशना नहीं खिरेगी, तो वह समवसरण कैसा? अरहन्त के मन्दिर को समवसरण कहते हैं, तो समवसरण में पहले पूजा होती है। पूजा करने के उपरान्त दिव्यदेशना सुनना चाहिये। देशना सुनने के बाद पात्र को दान देता है। यह श्रावक की वास्तविक क्रिया है। जिसने मौन साधना का अभ्यास कर लिया, उसने मुनि बनने के संस्कार डाल लिये हैं।

आचार्यमहाराज कह रहे हैं-जगत् में कोई किसी का शत्रु नहीं है। जब तुम अपनी इन्द्रियों को वश नहीं कर पाते हो, मन को वश नहीं कर पाते हो, तो कषाय भड़का लेते हो, उस कषाय के उद्रेक में आप ही अपने शत्रु बन जाते हो।

मित्रो! क्या राम रावण के शत्रु थे? क्या लक्ष्मण रावण के शत्रु थे? लोक की आँख से देखते हो तो उनको शत्रु कहते हो। हे लंकेश! राम तुम्हारे शत्रु नहीं थे, लक्ष्मण तुम्हारे शत्रु नहीं थे। यदि स्पर्शन इन्द्रिय तेरे वश में होती, तो तू सीता को खोटी दृष्टि से नहीं देखता, फिर कौन तेरा शत्रु होता? तूने ही अपना शत्रु निर्मित किया है। राम-लक्ष्मण ने तेरा घात नहीं किया, तेरा घात तेरी परिणति ने किया है। कामनाओं आकांक्षाओं की कमर टूट जाये, तो कर्म शत्रु की कमर टूटेगी कि नहीं? इन्द्रिय-विषयों की लिप्सा भोग, वे ही दु:ख के हेतु तेरे शत्रु हैं। कषायों के वश जो इन्द्रियों की प्रवृत्ति चल रही है, यही तेरा शत्रु है, कोई दूसरा तेरा शत्रु नहीं है। बोतल की मदिरा का पान करने वाला तो कुछ क्षण को ही मोहित होता है, परन्तु मोह की मदिरा का पान करने वाला जीव अनन्त-अनन्त पर्यायों में मोहित हो रहा है। राग क्यों नहीं छूट रहा है? ज्ञान में तो आता है कि मैं अच्छा कर रहा हूँ या कि बुरा कर रहा हूँ? क्यों भैया! अशुभ को अशुभ कौन नहीं जानता? अशुभ को अशुभ सब जानते हैं, फिर अशुभ को अशुभ मान करके छोड़ने की ताकत क्यों नहीं है?

एक क्षण में आगबबूला हो गया, एक क्षण में कषाय से भर गया। जिस कार्य को करने के बाद स्वयं ग्लानि से भर जाये, वह अशुभ कर्म है और जिस कार्य को करने के बाद गद्गद् भाव आये, हृदय गद्गद् हो, अच्छे लोगों से कहने में ताकत आ जाये, वही तो शुभ कर्म है। तूने सिद्धचक्र विधान किया तो आकर सुना दिया, क्योंकि शुभ सबको सुनाया जा सकता है। इसके बीच में जो अशुभ भाव आये, उसको सुनाया क्या? महाराज! जिस दिन मैं अपने अशुभ भाव अपनी माँ से कह दूँगा, मेरी माँ भी मुझे बेटा कहना बन्द कर देगी। चौबीस घण्टे में तेरे कैसे-कैसे परिणाम होते हैं? यदि तूने जन्म देने वाली माँ से भी कह दिया, तो माँ भी सोचेगी 'क्या ये मेरा बेटा है?' उतना ही कहते हो जो कहने लायक होता है। इतनी सारी बातें अन्दर रखे हुये हो। ऐसा नहीं है क्या? है। महाराज को अच्छी बात सुनाता है। भगवान् के मन्दिर में अच्छी बातें करनी पड़ती हैं, अच्छे काम करने पड़ते हैं।

हे ज्ञानी! देह देवालय है, इसमें बैठा आत्मा ही मेरा भगवान्-आत्मा है। उसके अन्दर बैठ करके अच्छे काम करना चाहिये, अच्छी बातें करना चाहिये। मन्दिर में अशुभ करोगे तो दुर्गति हो जायेगी।

देह देवालय है, उसमें बैठा आत्मद्रव्य ही देव है। आप तो बस इतना नियम ले लो कि मन्दिर में कभी पाप मत करना, जिनालय में पाप नहीं करना। **''देह-देवालय है और द्रव्यदृष्टि से उसमें विराजा आत्मद्रव्य ही जिनदेव है। जब तक देह-देवालय में निवास करना, तब तक पाप नहीं करना। जब देह-देवालय के बाहर जाना, तब भले ही कर लेना। जब बाहर हो जायेगा, तब सिद्ध बन जायेगा, फिर तू पाप कहाँ करेगा? इस देह-देवालय में पाप नहीं करना।''** जैसे शान्त यहाँ बैठे हो, वैसे शान्त घर में रहने लग जाओ तो मोक्ष तुम्हारी मुट्ठी में है। हे ज्ञानी! मोह के वश होकरके तेरी आत्मा ही तेरी शत्रु है जो कि आत्मा को दुःख के बन्धन में डालने वाली है। जो आत्मा का परिणाम विषय-कषाय से युक्त है, वह आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। जो आत्मा का परिणाम विषय-कषाय से रहित है, वह आत्मा ही आत्मा का गुरु है। आत्मा

ही आत्मा का मित्र है। आज से यह अभ्यास करना कि मैं अपनी आत्मा को आत्मा का मित्र बना लूँ। इस जिह्वा से पता नहीं आज तक क्या-क्या निकाला होगा। आज निमित्त मिला है जिनवाणी बोलकर के तो इस जिह्वा को पवित्र कर लो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्मा ही शत्रु है"

इन्द्रियाणां यदा छन्दे वर्तते मोहसङ्गतः।
तदात्मैव भवेत्शत्रुरात्मनो दुःख बन्धनः॥ 80॥

अन्वयार्थ—यदा = जब यह प्राणी, **मोहसङ्गतः** = मोह की संगति से उन्मत्त होकर, **इन्द्रियाणां छंदे** = इन्द्रियों के आधीन, **वर्तते** = आचरण करता है, **तदा** = तब, **आत्मा एव** = यह आत्मा ही, **आत्मनः** = अपने लिए, **दुःखबन्धनः** = दुःखों का कारण होता हुआ, **भवेत् शत्रुः** = तेरा शत्रु हो जाता है।

भावार्थ—जब यह प्राणी मोहनीय कर्म की संगति से उन्मत्त होकर इद्रियों के आधीन आचरण करता है, तब हे आत्मन्! तेरी आत्मा ही आत्मा के दुःख-बन्धन (पाप बन्ध) का कारण होने से स्वयं की शत्रु हो जाती है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में मन की उस धारा की व्याख्या कर रहे हैं, जिस धारा के लिये मन ही जानता है, मन ही मानता है। यही जगत् की बिडम्बना है कि हम अपने मन के बारे में दूसरे से पृच्छना करते हैं, दूसरे से प्रश्न कर रहे हैं कि मेरे मन का वशीकरण कैसे हो? निज के मन के बारे में पर से पूछना, यह तो बहुत ही अज्ञानदशा है। जगत् में आपके तन की बात लोग देख सकते हैं, लेकिन मन की बात को देखनेवाला मात्र मनःपर्यय ज्ञानी है अथवा केवली भगवन्त हैं। सामान्य जीवों से आप अपने मन के बारे में क्यों पूछ रहे हो। अपने मन के बारे में तू ही सबसे अच्छा जाननेवाला है। मन को वश करने का तात्पर्य मन को बाँधने का नहीं है। मन को वश करने का तात्पर्य उसको कुचलना या नष्ट करना नहीं है। मन को वश करने का तात्पर्य है मन की बात को मन से मत मानो, यही मन का वशीकरण है। आप यूँ कह रहे हो कि मेरे से भूल हो गई। भूल नहीं हुई है, जान कर किया है। जब अशुभ भाव आ रहे थे, तब तुझे मालूम नहीं था क्या? जब अशुभ कर रहा था, तब तुझे मालूम नहीं था क्या? अशुभ का फल अशुभ ही होगा, यह तुझे मालूम नहीं

था क्या? प्रश्न किससे कर रहे हो? 'स्वामी! मेरे मन की व्यथा मैं किससे कहूँ?' बाहर के स्वामी तेरे मन की व्यथा को दूर नहीं कर पायेंगे। बाहर के स्वामी सुन तो पायेंगे, परन्तु ध्यान रखना, तेरे मन की व्यथा को दूर करनेवाला तेरा मन ही होगा। समझानेवाले कोटि-कोटि आते हैं, उनके समझाने से समझ में नहीं आती है। 'मुझे समझा दो।' क्या समझा दो? जब तू समझना चाहेगा तो जगत् की समझ तेरी समझ में प्रवेश कर सकती है। जब तू समझना ही नहीं चाहेगा, तो जगत् की समझ तेरा कुछ नहीं कर सकती।

मस्तिष्क को ठण्डा कीजिये, भावों को शीतल कीजिये। जब मस्तिष्क ठण्डा हो जायेगा, तो विश्वास रखना, जो गर्मी में तुमने कर लिया है, वह भी तुम्हें समझ में आयेगा कि हाय मैंने यह क्या किया? किसी वैद्य से मिल लेना। जब ग्रीष्मकाल की तपन में नाक फूटती है, नाक से रक्त बहने लगता है, उस समय माथे पर गीली पट्टी रखना पड़ती है, पानी डालना पड़ता है, मस्तक को ठण्डा करना पड़ता है। इस बात को छोटा बच्चा भी समझता है कि नाक फूटने पर मस्तक को ठण्डा करने के लिये पानी लगाना पड़ता है। ज्ञानी! जिसकी विवेक की नाक फूट चुकी हो, उसको जिनवाणी का पानी लगाना पड़ता है, तब कहीं मस्तिष्क ठण्डा हो पाता है। अतः जो भी निर्णय करो, पहले मस्तिष्क को ठण्डा करो। जो व्यक्ति अपने मस्तिष्क को ठण्डा किये बिना निर्णय कर लेता है, उस व्यक्ति को पश्चाताप के अलावा कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। मन की बात मन से ही पूछो। पर पुरुष से तुम पूछने जाओगे तो वह तुमको कितना समझा पायेगा? वह कितने क्षण तुम्हारे साथ रहेगा? परन्तु तुम्हारा मन तुम्हारे साथ अहर्निश (चौबीस घण्टे) होता है। मेरे मित्र! आज तक तुमने पर के मन को मित्र बनाया है, इसलिये तुम बिलख रहे हो। यदि शीतल चित्त से युक्त होकर अपने मन को मित्र बना लेता, तो विश्वास रखना, तेरा इतना सहयोग करता जितना जगत् में कोई करने वाला नहीं है।

आज अपने मन से कहना, हे मेरे मित्र! मैंने तेरी इच्छा की पूर्ति अनन्त बार की है और तेरी पूर्ति का फल यह मिला है कि अनन्त पर्याय धारण करनी पड़ी

हैं। मेरे मित्र! किसको मना रहे हो? मेरे मित्र! मन से कह देना कि हे मित्र! मैंने तेरी मित्रता करके तेरी इच्छा की पूर्ति अनन्त बार की है, लेकिन आज तू मेरी इच्छा की पूर्ति कर दे। मेरे भाव वीतराग धर्म का अवलम्बन लेने के हैं। मित्र! जब श्री जिनालय में प्रवेश करते हो, कम-से-कम तभी मन को मित्र बना लिया करो। उससे कहना, हे ज्ञानी! आज तक मैंने तेरी सभी इच्छाओं की पूर्ति की है, अब मैंने जिनालय में प्रवेश किया है, इसलिये जब तक मैं मन्दिर में रहूँ, तब तक तू मेरी मान ले। तन को लेकर आ ही गया, द्रव्य लेकर आया है, सो द्रव्य भी लगा है और घर का काम छोड़कर आया हूँ, सो कितना काम मेरा गया है। हे मेरे मन! तू तनक-सी मेरी मान ले, तू मेरा साथ दे दे। शान्त बैठ जाये तो मुझे भगवान् की भक्ति का पूरा-पूरा फल मिल जाये।

''मित्र तन लेकर आ गया और मन कहीं अन्यत्र जा रहा है, तो यूँ मान कर चलिये कि धर्म के स्थान पर मात्र मुर्दा है। देह का धर्म अनंत बार कर चुका है। आराधना की है, परन्तु आराध्य को खोकर की है। यदि अन्तरङ्ग का धर्म कर लेता, तो विश्वास रखना, पंचमकाल में नहीं आना पड़ता। ऐसा भी होता है कि पण्डित जी ने 'ऊँ ह्रीं' बोला, संगीतकार ने संगीत किया और तू नृत्य में लीन हो गया और ऐसा नृत्य में लीन हुआ कि मात्र नृत्य का ही आनन्द ले रहा था, सामने विराजे अरहन्त का कोई वेदन ही नहीं चल रहा था। आराध्य को छोड़कर आराधना चल रही थी।'' संगीत की ध्वनियों में लीन हो गया, गीत में लीन हो गया, जिस पर गीत चल रहे थे, उसको भूल ही गया। क्या किया? गीत में लीन हो गया, आराध्य-आराधक भाव पर लक्ष्य नहीं गया। यही कारण है कि अलक्ष्यभूत क्रिया करके लक्ष्यविहीन ही रहा और आराध्य-आराधक भाव से शून्य होकरके आराधना के फल को प्राप्त नहीं कर सका। वासना के काल में जब तुम माँ-पिता को भूल सकते हो, तो आराधना के काल में परिवार को क्यों नहीं भूलते हो? वासना के काल में यदि माँ दिखी, पिता दिखे, मित्र दिखा, तो वासना का आनन्द नहीं आता है। जब वासना के काल में तू पर से मुक्त हो जाता है, तो साधना के काल में पर से लिप्त होकर कैसे आनन्द ले पायेगा?

साधना के काल में सारे जगत् को भूलना पड़ेगा। साधना के काल में और-भी-कुछ दिखाई दे रहा है, तो साधना की अनुभूति गई। दोष दूसरे को दिये, यह पुरानी आदत है, परन्तु सत्यता यह है कि मन को ही मना लेता तो दूसरे को दोष क्यों देता? कर्मसिद्धान्त, वस्तु-स्वतन्त्रता इन दो पर प्रत्येक ज्ञानीजीव की दृष्टि होना चाहिये। मैं जगत् में सब प्राणियों के बीच में अवश्य हूँ, मैं सारे लोक के साथ अवश्य हूँ, परन्तु कोई मेरे साथ नहीं है, कोई मेरे में नहीं है। मैं उसके भीतर भी नहीं हूँ। ज्ञानियो! **''दो जीव एकसाथ एक थाली में बैठकर भोजन कर रहे हैं। ग्रास उठाने की शैली एक-सी है, मुख चलाने की शैली एक-सी है, परन्तु अनुभूति की शैली दोनों की भिन्न है। स्वाद लेने की अनुभूति भिन्न-भिन्न है। भोजन का स्वाद लेने के काल में एक का परिणमन विषरूप चल रहा है और दूसरे का परिणमन अमृतभूत चल रहा है। जो पुरुष स्वाद के काल में क्रोध से युक्त हो रहा है, उसके सारे भोजन के रस विषाक्त हो रहे हैं। जो पुरुष स्वाद लेने के काल में महामन्त्र का स्मरण कर रहा है, उसका भोजन अमृतभूत हो रहा है।''**

योगी का आहार, भोगी का भोजन, जबकि दोनों खाते दिखाई देते हैं। एक खाते-खाते कर्मनिर्जरा कर रहा है और दूसरा खाते-खाते कर्मबन्ध कर रहा है। एक इसलिये भोजन कर रहा है कि शरीर में ताकत आयेगी, रस बनेगा, वीर्य बढ़ेगा। रसना इद्रिय के विषयभोग के काल में दो भोग का बन्ध कर रहा है। रसना का भोग कर रहा है और स्पर्शन की तैयारी चल रही है। इसी समयकाल में अन्तिम श्वास निकल गई, तो तेरी गति क्या होगी? समझो, बहुत सरल विषय है। कैसे राम बने, कैसे महावीर बने, उस विद्या को सीखिये।

भोजन के काल में चिन्तन चल रहा है कि नहीं? मैं भोजन कर रहा हूँ, इससे सामर्थ्य बढ़ेगी, तेज बढ़ेगा, बलिष्ठ होऊँगा, लावण्य बढ़ेगा जगत् की नारियाँ मुझे देखकर आकर्षित होयेंगी। यह लक्ष्य कर रहा है। यानि भोजन करते-करते तू शिकार भी कर रहा है, पर के शीलहरण के लिये तू जाल फैला रहा है। दूसरा जीव भोजन कर रहा है और चिन्तन चल रहा है कि स्वस्थ शरीर होगा, तो मैं

दो घण्टे सामायिक करूँगा और इतने श्लोक याद करूँगा, इतने ग्रथों का स्मरण करूँगा, पंचपरमेष्ठी की आराधना करूँगा। मुख में आहार है, भावनाओं में चल रही है निर्बन्ध धारा। भोजन में बन्ध नहीं, भोजन में मोक्ष नहीं। भावों में बन्ध है, भावों में मोक्ष है। भोजन दोनों के लिये साधनभूत है। आप गाड़ी से जिनालय की ओर प्रवचन सुनने के लिये आ रहे थे तो गाड़ी का पेट्रोल नष्ट हो रहा था। जिनालय की अपेक्षा से कहीं तू भोजनालय की ओर जाता, तब भी पेट्रोल नष्ट होता। पेट्रोल तो तटस्थ था। तुम जिस ओर उपयोग करना चाहो, कर लो। मैं तो जितना हूँ, तेरे काम में आऊँगा। यही तेरे भोजन के साथ हो रहा है। जितना भोजन तूने पेट में रखा है, तू चाहे तो उसका उपयोग साधना में कर ले और तू चाहे तो उसका उपयोग विराधना में कर ले। भोजन को दोष मत देना। भोजन ने भाव खराब नहीं किये, तेरे भावों ने भोजन को खराब किया है। दिगम्बर जैन परम्परा में जब मुनिराज आहार को जाते हैं, तो हजारों की भीड़ आहार देखने पहुँचती है। किसी दर्शन में यह व्यवस्था नहीं है कि साधु भोजन करे और लोग देखने पहुँचें। यहाँ एक योगी आहार ले रहा है, आप देखने पहुँच रहे हो, श्रावक के अन्दर इतनी विशुद्धि बढ़ रही है।

'अरहन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ के दान के समय श्रावक की विशेष विशुद्धि बनती है। मुनिराज तपस्या कर रहे हों, वहाँ रत्नों की वर्षा नहीं होती। आप भक्ति करो, रत्नों की वर्षा नहीं होगी। लेकिन जिस समय मुनिराज श्रावक के घर आहार लेने जाते हैं, उस समय पंचाश्यर्च होते हैं। 'अहो दाता! अहो पात्र!' पुष्पवृष्टि हो रही है, रत्नों की वर्षा हो रही है, गंधोदक की वृष्टि होती हैं। दो विशुद्धियाँ स्पर्श करती हैं। योगी की विशुद्धि और दाता के देने के परिणामों की विशुद्धि। उन दो विशुद्धियों के माध्यम से घर का वातावरण बहुत आनन्दित होता है।'' उस क्षण की अनुभूति लो। यह द्रव्य विषयकषायों में नहीं जा रहा है। हे श्रावको! जब तुम योगी के हाथ में ग्रास रखो, उस समय यह कह कर मत रखना कि हे महाराज! आपका शरीर स्वस्थ हो। तो क्या सोचना? हे महाराज! यह मोक्षमार्ग का पाथेय है। जैसे गाड़ी में

पेट्रोल डल जाये तो सम्मेदशिखर की वन्दना हो जाये, ऐसे ही तुम्हारे उदर में हमारे घर का द्रव्य चला जाये, तो हे स्वामी! आपकी सिद्धालय की यात्रा पवित्र हो। इन भावों से जब वह दाता दान दे रहा है, उस दान के प्रभाव से दाता को तो पुण्य मिलता ही है, तुम्हारे उस द्रव्य से एक योगी भगवत्ता को प्राप्त करता है। इससे बड़ा श्रावक का कोई पुण्य नहीं है।

भैया! किसी के पुण्य को मत छीनना। अपने-अपने भाग्य को निहारो। देखने वाला क्या देखेगा? भोजन चल रहा है। लेकिन भीतर भक्ति के प्रभाव से श्रावक सम्यग्दृष्टि है तो दाता नियम से निर्वाण को प्राप्त करता है और यदि मिथ्यादृष्टि भी है, तो दान देकर भोगभूमि को प्राप्त होता है और यदि पात्र मोक्षमार्गी भाव-लिङ्गी है, तो नियम से निर्वाण को प्राप्त करता ही है। झाँककर देखो। हम चाहें तो अपने भावों से, अपनी भाषा से स्व एवं पर के भावों को उत्कर्ष बना दें। हम चाहें तो अपने भाषा और भावों से स्व-पर के भावों को नीचे गिरा दें। भाषा में श्रद्धा को भी जन्म दिया जाता है और भाषा में ही अश्रद्धा को भी जन्म दिया जाता है। इन श्रोताओं के चेहरों को देखो, भाव को देखो, आँखें नम हो रही हैं, क्यों? पंचमकाल में आस्था काँच के ग्लास से भी कमजोर है। काँच के ग्लास को कितना सम्भलकर रखते हो। दस रुपये के ग्लास को आप स्टेण्ड में सम्भाल कर रखते हो कि कहीं टूट न जाये।

हे मुमुक्षु! क्या उस काँच के टुकड़े से भी हीन हमारी पंचपरमेष्ठी की आस्था है, कि तुम कुछ भी बोल डालो, कुछ भी कह डालो और अनन्त लोगों की श्रद्धाओं को तोड़ डालो? इससे बड़ा कोई पाप नहीं होता है। इसलिये जीवन में ध्यान रखना, उस भाषा का प्रयोग मत करना जिस भाषा से इन भक्तों की आस्थायें भगवान् से दूर हो जायें, आपकी श्रद्धा, आपका विश्वास अपने पास रखिये। कोई जीव पंचपरमेष्ठी से दूर करने की बात कहे तो कह देना 'ॐ शान्ति।' पंचमकाल में मैं आ चुका हूँ, अब मैं छठवें काल मे जाना नहीं चाहता हूँ और भूत, भविष्य की बात बाद में करना, आप वर्तमान की बात करो। कोई अशुभ भाषण करे, तो तत्क्षण क्षेत्र का वातावरण दूषित होता है अपने मस्तिष्क दूषित होते हैं,

वहीं लगने लगता है कि कहाँ से कहाँ फँस गया। जो क्षण वर्तमान में ही कष्टप्रद हो रहा है, उसका भविष्य निर्मल कैसे हो सकता है? अपने भीतर के और अपने घर के दोनों के वातावरण को पवित्र रखना है तो भाषा पर नियन्त्रण कीजिये। जगत् में आप प्रीति को उत्पन्न करना चाहते हो तो भाषा पर नियन्त्रण कीजिये। एक बाँसुरी भी लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। वाणी हमारी वीणा बने, वाणी हमारी बाण न बने। घर में लिखकर टाँग देना। वीणा को हर कोई सुनना पसन्द करता है, बाण से हर कोई दूर रहता है। कुछ लोगों की भाषा बाण से भी खोटी होती है जिससे हृदय क्षार-क्षार हो जाता है। कोई तुमसे अशुभ भाषा कह भी जाये, तब भी तुम उस पर आक्रोश मत उत्पन्न करना, तब भी यूँ ही कहना कि इस बेचारे का दोष नहीं है, इसके कर्म का उदय ही ऐसा है कि इसके मुख से अशुभ भाषा निकलती है। जिसका तीव्र पाप का उदय होगा, उसके मुख से कर्कश शब्द ही निकलेगा।

वाणी का माधुर्य आपके पुण्य का प्रतीक है। प्रक्षीण पुण्य नष्ट हो रहा है तो वाणी का माधुर्य नष्ट होना प्रारम्भ हो जायेगा। मृत्यु के पहले गले में घर-घराहट आने लगती है। डाक्टर/वैद्य से पूछ लेना, आयुर्वेदशास्त्र में लिखा हुआ है कि जब मृत्यु का काल नजदीक होता है, तो व्यक्ति की आँखों से पानी झरने लगता है, आवाज लड़खड़ाने लगती है। जैसे-जैसे मृत्यु का काल नजदीक आता है, वृद्धावस्था घेर लेती है, वाणी में घरघराहट पैदा होने लगती है। इस विषय को यहाँ ही नहीं, घर में प्रयोग करना और मन को मित्र बनाकर करना। जिस रूप में तुम जीते थे, तत्त्व-उपदेश को सुनते-सुनते जीवन की शैली बदलनी चाहिये, चिन्तन की शैली बदलनी चाहिये, भावनाओं की शैली बदलनी चाहिये। भगवान् बन कर नहीं आते, भावनाओं से भगवान् बनते हैं। यह जैनदर्शन है, ये एक भगवान् को नहीं मानता। प्रत्येक आत्मा में भगवत्-शक्ति है। जो अपनी भावनाओं को अशुभ बचा लेता है और शुभ में लगा लेता है और फिर शुभ से बचा कर शुद्ध में रख देता है, वही भगवान् बन जाता है। क्या करोगे? आज से जैसे काँटों से बचते हो, जैसे अजगर से बचते हो, जैसे सिंह/श्याल/व्याघ्र से बचते हो, वैसे

ही अपने भावों की अशुभ परिणति से बचिये। माँ! यदि सिंह ने झपट्टा मार दिया, पंजा मार दिया, तो वर्तमान मात्र की पर्याय नष्ट होगी। लेकिन कहीं अशुभ भावों ने पंजा मार दिया, तो तेरे भव-भव नष्ट हो जायेंगे। क्या तू किसी का कुछ बिगाड़ सकता है? परन्तु बिगड़ेगा तब, जब उसका अशुभ कर्म होगा। हे अशुभ सोचने वाले! तेरा बिगाड़ नियम से होगा। रावण राम का क्या कर पाया? हे लंकेश! स्वर्ण की लंकापुरी को ही नाश कर पाया, अपने पुण्य को ही क्षीण कर पाया, प्रबल पुण्यात्मा राम-लक्ष्मण (बलभद्र-नारायण) का कुछ भी नहीं कर पाया।

जो मैं कह रहा हूँ, उस पर विश्वास है क्या? यदि विश्वास है, तो ध्यान दो, सारे जगत् से हाथ दूर कर लेना, लेकिन भाग्य और भगवान् को कभी मत छोड़ना। सारा लोक नहीं, तुझे दो पर विश्वास हो। स्वयं पर और स्वयंभू पर। भाग्य पर और भगवान् पर। इन दो का विश्वास ही तुझे तार देगा। कोई नहीं होता किसी का। जितने आगे-पीछे घूम रहे हैं, कुछ नहीं हैं। राष्ट्रीय मिठाई रसवंती है, जलेबी है, परन्तु विश्वास रखना, जलेबियाँ मीठी तभी तक रहती हैं, जब तक उसमें रस भरा है। जलेबी का रस निकल जाये तो चीटियाँ भी नहीं आती। चीटियाँ भी वहीं लगती हैं जहाँ रस होता है। तेरे साथ जो बड़े-बड़े चीटा-चीटियाँ लगे हुये हैं, जब तक पुण्य का रस है, तब तक दुनियाँ तेरे साथ है। पुण्य का रस निकल गया, तो सब तुझे छोड़कर भाग जायेंगे। इस बात को आज से ही संजोकर रखना है। मत सोचना कि लोग मुझे देख रहे हैं। कोई किसी को नहीं देखता। पुण्य का रस भरा है, तब तक चीटियाँ हैं।

'हरे वृक्ष पर तोता बैठा, करता मौज भारी। सूख गया तरुवर, उड़ गया तोता, छिन में प्रीति बिसारी।' क्षणमात्र में प्रेम छोड़ देता है। सूखे वृक्ष पर तोता भी नहीं बैठता। जिसमें फल लगे हैं, तोते भी वहीं बैठते हैं। ज्ञानियो! तोतों को मत बुलाओ, फल लगाओ। फल लगेंगे तो तोते स्वयमेव चले आयेंगे। इसलिये जगत् में किसी को मत बुलाओ, अपना पुण्य बढ़ाओ। जब पुण्य प्रबल होगा, तो सारा जगत् तेरे साथ होगा।

जो दु:खी हों, आज से अपना दु:ख समाप्त कर देना। जो सुखी हों, वे फूलना बन्द कर देना। जो दु:खी हों, वे दु:ख भूल जावें। दु:ख से दु:ख नहीं मिला है। तुमने अशुभ किये थे, उसका फल है। जो तुम फूल रहे हो, फूलने से नहीं फूले हो। तुमने पुण्य किया था, सो तुम्हें फूलने को मिल रहा है। यहाँ से जाकर सीधे भोजन मत किया करो। जो सुनकर जाते हो, उसे पचाया करो। घर-घर का वातावरण परिवर्तित होना चाहिये। बड़े उपदेश सुने और जिससे तुम्हारा विसंवाद हुआ है उससे जाकर क्षमा नहीं माँग पाये, तो तुम्हारा थोथापन है। माँ! पाँच वर्ष पहले भी किसी से तू-तू मैं-मैं हुई हो, तो हे माँ! चाहे बहू ही क्यों न हो, बेटा ही क्यों न हो, उसके पैर छू लेना। पिताओ! तुम बेटा के पैर छू लेना। 'महाराज! क्या उल्टी बातें बता रहे हो?' नहीं, मैं सीधी बात बता रहा हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि सम्बन्ध की अपेक्षा से बेटा 'बेटा' है, पिता 'पिता' है, बहू 'बहू' है, सासू 'सासू' है, लेकिन जीवद्रव्य की अपेक्षा से निहारिये। कहीं कषाय बाँध कर चला गया, कहीं भगवान् बन गया, दोनों बातें ध्यान रखो। भगवान् बन गया तो नमोऽस्तु करोगे कि नहीं? कषाय बाँध कर चला गया तो बोलोगे कि नहीं? इसलिये ज्ञानियो! आज ही जाकरके क्षमा माँग लेना। क्षमा माँग लेना कितना कठिन है। यदि यह कह दें कि आप उपवास कर लेना, तो करने को तैयार हैं, लेकिन क्षमा नहीं माँग सकता हूँ। महाराज! क्या मैं छोटा हूँ?

हाँ, तुम छोटे ही तो हो, क्योंकि कषाय भड़क रही है। जो महापुरुष होते हैं, वे भद्र-परिणामी होते हैं। ज्ञानी! पानी-जैसे बनो। कितना ही गहरा पानी होगा, उस पानी में कोई गिर जाये तो पानी कभी स्वीकार नहीं करता। पहले उछालकर ऊपर कर देता है। वह विषय अलग है कि उसकी मृत्यु हो जाये।

सरोवर के बगल में तो कचड़ा मिल जायेगा, लेकिन मध्य में कोई कचड़ा नहीं। साफ स्वच्छ पानी मिलेगा। पानी कचड़े को नहीं स्वीकारता, ऐसे-ही जगत् के कितने कचड़े हों, उनको पानी-जैसे तुम उछाल देना। किसी के विभाव भाव को अपनी आत्मा में रखने का विचार मत करना। जो समय स्व-समय के लिये मिला है, स्व-चिन्तन के लिये मिला है, उस समय को तुम पर-चिन्तन में क्यों नष्ट कर रहे हो?

आपको रोड़ पर चलते-चलते कीचड़ में पड़े एक-सौ सोने के सिक्के मिल गये, तो क्या करोगे? धीरे-से उठाकर जेब में रख लोगे। कीचड़ से जेब खराब नहीं हो जायेगी? धो लोगे। रखा है जेब में और मुस्कुराहट चेहरे पर आ रही है। जब कीचड़मिश्रित सोने के सिक्कों को देखकर, जेब में रखने पर, मुस्कराहट चेहरे पर झलक सकती है तो, ज्ञानियो! उन योगियों से कहो कि हे मुमुक्षु! तुम्हारे पास तो रत्नत्रय के रत्न रखे हुये हैं। जब कीचड़ से मिश्रित सिक्के को देख करके एक युवा मुस्कुरा सकता है, तो तुमको तो कितनी मुस्कुराहट आनी चाहिये कि मेरे पास तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के रत्न रखे हुये हैं। साधु लोग क्यों मुस्कुराते हैं? क्यों गद्गद् भाव होता है? जब गड़े धन को देखकर धनपति लोगों के चेहरे पर चमक होती है, तो जिनके भीतर ही भरे हों, उनके चेहरे पर चमक न आये, तो वे महाराज कैसे? ये अन्दर की समझ है, अन्दर का विषय है। ज्ञानी! तत्त्वज्ञान, तत्त्वदृष्टि, तत्त्वनिर्णय के होने पर भी चेहरे पर चमक न आये, तो तत्त्वनिर्णय कैसा?

जब समयसार तुमको समझने में कठिन होता है, तो जो समयसार में जीते हैं, उनका आनन्द कैसा होगा? उनका कितना कठिन मार्ग होगा? एक क्षण को कुन्दकुन्द का मस्तिष्क बना कर चिन्तन करो कि हे स्वामी! तुम्हारी प्रज्ञा कितनी पवित्र होगी कि आप चिन्तन भी कर रहे थे और समयसारभूत जीवन भी जी रहे थे। जब तत्त्व को सुनने में इतना आनन्द आता है कि पूरी सभा शान्त हो जाती है, तो तत्त्व का जीवन जीने में कितना आनन्द होता होगा? तू मुनि बन कर तो देख। एक दिन के लिये बन जाओ, लेकिन ध्यान रखना, बन गये सो बन गये। फिर मुड़कर नहीं देखना पड़ता। मैं भी सोच रहा हूँ, हे चन्द्रप्रभ भगवान्! मेरी भावी पर्याय वह हो, जो तुम्हारी है। तुम भी सोचो, हे प्रभु! मेरी भावी पर्याय वह हो, जो तुम्हारी है। और-कुछ नहीं सोचना। किसान को देखो, कितना ज्ञानी होता है? क्या ये किसान से गये-बीते अज्ञानी हैं? किसान बीज हाथ में लिये होता है, लेकिन बीज को नहीं देखता, उसकी भावी पर्याय फसल को देखता है। ऐसे ही हे मुमुक्षु! जब भी तुम भगवान् के चरणों में आना, महाराज के पास

जाना, जिनवाणी के पास जाना तो जिनवाणी को मत देखना, भगवान् को मत देखना, अपनी भविष्य की भावी भगवान्-आत्मा को देखना।

हे प्रभु! मेरी भावी पर्याय कैसी हो? परन्तु तेरी भावी पर्याय पवित्र तब होगी, जब इन्द्रियों के जगत् से अपने को दूर कर लेगा। जब तक मन और इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, तब तक भावी पर्याय अशुभ दिख रही है। जो भगवान् की भक्ति में लवलीन है, उसकी भावी पर्याय मैं बताये देता हूँ। वह स्वर्ग और सिद्धत्व की ओर जायेगा और जो मन्दिर में आकर मायाचारी कर रहा है, उसकी भावी पर्याय देख लो, मन्दिर में चूहा बनकर घूमेगा। चूहा मन्दिर के चावल खाता है। एक ज्ञानी कहता है कि क्या भाग्यवान है चूहा, भगवान् के चरणों के चावल खा रहा है। अरे! तुझे मालूम होना चाहिये कि कितना अभागा है। जिसने मन्दिर के द्रव्य को कोषाध्यक्ष बनकर खाया था, सो उसी आदत में चूहा बनकर खाने आया है। कोषाध्यक्ष से तात्पर्य जो मन्दिर का निर्माल्य खाते हैं उनकी बात कर रहा हूँ। **''मित्र! मन्दिर में साँप निकल आया तो आप तुरन्त चमत्कार दिखा देते हो कि देव आ गये, धरणेन्द्र आ गये। काहे के धरणेन्द्र? जो मन्दिर के खजाने को मायाचारी से लूट-लूट कर रखा था, उसी के राग में चाबी नहीं दे रहा था और बीच में मर गया, सो नाग बन कर बैठा गया और तू कह रहा है कि देव आ गया है। ये व्यर्थ के चमत्कारों में मत जाना। पंचमकाल में ढोंग के चमत्कार बहुत हो रहे हैं। बहुत बड़े-बड़े चमत्कार हो रहे हैं सम्प्रति में। मौसम बारिस का है दीवाल पर पन्नी लगा दो तो उसमें भी पानी आ जायेगा। जब ठण्ड का मौसम होता है, उस समय जब कोहरा छा जाता है, बाहर शीतलता, रिमझिम मावठा होता है, तो उस समय कमरों में दीवालें पसीजना प्रारम्भ हो जाती हैं, तो लोग कहने लग गये कि चमत्कार हो गया। थोड़ा विवेक लगाओ। एक बार एक स्थान पर मैं सामायिक करने बैठा। सर्दियों में मधुमक्खियाँ स्थानान्तरण करती हैं। वे मधुमक्खियाँ निकल रही थी। उन्होंने बीट किया, चारों तरफ पीला-पीला बीट बिखर गया। मैं स्वयं कह रहा भैया! यह चमत्कार नहीं है, मधुमक्खियों की बीट है। नहीं-नहीं,**

महाराज ने सामायिक की है, सो चन्दन की वर्षा हुई है।'' केशर बरसी, केशर। अरे ज्ञानी! विवेक से सोचो। केशर नहीं बरस रही है, सुगन्ध तो आ ही नहीं रही है। धिक्कार हो तुझे, नाक में लगा रहे हो। यह पंचमकाल के चमत्कार चल रहे हैं। पंचमकाल में एक बहुत बड़ा चमत्कार है-

काले कलौ चले चित्ते, देहेचान्नादि कीटके।
एतच्चित्रै यदद्यापि जिनरूप धरा नराः॥ 339 यशस्तिलकचम्पू॥

इस कलिकाल में चित्त चलायमान है और देह अन्न का कीड़ा है। ऐसे खोटे काल में भी अरहन्त की मुद्रा को धारण करने वाले नर दिखाई दे रहे हैं, यही पंचमकाल का चमत्कार है।

वस्तुस्वरूप समझो। आचार्य महाराज कह रहे हैं कि माया का धर्म मायारूप ही फलित होगा। यदि माया अविद्या से बचना चाहते हो, तो माया के धर्म से दूर हो जाओ। इन्द्रियों के सुख की प्राप्ति के लिये जीव क्या-क्या नहीं करता। जबकि इन्द्रिय-सुख तो दुःखों का पण्डित है। अज्ञानी सोचता है कि मैं सुखी हो रहा हूँ, लेकिन वह तो दुःखों का पण्डित है।

हे आत्महितैषियो! यदि आपका लक्ष्य आत्महित का है, तो जो निरन्तर इन्द्रिय-विषयों में प्रवृत्ति चल रही है, उनको रोकना ही होगा। देखो, कोई तुम्हें समझाने नहीं आयेगा और पर की समझ से तुम समझ भी नहीं पाओगे। अपने आपको थोड़ा-सा समय देना प्रारम्भ कर दो। यदि आप सबके अन्दर थोड़ी भी दया/करुणा है, तो मेरी बात मान लो, आप सब श्रावक हो, ग्रहस्थ हो, तुमने जीवनभर का समय दूसरे को दे दिया, क्या दो-पाँच मिनिट अपने को नहीं दे सकते हो? पाँच मिनिट अपने को दे देना और पूछना कि जो तुम करने जा रहे हो, वह करणीय है कि अकरणीय है? स्वयं उत्तर आ जायेगा। ग्राह्य है कि अग्राह्य है? हेय है कि उपादेय है? विश्वास रखना, स्वयं के द्वारा उत्तर आयेगा। जब भी मन उत्तर देता है, प्रथम क्षण में सत्य ही उत्तर देता है। बताइये, प्रथम अवस्था में, पाप करने के पहले, क्या तेरे परिणामों ने सीधा बोल दिया कि कर लो? कोई भी

अशुभ करता है, स्वयं का मन एक बार जरूर बोलता है कि नहीं, भाई! अच्छी बात नहीं है। हे ज्ञानी! तू सच्चे मन की बात को स्वीकारता नहीं है। कम-से-कम अपने रोने को ही निहार ले। ज्ञानियो! आचार्य महाराज ने कितने सुंदर शब्दों का प्रयोग किया। अपनी ज्ञान-भावना की शक्ति से जो निज में रत होता है, आत्महित में रत रहता है, ऐसा जीव अपनी आत्मभावना से ही अपनी इन्द्रियों को विषयकषायों से रोक लेता है। आप मुनिराज या आर्यिका नहीं बन सकते, तो कोई विकल्प नहीं,इतना तो कर सकते हो कि आज के दिन अमुक वस्तु का सेवन नहीं करूँगा? ज्यादा नहीं, तो एक मिनिट के लिये कर दो, एक सेकेन्ड के लिये कर दो। हाँ, सही कह रहा हूँ। आपको मालूम होना चाहिये कि एक-एक दुर्गुण से तू महान् दुर्गुणी बन जाता है। एक मिनिट का भी तुमने त्याग किया, तो संस्कार पड़ेगे कि नहीं? पड़ेगे। कदाचित् तुमने कोई व्रत ले लिया और तुम्हारा व्रत टूट गया, आज के लोगों की धारणा क्या बन गई कि भ्रष्ट हो गया, अब तो कुछ नहीं करने का। व्रत किसने लिया? आपने। टूटा किससे? आपसे। जिसने व्रत नहीं लिया, क्या वह व्रत का पालन कर रहा था? वह अव्रत में ही लीन था। परन्तु जिसने व्रत ले लिया, उसका व्रत उससे टूट गया, विश्वास रखना, उसके अन्दर पश्चात्ताप होगा कि मैंने व्रत लिया था, टूट गया। कभी-न-कभी नियोग बनेगा, वह पुनः धारण करेगा और गुरुचरणों में प्रायश्चित लेगा। वह प्रायश्चित तप है। जिसका व्रत टूट गया, उसको तो पश्चाताप होगा। **''जिसने व्रत लिया ही नहीं है, असंयम का सेवन कर रहा है, उसके अन्दर तो पश्चात्ताप भी नहीं होगा। व्रत लेकरके तोड़ना नहीं। टूट जाये, तो प्रायश्चित्त ले लेना। लेकिन असंयम का जीवन नहीं जीना।''** एक सेकेण्ड को भी तुमसे नियम पल सके तो उतने समय के लिये ले लेना। आज के विषय का चिन्तन करना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"आत्महित में रत कौन होते हैं"

इन्द्रियाणि प्रवृत्तानि, विषयेषु निरन्तरम्।
सज्ज्ञान भावना शक्त्या, वारयन्ति हिते रताः॥ 81॥

अन्वयार्थ—**इन्द्रियाणि** = ये इन्द्रियाँ, **विषयेषु** = अपने-अपने विषयों में, **निरन्तरम्** = निरन्तर, **प्रवृत्तानि** = प्रवृत्ति किया करती हैं। जो इनको, **सज्ज्ञान भावना शक्त्या** = सम्यग्ज्ञान की भावना के बल से, **वारयन्ति** = रोकते हैं वे, **हिते** = आत्महित में, **रताः** = रत हो जाते हैं।

भावार्थ—जो अपने-अपने विषयों में निरन्तर प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियों को सम्यग्ज्ञान-भावना की शक्ति से रोकते हैं, वे ही आत्महित में रत होते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

श्रमणपरम्परा में महान्-महान् आचार्य हुये हैं, जिन्होंने जिनेन्द्रवाणी को आज तक सुरक्षित रखा। शासन की रक्षा का आलम्बन साहित्य है। साहित्य और पुरातत्व ये दोनों ऐसी विधा हैं जिनसे जिनशासन की रक्षा सम्भव है। कुन्दकुन्द जैसे महान् श्रमण, समन्तभद्र जैसे महान् योगी हुए हैं। आज हम तो बने-बनाये मार्ग पर चल रहे हैं। उन आचार्यभगवन्तों को निहारो जिन्होंने कितना श्रम किया है। अकलंक जैसे महायोगी से मिलो, जिन्होंने अपने भाई को खो करके जिनशासन की रक्षा की है। उन आचार्यों की वाणी को यदि हम स्वाध्याय का विषय नहीं बना पा रहे हैं, तो यूँ समझना चाहिये कि हमारे जीवन की यह एक बहुत बड़ी कृतघ्नता है। आचार्यों ने कितने उपकार किये हैं। साहित्य की रक्षा साहित्य के प्रकाशन से नहीं है, बल्कि स्वाध्याय से है। आचार्य कुलभद्र स्वामी कुन्दकुन्द जैसे योगियों की उस परम वीतरागमय वाणी को संग्रहीत करके इस 'सारसमुच्चय' ग्रन्थ में लिख रहे हैं।

अहो! हमने यही चिन्तन किया कि जीवन का उत्थान कैसे हो? उत्थान की भाषा तो जीवंत रही, परन्तु उत्थान का भाव पतित हो गया। हर व्यक्ति के अन्दर भाव है कि मेरा उत्थान कैसे हो? उत्थान भाषा में रहा, लेकिन भाव पतित हो गया। मोक्षमार्ग भाषा के उत्थान का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग

पर्याय के उत्थान का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग तो परिणति के उत्थान का मार्ग है। जिसकी परिणति उत्थित हुई, उसकी गति भी उत्थित होगी। जिसकी परिणति पतित है, उसकी गति भी पतित है।'' शरीर से मोक्ष मिलता है, कि परिणामों से मोक्ष मिलता है? शरीर सहकारी अवश्य है, साधक अवश्य है, लेकिन साधकतम तो परिणाम है। काँच के थर्मामीटर में कोई नम्बर ऊपर-नीचे नहीं होता है। काँच तो जैसा है, वैसा ही है। ऊपर-नीचे होने वाला पारा है। यह देह द्रव्य है। चाहे श्रावक हो, चाहे मुनिराज हो, शरीर की साधना थर्मामीटर के काँच के समान है और संज्ञा दी जा रही है, एक दो तीन चार से चौदहवें तक ये नम्बर हैं। गुणस्थान तो मोह और योग की दशा है। परिणाम ही गिरते हैं, परिणाम ही चढ़ते हैं। काँच न चढ़ता है, न उतरता है। मोक्षमार्ग काँच का मार्ग नहीं है, वह भावों का मार्ग है। पारे से पारा नहीं चढ़ता, काँच से पारा नहीं चढ़ता, नम्बर से देखा जा रहा है। काँच में चढ़ते दिख रहा है, लेकिन चढ़ा कौन रहा है? तापमान चढ़ाता है। ऐसे-ही परिणामों का तापमान पवित्र है तो गुणस्थान ऊपर जा रहा है और परिणाम का तापमान गिर गया तो गुणस्थान नीचे जा रहा है। सारे निमित्त खड़े रह जायेंगे, सारे निमित्त तटस्थ हो जायेंगे। निमित्त तभी निमित्तभूत है, जब तुम्हारा उपादान प्रबल है। निमित्त तो अनन्त बार मिले हैं, तूने क्या किया? निमित्तों ने क्या किया? क्या तुम तीर्थंकर महावीर के सामने नहीं थे? भैया! अपन तीर्थंकर महावीर स्वामी के सामने भी थे, परन्तु क्या करें? हे वर्द्धमान! गौतम स्वामी के लिये आप निमित्त बन गये, परन्तु मेरा उपादान सशक्त नहीं था, इसलिये मेरे लिये निमित्त नहीं बन सके। कोटि-कोटि जीव निर्वाण को प्राप्त हो गये, लेकिन उनके सामने आप भी थे। **''ग्यारह अङ्ग का ज्ञान भी मोक्ष में कारण नहीं बन पा रहा है। मात्र अष्ट प्रवचन मातृका (पाँच समिति और तीन गुप्ति) का ज्ञान मोक्ष का कारण बन जाता है, यदि भवितव्यता है, सम्यक्त्व है तो और मिथ्यात्व की सत्ता में, अभव्यता की सत्ता में ग्यारह अङ्ग का ज्ञान भी कोई कार्यकारी सिद्ध नहीं होता।''**

ज्ञानियो! जिन इन्द्रियविषयों की लिप्सा में आ करके, जिस मोह से आच्छादित होकरके हम ध्रुवधाम आत्मा की सत्ता को भूल चुके हैं, उस पर लक्ष्य ले जाओ। स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य-अस्तित्व पर दृष्टिपात करो। यदि इन पर दृष्टि नहीं जा रही है, तो जैन श्रावक तो दूर है, जैन मुनिराज भी क्यों न बन जायें, सम्यग्दर्शन बहुत दूर है। महाराज! देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करता हूँ। हाँ, कर सकते हो। भगवान् अरहन्त की पूजा और द्रव्यसंयम अनेकान्तिक दोष से युक्त है, ऐसा क्यों है? इसमें अनेकान्तिक दोष जा रहा है। **''देव-शास्त्र गुरु की पूजन और जिनलिङ्ग का धारण सम्यग्दृष्टि भी करता है और मिथ्यादृष्टि भी करता है। भव्य भी कर सकता है और अभव्य भी कर सकता है। द्रव्य पूजन, द्रव्य आराधना तो अभव्य भी कर सकता है।''** देवों में सर्वाधिक संख्या ज्योतिषी देवों की है, परन्तु ऐसा कोई देव नहीं होता है जिनके भवनों (विमानों) में अरहन्तदेव की प्रतिमा न हो। अरहन्तदेव की आराधना प्रत्येक देव करता है, परन्तु वहाँ दृष्टि क्या है?

सम्यग्दृष्टि जिनदेव को जिनदेव मानकर पूजता है। मिथ्यादृष्टि जिनदेव को कुलदेव मान कर पूजता है। मेरे कुल-परम्परा में आराधना होती रही है, इसलिये मैं पूज रहा हूँ। क्रिया हो रही है, दृष्टि भिन्न है। जिनदेव को भी कुलदेव मान कर पूज रहा हूँ। अभव्य जीव भी अरहन्त देव की आराधना कर लेता है। अभव्य में भी उसका नाम है, यह अनेकान्तिक दोष है। सम्यग्दृष्टि भी पूजा करता है, मिथ्यादृष्टि भी पूजा करता है। सम्यग्दृष्टि की आराधना लक्ष्यभूत है, मिथ्यादृष्टि की आराधना अलक्ष्यभूत है। इसलिये द्रव्य-आराधना मोक्षमार्ग में सम्यग्दृष्टि की तो साधनभूत है, लेकिन मिथ्यादृष्टि के लिये मात्र पुण्यबन्ध का कारण है। वह पुण्यबन्ध का फल भोग करके संसार में ही रुलने वाला है। इसलिये पहले आराधना के साथ-साथ, साधना के साथ-साथ अपने लक्ष्य को परखना चाहिये, पकड़ना चाहिये। हमारा तात्पर्य है कि पहले हमें सम्यक्त्व की खोज करना चाहिये कि मेरे अन्दर सम्यक्त्व प्रकट हो रहा है या नहीं? मेरी श्रद्धा समीचीन है या नहीं? यदि आस्था समीचीन नहीं है, परिणामों में विशुद्धि नहीं है, तो विश्वास रखना, ग्रैवेयक तक की यात्रा करने के बाद भी संसार ही है।

स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य अस्तिस्व की बात क्यों कर रहे हैं? बालको! भगवान् के दर्शन करना मत छोड़ देना, पूजन करना छोड़ मत देना, लेकिन इतना ध्यान रखना, जो दर्शन-पूजन भगवान् की करते थे, भगवान् के लिये करते थे, उसको परिवर्तित कर देना। पूजन तो भगवान् की करना, परन्तु भगवान् के लिये नहीं करना, कर्मक्षय के लिये करना, अपने भावों की विशुद्धि के लिये करना। भगवान् की पूजन तो करना, लेकिन मेरे इष्ट कार्य की सिद्धि हो जाये, मैं परीक्षा में पास हो जाऊँ, पैसा मिल जाये, धन मिल जाये, इत्यादि लक्ष्य को लेकर मत करना। दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं। इतना लक्ष्य रखना।

भैया! जगत् में एक व्यक्ति कहता है-मैं अपने धर्म का प्रचार कर रहा हूँ और जो मेरे धर्म को नहीं स्वीकारेगा तो उसका घात कर दूँगा। प्रचार को नहीं स्वीकारेगा तो घात करना मेरा धर्म है। प्रश्न करो-यदि घात का भाव आ रहा है तो, धर्म कौन-सा है? जब तुम्हारी अहिंसा ही पलायन कर चुकी है, तो तुम कौन-सा धर्म का पालन करना चाहते हो? परिणामों की विशुद्धि, भावों की विशुद्धि के लिये उपदेश सुनने आये हो और यदि उपदेशसभा में ही परिणाम बिगड़ने लग जायें और उपदेशक की भाषा बिगड़ने लग जाये, तो सत्य बताओ, ये प्रवचन हुये कि पर-वचन हुये? स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य-अस्तित्व की व्याख्या का उद्देश्य समझो। ज्ञानियो! सम्हलकर सुनना। ये आगम के शब्द हैं। पूरे द्वादशाङ्ग का सार और विस्तार स्वरूप-अस्तित्व और सादृश्य अस्तित्व मात्र इन दो के अन्दर है। जगत् में ऐसा कौन-सा जीव है जिसमें ज्ञान न हो, जिसमें दर्शन न हो? जगत् में ऐसा कोई जीव नहीं है जिसमें ज्ञान-दर्शन न हो। जब शुद्ध द्रव्यार्थिक नय की व्याख्या करोगे, तो सद्द्रव्यत्व की दृष्टि से न चेतन का भेद है, न अचेतन का भेद है। शुद्ध संग्रह नय कहेगा-सम्पूर्ण विश्व का द्रव्य एक है, सद्भूत है। मैं सद्भूत हूँ, आप सद्भूत हो, पुद्गल सद्भूत है, धर्मद्रव्य सद्भूत है, कालद्रव्य सद्भूत है। जितने द्रव्य हैं, सब सद्भूत हैं। सत्ता की दृष्टि से सभी द्रव्य के द्रव्यत्व-स्वभाव एक हैं। चेतन, अचेतन का विभाग कर दोगे,

तो जीवद्रव्य चेतनभूत है, शेष द्रव्य अचेतनभूत हैं। उन चेतन द्रव्यों में आप जीवद्रव्य हो कि नहीं? जीव हैं। आपके सम्बन्धी जीव हैं, आपके शत्रु जीव हैं। पहले जीव ने जन्म लिया, कि शत्रु ने जन्म लिया? जन्म तो जीव ने लिया था, फिर शत्रु का जन्म कब हुआ? कोई शत्रु ने जन्म नहीं लिया, जन्म तो जीव का हुआ है। आपने अपनी इच्छाओं को इतना बढ़ा लिया, यदि सामने वाला आपकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है तो तुम उसको शत्रु मान लेते हो। जबकि न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। तेरी आकांक्षा तेरी शत्रु है, तेरी निश्कांक्षा तेरी मित्र है। कोई किसी का शत्रु नहीं। राम रावण के शत्रु थे क्या? लोक की आँख कहेगी कि राम रावण के शत्रु थे, लेकिन परमार्थ दृष्टि कहेगी, हे लंकेश! तुम्हारी सीता की आकांक्षा ही तुम्हारी शत्रु थी।

यदि आपके घर में आपका अपमान होता है, तो विश्वास रखना, तुम्हारा कोई अपमान नहीं करता, आप अपनी इच्छा से ज्यादा सम्मान की आकांक्षा रख लेते हो तो उसी दिन आपका अपमान हो जाता है। स्वयं की योग्यता निहारना चाहिये। जो पुरुष अपने पुण्य की योग्यता को नहीं समझता, जो पुरुष अपने ज्ञान की योग्यता को नहीं समझता, उससे अधिक विचार लेता है, उसी का अपमान होता है। **''दुःखी होने का और-कोई दूसरा कारण नहीं है। जो निज की क्षमताओं को न समझकर आगे का विचार कर लेता है तो उसकी समता समाप्त हो जाती है। निज की क्षमता को विचार किये बिना अधिक कार्य करने का भाव कर लेता है तो उसकी समता समाप्त हो जाती है। क्षमता को देखकर कार्य करेगा तो उसकी समता जीवित रहेगी। जो क्षमता को देखे बिना तपस्या भी अधिक कर लेगा, तब भी उसकी समता नष्ट हो जायेगी।''** ज्ञानियो! आचार्य शिवकोटि ने 'भगवती आराधना' में लिखा–'जं सक्कइ तं कीरइ।' माताओ! ऐसी तपस्या मत करना कि आपने तीन दिन के उपवास किये और चौथे दिन आपको बॉटल चढ़वाना पड़ रही है, इंजेक्सन लग रहे हैं और जो सामायिक आदि क्रियायें थीं वे भी समाप्त हो गई हैं। ऐसी साधना क्यों कर रहे हो? तीन उपवास की सामर्थ्य हो, तो आपको दो उपवास करना चाहिये, एक

को सुरक्षित करना चाहिये। 'जं सक्कई तं कीरई।' ज्ञानियो! सामर्थ्य होने पर भी नहीं करोगे तो आप चोर/डाकू कहलाओगे, क्योंकि निज के वीर्यअन्तराय का आप हरण कर रहे हो। जिनकी तपस्या करने की सामर्थ्य है, फिर भी जीव तपस्या न करे, वह स्वयं के वीर्य का (स्वयं की शक्ति का) हरण कर रहा है।

जितनी सामर्थ्य हो, उतना करना। सामर्थ्य नहीं है तो श्रद्धा रखना। ये पंचमकाल की बड़ी बलिहारियाँ हैं। अज्ञानी-ज्ञानियों की जड़बुद्धि का प्रभाव देखो-जिस व्यक्ति से विषयकषाय नहीं छूट रहे हैं, जिस व्यक्ति से निज के कुभाव भाव हट नहीं रहे हैं, वह अपने आप से देखता है तो वह यह समझता है कि पंचमकाल में कोई त्यागी हो नहीं सकता है। यह तेरे जीवन का पहला मिथ्यात्व है। जिस जीव की आस्था में यह दृढ़ता आ चुकी है कि पंचमकाल में साधना करने की सम्भावना नहीं है, हे ज्ञानी! तू यह अपनी सोच से सोच रहा है, कि शौच से सोच रहा है? जो शौच से सोचेगा, वह सम्यक् सोच पायेगा। हे भगवान्! सब की सोच शौच हो जाये। शौच यानि पवित्र। सोच यानि विचार। मात्र तन को पवित्र मत करो, सोच को भी शौच करो, पवित्र करो। 'जं सक्कइ तं कीरइ'-सामर्थ्य हो, उतना करो। सामर्थ्य न हो, तो कम-से-कम श्रद्धा तो रखो। ये तेरी कमजोरी है। अपनी कमजोरी से पूरे विश्व को मत देखो। यदि अपनी कमजोरी से सारे विश्व को देखोगे तो आपको पूरे विश्व में कोई त्यागी/व्रती दिखाई नहीं देगा, कोई संयमी नहीं दिखेगा, क्योंकि अपनी वासना से दूसरे के भावों को नाप रहा है। निज की वासना से पर के परिणामों को मत नापिये, अपनी कमजोरी को कमजोरी स्वीकार करके दूसरे के बल को मत स्वीकारिये। यदि चारित्र का श्रद्धान भी कर लेता है, तो श्रद्धावान् जीव भी अजर-अमर स्थान को प्राप्त कर लेता है। इसलिये स्वरूप-अस्तित्व, सादृश्य-अस्तित्व।

मैं जीव हूँ और एकेन्द्रिय से लेकर सिद्धभगवान् तक जीव हैं। मैंने आज तक क्या किया? एकेन्द्रिय जीव भी भगवद्-शक्ति से सम्पन्न है। सादृश्य अस्तित्व क्या कहा रहा है? हे माँ! अपने तन के शौक के पीछे अपने हृदय के शोक को भूल गई। तूने शरीर के शृंगार में कोटि-कोटि भगवान्-आत्माओं के नाश

होने का विचार नहीं किया। युवाओ! दाँतो को साफ करने के पीछे तूने बबूल की कितनी डालियाँ तोड़ी थीं। तुमको मालूम होना चाहिये था कि तीर्थंकर महावीर जैसा जीव अकौआ की पर्याय में हो सकता है। इस बबूल के वृक्ष में भी कोई भगवान्-आत्मा बैठा हो सकता है। हम नहीं समझ पाये। सादृश्य अस्तित्व क्या कह रहा है? यदि आपके अन्दर दया/करुणा है, तो विवेक से काम कीजिये। शरीर के मल को बहाने में तूने कितने जीवों को बहा दिया। स्नान करके कितना खुश होता है कि मैं पवित्र होकर आ गया। अभी आपने पवित्रता को समझा ही नहीं है। एकबार के स्नान में जितना पानी ढोला है, साबुन लगाया है, उस क्षारीय पानी से कितने जीव नष्ट हुये? जिस चमड़ी की राख होना है, उस चमड़ी के राग में अनन्त भगवान्-आत्माओं का नाश करके आया है और कह रहा था, महाराज! पवित्र होकर आया हूँ। तुम्हारा सोच जहाँ तक नहीं पहुँचा, वहाँ चिन्तन ले जाओ। वे बुजुर्ग कहाँ चले गये जो एक बाल्टी में ही कपड़े धो लेते थे और स्नान कर लेते थे और उसमें से एक लोटा बचा भी लेते थे। आपने तो नल की टोंटी खोल ली। सादृश्य-अस्तित्व क्या कह रहा है, उस पर ध्यान दो। हे जीव! स्वरूप-अस्तित्व की दृष्टि से जीवत्व, जीवत्व में भेद नहीं है। तुम किसको शत्रु बना रहे हो, किसको मित्र बना रहे हो? लक्ष्य पर लक्ष्यपात करो। ज्ञानी! तेरा शत्रु आज मुनिराज बनकर तेरे सामने खड़ा हो जाये तो नमोऽस्तु करेगा कि नहीं? करूँगा।

शत्रुघन से पूछो। राजा मधु से युद्ध चल रहा था। धनुष से बाण छोड़े जा रहे थे। राजा मधु बहते रक्त को देख करके विरक्त हो गया। इस भूमि के राग में कितने भूपति भूमि पर सो गये। धिक्कार हो इस राग की भूमिका को और हाथी पर बैठे-बैठे केशलुंचन हो गये। शत्रु ने धनुष-बाण छोड़ दिया और हाथ जोड़कर सिर झुका लिया— भो स्वामी! नमोऽस्तु। सेनापति कहता है, हे नाथ! ये तो आपके शत्रु हैं। हे सेनापति! ठहरिये। शत्रु तो कषाय थी, राग था। जहाँ कषाय विगलित हो चुकी है, अब वे शत्रु नहीं हैं, ये वीतरागी-धरती के देवता, दिगम्बर मुनिराज हमारे गुरु हैं। अहो! गुरु मानकरके राजा मधु मुनिराज को

बारम्बार शीश झुका रहे हैं। हे स्वामी नमोऽस्तु। परिणति बदल जाये तो गति बदलने में देर नहीं लगती। ज्ञानी! परिणति नहीं बदल पा रहे हो तो कितना ही धर्म में गमन करो, लेकिन तेरी गति सम्यक् होने वाली नहीं है। परिणति बदलने की आवश्यकता है।

सादृश्य अस्तित्व, भैया! आपस में झगड़ोगे क्या? बेटा! ध्यान रखना, तत्क्षण के कषायभाव से विसंवाद तो कर लेते हैं, परन्तु जीवन के अगले क्षण में कौन कहाँ होगा, इसका नियत नहीं कर पाते। आश्चर्य तब होता है जब आप चींटी के प्रति तो रक्षा का भाव रखते हो, लेकिन मनुष्य के प्रति भूल जाते हो। दिगम्बर योगी जब छाँव से धूप में चलें तो पिच्छी से मार्जन करते हैं। इतनी दया इतनी करुणा कि छाँव के जीव धूप में नष्ट न हो जायें। धन्य हो श्रमणसंस्कृति को। जहाँ इतनी करुणादृष्टि हो, उस संस्कृति में ईर्ष्या, डाह कैसे हो सकती है? कुछ नहीं कर पाओगे आप। दूसरे के भाव नहीं बिगाड़ सकते हो, 'स्वतन्त्रः कर्त्ताः'। यदि कोई अपने भाव बिगाड़ना चाहे, तभी तुम निमित्त बन पाओगे। जिसको अपने में दृढ़ता है, तुम उसका कुछ नहीं कर सकते हो। आप पर के न तो भव बिगाड़ सकते हो, न पर के भाव बिगाड़ सकते हो, परन्तु पर के भाव/भव बिगाड़ने के राग में स्वयं का भाव व भव दोनों बिगाड़ सकते हो।

मेरे भैया! विश्वास रखना, तुम जिस कुल में जन्मे हो, जिस धर्म में जन्मे हो, उस धर्म में चींटी की रक्षा की जाती है। किसी की चोरियाँ नहीं की जाती है।

उन योगियों को निहारो। लाल मिट्टी में चल रहे हो और काली मिट्टी में जाना हो, तो मार्जन करते हैं कि कहीं जीव की विराधना न हो जाये। धन्य हो उस जैनदर्शन को। जिस कुएँ से पानी निकाल कर लाये हो, उसकी बिलछानी उसी कुए में डालने जाना पड़ता है। नहीं-तो उन जीवों का घात हो जायेगा। कहाँ गये वे दिन? हैण्डपम्प से निकालोगे तो उनके तो कचूमर वहीं हो जायेंगे, अब क्या जीवानी करेंगे? सादृश्य-अस्तित्व। जब तक दयाभूत परिणाम नहीं हो रहे हैं, तब तक प्रशम-संवेग-अनुकम्पा-आस्तिक्यभूत सम्यग्दृष्टि जीव नहीं। आश्चर्य तो यह है कि कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थ में 'दंसण मूलो धम्मो। धम्मो दयाविसुद्धो।'

सूत्र को पढ़करके स्वीकार लेगा तो प्रवृत्ति अवश्य करेगा। ऐसा नहीं होता है कि सम्यक्त्व हो जाये और कोई प्रवृत्ति समझ में न आये। यह वह धर्म नहीं है जिसमें यह कहा जाये कि पर प्राणियों को मारना हिंसा नहीं है। जब सरल को मारना हिंसा है, तो क्रूर को मारना भी हिंसा ही है।

यदि कोई अजगर निकल पड़े, क्रूर परिणामी जीव निकल पड़े तो, बेटा! उससे अपनी रक्षा तो करना, क्योंकि तू अपनी रक्षा नहीं करेगा और कहीं तेरी मृत्यु हो गई तो जैनदर्शन का एक आलम्बन नष्ट हो जायेगा। जब तक तुम जीते रहोगे, तो जैनधर्म की जय बोलोगे और 'न धर्मो धार्मिकैः बिना' धर्मात्मा के बिना धर्म नहीं होता है, इसलिये अपनी रक्षा के भी भाव रखना, लेकिन चिल्लाकर मत जाना, धीरे-से बाहर निकल जाना। कहीं तुमने चिल्ला दिया, यदि कोई हत्यारा जीव आ गया, उसने उस जीव को मार दिया, तो तुम्हारे बोलने से उस जीव का घात हो गया। धन्य हो उस योगी को जो सम्राट रहे हों और मुनिराज बन गये। कोई आकर उन पर उपसर्ग कर रहा है। आज एक मुनिराज के अनेक भक्त होते हैं। जरा-सा किसी से कह दिया कि ऐसा कर दो, तो हजारों खड़े हो जायेंगे। लेकिन ध्यान रखो, संकट के समय में मौन रहना ही मुनि का कवच है। सम्राट पद पर आसीन हों और एक भील आदि आकर उपसर्ग कर दे, तब भी मौन बैठे हुये हैं। क्यों? मेरा धर्म अहिंसा है। यदि वही पलायन कर गया, तो मैं मुनि बना क्यों? आप मुनिराज बन गये, किसी ने उपसर्ग कर दिया और कोई तुम से पूछे, स्वामी! किसने किया? मुझे बताओ मैं देखूँगा। राजाखेड़ा में आचार्य शान्तिसागर जी पर उपसर्ग हुआ, महावीरकीर्ति महाराज पर उपसर्ग हुआ। मैं चतुर्थकालीन नहीं, पंचमकाल के वर्तमान के मुनिराज की बात कर रहा हूँ। सूजा चुभा दिया, रक्त की धार बह गयी, तब भी योगी ध्यानस्थ थे। आचार्य महावीरकीर्ति महाराज पर लाठियों का प्रहार कर दिया। सेठ चाँदमल जी ऊपर लेट गये। कब तक बेचारे सहन करते? पुलिस आ गई, 'स्वामी! आज्ञा करो, इनको क्या दण्ड दूँ?' महाराज बोले-आप मेरी बात मानोगे? 'हाँ, मानूँगा। आपको इन्होंने कितना कष्ट दिया।' महाराज बोले, 'ऐसा करो कि इन बेचारों का कोई दोष नहीं है,

इनकी अज्ञानता का दोष है। इनको छोड़ दो।' आप होते तो क्या करते? बस, निर्ग्रन्थों में और सग्रन्थों में इतना ही अन्तर है। निर्ग्रन्थ अपने कर्म-उदय को मान करके सहन करते हैं। सग्रन्थ कहते कि मैं छोड़ूँगा नहीं। पूर्व में बन्ध किया है, सो आज भोगा है और आज कषाय कर रहा है, सो भविष्य में पुनः भोगेगा।

सादृश्य-अस्तित्व का तात्पर्य है जैसा तेरे अन्दर ज्ञान-दर्शन गुण है, वैसा ज्ञान-दर्शन गुण सभी के अन्दर है। सादृश्य-अस्तित्व की अपेक्षा सभी गुण समान है। स्वरूप-अस्तित्व का ध्यान इसलिये करना चाहिये, कि जब राग बढ़ने लग जाये 'ये मेरे, ये मेरे, मैं इनका।' अरे अज्ञानियो! न कोई तेरा है, न तू उनका है। मेरी आत्मा स्वतन्त्र है, तेरी आत्मा स्वतन्त्र है। कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है। इसलिये कोई किसी का नहीं है। इस स्वभाव की प्राप्ति के लिये आपको स्वरूप-अस्तित्व पर ध्यान देना चाहिये। अब किसी को गाली दोगे क्या? किसी को गाली मत देना, किसी के बारे में अशुभ मत सोचना।

माताओ! रोटी से रोटी कहाँ-कहाँ बनती है? कहीं नहीं। **''जब भी रोटी बनती है, आटे से बनती है। आटे को खाना पड़ता कि रोटी को खाना पड़ता है? रोटी को। तो फिर आटा फेंक देना चाहिये, रोटी खाना चाहिये? अरे! जब आटा नहीं होगा, तो रोटी बनेगी कैसे? इसलिये मेरे मित्रो! चाहे मिथ्यादृष्टि जीव हो, चाहे एकेन्द्रिय जीव हो, चाहे विकलत्रय, कोई भी जीव हो, संज्ञी-असंज्ञी कोई भी जीव हो, सभी पर करुणा रखो। आटा नहीं होगा तो रोटी कैसे बनेगी, कच्चा माल नहीं होगा तो पक्का माल कहाँ से आयेगा? मिथ्यादृष्टि जीव नहीं होंगे तो सम्यग्दृष्टि कहाँ से आयेंगे? संसारी नहीं होंगे तो मुक्त कहाँ से आयेंगे?''** अरहन्त कहाँ से बनेंगे? यदि आप-जैसे न होते, तो महावीर कहाँ से बनते? इसलिये ये सब कच्चे माल आज पक्के बनने के लिये आये हैं। आज से मिथ्यादृष्टि जीव को भी गाली मत देना और यहाँ तक कि गाली देने वाले को भी गाली मत देना, क्योंकि उसकी मोह की भूल है। जब उसका मोह हट जायेगा, तो वो भी सम्यक्त्व को प्राप्त हो जायेगा। ज्ञानियो! जब सिंह में महावीर हो सकते हैं, तो श्रावकों में महावीर क्यों नहीं हो सकते

हैं। इसलिये आज घर जाकर उन सबसे, जिनसे आपस में झगड़ा हो गया हो, क्षमा माँग लेना। कह देना कि क्या मालूम तुम पहले सिद्धालय पहुँच गये कि हम पहले पहुँच गये। बनने के पहले क्षमा करना। इतना कर लेना। मोह हटते ही वस्तु की सत्ता का सम्यक् बोध होता है।

मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः॥ 7 इष्टोपदेश॥

जिसका ज्ञान मोह से आवृत है, वह स्वभाव को प्रकट नहीं होने देता। जैसे मद को उत्पन्न करनेवाले कोदों को खानेवाले व्यक्ति को विवेक नहीं रहता है, ऐसे-ही मोह-मद वाले को वस्तुस्वभाव का बोध नहीं होता है। परन्तु इतना ध्यान रखना—हे मेघ! तुम सूर्य को ढक तो सकते हो, लेकिन सूर्य का नाश नहीं कर सकते हो। हे मोह! तुम मेरे ज्ञान को ढक तो सकते हो, परन्तु मेरे ज्ञान का नाश नहीं कर सकते हो। कभी-न-कभी मोह के बादल छटेंगे, कैवल्य का सूर्य प्रकट होगा। इसलिये ये जितने बैठे हुये हैं, उन्हें पर्यायदृष्टि से वर्तमान के भव की प्रत्यासत्ति से मनुष्य देखना, लेकिन भावी दृष्टि से सबको भगवान् देखना, परन्तु पूजा किसी की नहीं करना, क्योंकि पूजा पर्याय की प्रत्यासत्ति की होती है। झगड़ा करने का प्रत्याख्यान कर दो, क्या मालूम कौन-सा जीव कब सिद्ध बनके चला जाये और तुम झगड़ते-झगड़ते नरक में चले जाओ। स्वरूप-अस्तित्व का बोध नहीं हुआ तो जगत् के लोगों के राग में तुम बिलखते रहोगे। स्वतन्त्रता का बोध होना चाहिये। 'सद् द्रव्य लक्षणं' का बोध होना चाहिये। जब सत् का नाश नहीं होता है, तो आज से रोना भी बन्द करो और हँसना भी बन्द करो। हँसना भी कषाय है, रोना भी कषाय है। दोनों से चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव होता है। कोई बालक तुम्हारे घर में जन्म ले ले, तो कितनी ताली और थाली बजाते हो। अज्ञानी तो बन्दूकें चलाते हैं। एक की खुशी में पता नहीं कितनों को उड़ा दिया। यह अज्ञानता छोड़ो। तेज आवाज से भी जीवों का घात होता है। यही कारण है कि वीतरागी दिगम्बर तपोधन रात्रि में तो मौन रखते ही हैं, दिन में भी कम बोलते हैं। जहाँ तत्त्व की आवश्यकता है, उतना बोलना। विवेक को मत खो

देना। एक बेटे ने तेरे घर में जन्म लिया तो तूने बन्दूक चलवा दी। हे रागी! तेरी कर्तृत्वदृष्टि कितनी खोटी है कि तू एक अपनी सन्तान का कर्ता बन गया, एक बन्दूक की आवाज में कोटि-कोटि जीवों का घात हुआ होगा। उस बीच में कोई पक्षी आ जाये तो उसके तो प्राण चले गये, तुम्हें अपना बेटा दिखाई दे रहा है। दूसरे के बेटे पर लक्ष्य क्यों नहीं है? धन्य हो उन तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी को, उन्होंने निहार लिया था कि एक के सुख के राग में अनेक का घात नहीं किया जा सकता है। आप तो शादी/विवाह में अलग से करके ले जाते हो, खूब आतिशबाजी चलती है और मैं धर्मात्मा। युवाओ! अपने माता-पिता से कह देना कि मुझे तो शादी करनी ही नहीं है। नहीं है सामर्थ्य, तो आज ही प्रतिज्ञा कर लेना कि अपनी शादी में एक भी पटाका नहीं फूटने देंगे। जिनके फूट चुके हैं, वे कर्मों को फोड़ना। चाहे तो प्रायश्चित ले लेना। इस शरीर का धुँआ निकलने के पहले उन सबका प्रायश्चित ले लेना। जिस जन्म-मरण के नाश के लिये मुनि बनना पड़ता है, आज उस जन्म के लिये तालियाँ बजा रहे हो। जन्म लिया है, वह आयुकर्म का बन्ध करके आया था, उसने अपना काम पूरा किया है, इसमें हँसने की क्या आवश्यकता है, मुस्कुराने की क्या आवश्यकता है? मरण होगा तो रोओगे क्या? अरे भैया! सत् का विनाश नहीं होता है। यह पर्याय का परिणमन है। इस जीव का जाना नियत था, इसमें रोने की क्या आवश्यकता? आज अपने घर जाकर बेटे से पूछना-जब मेरी मृत्यु होगी, तब तू रोयेगा क्या? जब वह कहे-हाँ, रोऊँगा। तब पूछना, क्यों रोओगे? मेरी आत्मा के लिये या शरीर के लिये? यदि तू मेरी आत्मा के लिये रोये, तो विश्वास रखना, सत् का नाश नहीं होता है। अस्तित्व गुण है। यदि मैं मनुष्य बना, तो ढाई द्वीप के बाहर नहीं जाऊँगा और यदि त्रस बना तो त्रसनाली के बाहर नहीं जाऊँगा। मेरी आत्मा का नाश नहीं होगा। यदि तू यों कहे कि मैं तेरे शरीर के लिये रोऊँगा पिताश्री, तो कह देना बेटा! तू चिंता मत कर, मैं शरीर लेकर नहीं जाऊँगा, तुझे देकर जाऊँगा। अब बोल तू क्यों रोयेगा? आत्मा का नाश होता नहीं और शरीर को पिता लेकर जायेगा नहीं, अब बताओ बेटा रोयेगा क्यों? तुम्हारे घर में मृत्यु हुई और तुम दूध-मलाई खा रहे हो, यहीं देख लो, कोई किसी का नहीं होता—'आत्मस्वभावं

परभाव भिन्नं' आत्मा का स्वभाव परभावों से भिन्न है। अब चाहे कोई जाये, चाहे कोई आये-'देखो, जानो, जाने दो।' देख सकते हैं, जान सकते हैं और क्या कर सकते हैं? जाने वाले जायेंगे, आने वाले आयेंगे। जो कुछ अनर्थ हो रहा है, क्यों? 'मोहेन संवृतं ज्ञानं'। तीर्थंकर महावीर के रथ को खींचने वाले बछड़े ही होंगे।

आचार्यमहाराज कह रहे हैं, हे ज्ञानी! अज्ञानीजीव इन्द्रियों की इच्छारूपी रोगों का उपक्रम करता रहता है। 'भोगा रोगा इवापदि।' मुमुक्षु! ये भोग तो रोग हैं और आपत्ति के निलय हैं। दु:ख का पण्डित है इन्द्रियसुख।' जितने रोग हो रहे हैं, भोगों से हो रहे हैं। अहो, भोगों के कीड़ो! हमारी बात यहाँ पर बुरी नहीं लग रही है क्या? इन्द्रिय-रोग के लिये उपक्रम कर रहा है और अज्ञानी उसमें ही सुख मान रहा है। जगत् में उत्कृष्ट कष्ट को देने वाला इन्द्रियसुख है।

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्ति प्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान्, कामं: कः सेवते सुधीः॥ 17 इष्॥

आरम्भ में ताप देता है, प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करता है, अन्त में पश्चात्ताप देकर चला जाता है, तूने क्या किया? ये तो बम्बई की मिठाई है। "जो खाये, सो रोये और जो न खा पाये, सो रोये।"

हे ज्ञानियो! ध्यान रखना-अपने आपको अपने वश में करना सीखो। जितने तुम्हें अपने दिख रहे हैं, वे दिखते ही रहेंगे, पर तुझे देखने कोई नहीं आयेंगे। जब तुम इनके राग में पापबन्ध करके नरक जाओगे, तो एक भी देखने नहीं आयेगा। इसलिये इनसे आज से ही थोड़ी दूरी बनाना प्रारम्भ कर दो और कह देना अपने हृदय से-

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"इन्द्रियविषय परम कष्टकारी है"

इन्द्रियेच्छारुजामज्ञः , कुरुते यो ह्युपक्रमम्।
तमेव मन्यते सौख्यं, किं तु कष्टमतः परम्॥ 82॥

अन्वयार्थ—यः अज्ञः = जो अज्ञानी जीव, **इन्द्रियेच्छारुजाम्** = इन्द्रियों के इच्छारूपी रोगों का, **उपक्रमम्** = उपाय, **हि** = निश्चय से, **कुरुते** = करता रहता है और **तम्एव** = उसी को, **सौख्यं** = सुख, **मन्यते** = मानता है, **अतः परं** = इससे बढ़कर, **कष्टं** = दु:ख की बात, **किं तु** = और क्या हो सकती है?

भावार्थ—जो अज्ञानी-मानव इन्द्रियों के इच्छा रूपी रोगों का उपक्रम (उपाय) करता रहता है तथा इन्द्रियसुख को ही सौख्य मानता है; निश्चय से, इससे अधिक दु:ख और क्या हो सकता है?

"परम तत्त्व का स्वरूप"

आत्माभिलाषरोगाणां, यः शमः क्रियते बुधैः।
तदेव परमं तत्त्वमित्यूचुर्ब्रह्म-वेदिनः॥ 83॥

अन्वयार्थ—बुधैः = बुद्धिमान लोग, **आत्माभिलाष रोगाणां** = अपने इच्छा रूपी रोगों का, **यः शमः** = जो शमन, **क्रियते** = करते हैं अर्थात् उनसे हटाकर अपनी श्रद्धा को आत्मस्वरूप की ओर लगाते हैं, **तत् एव** = वह ही, **परमं तत्त्वं** = परम तत्त्व है, **इति** = यह बात, **ब्रह्मवेदिनः** = ब्रह्मज्ञानी संतों ने, **ऊचुः** = कही है।

भावार्थ-हे आत्मन्! ब्रह्मज्ञानी श्रमणों ने कहा है कि—जोबुद्धिमान अपने विषयाभिलाषा रूपी रोगों का शमन करते हैं और इन्द्रिय-वासनाओं से चित्त को हटाकर उसे आत्मसाधना में लगाते हैं, वही परम तत्त्व है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' जी में वस्तु-तत्त्व की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जिसको ब्रह्म-तत्त्व का बोध होता है, वह जगत् के सम्पूर्ण कुशीलों से आत्मा की रक्षा कर लेता है।

जब जीव धर्म में प्रवेश कर जाता है, तो जगत् के सम्पूर्ण अधर्मों से आत्मा की रक्षा कर लेता है। जगत् के सारे प्रपञ्च अज्ञभूत हैं। उपशमभाव ही धर्म है। क्रियाभूत धर्म के राग से, क्रियाभूत धर्म के द्वेष से उपशमभाव का अभाव हो जाता है तो वह आत्मद्रव्य से शून्य है। **''लक्ष्यभूत तो परमब्रह्मभूत परमब्रह्मधर्म है। लक्ष्यभूत तो आत्मधर्म है। आत्मधर्म को छोड़ करके जगत् की सारी क्रियाओं की अनुपयोगिता है, लेकिन आत्मधर्म की प्राप्ति के लिये क्रियाओं की उपयोगता है, परन्तु अनेकान्तिक दोष से दूषित है। सम्यग्दृष्टि जीव भी क्रियायें करता है, मिथ्यादृष्टि जीव भी क्रियायें करता है, परन्तु सम्यग्दृष्टि की क्रियायें परम्परा से मोक्ष का साधन है और मिथ्यादृष्टि की क्रियायें संसार का ही साधन है। विषय-वासना से दूर हो जाना मोक्षमार्ग नहीं है। विषयवासनाओं से दूर तो अभव्य मिथ्यादृष्टि भी हो लेता है। मिथ्या वासनाओं से दूर हो जाना, इसका नाम मोक्षमार्ग है।''**

एकदण्डी, द्विदण्डी, त्रिदण्डी अनेक प्रकार के भेष धारण करने वाले, श्वेतपट्ट, पीतपट्ट, भगवाँ पट्ट इत्यादि भेषों को धारण करने वाले जीव भी ब्रह्मचर्य का पालन कर लेते हैं, लेकिन ब्रह्म में लीन नहीं हो पाते। विषय-वासनाओं को दूर कर लेना कठिन नहीं है, परन्तु मिथ्याभाव से आत्मा की रक्षा कर पाना बहुत कठिन है। जो मिथ्याभाव से आत्मा की रक्षा कर रहा है, जो सत्यार्थ मोक्षमार्गी है, वह विषय-वासना से रहित तो होगा-ही-होगा, लेकिन मिथ्या वासना से दूर होगा। बहुत जटिल है? वसन उतारना कठिन नहीं है, वासनाओं से हटना भी कठिन नहीं है, परन्तु अन्तरङ्ग में बैठी विपरीत अभिप्राय की वासना को हटा पाना बहुत कठिन है। तीर्थंकर-जैसी आत्माओं को मिथ्यात्व की वासनाओं को हटाने के लिये दस-दस भव लग जाते हैं। सबकुछ छूटने के बाद भी विपरीत अभिनिवेश नहीं छूट रहा है तो ब्रह्मतत्त्व की सिद्धि नहीं है। उतारना-पहनना यह देहधर्म है। उतर जाना, आत्मधर्म है। जब तक नहीं उतर रहा है, तब तक उतारा क्यों है? यूँ कहना चाहिये-एक पुरुष सरोवर के पास पहुँचता है और फिर उसने सारे वस्त्र उतार दिये। वस्त्र इसलिये उतारे थे कि मैं अब सरोवर के शीतल पानी में निमग्न होकरके जलक्रीड़ा करूँगा। स्नान करने के लिये।

वस्त्र तो उतार लिये, लेकिन उतर नहीं रहा है, तट पर खड़ा हुआ है और निहार रहा है, देख रहा है कि इसमें कैसे उतरूँ? पानी शीतल है, कहीं उलझ न जाऊँ, कहीं फिसल न जाऊँ, कहीं डूब न जाऊँ? अरे! उतार तो चुका है, लेकिन उतर नहीं रहा है, उतरे बिना शीतलता कैसे आयेगी? उतारने से शीतलता नहीं आती, उतरने से शीतलता आती है। वस्त्र तो उतार लिये, दिगम्बर भेष भी बना लिया, लेकिन यदि ब्रह्मधर्म में नहीं उतर रहा है, तो आत्म-शीतलता को नहीं प्राप्त हो रहा है। उतार चुका है, पर उतर नहीं रहा है। जो उतर जायेगा सरोवर में, डुबकी लगायेगा, तो तट पर कितने लोग खड़े हुये हैं, क्या वह बता पायेगा? नहीं। जो सरोवर में उतर जायेगा तो तट पर कितने आ रहे हैं कितने जा रहे हैं, कितने मुझे देख रहे हैं, क्या वह देख पायेगा? जब सरोवर में डुबकी लगानेवाला, सरोवर में निमग्न पुरुष यह नहीं देख पा रहा है कि मुझे डुबकी लगाते कितने देख रहे हैं? तो आत्मा में डुबकी लगाने वाला परमात्मा में लक्ष्य कहाँ ले जा पायेगा? जो यूँ देख रहा है कि मुझे भीड़ देख रही है कि नहीं देख रही है, वह अभी सरोवर में ही नहीं डूबा, तो आत्मा में क्या डुबकी लगायेगा? यह ब्रह्मधर्म की व्याख्या है।

जब तक जीव ब्रह्मधर्म में लीन नहीं होता, तब तक विश्वास रखना, उसको लक्ष्य का भान नहीं है। मोक्षमार्गी की दृष्टि अर्जुन की दृष्टि होना चाहिये। जिसको पत्र नहीं दिखते, जिसको पुष्प नहीं दिखते, डाली नहीं दिखती। जिसको मात्र अपना लक्ष्य दिखता है। ऐसे दिगम्बर योगी को न जगत् के पुष्प दिखते हैं, न पत्र दिखते हैं, उसको ब्रह्मधर्म का लक्ष्य मात्र दिखता है। उसका नाम जैनमुनि है। मात्र लक्ष्य दिखना चाहिये। धनुर्धारी भी दो आँखों वाला होता है, लेकिन जब बाण छोड़ता है, तब एक आँख को बन्द कर लेता है।

हे ज्ञानियो! तुम्हारे पास दो नेत्र हैं। एक योग का नेत्र है, एक भोग का नेत्र है। आत्मविद्या में लीन होना चाहते हो, कर्मशत्रु को परस्त करना चाहते हो, तो भोग की आँख बन्द करना और योग की आँख खोल करके अपना निशाना बाँधो। दो आँखों से निशाना नहीं बनता। तू चाहता है कि मैं घर में

भी बैठा रहूँ और आत्मा को भी प्राप्त कर लूँ। ज्ञानियो! दोनों आँखें खोलकर निशाना नहीं बनता। लक्ष्यभेद के लिये एक नेत्र बन्द करना पड़ेगा। लक्ष्य पर दृष्टिपात हो। यह ब्रह्मविद्या है, आत्मविद्या है, गूढ़ विद्या है। जगत् की सारी विद्यायें जब अविद्याभूत लगने लगती हैं, तब आत्मविद्या का जागरण होता है।

पक्षी को सूखा ठूँठ पसन्द नहीं आता है। वह उससे उड़ जाता है। सारा विश्व सूखे ठूँठ की भाँति दिखने लग जाये, तब तुझे अपने आत्मदेव की दृष्टि मिल गई। जब हम कुन्दकुन्द की दृष्टि से निहारते हैं, तब लगता है कि जैनदर्शन, जैनधर्म भिन्न है और जगत् के लोग जिसे जैनधर्म/जैनदर्शन स्वीकार रहे हैं, वह जैनदर्शन का क्रियापक्ष है। फूल, पत्ती, बाहरी प्रपञ्च में जीवन नष्ट मत कर लेना। **''जैनकुल में जन्म लेकरके जैनविद्या की गूढ़ता को नहीं सुन सका, उसे नहीं समझ सका और उसमें प्रवेश नहीं कर सका, तो जैनकुल में जन्म लेना सफल नहीं है।''** आचार्य महाराज 83वें श्लोक में ब्रह्म-वेदिनः शब्द का प्रयोग कर रहे हैं

आत्माभिलाषरोगाणां, यः शमः क्रियते बुधैः।
तदेव परमं तत्त्व-मित्यूचुर्ब्रह्मवेदिनः॥ 83॥

यहाँ जगत् के काल्पनिक ब्रह्मा की चर्चा नहीं है, यहाँ चतुर्मुख ब्रह्मा की चर्चा नहीं है। ब्रह्मा और ब्रह्म। जिन शब्द को तुमने नहीं सुना, वह वस्तु 'अवस्तु' नहीं हो गई। जिसको तुमने नहीं देखा, वह अवस्तु नहीं हो गई।

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्॥ 10 परीक्षामुख सूत्र॥

सामने घट रखा हुआ है और आपसे किसी ने नहीं कहा कि यह घट है, तो क्या तुझे नेत्रों से देख कर घट का बोध नहीं होगा? होगा। अर्थ का नाम न लेने पर भी, अर्थ के आकार को देख करके, अर्थ का बोध होता है ऐसे-ही जब जीव ब्रह्म में लीन होता है, जब ब्रह्म की व्याख्यायें समाप्त हो जाती हैं, ब्रह्म की लीनता प्रारम्भ हो जाती है। घट को देखनेवाला, घट का वेदन करने वाला 'घट' उच्चारण नहीं कर रहा है। मटके को देखते समय जब तू मटके के बारे में चिन्तवन करता है, उस समय तू मटके के बारे में व्याख्यान नहीं करता है।

जब व्याख्यान करता है, तब पूर्व के जाने हुये मटके को कहता है। जिसे देख रहा है, उसे मात्र देख रहा है, व्याख्यान नहीं कर रहा है। सामान्य प्रवचन में तो भीड़ का होना सहज है। समयसार-जैसे गूढ़ ग्रन्थ श्रवण करने भी लोग आयें, तो आश्चर्य है।

मैंने एक दिन पूछ लिया-भैया! यह विषय तो गूढ़ है, आप इसे इतना क्यों सुनते हो?

बोले, महाराज! सुनता नहीं हूँ, समझता हूँ। सुना तो अनन्त बार है, समझा एक बार भी नहीं है। यदि समझ लिया होता, तो सुनने की आवश्यकता ही नहीं होती। सुननेवाले कोटि-कोटि जीव होते हैं, समझनेवाले अंगुलियों पर गिनने लायक होते हैं। जो समझ लेता है, उसे सुनने की आवश्यकता होती ही नहीं है। जब तक समझ में नहीं आ जाता, तब तक सुना जाता है। जो विषय आपने नहीं जाना, जो आपके नेत्रों के सामने नहीं आया, वह विषय अवस्तु नहीं हो जाता। जगत् में जो भी व्याख्यायें होती हैं, वह वस्तु की होती हैं। अवस्तु की व्याख्या होती ही नहीं है। अवस्तु अभावभूत है, अवस्तु तुच्छाभाव है।

जब ज्ञायक व ज्ञेय की व्याख्या हो रही थी, ब्रह्म और द्वैत की व्याख्या हो रही थी, तो हमारा एक भैया कहता है कि विशुद्धसागर महाराज जी ने तो पूरा वेदान्त जिनागम में भर दिया । मैंने कहा-ज्ञानी! यह तेरी भूल चल रही है। जिन शब्दों का प्रयोग तूने जीवन में नहीं किया, आगम के शब्दों को चुटकुलों में जीवन नष्ट कर डाला। भड़कीली बातों में जीवन नष्ट कर डाला, वहाँ तुमको ज्ञेय-ज्ञायक भाव की बात कहाँ मालूम चलेगी? आपको मालूम होना चाहिये कि सराफे की दुकान की भाषा सराफे की होगी। सागमण्डी की भाषा सागमण्डी-जैसी होगी। द्रव्यानुयोग की भाषा द्रव्यभूत ही होगी। वेदान्त नहीं भर दिया, वेदान्त में जिनवाणी भरी थी वेदान्त आया कहाँ से? यदि कोई मन्दिर के कुए से पानी भर कर अपने घर ले गया और कहता है, 'भो स्वामी! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु। मेरे घर का आहार पानी शुद्ध है।' तो भो ज्ञानी! तेरे घर में कब आहार बना और कब पानी बना? तूने प्रयोग किया है, आहार किसान के खेतों का है। पानी मन्दिर के कुए का

था और तू अहंकार में डूबा है 'भो स्वामी! मेरे घर का आहार पानी शुद्ध है।' जैसे जिनालय के कुए से पानी लाकरके अपने घर का बना लेता है, ऐसे-ही ये महासागर तीर्थंकर के कैवल्य की किरणों से प्रकट हुआ महारत्न है। एक-एक रत्नों को अनेक सम्प्रदायों ने ग्रहण कर लिया और अपने-अपने नाम से कहने लगे। विश्व में जितनी अच्छाइयाँ हैं, सब तीर्थंकर की वाणी है। सारी तत्त्व-प्ररूपणायें तीर्थंकर की देशना में खिरी है। लोगों ने एक-एक अंग को, एक-एक नय को पकड़ लिया। सर्वाङ्ग नयों को इकट्ठा कर दो, यह अनेकान्तवादी है। अनेकान्त की आँख खोलनी पड़ती है।

जे णयदिट्ठि विहीणा, तेसिं ण हु वत्थुरूव उवलद्धि।
वत्थु सहाव विहूणा, सम्माइठ्ठी कहं हुंति॥10लघु नयचक्र॥

जो नयों की दृष्टि से विहीन हैं, वे वस्तु की उपलब्धि को प्राप्त नहीं होते हैं। जो वस्तुस्वभाव को नहीं जानते, वे सम्यग्दृष्टि हो ही नहीं सकते। नयदृष्टि विशद् होना चाहिये और निश्चय-व्यवहार को जान करके मध्यस्थ हो जाना चाहिये, वही जिनेन्द्र की देशना के फल को प्राप्त हो सकेगा। एक बात अपन को सारे मुमुक्षुओं से कहने की है-तीर्थंकर के समवसरण में जन्मजात वैरी जीव एक साथ बैठा करते हैं। नकुल और साँप, बिल्ली-मूसक, सिंह-गाय एक स्थान पर बैठ करके तीर्थंकर की देशना सुन सकते हैं।

ज्ञानियो! देह के आकार भिन्न हो जायें, विकल्प नहीं करना। चेहरे के आकार भिन्न हो जायें, विकल्प नहीं करना, परन्तु मन के भाव भिन्न-भिन्न नहीं होना चाहिये। देह के आकार के आधार पर मोक्ष नहीं मिलेगा। साढ़े तीन हाथ की अवगाहना वाले भी मोक्ष जाते हैं और सवा पाँच सौ धनुष अवगाहना वाले मुनिराज भी मोक्ष जाते हैं। इन देहों का विकल्प मत करो। छोटे बाबा, बड़े बाबा इन विकल्पों में मत जिओ। देहों को मत देखो। देखो तो भगवान् की वीतरागता को देखो।

जब आचार्यमहाराज ने मुझे पहली बार संघ के बाहर भेजा। मैं कभी गुरुचरणों से दूर होऊँगा, ऐसा तब मैंने सोचा भी नहीं था, क्योंकि मेरे से कुछ बनता तो था ही नहीं, तो बाहर जाकर करूँगा क्या? मेरा छोटा-सा कद, दुबला-पतला शरीर

था। रास्ते में महिलायें चौका के बर्तन माँजते हुये बतियाँ रही थीं 'इतने-से महाराज के लाने इतनी दूर लेवे गये।' मैं भी मुसकुरा रहा था कि माँ सही तो बोल रही है। अध्यक्ष कह रहा-माँ! धीरे बोल। महाराज बैठे हैं बगल में। बड़े उत्साह से अगवानी हो गई। अब लोग बोले-महाराज! प्रवचन। मैंने कहा 'जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कर लो।' भीड़ इसलिये जुड़ी थी कि महाराज बोलते क्या हैं? जैसे-ही प्रवचन हुआ, अध्यक्ष घूम कर उसी माँ के पास जाता है। 'क्यों माँ! महाराज कितने बड़े हैं?' बोली-अरे बेटा! तुमने अच्छो करो।

वस्तुस्वरूप क्या है? जीव की देह को मत देखो, भगवान् की अवगाहना को मत देखो। चौबीस तीर्थंकर भगवान् हैं। चाहे छोटी प्रतिमा हो, चाहे बड़ी प्रतिमा हो, सभी तीर्थंकरों की प्रतिमा में संस्कार अरहन्त के ही होते हैं। छोटे या बड़े के संस्कार नहीं होते हैं। यह विकल्प छोड़ देना। कभी-कभी आप शुभ-उपयोग से च्युत हो जाते हो। आप जिस वेदी पर पूजन करते थे, वहाँ किसी-और ने पूजा करली, तो आप कहते हो कि आप यहाँ कैसे आ गये? आप तो ऊपर जाओ।

सम्यग्दृष्टि जीव बड़ी मूर्ति की पूजा करने नहीं जाता। सम्यग्दृष्टि जीव अशुभ उपयोग से बचने के लिये भगवान् की पूजा करने जाता है और अज्ञानी देखता है छोटे भगवान्, बड़े भगवान्। आज रविवार है, पारसनाथ स्वामी देखेगा। मंगलवार है तो वासुपूज्य भगवान् देखेगा। शुक्रवार को कोई और भगवान् देखेगा। हे अज्ञानी-ज्ञानियो! तुम कर क्या रहे हो? वीतरागी भगवन्तों में भेद मत करो। इनकी शक्ति में कोई कमी नहीं है। आप ग्रहों को टालना चाहते हो तो सबसे बड़ा ग्रह परिग्रह है, उसे छोड़ दो तो सब ग्रह टल जायेंगे। ग्रह का अर्थ कर्म होता है। चौबीसों भगवान् की भक्ति/आराधना करने से कर्म कटते हैं, आप कोई भी भगवान् की भक्ति करो। ये चल, मल, अवगाढ़ दोष खड़े हो रहे हैं कि शान्तिनाथ शान्ति देते हैं, शीतलनाथ शीतलता देते हैं, पारसनाथ संकटों का हरण कर लेते हैं, ये भाव भगवान् में नहीं हैं। यदि कुन्दकुन्द स्वामी ग्रन्थ न लिखते, तो आज

यह अध्यात्म विद्या समाप्त होने वाली थीं। भाषा/विद्या सुरक्षित करने वाला कोई है, तो ग्रन्थकर्ता है। आप लोग उन वीतराग आचार्यों के अनन्त उपकार मानिये, जिनके पास जो विद्यायें थी वह लेखन करके सुरक्षित कर गये। आज भी दिगम्बर मुनि असमय में आपको गलियों में घूमते नहीं मिलेंगे। इस बात को भारत का प्रत्येक दर्शन स्वीकारता है, क्योंकि जैन संहिता निबद्धित है और निबद्धित होने के कारण गलियों में घूमते, भीख माँगते नहीं मिलेंगे, दुकान-दुकान पर खड़े नहीं मिलेंगे। हे श्रावको! आपसे मेरा कहना है कि योगियों को योगी बनकर रहने देना। संस्थाओं के राग में योगियों को बिठाल करके पैसा कमाने के लिये तुम इनको भिखारी मत बनाना। उनके मुख से शब्द नहीं आना चाहिये है कि इतने द्रव्य की बोली लगनी चाहिये, नहीं-तो चातुर्मास नहीं होगा। महाराज! आपको अंजुली में आहार लेने मात्र जाना है, चाहे लाखों की बोली लगे, चाहे एक रुपये की लगे, तुमको उससे कोई प्रयोजन नहीं। तुम्हें मिलेगा क्या? आप तो निर्विकल्प भाव से चातुर्मास करो, आपकी साधना की आराधना की व्यवस्था हम करेंगे व्यवहार से, परन्तु भीतर से तो स्वामी! आप ही कर पाओगे, कोई नहीं कर पायेगा।

करोड़ों की बोली से योगी में बड़प्पन की खोज मत करो। इस बड़प्पन का परित्याग करो। सवा दो घण्टे की सामायिक करते दिख जायें तो कहना-हाँ, श्रेष्ठ है। आज हम साधु की पहचान इसमें कर रहे हैं कि जिनकी करोड़ों में बोलियाँ जायें। उससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम्हारी पहचान करोड़ों की बोलियाँ नहीं हैं। जो तुम्हारे पास आकिञ्चन्य धर्म है, यह तुम्हारी पहचान है। शौचधर्म है, इससे तुम्हारी पहचान है। इस विद्या का प्रयोग नहीं करोगे तो सारा भारत जैन मुनि को भूल जायेगा। अभी जो देश में आँधी-तूफान चल रहा है, वह करोड़ों की बोलियों का चल रहा है, अकिञ्चन धर्म का नहीं चल रहा है, जबकि धर्म करोड़ों का द्रव्य नहीं है, धर्म अकिञ्चन धर्म है। इस पर लक्ष्य नहीं जा रहा है- सत्य यही है। कहीं ऐसा न हो जाये कि किसी दिगम्बर मुनि की सत्यता को किसी म्यूजियम में देखने जाना पड़े, क्योंकि ये तो नोटों में चले जायेंगे, फिर तुमको

दिगम्बर मुनि तो म्यूजियम में देखने जाना पड़ेगा। इनकी पहचान अकिञ्चन धर्म है, इनको कौन जानता है?

अकिञ्चनोऽहमित्यास्स्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः।
योगिगम्यं तव प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः॥110 आत्मानुशासन॥

अकिंचन धर्म का रहस्य योगीगम्य है, ऐसा आचार्य गुणभद्र स्वामी ने 'आत्मानुशासन' ग्रन्थ में लिखा है। परमात्मा का जो रहस्य है, अकिंचन धर्म का जो रहस्य है, वह योगीगम्य है। 'ब्रह्म-वेदना' शब्द झकझोर रहा है। मुझे समयसार जी की वाचना क्यों करनी पड़ी। उस वाचना का सूत्रपात करने वाला विदिशा नगर है। विदिशा में प्रवचनसारजी की गाथा नं. 80 पर मैंने प्रवचन किया। मुमुक्षु-मण्डल की सारी महिलायें आगईं, बोली-महाराज श्री! दिगम्बर मुनि ग्रन्थों की गाथाओं पर प्रवचन कब से सीख गये? मैंने कहा-माँ! तात्पर्य क्या है? बोली-महाराज जी! हम लोगों की धारणा है कि महाराज आयें सो दो चार लोगों की निन्दा, चार/पाँच लोगों को चुटकुले सुना दो, बस, हो गया एक घण्टे का प्रवचन। आप गाथा कब से बोलने लग गये हो? मैंने वहीं कायोत्सर्ग किया— आज से मैं प्रतिज्ञा लेता हूँ कि मूल आचार्यों के ग्रन्थों पर ही प्रवचन करूँगा, बाहर की कोई बात नहीं करुँगा। कारण क्या है? निर्ग्रन्थों के ग्रन्थ सग्रन्थों के मुख से और निर्ग्रन्थों के मुख से बाहर के ग्रन्थों की बातें, ये शोभा नहीं देती। लोगों की धारणा थी कि लोग तत्त्व को नहीं सुनते। यहाँ देखो, बच्चे भी सुन रहे हैं। पण्डित जी! आप भी जब प्रवचन करने जाना, तो मात्र आगम ग्रन्थ विराजमान करना, बाहर की कोई बात मत करना। यदि तुम जिनवाणी को विराजमान करके जिनवाणी कहो, तब तो 'प्रवचन कहलायेगा। जिनवाणी विराजमान करके जिनवाणी नहीं कहोगे तो 'भाषण' कहलायेगा।

यह भाषण-सभा नहीं है, यह प्रवचन-सभा है। किसी योगी को यूँ न कहना पड़ जाये 'अहो! अब ब्रह्मविद्या का तो अभाव हो चुका है।' इसलिए उस विद्या की रक्षा करना है। आज दो विषय लोप हो रहे हैं, न्याय और अध्यात्म। अध्यात्म को एकान्त से कहने वाले फिर भी मिल जायेंगे, परन्तु न्याय को कहने वाले

मिल ही नहीं रहे हैं। आपका यह कर्तव्य बनता है कि जैसे तुम प्रतिष्ठा के बाद श्रावकों को नियम दिलाते हो, वैसे ही श्रावकों को तुम यह प्रतिज्ञा दिलाओ कि जिनवाणी का स्वाध्याय करो और न्यायशास्त्र को खोलो। समझ में नहीं आ रहा है, तब भी बहुत-कुछ समझ में आ रहा है। ब्रह्मविद्या का लोप नहीं होना चाहिये। क्यों? सारी विद्यायें तो मात्र ब्रह्मविद्या के पास ले जाने के लिये हैं। ब्रह्म में लीन होने के लिये ब्रह्मविद्यायें हैं। अध्यात्मविद्या का नाम है ब्रह्मविद्या। जो 'समयसार' सुनते हो, वही ब्रह्मविद्या है। इतनी गूढ़ ब्रह्म की बात करने वाला ब्रह्माण्ड में कोई अन्य ग्रन्थ नहीं है आज तक। ये तो अहोभाग्य मानो। चाहे जैनियों की आम्नाय हो, चाहे देश की अनेक साम्प्रदायिक परम्परायें हों, इस बात को प्रत्येक सम्प्रदाय स्वीकारता है- कि कुन्दकुन्द का 'समयसार' भारत की भूमि पर ही नहीं, विश्व की भूमि पर भी इकलौता ग्रन्थ है और यह आगरा पहला नगर है जहाँ पर अकबर, औरंगजेब और शाहजहाँ आदि बादशाहों ने इसको फारसी में अनुवाद करवा करके समयसार ग्रन्थ का वाचन करवाया था। एक अजैन सम्राट होकरके भी जैनविद्या को सुनना चाहता था। आप इतने अहोभाग्यशाली हो कि जिस कुल में आपको वह ग्रन्थ सिर में रखने को मिलता है और सुनने को मिलता है।

अपना अहोभाग्य यह मत मानना कि मैं जैनकुल में, सम्पत्तिशाली कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। तुम्हारा अहोभाग्य यह है कि मैं उस कुल में जन्मा हूँ, जिस कुल में श्री जी व श्री जिनवाणी सुनने को मिलती है। यह अहोभाग्य अपना है।

जगत् की कथा के उपदेश करना सरल है, लेकिन किसी की कथा किये बिना कथा पूरी हो जाये, वह ब्रह्मविद्या है। यही ब्रह्मविद्या है जिसमें किसीकी भी व्याख्या न हो और जगत् में इस व्याख्या से कोई व्याख्या छूटी ही नहीं है। इसमें न तो राम की व्याख्या हुई, न महावीर की, न कृष्ण या ऋषभदेव की?

फिर भी इस व्याख्या में छूटा कौन है? क्या ऋषभदेव आत्मा नहीं हैं? क्या नारायण कृष्ण आत्मा नहीं हैं? क्या बलभद्र राम आत्मा नहीं हैं? जगत् में जितने जीवद्रव्य हैं, सभी आत्मायें हैं, ब्रह्मस्वरूप हैं। इस ब्रह्मविद्या में जगत् के सम्पूर्ण

जीवों की व्याख्यायें है। कुछ तो है। इसलिये आज से आगमग्रन्थों को सामान्य पुस्तक मत समझना। जो अंकित करके लाते हो, वह कीमत मत समझना। मेरे मित्रो! जयपुर से लाई प्रतिमा को तुम खरीद कर नहीं लाते हो, न्यौछावर देकर लाते हो, परन्तु अरहन्त की प्रतिमा को जो द्रव्य देकर लाये हो, वह उसकी कीमत मत समझना, वह शिल्पकार की मजदूरी समझना। प्रतिमा की कीमत पन्द्रह लाख या पच्चीस लाख मत समझना। यह शिल्पकार की मेहनत को देकर आये हो। जैसे अरहन्त की प्रतिमा की न्यौछावर देते हो, ऐसे-ही पचास/सौ/दो सौ रुपये देकर जो ग्रन्थ खरीद कर लाये हो, यह ग्रन्थ की कीमत नहीं है। यह कागजों की कीमत है, छापेखाने की कीमत है। निर्ग्रन्थों के ग्रन्थों की कोई कीमत नहीं होती है। अनर्घवान होते हैं। अरहन्त की वाणी कोई कीमतभूत नहीं होती है। कोई मरा सो ग्रन्थों को बाँट रहे , जन्म हुआ सो बाँट रहे, शादी हो रही सो बाँट रहे, यह गलत परम्परा प्रारम्भ हो गई है। ग्रन्थों की कीमत कम मत करो। तुम्हारे घर में पिता जी की तेरहवीं में जितने आये, तुम सबको ग्रन्थ बाँट रहे थे, परन्तु चेहरा तो देखना कि पढ़नेवाले कितने हैं और जाकर पटकने वाले कितने हैं? यह जिनवाणी की अविनय प्रारम्भ हो चुकी है। प्रचार नहीं हुआ, अविनय हुई है। माँ जिनवाणी क्या कह रही है, सुनिये–

जलं रक्षेत् तैलं रक्षेत्, रक्षेत शिथिल बन्धनात्।
मूर्खहस्तं न दातव्यम्, ब्रुवन्ती भारती॥

मेरी जल से रक्षा करो, मेरी तेल से रक्षा करो, मेरी शिथिल बन्धन से रक्षा करो और मुझे किसी मूर्ख के हाथ में मत दे देना। ऐसा जिनभारती कह रही है। आपने तो जो आया उसे पकड़ा दिया। कोई पैर पर रख रहा है, किसी ने जाकर मूँगफली वाले को बेच दिया। टीकमगढ़ में एक श्रावक मेरे पास दो ग्रन्थ लेकर आया। मैंने पूछा, कहाँ से लाया? बोला, ठेलेवाले से खरीदा है। श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्र कृत प्राकृत व्याकरण था। इतने प्रसिद्ध व्याकरण को ठेले पर बेचा जा रहा था। वहाँ से खरीदकर श्रावक लाया। ज्ञानियो! ध्यान रखना, दीपावली की सफाई में जिनवाणी की सफाई मत कर दिया करो। हर घर में जिनवाणी

होना चाहिये। आज जो हमारे सामने जिनवाणी है, वह घर-घर की संरक्षित जिनवाणी ही हमारे सामने आयी है। घर में गृहस्थी की कितनी सामग्री रखते हो, ऐसे ही एक कक्ष में जिनवाणी होना चाहिये। तुम्हारा पढ़ने में मन लगे या न लगे, तो भी पढ़ो। तब भी हर घर में जिनवाणी होना चाहिये। बड़े-बड़े ग्रन्थ होना चाहिये। क्या मालूम किस जीव का कब मन मचल जाये तो हमारे धर्मस्थानों पर उपद्रव हो जाये। घर-घर में जिनवाणियाँ सुरक्षित रहेंगी तो वही हमारे सामने आयेंगी। कम-से-कम देखता तो रहेगा कि मैं जैन हूँ। जिनवाणी ही नहीं दिखेगी तो तू भूल जायेगा कि मैं जैन हूँ।

आर्यिका ज्ञानमती माता जी की जब शादी हुई थी तो उनकी माँ ने अपनी बेटी को 'पद्मनन्दि पंचविंशतिका' ग्रन्थ भेंट किया था। उस ग्रन्थ की महिमा देखो, कितना ज्ञानी जीव उत्पन्न हुआ कि सारे देश में ज्ञानमती के ज्ञान का विकल्प नहीं है। देखो आप। गुण कहने में कभी दरिद्रता मत लाना। जिसका मार्दव आर्जव धर्म पलायन कर चुका है, वह कभी गुणियों के गुण को कहने में समर्थ होगा ही नहीं। जिसके भीतर से आर्जव-मार्दव धर्म पलायन कर चुका है, उस जीव को जगत् में कोई भी व्यक्ति अपने अलावा गुणी नहीं दिखेगा। संस्कारों का मुनि 'मूलाचार' से बना दिया है, भीतर का मुनि 'समयसार' से बन कर जीना है। 'समयसार' पढ़कर भीतर न जायें, तो समयसार का बोध क्या? प्रपञ्च करने-धरने की दृष्टि तभी तक है, जब तक ब्रह्मविद्या का भान नहीं है। यहीं देखो, इन रागियों के चेहरे कैसे उदास दिख रहे हैं। इस विद्या को सुन करके तो विरागी का चेहरा कैसे विलासित होगा? हो ही नहीं सकता।

हे आत्मन्! ब्रह्मज्ञानी श्रमणों/योगियों ने कहा है कि बुद्धिमान अपनी विषयाभिलाषा का शमन करते हैं और इन्द्रिय-वासनाओं को चित्त से हटा करके आत्मसाधना में लगाते हैं।

उन ज्ञानियों से कह देना कि शब्दशास्त्र का बोध भिन्न है और आत्मतत्त्व का बोध भिन्न है। भूल यही चल रही है। ज्ञानी शब्दशास्त्र को तो समझ रहा है, परन्तु परमतत्त्व को नहीं समझ रहा है। यह निर्णय कर लेना चाहिये। कि

जब तक इन्द्रियविषयों में लिप्सा है, तब तक परमतत्त्व का बोध नहीं है। जिसको परम तत्त्व का बोध हो गया है, वह इन्द्रियविषयों में लिप्त हो ही नहीं सकता। एक म्यान में दो तलवारें कैसी? जिसके नयनों में मृगनयनी निवास कर रही है, उसके ब्रह्म का वास कैसा? जहाँ ब्रह्म का वास है, वहाँ मृगनयनी का निवास कैसा? जिसके नयनों में मृगनयनी नारी निवास कर रही है, उसमें आत्मब्रह्म का निवास नहीं है। जहाँ आत्मब्रह्म का वास है, वहाँ जगत् की नारियों का निवास नहीं होता है। यही ब्रह्मज्ञान है। हे ज्ञानी! ध्रुव सत्य है कि इस परम तत्त्व को जिस दिन समझेगा, उस दिन सारे जगत् से मध्यस्थ हो जायेगा। वासनाओं का उपशमन तो अज्ञानी मिथ्यादृष्टि भी कर सकता है, परन्तु मिथ्यात्व का उपशमन सम्यग्दृष्टि ही कर पायेगा। सम्यग्दृष्टि मोक्षमार्गी है। स्पष्ट करता हूँ। जब तक आपके हृदय में साम्प्रदायिक राग रहेगा, पंथ का राग रहेगा, संत का राग रहेगा, तब तक ब्रह्मविद्या से शून्य रहेगा। हे ज्ञानी! एक समय में एक ही अनुभूति होगी, दो की अनुभूति नहीं होगी। हटना पड़ेगा। उपेक्षा भाव सीखना ही पड़ेगा। उत्कृष्ट तप, उत्कृष्ट संयम, उत्कृष्ट साधना, भट्ट अकलंक स्वामी की दृष्टि में, उपेक्षा भाव है।

स्व-परञ्चेति वस्तुत्वं, वस्तुरूपेण भावय।
उपेक्षाभावनोत्कर्ष पर्यन्ते शिवमाप्नुहि ॥ 20 स्व.सं. ॥

'महाराज जी! मैं आया।' ठीक है। 'मैं जा रहा हूँ।' ठीक है। ऐसा है, वैसा है। क्या है? जो है, सो है। कुछ नहीं। यथार्थ मानना।

यदि सुखी जीवन जीना चाहता है तो कुछ नहीं करने का। 'जो है, सो है।' माँ ने खीर परोसी, अब उसको चैन नहीं पड़ती। बेटा! कैसी है? अब माँ! 'जो है, सो है।' यदि बुरी कहता हूँ तो अब तू फिर से बनाने वाली नहीं। बस, जो है सो है।' कोई पूछे कि क्या है? 'जो है, सो है। इसके आगे कुछ है ही नहीं। शांतिमय जीवन चाहता है तो 'जो है, सो है।'

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"संसारातीत होने का कारण"

इन्द्रियाणां शमे लाभं, रागद्वेषजयेन च।
आत्मानं योजयेत् सम्यक्, संसृतिच्छेदकारणम्॥ 84॥

अन्वयार्थ-इन्द्रियाणां शमे = इन्द्रियों की इच्छा की शान्ति होने पर, **च रागद्वेषजयेन** = और राग-द्वेष को जीत लेने से, **लाभं** = आत्मा का कल्याण है इसलिये, **आत्मानं** = अपने को, **सम्यक्** = भले प्रकार, **संसृतिच्छेद कारणम्** = संसार का विनाश करने वाले दम्भ, दम त्याग, तप और समाधि रूप कारणों में, **योगयेत्** = अपने को लगाना चाहिए।

भावार्थ—इन्द्रियों के विषयों का शमन कर और रागद्वेष पर विजय प्राप्त कर संसृति के नाश में कारणभूत कल्याण मार्ग में आत्मा को भली प्रकार लगाना चाहिये।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी ग्रन्थ में ध्रुव ज्ञायक-स्वभावी भगवान्-आत्मा के भूतार्थ स्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। सत्य को समझ पाना बहुत कठिन है। जिस दिन सत्य समझ में आ जायेगा, उस दिन से जगत् की समझ जीवों के अन्दर स्वतः प्रवेश कर जायेगी। कितना सारा जीवन असत्य का जीवन है। जिनसे तुम्हारा सम्बन्ध नहीं, जिनसे तुम्हारा मेल-मिलाप नहीं, ऐसे द्रव्यों से जीव अपने अपको मूर्छित किये है ऐसे द्रव्यों में अपने आपको उलझाये हुये है। एक श्वास प्रमाण काल भी निज की स्वतन्त्र सत्ता का बोध हो जाये, तो सत्य जीवन प्रारम्भ हो जाये। मैं और मेरे का भाव असत्य का जीवन है। जिसमें 'मैं' शब्द रखा है, वह काषायिक भाव है, अहं भाव है। जिसमें मेरा शब्द लगा है, वह ममत्व भाव है। जिसमें 'मैं' आ रहा है, अहं बुद्धि है। 'मेरे' आ रहा है, ममत्व बुद्धि है। ये दो बुद्धियाँ ही जीव को पंचमकाल तक लेकर आयी हैं। इनका आपको तो अभिवादन करना चाहिये। क्यों? क्योंकि इनके नियोग से ही आपको पंचमकाल में आने का सौभाग्य मिला है।

अहमेदं, ममेदं। अहं बुद्धि और ममेद बुद्धि। ये दो बुद्धि ही जीव को भ्रमित किये हैं। मद्य का नशा उतरने में समय नहीं लगता, वह तो एक या दो घण्टे में उतर जाता है, लेकिन अहमेदं-ममेदं भाव का नशा अनादिकाल से लगा हुआ है। मोक्षमार्ग पर चलनेवाला जीव जब घर छोड़कर चला था, तब तेरे मन में भाव था कि परिवार में कल्याण नहीं हो सकता है। अरे! परिवार तेरे कल्याण को नहीं रोक रहा था। परिवार में ममत्वबुद्धि नहीं छूट पा रही थी, इसलिये तू परिवार छोड़ कर आया था और परिवार छोड़ने के बाद भी, बाहर आकर के भी, वही अहं बुद्धि नष्ट नहीं हुई, वही चलती रही, तो स्थानान्तरण तो हुआ है कषाय का, अभाव नहीं हुआ है। स्थानान्तरण मोक्षमार्ग नहीं है। कषाय का उपशमन मोक्षमार्ग है।

ज्ञानी! जिसका जिसमें राग जा रहा है, वह द्रव्य से बंधस्थान बन रहा है। अरहन्त की प्रतिमा भी बन्धस्थान है। एक जीव चन्द्रप्रभु जिनालय में आया और चन्द्रप्रभ स्वामी के बिम्ब को देख करके कहता है प्रभु! आपकी वीतराग दशा को देख करके, आपके द्रव्य-गुण-पर्याय को देखकरके मुझे आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय का भान होता है। ऐसे भाव से वन्दना कर रहा है, सो विशुद्धिस्थान को प्राप्त हो रहा है और दूसरा जीव यों कह रहा है। महाराज! ये हमारे दादा जी ने निर्माण करवाये हैं। यह हमारी वंशपरम्परा का मन्दिर है, इसको मैं ही चलाता हूँ।

हे ज्ञानी! तुझे वीतरागता किञ्चित् मात्र भी नहीं झलकी। तुझे तो अपनी परम्परा दिख रही है। परम्परा की रक्षा के लिये तूने भगवान् विराजमान किये हैं, आत्मरक्षा के लिये नहीं किये। वस्तु एक है, दृष्टि दो हैं। एक चन्द्रप्रभु भगवान् की वन्दना करके विशुद्धिस्थान को प्राप्त हो रहा है और दूसरा चन्द्रप्रभु स्वामी के मन्दिर में आ करके संक्लेश-स्थान को प्राप्त हो रहा है। अहमेदं-ममेदं दृष्टि तो बन्ध-दृष्टि है। जहाँ सर्वज्ञ की वीतरागता पर दृष्टि है, वह निर्ममत्व दृष्टि है, विशुद्धि-स्थान है। स्थानान्तर नहीं होना चाहिये। विशुद्धिस्थान बनाना चाहिये कोई अपना नगर छोड़कर चला गया और भीतर से नहीं छूटा, तो क्या छूटा? यदि मन में ईर्ष्या भाव आ रहा है कि चलो, मन्दिर जा रहे हैं, घरके क्लेश से

तो बचूँगा। ऐसा क्यों सोचने का? मन्दिर के साथ घर के क्लेश से बचूँगा, ऐसा सोचा तो तूने क्या किया? भगवान् को निहारने के साथ 'क्लेश' शब्द को सामने लाया है, यानि क्लेश तेरे ज्ञान में आ चुका है। यह जैनदर्शन का रासायनिक विवेचन है, इसे ध्यान से समझना। घर के क्लेश से बचूँगा तो सबसे पहले घर झलका, फिर क्लेश झलका, इसके बाद भगवान् दिखे कि नहीं दिखे? पहले ज्ञान में घर आया फिर क्लेश आया। जैसे घर ज्ञेय बना, क्लेश ज्ञेय बना, तुरन्त भाव ही तो थे।

ओ हो! मैं कैसे घर में जन्मा, कैसे कुल में जन्मा जहाँ एक क्षण को भी शान्ति नहीं मिलती है। हे भगवान्! क्या करूँ? मेरी पर्याय ऐसे-ही निकल जायेगी? विश्वास रखना। अब तू मन्दिर तो आ चुका, भगवान् भी तेरे सामने हैं, तू भगवान् के सामने है। तू भक्त नहीं है, संक्लेशी जीव है। प्रभु के पादमूल में रुदन कर रहा है और असाता का बन्ध कर रहा है। कहाँ कर रहा है? अरहन्त के पादमूल में निर्ग्रन्थ के पाद मूल में, जिनवाणी के पादमूल में, क्योंकि तेरे ज्ञान का ज्ञेय है भगवान् मेरे घर में क्लेश होता है। हे ज्ञानी! तेरे ज्ञान में जो ज्ञेय बन कर बार-बार आ रहा है वह कौन-सी वस्तु आ रही है? भगवान् मेरे घर में क्लेश होता है।

राजा के सामने न्याय कराने के लिये कोई अपराधी खड़ा है। उसने राजा की अनुभूति की कि अपने अपराध की, कि न्यायालय की अनुभूति ले रहा है? वहाँ बड़े-बड़े न्यायाधीश जिस विषय में ज्ञाता हों, उस विषय की अनुभूति भी दिखाई देनी चाहिये। तेरे मुख में गुटका भरा हुआ था और पिता जी मुख में मिश्री दे देते हैं, अब बताओ दोनों का स्वाद एकत्वभूत होगा कि द्वैत्वभूत होगा? न तू शुद्ध मिश्री चख पा रहा है, न उसका जो मुख में रखा था। ऐसे-ही तू अरहन्त के पादमूल में आ करके भक्ति करने आया था, लेकिन घर के दुःख को रोने लगा, तो न अरहन्त का आनन्द ले पा रहा है, न अच्छे से घर का दुःख ही रो पा रहा है। तेरा आनन्द नष्ट हो रहा है। हे भगवान्! मेरे घर में बहुत क्लेश है, परन्तु हे ज्ञानी! तूने अरहन्त को नहीं देखा। जो तेरे ज्ञान में घर ज्ञेय बन कर

आया हुआ है, घर का क्लेश आया है। बताओ मन्दिर में तुम्हें क्या झलक रहा है?

ज्ञानी! क्लेश जो तेरा ज्ञेय बन रहा है वही तेरा ध्येय बन रहा है। जो ध्येय बन रहा है, वहीं तेरी धारणा चल रही है। जो धारणा चल रही है, वही तेरी कर्म-आस्रव की धारा चल रही है। लोक कहेगा कि धर्मात्मा मन्दिर में बैठा है। स्वयं भी सोच रहा है। कम-से-कम मैं मन्दिर में बैठा तो हूँ, लेकिन ध्रुव सत्य है कि आप मन्दिर में अवश्य हो, स्वयं की आँख में मन्दिर में हो, पर की आँख में मन्दिर में हो, परन्तु वीतराग अरहन्त की कैवल्य की आँख में मन्दिर में नहीं हो। चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों ने आपको सात आँखें दी हैं। 'लघीयस्त्रयी' ग्रन्थ में अचार्य अकलंक स्वामी ने यही लिखा है—हे वर्द्धमान! आपने सारे विश्व को सात आँखें दी हैं स्याद् अस्ति, स्याद्नास्ति, स्याद् अस्ति-नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद्-नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य, ये सप्त नेत्र हैं। इन सप्त नेत्रों से जो वस्तु को समझता है, वही अनेकान्त को समझ पाता है। जो अनेकान्त को समझ लेता है, उसके मन में न कभी अहमेदं भाव आयेगा, न ममेदं भाव आयेगा। फिर वह यूँ नहीं कहेगा कि हे भगवान्! मेरे घर में बहुत क्लेश है।

जो क्लेश है वह कौन कर रहा है? पत्नि कर रही है, कि पुत्र कर रहा है, कि माँ कर रही है, कि पिता कर रहा है? हे ज्ञानी! जब तू जिनालय में आ ही चुका था, तो उनको वहीं छोड़ आता। तीर्थंकर के पादमूल में उनको छोड़करके आना और भगवान् से मत कहना प्रभो! मेरे घर में बहुत क्लेश है। वहाँ तो यह कहना हे क्लेशातीत! आप अरहन्त जिनदेव हो। आपके पास जो शान्ति है, उस शान्ति का मैं वेदन कर रहा हूँ। 'क्लेश' शब्द को हटा देना। कहीं-कहीं स्मरण करोगे तो आनन्द नहीं आयेगा। भैया! यदि तू कक्ष में अंधेरे में बैठा हुआ है और कहीं तुझे शमशान की याद आ जाये। भूत नहीं लगेंगे, परन्तु भूत लग जायेंगे, भय का भूत तो लग ही जायेगा। शमशान घाट में अर्थी जल रही थी, कितने सारे लोग जल गये। कंपकपी छूट रही थी। जब घर के कक्ष में श्मशान की

याद करने पर कंपकपी छूट रही है, कहीं मन्दिर में आकरके घर की याद करेगा, तो विषयकषाय की कंपकपी छूटेगी, अरहन्त के आनन्द की अनुभूति नहीं आयेगी। क्या करें? बहुत परिश्रम चाहिये, बहुत पुरुषार्थ चाहिये। घर भी छोड़ कर आ जाते, लेकिन घर नहीं छोड़ पाते। अहमेदं ममेदं यही संसार है।

भैया! तू स्वतन्त्र है, मैं स्वतन्त्र हूँ। ज्ञानी तू सात कदम जिसके साथ चल लेता है, उसमें राग हो जाता है। जिनके साथ वर्षों-वर्षों से रह रहा है, उनमें तो गाढ़ राग बन चुका है। वस्तु आँखों के सामने नहीं होती है, तब भी वस्तु सता रही है। पूछो इन युवाओं से और अपनी युवावस्था से पृच्छना करो। जिसके चेहरे को देखकर राग हो गया और वह चेहरा सामने नहीं है, परन्तु रात्रि में नींद नहीं आ रही है, करवट बदल रहा है, धिक्कार हो। वस्तु सामने नहीं है, व्यक्ति सामने नहीं है, परन्तु भीतर प्रवेश कर गया है राग। कितने लोग अन्धे हो गये हैं। जिसको देख रहा था, वह देखने को नहीं मिला, नेत्रों की ज्योति चली गई। जिसे तूने देख लिया था, वह देखने को नहीं मिला। न कोई बुखार है, न मलेरिया है, कोई रोग नहीं है, तब भी शरीर झुलस रहा है। हे अज्ञानी! तुझे किसने आग लगा दी? कोई काड़ी लेकर जलाने आता तो कोई बुझाने भी आ जाता, परन्तु तेरे द्वारा जो तेरे में राग की आग लगाई गई है, उससे कोई बचाने भी नहीं आयेगा। जितने लोगों के शरीर सूख चुके हैं, जितने विकार खड़े हो चुके हैं, बुद्धियाँ भ्रष्ट हो रही हैं, यह किस बात पर हो रही हैं? वह भीतर जाकर देख चुका है। अब देखने को नहीं मिल रहा है, इसलिये वह पागल हो रहा है। राग प्रवेश कर जाये, तब भी परेशान है और द्वेष प्रवेश कर जाये, तब भी परेशान है। कालिया नाग हजारों कि.मी. चलकर डंसने आ जाते हैं। आगम ग्रन्थों में उल्लेख आया है कि मन्त्रवादी ने मन्त्र किया, कढ़ाही में उबलता तेल है, साँपों से कहा कि इससे निकल जाओ। जिन साँपों ने उस पुरुष को नहीं काटा था, वह निकल गये। एक भी नहीं झुलसा। जिसने डस लिया था वह सामने आ गया। मन्त्र के प्रभाव से साँप दौड़कर चले आते हैं। मंत्रवादी ने उससे कहा कि इसके जहर को खींच लो अन्यथा कड़ाही में प्रवेश करो। नाग को मालूम था कि मैंने डंसा है। मन्त्रवादी

को मालूम था कि इसने डंसा है। फन फैलाकर बैठ गया। मरना पसन्द कर रहा है, लेकिन जहर खींचना पसन्द नहीं कर रहा है और जाकर के कढ़ाही में प्रवेश कर गया। झुलस गया, लेकिन जहर नहीं खींचा।

ऐसे ही अहमेदं ममेदं की दृष्टि में जब राग-द्वेष खड़ा हो जाता है, तब जीव अपने प्राण देने को तैयार हो जाता है। शुभ परिणामों की आहुति दे देता है, परन्तु कषाय भाव के जहर को नहीं फेंक सकता। एक भैया की बहुत सारी सम्पत्ति लोग हड़पे हुये थे। एक दिन कहता है—महाराज! जब समयसार सुना ही है, तो सार क्या निकला? मैं माँगने जाता हूँ। तो मेरे परिणाम खराब होते हैं। देने वाले के परिणाम भी खराब होते हैं। दोनों अशुभ में जी रहे हैं। एक दिन कहते हैं पिता जी की, मेरी स्वयं की जो सम्पत्ति जिसके पास पड़ी हुई है आज से मैं उन सबका प्रत्याख्यान करता हूँ। मैं प्रसन्न हो गया। महाराज! आज से सुख मिल गया। दु:ख किसमें था? जब तक मैं भूमि पर ममेदं भाव रखे हुये था और देने वाला दे नहीं रहा था, कब्जा कर चुका था, वह हिलने वाला नहीं था, मात्र कष्ट जरूर लग रहा था। जिस दिन से प्रत्याख्यान कर दिया, आनन्द प्रारम्भ हो गया। पर में ममत्व ही दु:ख है। पर से निर्ममत्व ही सुख है। दु:ख का कारण है अहंबुद्धि, ममत्व बुद्धि। जगत् में कोई दु:ख नहीं होता है, मात्र आपका निज अहं ही दु:खी किये हुये है। पति सोचता है कि मैं पत्नि को अपने अनुसार चला कर रखूँगा। पत्नि सोचती है कि मैं अभागे को अपना नौकर बना कर रखूँगी। घर में क्लेश-ही-क्लेश है।

जब दो अहंकार टकराते हैं, तो क्या होता है? आपको मालूम होना चाहिये। एक चकमक की बटैया से कभी आग नहीं लग सकती। जब दो टकराते हैं, तब आग लग जाती है। ऐसे-ही दो अहंकार टकराते हैं, तो घर में झगड़ों की आग लग जाती है। चाहे समाज हो, देश हो। आप किसी भी संस्था में जाना, किसी भी क्षेत्र में जाना, यहाँ तक कि त्यागियों के बीच में भी जाओगे, जहाँ दो अहंकार टकरायेंगे, वहीं द्वेष की आग लग जायेगी। चकमक में तिलंगे फूटते हैं, परन्तु जलना बीच में पड़ी रुई को पड़ता है। दो अहंकारी झगड़ते हैं कषाय

में, सामान्य लोगों को पिसना पड़ता है। विश्वास रखना, इस भवन में किसी ने आग लगा दी हो तो लोग दौड़-दौड़ कर भाग जायेंगे, सुरक्षित हो जायेंगे, परन्तु यदि आपने अपने घर में विकारों की, कषाय भावों की आग लगा कर रखी है तो पूरा परिवार घुट-घुट कर मरेगा। **''उन माता-पिता से बड़ा कोई हिंसक नहीं होगा जो आपस में लड़ते रहते हैं और बेचारी संतान घुट-घुट कर मरती है। आज बच्चों की बुद्धियाँ नष्ट क्यों हो रही हैं? उनके माता-पिता आपस में झगड़ते हैं, उनकी अशुभ वर्गणायें बच्चों के पास आती हैं, हीन भावनायें आती हैं।''** धिक्कार हो मेरे पुण्य के लिये, मैंने कैसे पापियों के घर में जन्म लिया कि एक मिनिट शान्ति से नहीं रहते हैं। कम-से-कम इतना नियम ले लो कि छोटे-छोटे बच्चों के सामने मत लड़ा करो। माता-पिता कोई भी अशुभ चेष्टा करते हैं, उनका संस्कार बच्चों पर जाता है। निर्ग्रन्थों से कहा जाता है कि—

हे मुनीश्वर! एकान्त मैं बैठ करके अपनी साधना में लीन होना। कोई पशु-पक्षी बैठा हुआ है, तुम्हारी कोई अशुभ चेष्टा न हो जाये, पशु-पक्षी को भी तुम्हारे संस्कार समझ में आते हैं। दिगम्बर मुनिराज के आहार देखते हुये जटायु पक्षी को सम्यक्त्व हो गया था। बन्दर, नेवला, शेर ने महाराज के आहार देखे और उन्होंने सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया। कोई आहार देख रहा हो तो किसी को भगाना मत। एक सुअर को सम्यक्त्व हो गया, बन्दर को सम्यक्त्व हो गया। जीव क्या सोच रहे थे? ओ हो! मैंने मायाचारी की होगी, इसलिये तिर्यञ्च पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ, परन्तु धर्म के क्षेत्र में मायाचारी की थी, इसलिये धर्म के संस्कार भी पड़ रहे हैं। पुण्य के लिये मायाचारी करेगा तो पुण्य सुन्दर-सुन्दर फलित होगा। कुछ श्वान घूरों पर घूमते हैं, कुछ श्वान गाड़ियों पर घूमते हैं। जो गाड़ियों में घूम रहे हैं, वे पुण्य के क्षेत्र में मायाचारी करने वाले हैं। जो सुबह से रस्सियों में बांधे घुमाते मिलते हैं, वे कौन हैं? जीवित पिता को पानी नहीं पिला सका, वे पूर्व के पिताओं को डोरे से बांधकर घुमा रहा हैं।

''जैनकुल में जन्म ले करके जो हिंसक प्राणियों को पालता है, वह अरहन्त की पूजा और निर्ग्रन्थ को दान देने का पात्र नहीं बचता।'' जिनके घरों में

रस्सी में बांधे हुये श्वान हों, वे आज ही उनको अलग कर देना। तुम्हारे घर में पिंजड़े में पक्षी हो तो आज ही खोल देना। बिल्ली-कुत्तों को पालने वाला उत्तम कुलीन नहीं होता। जैसे आठ वर्ष तक का बच्चा पाप करे तो उसके माता-पिता को दोष लगता है, ऐसे-ही जिनके घर में कुत्ते-बिल्ली पल रहे हों, उसने किसी पक्षी को पकड़ लिया तो उस पालनेवाले को ही पाप लगेगा।'' आप कहोगे कि मैं चोरों आदि से सुरक्षा रखने को पाले हूँ। तो ज्ञानी! तू जितना समझदार है, उतने चोर भी समझदार हैं। जब वह चुराने आयेगा, तो वह कुत्ते की भी व्यवस्था करके आयेगा। पहरेदार भी लगा दो तो कहो पहले उसे ही ले जाये, फिर सबकुछ ले जाये। बाकी आप समझदार हो। भैया! कितना अविश्वास, घोर अविश्वास। घर में छोटी-छोटी पेटियों में ताले पड़े हुये हैं, बैगों में ताले पड़े हुये हैं, कमरों में ताले पड़े हुये हैं, कितना अविश्वास? किसके प्रति? अपने परिवार के प्रति। क्योंकि चोर को ताले से क्या? वह तो पूरी पेटी ही लेकर जायेगा, फिर आराम से तोड़ेगा। घर में पड़े छोटे-छोटे ताले परिवार के लोगों के अविश्वास के प्रतीक हैं। धिक्कार हो उन माताओं को जो अपने पति की जेब से भी पैसे निकाल रहे हों।

माताओ! अपनी सासू के बेटे पर करुणा किया करो। बिना पूछे निकाल तो लिये, अब बेचारा तड़प रहा है कि कहाँ गये? धिक्कार हो। जो अपने पति की तड़पन को भी नहीं समझ रही है, तेरे से बड़ा पापी कौन होगा? बुरा तो नहीं लग रहा है? नहीं, तो त्याग नहीं कर सकते हो? कर लो कायोत्सर्ग। कि बिना पूछे पैसे नहीं निकालेंगे। भैया! इनको चोरी मत सिखाना, पहले दे देना। बच्चों के माता-पिता ने ही बिगाड़ा है। इनकी आवश्यकता की पूर्ति पहले कर दो तो ये तुम्हारी जेब क्यों टटोलें?, जब उनको नहीं मिलता है, तो पड़ोस की चोरी करना सीखते हैं। धीरे-धीरे वही डाकू बन जाते हैं। माता-पिता को ऐसा काम करना चाहिये कि उनकी आदत भी न बिगड़े और चोर भी न बने। वर्तमान की संतान को पापी मत बनाओ, डाकू मत बनाओ। इनको देखकरके मुस्कुराओ। सनातन धर्म को यही तो लेकर चलने वाले हैं। इनको अच्छे बना कर रखो।

पूर्व के पुण्य का नियोग समझना कि भरी सभा में तुझे आगे बैठने का सौभाग्य मिला है, प्रवचन-हॉल में बैठे हो। विश्वास रखना, इस भवन में आने के बाद जब बाहर जाते हो तो रोड़ पर खड़ा पुरुष आपको सम्मान की दृष्टि से देखता है। इस सभा का दुरुपयोग मत कर लेना, बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। भिण्ड में प्रवचन के पहले मुझे मंगलाचरण के लिये खड़ा किया गया। मंगलाचरण के बाद पूरी समाज मुझे बड़ी आदर की दृष्टि से देख रही थी और लोग कह रहे थे। भैया! मेरे घर भोजन को चलो। एक महाराज की सभा में मंगलाचरण कर दिया तो बुजुर्ग लोग हाथ-जोड़े खड़े रहते हैं, भैया! चलो, मुझे शर्म लगती थी। आज भी वे वृद्ध लोग युवा के पैर दबाने आये। विशुद्धसागर! मुस्कुराओ मत। ये तुम्हारे पैर नहीं दबा रहे हैं, ये रत्नत्रय की विनय है। ज्ञानी! यदि रत्नत्रय को प्राप्त करके तुमने निर्दोष पालन नहीं किया तो पैर दबवा करके तुम मायाचारी कर रहे हो। ऐसी-ही ये सफेद धोती-दुपट्टा वाले बैठे हैं, भैया जी! इन कपड़ों को पहनते ही लोग तुमको यतिसंघ का सदस्य मानते हैं और सम्मान के साथ रखते हैं। इन वस्त्रों के साथ कोई ऐसा काम मत कर लेना जिससे पूरे जिनशासन पर आँच आये। इनका दुरुपयोग नहीं करना।

पंचतन्त्र में एक कथा आती है। एक सम्राट था। उसका एक अनुचर अच्छा काम करता था। सम्राट ने कहा कि मैं आपके काम से प्रसन्न हूँ। मैं आपको पुरस्कृत करना चाहता हूँ। वह कहता है कि आपने मेरे बारे में इतना सोच लिया, इससे बड़ा सम्मान मेरे लिये क्या हो सकता है? कि सम्राट के हृदय में मेरा निवास हो। यदि आप मुझे सम्मान देना ही चाहते हो, तो मैं आपसे न भूमि चाहता हूँ, न भवन चाहता हूँ। बस, दिन में एक बार राजसभा में मैं आपके पास आना चाहता हूँ। बस, इतना सम्मान चाहता हूँ। जब आप सिंहासन पर विराजेंगे तब मैं आपके कान में प्रतिदिन एक बात कहूँगा। बस, इतना सम्मान आप कर दो। राजा ने तथास्तु कह दिया।

अब तो कौन रोक सकता है। राजसभा में प्रतिदिन सामने से आता और राजा के कान में कुछ कहता और चला जाता। लोग तो उसको देखकर काँपने लग

गये राजा के कान का खास आदमी है, इससे बचकर रहिये। अब राजा का राज्य कम चलता है, अब तो पूरा इसीका राज्य चलता है, अतः इससे कुछ मत कहना। यह राजा के कान का आदमी है। एक दिन मन्त्रिमण्डल ने मन्त्रणा की, कि क्या बात है? अपन लोग ठण्डे पड़ गये। पूरे देश में तो इसी का नाम चल रहा है। एक दिन राजा से पूछो तो कि यह आपसे कौन-सी बात करता है?

दुर्ग के चातुर्मास में एक दिन एक ज्ञानी आये और कमरे के अन्दर आकर स्वयं साँकल बन्द कर ली और मेरे पास बैठ गये। समाज में हलचल, कि ऐसा कौन-सा काम आ गया कि वे स्वयं साँकल बन्द करके बैठे हैं। जो लेकर आये थे, उनको भी बाहर कर दिया। बोले-महाराज राजसमाज महाअघ कारण, बैर बढ़ावन हारा। मैं सम्पत्ति से, राज से, वैभव से, सबसे सुखी हूँ। लेकिन क्या करूँ? आपके दर्शन भी शान्ति से नहीं होते। लोग परिचय-ही-परिचय देते हैं। महाराज! सबकुछ मिला है, लेकिन शान्ति नहीं मिली। मैं शान्ति से आपके पास बैठना चाहता हूँ और कोई काम नहीं है। वे जब वापस चले गये, समाज के नेता आ गये, महाराज! क्या बोल गये? जो बोले, सो सुन, 'महाराज! संसार में सुख तो मिला है, शान्ति नहीं है।

मन्त्रिमण्डल ने मिलकरके राजा से पूछा हे राजन्! भरी सभा में यह पुरुष आकरके आपके कान में बोलता क्या है? पूरे राज्य में जितना नाम आपका नहीं लिया जाता, उतना उसका लिया जा रहा है। ऐसा क्या है, आखिर वह कान में बोलता क्या है? वह मात्र इतना बोलता 'हे राजन्! जयजिनेन्द्र।' बस, जयजिनेन्द्र का यह प्रभाव। जब राजा ने इतना स्थान दे दिया था, तो आपको राजा के पास आने का इतना दुरुपयोग नहीं करना चाहिये था। गाँव में महाराज आये हों, तो तुम चार दिन महाराज के साथ चर्या को चले जाना, पूरे नगर के श्रावक तुझे जानने लगते हैं कि आओ, भैया! हमारे चौके मैं खड़े हो जाओ, महाराज आ जायेंगे। ऐसे भाव बनते हैं श्रावकों के। समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है—

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु॥115 र. श्रा.॥

भक्ति करने से सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है। तपस्वियों का स्तवन करने से यश फैल जाता है।

मुमुक्षुओ! शास्त्रसभा में प्रवेश करते ही भाव बदलते हैं। जब तुम्हारे भाव यहाँ बदलते हैं, तो वह तीर्थ कितना पवित्र होगा। सम्मेद शिखर की वन्दना करके जब कोई श्रावक वापस लौटता है, तो समाज के लोग उसके पैर धोया करते हैं। वे दिन कहाँ गये जब सिद्धभूमि की वन्दना में ज्योंनार होती थी। किस बात पर हो रही है? दादा-दादी तीर्थवन्दना करके आ रहे हैं। इसलिये ज्योंनार हो रही है, भण्डार चल रहे हैं, निमन्त्रण चल रहे हैं और लोग आकरके भेंट दे रहे हैं, पैर पड़ रहे हैं। जब तीर्थ की वन्दना करने से एक गृहस्थ के पाँव पुज जाते हैं, तो तीर्थभूत वे निर्ग्रन्थ योगी कितने पूज्य होंगे जिनके चरणों से तीर्थ बने हैं।

"जे गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।"

जिनशासन में तीर्थ बनाये नहीं जाते। जहाँ निर्ग्रन्थों के चरण पड़ जाते हैं, वहीं पर तीर्थ बन जाते हैं। निर्ग्रन्थों के चरण ही तीर्थभूमि हैं। **'रयणत्तय तित्थं'** ऐसे तीर्थ में आकरके भी तिरने की कला नहीं सीख पाये, राग-द्वेष के परिणाम रख पाये, तो अब पंचमकाल में कल्याण का कोई मार्ग नहीं है। भैया! देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में भी रागादिक के परिणाम रखे, तो पंचमकाल में तिरने का अब कोई मार्ग नहीं है। अब आपको महावीर स्वामी तो समझाने नहीं आयेंगे। ज्ञानी! यदि महावीर स्वामी आ गये, तो वे महावीर स्वामी नहीं रहे। सम्भल जाओ भैया! सम्भल जाओ। अहमेदं-ममेदं के राग में ही भीतर की शान्ति नष्ट हो रही है। कषाय की ज्वालायें भड़क रही हैं। आज से जब -जब भगवान् की वन्दना करने जाना, कुछ भी नहीं माँगने का, स्व में इतनी बात करने का कि अपनी स्वतन्त्रता को जान लो, बस। जगत् का मिलना, नष्ट होना, यह सब पुण्य-पाप का परिणमन है। पूछो इन वृद्धों से। इनने कोटि-कोटि गिन लिये और कोटि-कोटि चले गये। दादा जी! करोड़ों गिन लिये और करोड़ों गये। इस पर कोई विकल्प मत करो। बस, अपनी स्वतन्त्रता का भान हो जाये इस पर्याय में। बस, इतना ही करके चले जाओ, अपनी स्वतन्त्रता को पहचान लो।

मुमुक्षु! उपेक्षा भाव को सीखना पड़ेगा। आप लोग सुखी होना चाहते हो, आनन्दित होना चाहते हो तो स्वतन्त्रता को पहचानना। तेरे सगे भाई के भाव तेरे से मिलते नहीं हैं। जिस माता-पिता ने तुझे जन्म दिया, उनके भाव भी तेरे से नहीं मिलते। यदि मिल गये होते, तो इस मंच की ओर देखो, ये सब कपड़े उतारकर मुनिराज कैसे बन गये? इनके माता-पिता से भाव मिल गये होते तो ये भी घर में बैठे होते। इससे आपको मालूम होना चाहिये कि प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र है। तेरा भैया इन्जेक्शन लगा रहा है, तू ब्रह्मचारी बन कर बैठ गया। ज्ञानी! प्रत्येक का परिणमन स्वतन्त्र है। जो निर्ग्रन्थों को देखकर सोचता है कि कैसे पागल लोग हैं? इतने बढ़िया सुख को छोड़कर चले गये। वे ही पक्के पागल लोग हैं। आप को बुरा नहीं लगता मैं ऐसी-ऐसी सुना देता हूँ? अब क्या करूँ, महाराज! 'जो है, सो है।' क्या सोच रहे हो? कोई काम में नहीं आता। वस्तुस्वभाव स्वतन्त्र है। वस्तुस्वभाव पर दृष्टि चली गई तो आपको सब समझ में आ जायेगा।

आज घर जाकर 'मैं और मेरा' करोगे क्या? न मैं-मैं करना, न मेरा-मेरा करना। जो मैं-मैं करता है, उसे पत्ती खाने वाला बनना पड़ेगा। जो अहं-अहं करते हैं, उन्हें गलियों में लम्बी नाक लटका कर घूमना पड़ता है। जिनको ज्यादा अहंबुद्धि का भाव है, वह लम्बी नाक के पीछे सबकुछ करने को तैयार है। उनको लम्बी नाक भी मिलेगी, तिलक भी लगेंगे और घण्टियाँ भी बजेंगी और गलियों में घूमना पड़ेगा, हाथी बनना पड़ेगा। आज से न अहं-अहं करना और न मैं-मैं करना। यदि बचना है तो। घणा आनन्द है, इसमें कोई शंका नहीं। हे सर्वज्ञ! आपकी वाणी की क्या महिमा है, अपन को तो कभी भरत चक्रवर्ती, कभी राजा श्रेणिक की याद आती है कि हे श्रेणिक! तू कितना भाग्यवान् होगा, साक्षात् महावीर स्वामी के समवसरण में बैठ करके तीर्थंकर के श्रीमुख से साक्षात् श्रुत को सुना होगा। अपन तो मुनि या आचार्यों से सुनते हैं, वह साक्षात् तीर्थंकर भगवान् से सुन रहा होगा। क्या अद्भुत आनन्द आता होगा। सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि आगरा के मुमुक्षु साक्षात् तीर्थंकर के नहीं होने पर भी भगवान् की वाणी सुन रहे हैं यह पर्याय भी भगवान् के ज्ञान में झलक रही होगी।

इन्द्रियाणां शमे लाभं, रागद्वेषजयेन च।
आत्मानं योजयेत् सम्यक्, संसृतिच्छेदकारणम्॥84 सा. स.॥

आचार्यभगवान् कह रहे हैं-हे मुमुक्षु! इन्द्रियों के विषयों का शमन जिसने कर लिया है और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर लिया है, ऐसे जीव को आत्मा में भली प्रकार से लगना चाहिये। क्यों? संसार की सन्तति का छेद करना है, संसारभ्रमण का नाश करना है, तो सबसे पहले इन्द्रियों को शान्त करो, उपशमन करो और राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करो, तभी संसार का नाश सम्भव है। जो राग-द्वेष नहीं छोड़ पा रहा है, जिसके अन्तस् में राग की ज्वाला भड़क रही है, द्वेष की ज्वाला भड़क रही है, वहाँ संसार का नाश बहुत दूर है। अग्नि से भी महाअग्नि है राग।

''अग्नि तो ईंधन के सद्भाव में जलाती है, लेकिन राग और मोह की ऐसी अग्नि है जो वस्तु हो तब भी जलाती है और वस्तु न-हो, तब भी जलाती है। मोह-अग्नि उत्कष्ट है, जो वस्तु के सद्भाव में भी जलाती है और वस्तु के अभाव में भी जलाती है। कितने जल चुके, फिर भी नहीं जले। जलने के पहले जलना छोड़ो। इस देह के जलने के पहले कषायभाव ईर्ष्या में जलना छोड़ो।'' माताओ! जलने के पहले जलना छोड़ो। अब समझ लो कि सबसे ज्यादा कौन जलता है। जलने के पहले जलना छोड़ दिया, तो कभी नहीं जलना पड़ेगा। कर्पूर की भाँति उड़ जायेगा। वे ही जलते हैं, वे ही जलाये जाते हैं, जो जलते हैं। जो जलना छोड़ देते हैं, वे जलाये नहीं जाते हैं। वे परम औदारिक शरीर को प्राप्त करके निर्वाण को प्राप्त करते हैं। उनका शरीर कर्पूर की भाँति उड़ जाता है। इसलिये जलने के पहले जलना छोड़ो।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

जीवन की सफलता

इन्द्रियाणि वशे यस्य, यस्य दुष्टं न मानसम्।
आत्मा धर्मरतो यस्य, सफलं तस्य जीवितम्॥ 85॥

अन्वयार्थ—यस्यवशे = जिसके वश में, **इन्द्रियाणि** = पाँचों इन्द्रियाँ हैं, **यस्यमानसं** = और जिसका मन, **दुष्टं न** = दुष्ट या दोषी नहीं है, **यस्य आत्मा** = जिसका आत्मा, **धर्मरतः** = धर्म में रत है, **तस्य जीवितम्** = उसका जीवन, **सफलं** = सफल है।

भावार्थ—जिसकी इन्द्रियाँ वश में हैं, जिसका मन पापों से कलुषित नहीं है, जिसकी आत्मा धर्ममार्ग में रत है, उसी मानव का जीवन सफल है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवान् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में ध्रुव ज्ञायक-स्वभावी-भगवान् आत्मा के विकारी व अविकारी उभय भावों की व्याख्या कर रहे हैं। अविकारी को अविकारी कहने वाले कोटि-कोटि जीव हैं, विकारी को विकारी कहने वाले कोटि-कोटि जीव हैं, परन्तु विकारी में अविकारी को देखने वाले जीव बिरले ही हैं। जो विकारी को विकारी मान रहा है और उसमें लवलीन हो रहा है, वह बहिरात्मा है। जो विकारी में अविकारी को देख रहा है, वह अन्तरात्मा है। विकारों को पहचानना और विकारों का त्यागना, यह बहुत बड़ी विद्या है। पौद्गलिक द्रव्यों से आत्मतत्त्व को समझना और आत्मद्रव्य से पौद्गलिक द्रव्यों को समझना, यह आगम की प्राचीन शैली है। एक स्कन्ध को परमाणुभूत बनाने की क्षमता किसी दूसरे में नहीं है, उस स्कन्ध में ही है। स्कन्ध का विघटन ही परमाणु अवस्था को प्राप्त होता है और परमाणु का संघटन ही स्कन्ध अवस्था को प्राप्त होता है। परमाणु कार्यभूत परिणत होता है, परमाणु कारणभूत परिणत होता है। दृष्टियाँ कितनी विशाल और उपयोगभूत हैं। जब द्रव्य को द्रव्यत्व दृष्टि से देखते हैं, तो सारे द्रव्य में मात्र सत्ता नजर आती है। जब द्रव्य की पर्यायों

को देखते हैं, तो नाना विकार समझ में आते हैं। जब द्रव्य में द्रव्यत्व देखते हैं, तो सत् नजर आता है। जब द्रव्य में पर्यायों को देखते हैं, तो विकार नजर आते हैं। विकार तो पर्यायों की दृष्टि में है, द्रव्यत्व अविकार है।

इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति क्यों हो रही है? तू द्रव्यत्व को नहीं देख रहा है, तू पर्याय को देख रहा है। विकार क्यों खड़े हो रहे हैं? वेदक भाव से नहीं देख रहा है, वेद को देख रहा है। स्त्री को देख रहा है, पुरुष को देख रहा है, नपुंसक को देख रहा है, इसलिये विकार आ रहे हैं। पर्याय को देख रहा है, इसलिये विकार आ रहे हैं। स्त्री, पुरुष, नपुंसक इन तीन वेदों में जो विराजा है, वह जीवद्रव्य है। अविकारी तो भगवान्-आत्मा है। उस भगवान्-आत्मा को देखो तो विकार कहाँ है? अविकारी भगवान्-आत्मा है। जो आँख दौड़ रही है, वह आँख नहीं दौड़ रही है, आँख में ज्ञान (आत्मा) का विपर्यास दौड़ रहा है। विपर्यास स्व-अपेक्षा पूर्ण नहीं होता है। विपर्यास पर-अपेक्षा पूर्ण होता है। द्रव्य में जो -जो विकार है, वे सारे पर-सापेक्ष हैं। निरपेक्ष-दृष्टि स्वयं की है, निमित्त-दृष्टि पर की है।

कठिन शब्द हैं, ऐसा कह करके तत्त्व को समझने का उत्साह भंग मत कर लेना। अपनी प्रज्ञा में, अपने ज्ञान में, अपने क्षयोपशम में उत्साह भरिये। जो मैं कह रहा हूँ, उसे सुनने के साथ समझिये। विपर्यास इन्द्रियों में नहीं है। विपर्यास पर सापेक्ष है। इन्द्रियों में ही विकार नहीं होते हैं। इन नेत्रों को मत फोड़ देना। ऐसे ज्ञानी मत बनना जो इन्द्रियों को वश करने के राग में आँखें फोड़ बैठे। आँखें फोड़ करके भी इन्द्रियों का विकार नष्ट नहीं हो सकता। यदि आँखें फूटने से ब्रह्मचारी बनते हैं, तो विश्व के सारे अन्धे ब्रह्मचारी हो जायेंगे। नेत्रों के फूटने से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता है, इन्द्रियों के नष्ट करने से शील नहीं पलता है। भीतर के भगवान् को निहारने से शील का पालन होता है। जिसका क्षयोपशम इन्द्रियों में घूम रहा है, वह ब्रह्म पर कभी दृष्टि नहीं डाल सकता है। जिसका ज्ञान, ज्ञान में ही गमन करेगा, वही संयम में जी सकेगा। जब कोई चिन्ता का विषय आता है तो कुछ लोग माथे/मस्तष्क पर हाथ लगाते हैं। कुछ लोग आँखों

पर हाथ लगाते हैं। जब भी तनाव होता है, सबसे पहले यही गरम होते हैं। जब कोई आनन्द का विषय होता है, तो सबसे पहले ठण्डा यही होते हैं। नाड़ी हाथ में देखी जाती है, विवेक सिर में देखा जाता है। हर व्यक्ति के हाथ अपने मस्तिष्क पर नहीं लगाना और हर व्यक्ति की बातें नहीं सुनना।

छुई-मुई, लाजवंती एक वृक्ष होता है। उसको छू लो तो वह मुरझा जाता है। उस वनस्पति में इतनी संवेदना होती है कि वह संकुचित हो जाती है। **''अधिक सुनने से यह मस्तिष्क संवेदनशील होता है। अधिक सोचने से पागलपन छाता है। तत्त्व-चिन्तन से कभी जीव पागल नहीं हो सकता। जब भी पागल होता है, बाहर के, पर के सोचने से होता है। आत्मस्वभाव का चिन्तन करने से कोई पागल नहीं होता, परमात्मा होता है। तत्त्वचिन्तन से पागल नहीं होता, परमात्मा बनता है। पर के बारे में जो-जो सोच रहे हैं वे पागल हो जाते हैं; उन्मत्त हो जाते हैं। पर का चिन्तन करोगे तो पागल हो जाओगे। नारी, पुरुष का चिन्तन करके पागल हो जाती है। पुरुष, नारी का चिन्तन करके पागल हो जाता है। धन का चिन्तवन करके पागल हो जायेगा, लेकिन आत्मधर्म का चिन्तन करने वाला कभी पागल नहीं हो सकता। तत्त्वनिर्णय से ही पागलपन शान्त होगा।''** श्री राम, लक्ष्मण के शरीर को छह माह तक लिये घूमते रहे। किसके समझाने पर समझ में आया? जब स्वयं की कषाय का समय पूर्ण हुआ, तो विवेक जाग गया। पर का चिन्तवन ही पागल करता है। हे पुरुष! तू स्वतन्त्र है। पुरुष यानि आत्मा। दूर-दूर बैठ जाओ तो गर्मी नहीं लगती है। जब-जब परवस्तु तुम्हारे चिन्तन में आती है, तो विकारों की गर्मी प्रारम्भ हो जाती है और जब परवस्तु से निज को दूर कर लेता है तो विकारों की गर्मी ठण्डी हो जाती है।

कभी-कभी मेरे मन में एक भाव आता है कि जो विद्या मेरे मस्तिष्क में झलक रही है, उस सारी विद्या को सारे विश्व को एकसाथ पिला दो, लेकिन इतनी सामर्थ्य शब्दों में ही नहीं है। जो-जो जगत् में विकारमयी व्याख्यान है, जो-जो जगत् में सम्यक्-मिथ्यात्व की व्याख्यायें हैं, ये सारी-की-सारी व्याख्यायें बहिः प्रमेय की अपेक्षा से है, भाव-प्रमेय की अपेक्षा से वस्तुस्वभाव त्रैकालिक एकत्वभूत है।

ज्ञानी! जिनागम में कितना रहस्य भरा हुआ है, मैं बहुत थोड़ दे पाता हूँ। जो आपके बीच में लखा जा रहा है, अत्यन्त न्यून है। जो-जो विकार है, पर-सापेक्ष है। पर्याय विकारी हो रही है। विकारी पर्याय को देखता है, इसलिये विकार को प्राप्त हो रहा है। द्रव्यत्व को देखे तो मात्र पर का ही है। बर्तन तो बर्तन है। बर्तन पानी नहीं है। बर्तन में पानी है। सोने का कलश, रजत का कलश, ताम्र कलश, मिट्टी का कलश, इन कलशों को देख करके आप बोलियाँ लगा रहे हो और बोलियाँ लगा करके एक दूसरे के भाव उठा रहे हो, गिरा रहे हो। कोई रजत कलश, कोई रत्न कलश की बात कर रहा है। ज्ञानी! पानी से पूछो-न रजत कलश का है, न स्वर्ण कलश का, पानी तो शुद्ध कुए का है। पर बर्तन के कलशों को देख करके कीमत बढ़ रही है, कीमत घट रही है। कलशों को देख करके विकार बढ़ रहे हैं, विकार घट रहे हैं।

इस समय तुम दान की भी बात कर रहे हो। विकार से तात्पर्य पर्याय का परिणमन, भावों का विकार। विकार से तात्पर्य परिणमन, बदलाव। तुम्हें एक लाख का मुनाफा आज हुआ तो तेरे भावों में कुछ होगा कि नहीं होगा? एक घण्टे में पता चला कि एक करोड़ का घाटा हो गया तो क्या करेगा? शीघ्र ही परिणाम यों से यूँ हो जायेंगे। यही विकार है। रुढ़ि-अर्थ में विकार शब्द कामविकारों में चल गया। विकार का अर्थ है परिणमन। ब्रह्मभाव अब्रह्म में परिणत हुये हैं, परिणमन ही तो हुआ है, इसी का नाम विकार है। कलश को देखकरके एक मुस्कुराता है, आ हा! मैं गोमटेश बाहुबली के मस्तक पर स्वर्ण कलश से अभिषेक करके आया हूँ। मुस्कुरा रहा है। दूसरा कह रहा है कि मैं रत्न कलश से अभिषेक करके आया हूँ, परन्तु जो अपने घर का लोटा लेकर गया था, वह चरणों का अभिषेक करके आया है। वह शान्ति से मन-ही-मन सोच रहा है ठीक है, भैया! अपना इतना ही भाग्य था। गोमटेश में अभिषेक के समय सभी के चेहरे देखनेलायक थे। गरीब लोग अपने स्टील का कलश ही ढार रहे थे और शान्ति से नीचे उतर रहे थे ज्ञानी! जिसके हाथ में स्वर्ण कलश था, वह मुस्कुरा-मुस्कुरा कर दिखा-दिखा कर ढार रहा था। व्यवहार का पक्ष अत्यन्त स्थूल है। वह कभी भी पूर्ण सत्य नहीं होता है। व्यवहार सत्य हो गया तो सत्य का क्या होगा?

ज्ञानी! मुझे मालूम है कि मेरा नाम तात्कालिक है, त्रैकालिक नहीं है। इस पर्याय के साथ ही नष्ट हो जायेगा। मेरी देह के नष्ट होने पर मेरा नाम लेने वाला कोई नहीं बचेगा। तब भी यह ज्ञानी जीव इस पर्याय की संज्ञा के पीछे पता नहीं कितनों के परिणाम खराब करता है और कितनी बार स्वयं के परिणाम खराब करता है। दीवाल पर मेरा नाम लिख जाये, पेपरों में मेरा नाम छप जाये, तीर्थ में मेरा नाम अंकित हो जाये। सत्य यह है कि जिस पर तेरा नाम अंकित होगा, वह तू नहीं है। जिससे अंकित होगा, वह तू नहीं है। तू अंकित करेगा, वो तू नहीं है। जो तू है, वह अंकित नहीं है। बड़े-बड़े महाऋषि भी फिसल जाते हैं इस विषय के पास पहुँचते-पहुँचते, क्योंकि यह दिखाई नहीं देता है। जो मैं कह रहा हूँ, वह दिखाई नहीं देता है। दिखाई देने वाले को दुनियाँ देखती है। जो दिखाई नहीं देता, लेकिन होता है, उसे जाननेवाला कोटि-कोटि में कोई एक जीव होता है। वही सिद्ध बन पाता है। जिसे तुम पाल रहे हो, वह दिखनेवाला है। जिसके लिये पाल रहे हो, वह दिखनेवाला नहीं है। ज्ञानियो! सत्य यह है कि पाल रहे इसलिये उसे भूल ही जाता है। पालने वाले को ही पालने में पालता रहता है। स्वर्ण कलश, रत्न कलश, ये बर्तन हैं, कलश तो कलश है। पानी तो पानी है। हम कलश को देख करके पानी में भेद कर रहे हैं, हम पर्यायों को देखकर के प्राणियों में भेद कर रहे हैं। पर्यायों को देखना बन्द करो, पर्यायी को देखो। कलश देखना बन्द करो तो पानी एक है।

पर्यायों को देखना बन्द करो तो भगवान्-आत्मा एक है। सादृश्य-अस्तित्व की दृष्टि से एकत्व है। स्वरूप-अस्तित्व की दृष्टि से विभक्त है। स्वर्णकलश का पानी तो आधार में आधेय था। पानी तो पानी होता है। कलश तो कलश होता है। जहाँ से पानी प्रारम्भ होता है, वहाँ कलश का अभाव होता है। जहाँ कलश का सद्भाव होता है, वहाँ पानी का अभाव होता है। यह ताली-पीट संध्या नहीं चल रही है। यह मस्तिष्क से, विवेक से समझने का विषय है। ग्लास में पानी है क्या? सारा सत् असत्य पर जी रहा है। ग्लास पानी है क्या? जहाँ ग्लास की परत प्रारम्भ होती है, वहाँ पानी का अभाव होता है। जहाँ पानी होता है,

वहाँ ग्लास का अभाव होता है। व्यवहार से लोटा व पानी को एक करके देखा जा रहा है, परन्तु सत्यता यह है कि लोटा, लोटा है और पानी, पानी है। आत्मा, आत्मा है और पर्याय, पर्याय है। पर्याय को देखेगा तो विकार होंगे, परमात्मा को देखेगा तो अविकार होंगे।

इन्द्रियाँ चंचल उसकी होती हैं, जो पर्याय को देख रहा है इन्द्रियाँ स्थिर उनकी होती हैं, जो पर्यायी को देखता है। जब-जब विकार आते हैं, पर-सापेक्ष आते हैं। स्व-वस्तु में विकार होते ही नहीं हैं। यदि स्व-वस्तु त्रैकालिक विकारभूत हो गई, तो सिद्धों में भी विकार होंगे। स्व-सापेक्ष वस्तु में विकार नहीं होता है, पर-सापेक्ष वस्तु में ही विकार होता है। जगत् में जो हो रहा है, उसे देखो, जानो, जाने दो। दूसरे के अशुभ भावों को, अशुभ प्रवृत्ति को, अशुभ वृत्ति को हम देखेंगे, ज्यादा जानने का प्रयास करेंगे, उस क्षण विपरीत परिणाम आयेंगे, तो मेरा ही विघात होगा।

मैं सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का भक्त अवश्य हूँ, परन्तु देव-शास्त्र-गुरु से चिपकने वाला नहीं हूँ। देव-शास्त्र-गुरु को स्वीकार करके, श्रद्धान करके, निज में रमण करने वाला हूँ। देव, देव है। शास्त्र, शास्त्र है। गुरु, गुरु है। आस्था के स्थान हैं, लेकिन निजस्थान नहीं हैं। भूल कहाँ चल रही है? हम परमात्मा को निजस्थान बना रहे हैं। हम शास्त्र को निजस्थान बना रहे हैं। हम गुरु को निजस्थान बना रहे हैं। ये तत्त्व की भूल है। ये श्रद्धास्थान हैं, निजस्थान नहीं हैं। परम स्थान तो मेरा निज शुद्धात्म स्थान ही है। इसलिये प्रत्येक जीव का क्षयोपशम तो भिन्न-भिन्न है, प्रत्येक जीव की प्रवृत्ति भी भिन्न-भिन्न है।

व्रत एक-से होने पर भी एक-सी वृत्ति नहीं होती है। भारत में जितने महाराज विचरण कर रहे हैं, सभी के व्रत एक-से हैं, सभी अट्ठाइस मूलगुणों का पालन कर रहे हैं, लेकिन व्रतों की एकता होने पर भी समन्वय क्यों नहीं दिखाई देता है? व्रत एक है, व्रत्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। आकर्षण व्रतों के अन्दर नहीं है, आकर्षण वृत्तियों के अन्दर है। व्रतों का अच्छे से पालन करने के बाद भी तुम्हारी वृत्ति सम्यक् नहीं है, तब व्रतों में भी सम्यक्पना समझ में नहीं आता है। व्रत एक-से

होने पर भी वृत्तियों में भेद है। चार महाराज तुम्हारे चौके में आहार ले रहे हैं एक ही बर्तन में खीर बनाई गई थी। आप चारों को दे रहे हो। चारों की वृत्तियों को हजारों देख रहे हैं। वहीं देखते-ही-देखते आपके भावों में तार तम्यता चल रही है। चारों के आहार देखते-देखते एक में श्रद्धा टपक रही है और दूसरे में मध्यस्थ भाव आ रहा है, तीसरे आहार ले रहे हैं, दिख रहा है कि इनको लेना पड़ रहा है और चौथे आहार ले रहे हैं, कि ये लेना चाहते हैं? कितना अन्तर? एक शरीर को चलाने के लिये भोजन ले रहा है, दूसरे भोजन लेने के लिये शरीर चला रहा है। एक में लिप्सा झलक रही है एक में वीतरागता झलक रही है। क्रिया एक-सी दिख रही है, लेकिन वृत्ति में, परिणति में अन्तर है। जैसे कोई वैज्ञानिक पौद्गलिक द्रव्यों को, रासायनिक तत्त्व को खोजता है, जैन वीतरागविज्ञान आपके भावों की रासायनिकता को खोजता है। ज्ञानियो! जो-जो विकार हैं, पर-सापेक्ष हैं। विकारों को देखना बन्द कर दो तो अविकारी दिखेगा। पर्यायों को देखना बन्द कर दो तो पर्यायी दिखेगा। देखना बन्द कर दो तो विवेकी दिखेगा। यदि देह देखोगे तो स्त्री, पुरुष, नपुंसक दिखेगा।

व्रत, उपवास, मौन इन सबमें से बड़ी कोई तपस्या है? सबसे जटिल साधना है कि तीनों वेदों का दिखना बन्द हो जाये। स्त्री, पुरुष, नपुंसक में भेद दिखना बन्द हो जाये, मैं आत्मा मात्र को देख सकूँ, यही निर्ग्रन्थ की साधना की सफलता है। फिर मौन नहीं लेना पड़ेगा, मौन हो जायेगा। फिर व्रत नहीं लेना पड़ेगा, व्रती हो जायेगा। आश्चर्य लग रहा है क्या? आगरा की यह चर्चा भविष्य में इतिहास बनेगी कि जिनवाणी का चिन्तवन कितना गहरा है। आप यहाँ इन्द्रियों को साथ में लेकर आये हो, फिर विकार क्यों नहीं आ रहे हैं? युवाओ! इस समय मन में अशुभ विकार क्यों नहीं आ रहे हैं? जिनवाणी का पान कर रहे हो, कि निज की बात सुन रहे हो? यहाँ पर जो जिस विद्या का ज्ञाता बैठा होगा, वह उस विद्या की बात लेकर समझ लेगा। यह रासायनिक क्रिया चल रही है। मन्त्रवादी कहेगा कि मन्त्र किया जा रहा है। तन्त्रवादी कहेगा तन्त्र किया जा रहा है। प्रवचनकार कहेगा कि उपदेश चल रहा है। भाषावैज्ञानिक कहेगा कि भाषा का

जादू चल रहा है। शब्दवर्गणा वाला कहेगा कि आत्मा के भावों की मिश्रधारा चल रही है। जो शब्द है, वो वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम चाहता है। वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम आत्मा के साथ चलता है, इसलिये शब्द जो प्रकट हो रहा है, वह जीवन्तभूत है और जो ध्वनि तुम्हारे कानों में आ रही है, वह जड़भूत है।

शब्दवर्गणायें जड़ हैं, परन्तु वचन-बल आत्मा का विभाव-गुण है और वचन बल से आपके शब्द प्रकट हो रहे हैं, इसलिये जीवकृत शब्द स्यात् चेतनभूत है। जो कानों तक ध्वनि पहुँच रही है, वह जड़भूत है, क्योंकि वह निकल चुकी है। जैसे हमारे बाल और नख जब तक अन्दर हैं, उतने चैतन्यभूत हैं। जब बाहर निकल गये, तब अचेतनभूत हैं। ये सारी विद्यायें जिनागम में ही हैं, परन्तु कथन क्रम-क्रम से ही होगा। श्रोता की योग्यता पर वक्ता की बुद्धि चलती है। जितनी उच्च गुणवत्ता के श्रोता मिलेंगे, उतना उच्च विषय वक्ता के मुख से निकलेगा।

भैया! विश्वास रखना जितना श्रेष्ठ श्रोता होगा, वक्ता के भाषण वैसे ही निकलना प्रारम्भ होंगे। ज्ञानियो! वक्ता को ज्ञानी होना चाहिये, पुण्यात्मा होना चाहिये, लेकिन असमय में ध्वनि महा-महा पुण्यात्मा, भरतेश चक्रवर्ती तीर्थंकर ऋषभदेव, के समवसरण में पहुँचता है तो भगवान् की वाणी भी असमय में खिर जाती है। यह पुण्यात्माओं की पुण्यवर्गणाओं का प्रभाव होता है। वस्तुस्वरूप समझो। जीवन में इतना समझ लेना। ऐसा भी कभी-कभी सुनने में आता है कि समझ में नहीं आता, लेकिन आनन्द आता है। आगरा में एक बेटा कह रहा था महाराज जी! समझ में तो नहीं आता, लेकिन आनन्द आता है। बस, बेटा! तुझे ही सही समझ में आ रहा है। प्रयास करो कि पूरा-पूरा आये।

जब तू अपने मन में पर को नजदीक बिठाल लेता है, तो मुझे कहीं माया की गर्मी आती है, कहीं मान की गर्मी आती है, कहीं लोभ की गर्मी आती है, तो कभी क्रोध की गर्मी आती है। जब-जब तू परवस्तु को नजदीक बिठालता है, तभी गर्मी आती है। यदि परवस्तु से निज को हटा ले, तो गर्मी शान्त हो जाती है। इन्द्रियों में विकार नहीं है, इसलिये इन्द्रियों को नष्ट मत करना। आँखें

नहीं होगी तो ईर्यापथ का शोधन कैसे होगा? आँखें नहीं होंगी तो भगवान् के दर्शन कैसे होंगे? जिनवाणी का वाचन कैसे होगा? इसलिये आँखों को मत फोड़ना, भिन्न विषयों से आँखों को हटा लेना और आत्मविषय में आँखों को लगाना। वे अज्ञानी जीव हैं जो नेत्रों को फोड़कर संयम का पालन करना चाहते हैं। ज्ञानी वे हैं, जो आँखों से देखते हुये भी किसी की आँखें न देखें। आँखों से देखते हुये भी पर की आँखें न देखें। वे महापापी, अज्ञानी, अभागे लोग हैं जो आँखें बन्द करके भी पर की आँखों को देख रहे हैं। समझो मैं क्या कह रहा हूँ। इसमें तो तुम ज्ञानी हो, अनुभवशील हो। जहाँ तेरी इच्छा लगी हुई है, आँख बन्द करके उसकी आँख देख रहा है। हे अभागे! पर की आँख को देखने के लिये तूने बाहर की आँख बन्द की है, परन्तु जिनवाणी कह रही है कि विवेक की आँख बन्द करके तूने पर की आँख देखी है। जिनकी विवेक की आँख खुली होती है, वे खुली आँख से भी पर की आँख नहीं देखते हैं। अब समझो जिनवाणी को। हे मुमुक्षु! ज्ञान भिन्न विषय है, जानकारी भिन्न विषय है। ज्ञानियो! तत्त्वज्ञानी जीव को तो परज्ञेयों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती, परनिमित्तों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। परमब्रह्म में लीन योगी परमात्मा को न तदाकार में देखता है, न अतदाकार में देखता है। तदाकार में देखेगा तब भी पर में है, अतदाकार में देखेगा तब भी पर में है। तदाकार व अतदाकार से शून्य आत्मद्रव्य को ही देखेगा, वही परम योगी होगा। पर्याय की प्रत्यासत्ति पर ध्यान देना होगा। विपरीत पर्याय के सामने खड़े हो जाओगे, सभी की बुद्धियाँ समान नहीं हैं, तुम्हारे खड़े होने से, भरत चक्रवर्ती के सूर्यविमान में विराजमान जिनविम्बों की आरती/अर्घ्य उतारने से लोक में लोगों ने सूर्य की उपासना करना प्रारम्भ कर दी। ऐसे ही ये तस्वीर कलैण्डर चाहे भगवान् के हों या आचार्य मुनियों के हों, इनको तुमने पूजना प्रारम्भ कर दिया, तो कोटि-कोटि द्रव्य का न्यौछावर करके पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराने की क्या आवश्यकता? फिर तो घर-घर में फोटो रखो और पूजा करो, फोटो प्रतीक हो सकते हैं। सम्माननीय हैं इसलिए उच्च स्थान पर लगे हैं। लेकिन उदक-चन्दन पढ़कर अर्घ्य चढ़ाने के स्थान नहीं हैं। यदि इनको उदक-चन्दन पढ़

कर अर्घ्य चढ़ा रहे हो, तो मन्दिर में विराजे भगवान् की क्या आवश्यकता? मुझे पूर्वाचार्यों पर किञ्चित् मात्र भी अश्रद्धान भाव नहीं आता। अमृतचन्द्र स्वामी किञ्चित् मात्र भी श्वेतपट्ट आम्नाय को पुष्ट करने वाले आचार्य नहीं हैं यदि किसी को शंका हो तो उनका 'तत्त्वार्थ-सार' नाम का ग्रन्थ उन्हें पढ़ लेना चाहिये, जिसमें उन्होंने स्वयं उसका खण्डन किया है।

जन्तु शब्द का अर्थ समझना चाहिये। प्राणी, जीव, जन्तु, ज्ञानी, आत्मा, पुमान, प्रज्ञ, अंतरात्मा, क्षेत्रज्ञ पुरुष ये सारे-के-सारे 'जीव' के पर्यायवाची नाम हैं।

जीवः प्राणी जन्तुश्च क्षेत्रज्ञः पुरुषस्तथा।
पुमानात्मान्तरात्मा च ज्ञा ज्ञानीत्यस्यपर्यायाः॥103/584 आदि पुराण॥

सैद्धान्तिक दृष्टि में 'प्रतिक्रमणत्रयी' ग्रन्थ में प्राणी, भूत, जीव, जन्तु विशेषता के देखने पर भेद दिखाई देते हैं, सामान्य रूप से यह सारे-के-सारे विषय जीव के हैं। जन्तु से तात्पर्य लोग कीड़े-मकोड़े समझते हैं। आपको शब्दशास्त्र का भी ज्ञान होना चाहिये। नाममाला, अमरकोष। हमारे आचार्यों ने कई जगह कितने उत्कृष्ट शब्दों का प्रयोग किया है। जन्तु से तात्पर्य यहाँ ज्ञानीजीव ग्रहण करना है, इसलिये जिनसेन स्वामी ने 'महापुराण' में ज्ञानीजीव के लिये 'जन्तु' शब्द का प्रयोग किया है। ज्ञानियो! मेरा सभी से कहना है कि जब तक आगम के तल तक न पहुँच जाओ, तब तक किसी आचार्य का विपरीत निर्णय मत कर बैठना। सागर में गोष्ठी चल रही थी। विद्वानों के मन में एक प्रश्न आ गया कि अमृतचन्द्र स्वामी ने तो दूसरे की नकल कर दी है। मैंने कहा—अमृतचन्द्र स्वामी जैसे वृद्ध महान् आचार्य के लिये ऐसा मत कहो। द्वितीय श्रुत स्कन्ध पर लेखनी चलाने वाले इस युग के महान् योगी कुन्दकुन्द स्वामी हैं। कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों पर वृहद् एवं गूढ़ टीका लिखनेवाले अमृतचन्द्र स्वामी हैं। 'लघुतत्त्व स्फोट' ग्रन्थ जिसने लिखा हो, 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' ग्रन्थ लिखा हो।

उभय-परिग्रह-वर्जनमाचार्याः सूचयन्त्य-हिंसेति।
द्विविध-परिग्रह-वहनं हिंसेति जिन-प्रवचनांज्ञाः॥ 118 पु.सि.॥

उभय परिग्रह के त्याग को जिन्होंने अहिंसा लिखा हो, वे कहाँ श्वेतपट्ट आम्नाय की पुष्टि करेंगे? जिनको धागा मात्र में हिंसा दिखती हो। वस्त्रधारी हिंसक ही होते हैं। वस्त्र नहीं मिलेगा तो प्राप्ति का राग और राग ही हिंसा है। अच्छा मिल गया तो राग। इच्छित नहीं मिला, तो मन मलिन कर रहा है परवस्तु के चक्कर में। फिर धो रहा है, सो जलकायिक जीवों की हिंसा। वस्त्र में छेद हो गया सो तेरा हृदय छिद रहा है। जिनमें विकल्प-ही-विकल्प हों, ऐसे वस्त्रों को धिक्कार हो उतार दो। अन्तरङ्ग-बहिरंङ्ग परिग्रह का त्याग ही अहिंसा है। ज्ञानियो! कभी स्वप्न में भी स्वप्न मत देखना कि हमारे पूर्वाचार्यों ने विपर्यास किया है।

जब मैं अमृतचन्द्र स्वामी विरचित टीकाओं का स्वाध्याय कर रहा था, तब एक ज्ञानी ने मेरे से भी कहा था कि अमृतचन्द्र स्वामी ने इन गाथाओं की टीका क्यों नहीं की? मैंने तब भी अश्रद्धान नहीं किया। ज्ञानी! जैसे ही 'तत्त्वार्थसार' ग्रन्थ पढ़ा, प्रश्नकर्ता की बुद्धि का विपर्यास नजर आया। अमृतचन्द्र स्वामी किञ्चित् मात्र भी न स्त्री-मुक्ति मानते हैं, न केवलीभुक्ति मानते हैं। सभी दिगम्बर ध्यान रखना-स्त्री मुक्ति व केवलीभुक्ति होती है, यह भाव-वेद की दृष्टि है, लेकिन द्रव्य-वेद तो पुरुष-वेद ही होता है। ज्ञानी! वर्तमान में यह नियोग है, बहुत कम होता है कि जिनवाणी के प्रवचनों में नव युवा बैठे हो। **''जगत् के चुटकुले चेहरे को तो खुश करा देंगे, लेकिन तत्त्व का निर्णय नहीं करा पायेंगे। समन्तभद्र स्वामी ने लिखा है कि जैसे कोई तृषातुर पुरुष अंजुली भर-भर कर पानी पीता है, ऐसे ही तत्त्वज्ञानी जीव कानों की अंजुलि बना करके जिनवाणी को पीता है, और-सारे काम बन्द कर देता है।''**

85वें श्लोक में आचार्य-महाराज कह रहे हैं—

इन्द्रियाणि वशे यस्य, यस्य दुष्टं न मानसम्।
आत्मा धर्मरतो यस्य, सफलं तस्य जीवितम्॥ 85 सा. स.॥

जिस जीव की इन्द्रियाँ वश में हो चुकी हैं, उसका तो संसार ही वश में हो गया। जब दूसरे के घर में भोजन करने जायें तो 'बस, अब नहीं चाहिये।' कुछ नाटक करने वाले होते हैं 'अब नहीं चाहिये, अब नहीं चाहिये' और थाली खुली

रखते हैं कि रख दो। ये रागियों की मायाचारी है। जब लेना है, तो ले ही लो। सावन का महीना आने वाला है। जो भैया ज्यादा पैसा देगा, उसके लिये बहिन सोने की राखी देगी। जिसके कुछ नहीं होगा, उसको धागे की भेजेगी। इसमें भी भेद हो जाता है। यह अन्दर की बात है, उसको स्वीकार करना पड़ेगा। दो भाइयों के लिये भी मन में भेद रहता है। इस वर्ष राखी बाँधो या न बाँधो, लेकिन भेद का बन्धन बन्द करो। कितना भेद आता है?

जिसकी इन्द्रियाँ वश हो गई हैं और जिसका मन पापों से कलुषित नहीं है, जिसकी आत्मा धर्ममार्ग में लीन है, उसी जीव का जीवन सफल है। जिनका ऐसा नहीं है, उनका जीवन सफल नहीं है। आप स्वयं सोचो कि क्या है?

ज्ञानियो! जो जगत् में परनिन्दा से दूर हो जाता है, वह जगत्पूज्य हो जाता है। कोई कितना ही पूज्य होगा, पर की निन्दा करेगा तो उसी दिन सबकी नजर से गिर जायेगा। मोती की कीमत कब तक? जब तक चमक है। ज्ञानी मनुष्य की कीमत कब तक? जब तक विश्वास है। इज्जत गई, सब चला गया। भैया! भीख माँग कर खा लेना, परन्तु विश्वास को दाँव पर मत लगाना, विश्वास छोड़कर मत जीना।

नमोऽस्तु शासन तो जयवन्त होना ही है। यह सर्वज्ञ का शासन है। नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

'विश्व में पूज्यनीय'

परनिन्दासु ये मूकाः, निजश्लाघ्यपराङ्मुखाः।
ईदृशैर्यैः गुणैर्युक्तास्ते पूज्याः सर्वविष्टपे॥ 86 /सा. स.॥

अन्वयार्थ-**ये** = जो व्यक्ति, **परनिन्दासु** = दूसरों की निन्दा करने में, **मूकाः** = मौन रखते हैं, **निजश्लाघ्यपराङ्मुखाः** = तथा अपनी प्रशंसा से उदासीन हैं, यानि कभी अपनी बड़ाई नहीं करते हैं और, **ये** = जो, **ईदृशैःगुणैः** = इस प्रकार के गुणों से **युक्ताः** = युक्त है, **ते** = वे, **सर्वविष्टपे** = सर्वलोक में **पूज्याः** = पूज्यनीय हैं।

भावार्थ-जो मानव दूसरों की निन्दा करने में मौन रखते हैं और अपनी प्रशंसा करने में उदासीन रहते हैं अर्थात् अपनी प्रशंसा नहीं करते हैं, इन गुणों से जो युक्त होते हैं, वे ही मानव सर्वलोक में पूज्य होते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' जी में, आत्मा की शक्ति का प्रकटीकरण कैसे हो?, इस विधा की व्याख्या कर रहे हैं। अशुद्ध में शुद्ध विराजता है, अशुद्ध से शुद्ध कैसे प्रकट किया जाये, यह विधा चारित्र है। त्रैकालिक ध्रुव आत्मा की भगवत्ता को उद्घाटित करने की विद्या का नाम संयमाचरण है। संयमाचरण भावभूत है, द्रव्यभूत है, क्रियाभूत है, काययोग-जन्य है, मनोयोग-जन्य है, वचनयोग-जन्य है। काययोग को सम्हाल कर बैठ पाना ही कठिन है, फिर मनयोग को सम्हालना अत्यन्त दुष्कर है। काययोग को सम्हालने के उपरान्त वचनयोग को सम्हालना। आचार्य उमास्वामी महाराज ने पहले मन की चर्चा नहीं की। जो जीव मन को वश करना चाहते हैं, वे तो बन्ध्या के बेटे को गाय के सींग का दूध पिलाना चाहते हैं।

ज्ञानियो! पहले मन को वश नहीं किया जाता है। पहले तन को वश किया जाता है। जिनका तन वश हो गया, उनको वचन वश करना चाहिये। जिनका तन और

वचन वश हो गया है, उनके मन को कोई विचलित नहीं कर सकता। तुम स्थिर बैठना ही नहीं सीखते हो और मन वश करने की बात कर रहे हो। मन से जो भाव विकृत हुये हैं, वह अतिक्रम हुआ है; लेकिन वचन और काय से कर बैठा, तो अतिचार के साथ अनाचार हो जायेगा। बहुत सारे लोग संयम से इसलिये विचलित हो रहे हैं कि उनके मन चलायमान हो गये।

भैया! मेडिकल की औषधि से रोग ठीक होते हैं, तो वैद्य की क्या आवश्यकता? औषधि मेडिकल से लानी पड़ेगी, लेकिन किसको कितना सेवन करना है, यह वैद्य से पूछना पड़ेगा। ये सारा भ्रम क्यों फैल गया? **''गुरु के अभाव में ज्ञानी बनने का जो विपर्यास हो गया, गुरु के अभाव में ज्ञानी बनने की जो भावना दौड़ रही है, वह तत्त्व में विपर्यास खड़ा कर रही है।''** माँ! पाकशास्त्र पढ़कर भोजन बना सकती हो क्या? पाकशास्त्र पढ़कर ज्ञान तो किया जाता है, लेकिन भोजन नहीं बनाया जा सकता। जब तक तू पन्ना पलटेगी, तब तक अग्नि शान्त नहीं बैठेगी, वह अपना काम करेगी। किस समय नमक डालना, किस समय मिर्च डालना, कब छौंक लगाना है? जब तक तू पढ़ने बैठेगी तबतक समय निकल जायेगा और तुम्हारा भोजन विकृत हो जायेगा। पाकशास्त्र से तो भोजन बनाना जानना; लेकिन जब भोजन बनाने बैठना, तो शास्त्र रख कर मत बैठना अपनी बुद्धि लगाकर बैठना।

ज्ञानी! जो व्यक्ति शास्त्र पढ़कर ज्ञानी बनना चाहता है, वह उसी रसोइये के समान है जो पाकशास्त्र पढ़कर भोजन पका रहा है। वैद्य के पास तीन गुण होना चाहिये दर्शन, पृच्छना, भोजन। जो इन तीन का उपयोग नहीं करता, वह वैद्य कभी सफल नहीं हो सकता। दर्शन का जैनदर्शन में इतना विशद् वर्णन है कि जगत् में इसके आगे किसी की महिमा नहीं है। सवा महीने के बालक को जैनपरम्परा में सबसे पहले जिनप्रतिमा के दर्शन कराये जाते हैं। माँ! इस व्यवस्था को भंग मत कर देना। 45 दिन के बाद बच्चे को सबसे पहले श्री जिनालय लेकर जाओ। बेटे! निहारो इनको। मेरे लाल! मैंने भोगों की शैया में लेटकर तुझे जन्म तो दिया है, मैं भोग ही सिखा सकूँगी, सोना ही सिखा सकूँगी, मेरे लाल!

इनको देखो। जिन बनना है तो जिन को देखो और संसार में रुलना है तो मुझे देखो। जो सुनी हुई बात अन्दर नहीं जाती है, देखी हुई अन्दर चली जाती है। पढ़कर कितना सीख पाओगे? जितना तुम सीखे हो वह पढ़कर नहीं सीखे हो, सुनकर नहीं सीखे हो, देखकर सीखे हो। जिनके घर में जितने भी एक्टर आदि के चित्र लगे हों, आज ही अलग कर देना। जो देखने पर प्रभाव पड़ता है, वह सुनने का नहीं पड़ता। यदि कहीं पर टेप बज रहा हो, तो उतना आनन्द नहीं आता। प्रवचन हो रहे हों, कोई बगल में बैठा हो, तो उतना आनन्द नहीं आता। जब तक वक्ता का चेहरा दिखाई न दे, तब तक श्रोता को आनन्द नहीं आता। जो चेहरा देखे बिना सुन रहा है वह ध्वनि सुन रहा है, जो वक्ता के चेहरे के सामने बैठा हुआ है, वह प्रवचन सुन रहा है, शब्द सुन रहा है, वाणी सुन रहा है। ध्वनि जड़भूत है, शब्द चेतन मिश्र है। सुनना कर्ण-इन्द्रिय का विषय है।

माँ बेटे से कह रही है, बेटा! आज तू पैंतालीस दिन का हो गया। प्रभु के चरणों में भाव बनाना कि—आँख खुले तो जिनदेव दिखें, आँख बन्द हो तो निजदेव दिखें। जगत् का कोई तीसरा देव न दिखे। तारने वाला कोई है, तो व्यवहार से जिनदेव है और निश्चय से निजदेव है। जिननाथ के द्वार पर जिननाथ को देखने मत जाना। जिननाथ के द्वार पर निजनाथ को देखने चले जाना। जब तक निजनाथ का बोध न हो तब तक जिननाथ के द्वार पर जाने की क्या आवश्यकता है?

भैया! तु दर्पण में स्वयं को देखने जाता है, कि चर्म के पिण्ड को देखने जाता है? कह रहा है कि स्वयं को देखने जाता हूँ। ऐसे ही अरिहन्त देव के चरणों में अरिहन्त देव को देखने मत जाओ, अरिहन्त में निजदेव को देखने जाओ। उनके द्रव्य, गुण, पर्याय को जानकर निज के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने के लिये जाओ। ये संस्कार आज से पड़ जायें। विश्वास रखना, जो संस्कार पड़ चुके हैं फिर मध्यकाल में जीव कितना ही बिगड़ जायेगा, लेकिन अन्तिम श्वास के काल में वह मुड़कर अवश्य आयेगा। बेटा! तुम जीवन में कितने ही बिगड़ चुके हो, लेकिन भगवान् के चरणों की वन्दना करना मत छोड़ना। मन्दिर आता रहेगा तो एक दिन ऐसा आयेगा, जब सूखे बाँस का घर्षण एक दूसरे में होता रहे तो

बाँस में अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। जब बाँस-बाँस की रगड़ से ज्योति प्रकट हो सकती है, तो जो वीतरागी के चरणों में झुकता रहेगा तो उसके वैराग्य की ज्योति क्यों नहीं प्रकट होगी? अवश्य होगी। श्रावको! अरहन्त की पूजन और निर्ग्रन्थ को दान और जिनवाणी का श्रवण जीवन के अंतिम श्वास तक मत छोड़ना।

पैंतालीस दिन का बालक भगवान् के चरणों में है। माँ! ऐसा कभी मत करना कि बच्चे को मंदिर जी में खेलने छोड़ दो मन्दिर में बेटे ने आसादना की, उसका फल भी तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

''जो भगवान् के दर्शन नहीं करता और अपने घर का द्रव्य नहीं चढ़ाता, वह घोर हिंसक पापीजीव है। भूख लगे तो दूसरे का भोजन तो कर लेना, परन्तु भगवान् के दर्शन के लिये दूसरे का द्रव्य कभी मत चढ़ाना।'' मुफत का चन्दन घिस मेरे नन्दन। तेरा क्या गया? द्रव्य क्यों नहीं ला रहा है? लोभ-कषाय। भगवान् को खिलाने के लिये द्रव्य नहीं चढ़ाते हो। कुछ लोग सोचते हैं इतने श्रीफल चढ़ा दूँगा तो माली के घर में जायेंगे। हे अभागे! तुझे भगवान् दिख रहे हैं कि माली दिख रहा है? यदि माली दिख रहा है, तो तूने निश्चत ही माली को ही चढ़ाया है, भगवान् को नहीं चढ़ाया। अरे! द्रव्य तो ऐसे चढ़ाना चाहिये जैसे तुम सुबह छोड़कर आते हो। किसमिश मालपुए, रबड़ी, मलाई खाई है और सुबह छोड़कर आ जाता है जिस द्रव्य को छोड़ दिया, उसको फिर मुड़कर नहीं देखता है। ऐसे ही आपके हाथ में उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट द्रव्य हो तो श्री जी के चरणों में चढ़ाने के बाद उनको मुड़कर नहीं देखना चाहिये। मेरा काम पूरा हो गया, मेरा द्रव्य निर्माल्य हो गया है। ऐसे भाव से भक्ति करना। उत्कृष्ट द्रव्य चढ़ाना, लेकिन दूसरे की द्रव्य को लेकर कभी मत चढ़ाना।

हे मुमुक्षु! ये अरहन्त की प्रतिमायें पूजन-अभिषेक के लिये स्थापित की गई हैं। आराधना के लिये की गई हैं, भावों की विशुद्धि के लिये की गई हैं, परिणामों की अशुद्धि को समाप्त करने के लिये की गई हैं। धन्य हों हमारे श्रेष्ठी श्रावक। वे बुजुर्ग जो मूँग की दाल का पानी पीकर तो जी लिये, लेकिन श्री जिनालय को शिखरबन्द बना कर गये हैं। आज पीढ़ी-पीढ़ी हर्षित हो रही है। मूर्तियों में

अद्भुत वीतरागता टपक रही है। ज्ञानी! मन्दिर-पर-मन्दिर तो विशाल बना रहे हो, लेकिन पूजन करने जा नहीं रहे हो। इन प्रतिमाओं की स्थापना क्यों की गई है? चेतन प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिये अचेतन प्रतिमाओं की स्थापना है। एक ज्ञानी यूँ कह रहा है। महाराज! मैं मन्दिर तो बनवाऊँगा लेकिन पुजारी लगा दूँगा। झेलना, जो मैं कह रहा हूँ। 'कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा' ग्रन्थ में लिखा है कि हे श्रावको! अरहन्त की पूजा तू अनुचरों के द्वारा करा रहा है। समय बहुत बदल चुका है। नगर में मुनिराज भी पधार गये। ऐसे भी लोग मिलते हैं कि द्रव्य हमारा होगा, नौकरों को लगा दिया है चार महीने महाराज को आहार देते रहेंगे, मेरे पास समय नहीं है। अरहन्त की पूजा नौकरों से, गुरुओं को दान नौकरों से। कार्तिकेय अनुप्रेक्षा के टीकाकार कह रहे हैं कि कहीं तू सन्तान को जन्म भी नौकरों से मत कराने लग जाना। **हे श्रावको! तीन कर्म नौकरों से नहीं होते हैं। गुरुओं को दान, अरहन्त की पूजा और सन्तान का जन्म नौकरों से नहीं कराया जाता है स्वयं से किया जाता है। वह संतान नौकर की होगी, कि तेरी होगी? ऐसे-ही वह पुण्य नौकर का होगा कि तेरा होगा?** इसलिये इन बातों का ध्यान रखना। कहीं मन में विकल्प आ भी गया हो मन्दिर में पुजारी लगाने का, तो मन्दिर में पुजारी नहीं होना चाहिये। मन्दिर में पुजारी तो होना चाहिये, एवंभूत नय के पुजारी होना चाहिये। जिस समय श्रावक पूजा करता है, वही पुजारी है। वे पुजारी तो होना चहिये, पैसे वाले (नौकर) पुजारी मन्दिरों में नहीं होने चाहिये है। घर की नाली साफ कर सकता है यहाँ तक कि बेटे की माँ की साड़ी धोने को तैयार हो सकता है, लेकिन तीर्थंकर की पूजा करने से कोई छोटा हो जायेगा क्या? बुरा तो नहीं लग रहा? धन्य हो। बिचारों को बुरा भी नहीं लग रहा है। मन्दिर की पूजा के लिये नौकर, इससे अभागा कौन होगा? स्वयं जाकर अभिषेक-पूजन करना चाहिए।

जो युवा मुनियों के प्रवचन के लिये मंच बना रहे हैं, मालूम क्या कर रहे हैं? जो आज मंच बना रहे हैं, वे भविष्य के कुबेर हैं; जो तीर्थंकर का समवसरण बनाने वाले हैं। कुछ अज्ञानी मालूम क्या बोलते हैं? अरे! महाराज के पीछे

कमण्डलु लिये घूम रहा है, मालूम इनके घर में कोई काम नहीं होगा? हाँ, बिल्कुल सही है मेरे घर में कोई काम नहीं है तो क्या करें? सबसे बड़ा काम यही है कि आज मैं मुनियों के कमण्डलु लेकर घूमूँगा, तो कल मैं मुनि बनकर घूमूँगा। वस्तु-स्वभाव समझो। दर्शन गहरा विषय है। आँख पड़ते ही आँख बदल जाती है, आँख फड़कते ही आँख बदल जाती है। **जैसे नीबू की बूँद दूध में गिरते ही दूध बदल जाता है। अम्ल-तत्त्व के जाते ही मधुर तत्त्व का स्वाद बदल जाता है। ऐसे-ही वीतरागी जिनेन्द्रदेव पर मेरी आँख पड़ने पर मेरे भावों का रंग बदल जाता है। अशुद्ध परिणाम विशुद्ध हो जाते हैं। कोटि-कोटि काम छोड़ देना, लेकिन दर्शन करना मत छोड़ना। काययोग/देह को देख करके देही बदल जाता है। नारी को नर की देह देखकर, नर को नारी की देह को देखकर भाव बदल गये वैसे ही भगवान् की देह देखकर भव बदल जाता है। देह को देखने से भाव बदलते हैं और भाव बदलने से भव बदलता है।** देखना सीखो। देखने से पापबन्ध नहीं होता, ताकने से पापबन्ध होता है। देखो-देखो। देखना-जानना तो आत्मा का धर्म है। देखने से पापबन्ध नहीं होता। देखने से पुण्यबन्ध भी नहीं होता। ताकने से पापबन्ध होता है और दर्शन से पुण्यबन्ध होता है। परपुरुष परनारियों को ताकते हैं और भगवान् के दर्शन करते हैं तो सामान्य रूप से देखते हैं। ये कठिन नहीं है। कठिन वह है, जो तुम कर रहे हो।

ज्ञानी! काययोग सम्हालिये। मन अशुभ हो भी जाये, तब भी तन अशुभ नहीं होने देना, तो अपराध से बच जाओगे। पाप से न भी बच पाये, लेकिन अपराध से बच जाओगे। जो आप समझ कर रखे हो, बहुत स्थूल समझा है। तू आज तक पाप से नहीं बचा। पाप से बचने वाले तो अंगुलियों पर गिनने लायक हैं, बिरले हैं। लोक में जो तिलक लग रहे हैं, वे पाप से बचने वालों को नहीं लग रहे हैं, अपराध से बचने वालों को लग रहे हैं। पापियों के सम्मान चल रहे हैं। आप अपराधियों के सम्मान नहीं कर रहे हैं, पापियों के कर रहे हैं। बुरा तो नहीं लग रहा है? लग भी जाये तो मुझे कौन यहाँ पर कोठियाँ बना कर रहना है। मुझे तो चला जाना है। डर उन्हें लगे, जिन्हें कोठियाँ बना कर रहना है। अपराधियों

की संख्या कम है, पापियों की संख्या प्रचुर है। विश्व के शासक पापी को दण्ड नहीं देते। उनके पास पापी को पकड़ने की ताकत ही नहीं है। वे मात्र अपराधी को पकड़ पाते हैं, वह भी कुछ-कुछ। पुण्यात्मा अपराधी पकड़े ही नहीं जाते हैं। जो पूर्व के पुण्यात्मा हैं, वे पापी और अपराधी दोनों ही पकड़े नहीं जाते हैं जिनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, ऐसे अपराधियों को पकड़ा जाता है, पापियों को तो कोई पकड़ ही नहीं पाता। एकमात्र जिनशासन ऐसा है, जो पापी व अपराधी दोनों को पकड़ता है।

जो क्रिया में किसी को दिख गया, सो अपराधी है। **कोई चोरी करते मिल गया, सो अपराधी है। कोई अब्रह्म सेवन करते मिल गया, सो अपराधी है। पाँच पाप करते मिल गया, सो अपराधी है। हे जीव! क्रिया करने के पहले तू कितनी बार सोच चुका है? एक रावण को तुम कितने समय से जलाते आ रहे हो? एक जिसने मात्र सीता के विषय में चिन्तवन किया था, उसने शील हरण नहीं किया था। लेकिन तूने कितनी सीताओं को झाँक-झाँक कर देखा है? अब बताओ, पापी कौन है? हृदय को टटोल लो। जब से तेरे में समझ आयी है, अपने हृदय से पूछो, किस-किसके बारे में कितना-कितना नहीं सोच डाला? चाहे तू योगी हो, चाहे तू भोगी हो, भोग करने से बन्ध तो होता ही है, भोगभावना से भी बन्ध होता है।** पाप करने से तो बन्ध होता है, पाप-भावना से भी बन्ध होता ही है।

मुमुक्षुओ! रसना-इन्द्रिय से तो बहुत कम आम खाये हैं, लेकिन जब सागमण्डी में आम खरीदने गया था, तो आँखों से कितने आम देखे और नाक से सूँघ-सूँघ कर रखा था, उनका स्वाद तूने आँख और नाक से भोगा, चखा, उसके पैसे कितने दिये?

हे ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ के पिता ने तुझे एक बेटी दी है। उसके लिये तू बड़ा सज्जन बन कर बैठा हुआ है। जिसको किसी ने दिया नहीं है, उसको कितनी बार देखा है? अनन्त नारियों को देखने का पाप का बन्ध तू कहाँ चुकाने जायेगा? लोक में अपराध का दण्ड है, लेकिन पाप का दण्ड नहीं है। कर्मसिद्धान्त कहता है कि अपराध करने के पहले मैं तुझ पापी को पकड़ चुका हूँ और अपराध करने

जा रहा है, सो दो गुना पकड़ा जायेगा। काय को सम्हालो, काययोग को सम्हालो। चित्त के जाने पर भी तन को लेकर मत जाओ। चित्त चला गया सो भीतर का परिणमन था, तू ही जान रहा था। शरीर को लेकर चला जायेगा तो लोक जानेगा। जिसका मन विचलित हुआ है, उसको तो मात्र आत्मनिन्दा मिलेगी; लेकिन जिसका शरीर विचलित हुआ है, उसको लोकनिन्दा भी मिलेगी। हे श्रमणो! आत्मनिन्दा से ही बचो तो लोकनिन्दा क्यों हो पायेगी?

ज्ञानी! चरणानुयोग की व्याख्या सुनने पर भी तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे द्रव्यानुयोग चल रहा हो। यदि चरणानुयोग को तुमने व्यवस्थित नहीं समझा, तो द्रव्यानुयोग को ठीक तरह से नहीं समझ पाओगे। हर व्यक्ति का चरण चरणानुयोग नहीं होता है। आपकी चर्या (क्रिया) श्रावकाचार नहीं है श्रावकाचार के अनुसार आपकी चर्या (क्रिया) होनी चाहिये। विशुद्धसागर की चर्या 'मूलाचार' नहीं है। मूलाचार के अनुसार उनकी चर्या होनी चाहिये। नहीं-तो हर श्रमण का अपना मूलाचार हो जायेगा। इसलिये न मूलाचार लिखो, न श्रावकाचार लिखो, जो आचार्यों ने लिखा है, उसे पहले समझो। इन्दौर में श्रीजी की शोभायात्रा नहीं निकलती, खाली लोग घूमते हैं। मैंने प्रश्न किया, आपने ऐसा क्यों किया? महाराज! पचास वर्ष पहले तो निकलता था, अब नहीं निकलता। क्यों? सोलापुर में भगवान् का जुलूस नहीं निकलता। कुछ ऐसी चर्यायें हैं। ऐसी क्रियायें विवेक के साथ करना, क्योंकि पंचमकाल है, हर एक नया व्यक्ति खड़ा हो जाता है। वह अपने मन के चिन्तन देने लगता है तो समाज नियम बाँध लेती है कोई भी नियम बनाने के पहले आगम खोजना। इन्दौर और सोलापुर दोनों जगह प्रश्न किया। इतना सुन्दर विमान है, आप श्री जी को विराजमान क्यों नहीं कर रहे हो? बोले श्री जी को कैसे निकालें? मूल बात ऐसी थी कि इन्दौर में बहुत समय पूर्व कोई एक मुनिराज पधारे थे। उन्होंने चातुर्मास किया। वे जुलूस में नहीं आये और बोल भी दिया कि मैं नहीं जाऊँगा, चातुर्मास है।

ज्ञानी! नगर में आहार को जा सकते हो, तो तीनलोक के नाथ की यात्रा में चले जाते, तो कौन-सा पाप हो जाता? शौच को जा सकते हो, आहार को जा

सकते हो, जो कि संज्ञा की क्रियायें हैं, उनमें जा सकते हो, लेकिन तीनलोक के नाथ की यात्रा में नहीं जा सकते हो? तो लोगों ने क्या अर्थ लगा लिया? अरे! जब महाराज नहीं जा सकते, तो भगवान् तो और बड़े हैं, तो भगवान् को क्यों निकालो? अब ऐसी रुढ़ि बन गई कि वो भगवान् को नहीं निकालते। ज्ञानी! तुमको मालूम होना चाहिये कि श्री जी की व्यवस्था और महाराज की व्यवस्था में बहुत अंतर है। मुनिराज का अभिषेक नहीं होता, लेकिन श्री जी का होता है। फिर तुम कल से अभिषेक बन्द कर दोगे। एक मुमुक्षु ज्ञानी ऐसे हुये, उन्होंने सब बन्द करा दिया। जब मुनिराज विमान पर नहीं बैठ सकते, तो भगवान् तो और बड़े हैं।

अरे ज्ञानियो! अरहन्त की व्यवस्था भिन्न है, निर्ग्रन्थों की व्यवस्था भिन्न है। श्री जी को रथ या विमान में निकाला जाता है। एक श्रावक मिला, महाराज! जब भगवान् रथ में बैठ सकते हैं, तो आप भगवान् से बड़े हो गये क्या? आप भी बैठ जाओ। ज्ञानी! वह अरहन्तप्रतिमा है, यह निर्ग्रन्थमुद्रा है। इन दोनों में बहुत अन्तर है। इसलिये हे श्रावको! कल कोई नया चिन्तन देने वाला मिल जाये तो इन बातों में मत आ जाना। कह देना कि आगम दिखाओ, फिर मानूँगा, क्योंकि पंचमकाल में कोई व्यक्ति प्रमाणिक बचा नहीं है, आगम प्रमाण ही प्रमाण है। आगम के अनुसार जो कह रहा है, उसे प्रमाण मान लेना, लेकिन व्यक्तिगत प्रमाण कोई प्रमाण नहीं है। हर व्यक्ति अपना चिन्तन दौड़ा रहा है। हर व्यक्ति का लक्ष्य है कि आर्जव-मार्दव धर्म तो खूँटी पर टाँग दिये जायें, मेरा पंथ कैसे चले? मेरी परम्परा कैसे चले? हे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि अनन्तानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं, उनके नाम लेनेवाले कोई नहीं मिल रहे हैं, तुम्हारा क्या नाम चलेगा। तुम्हें तो मात्र वर्तमान की चौबीसी के ही नाम मालूम होंगे, भूत व भविष्य के नाम मालूम न होंगे, जब तीर्थंकर जैसे पुण्यात्मा जीव को एक चौबीसी के बाद दूसरी चौबीसी में नाम भूल जाते हैं, तो तुमको कौन याद रखेगा?

ज्ञानी! एक बात बताओ, दिन में बेटे का नाम कितनी बार लेते हो और पिता जी का नाम कितनी बार लेते हो? बता दो। चोर-चोर मौसेरे भाई बैठे हैं। बता

दो, चिन्ता मत करो। महाराज जी! पिता का नाम तो नहीं लेता हूँ, बेटे का तो कई बार लेता हूँ। जब तेरे-जैसा धर्मात्मा बेटा अपने पिता को भूल सकता है, तो तू चिन्ता मत कर, तेरा बेटा भी तुझे भूल जायेगा। जब तू जन्म देने वाले पिता को भूल सकता है, तो फिर दुनियाँ तेरा नाम लेगी क्या? जब तू अपने पिता का नाम नहीं ले पा रहा है, तो आप ही सोच लेना कि जो तू बेटों को कमा-कमा कर रख रहा है, विश्वास रखना, वह भी अपने बेटे का नाम लेगा, तुम्हारा नहीं ले पायेगा। देखो, बेचारों के चेहरे फीके पड़ गये। उन्हें तो पता ही नहीं था कि ऐसा भी होता है। ऐसा भी नहीं, ऐसा ही होता है। ज्ञानी! पिता जी हैं कि गये? गये। क्यों जाने दिया? तू रोक लेता। महाराज! कौन रोक पायेगा? जब रोक ही नहीं पाओगे, तो व्यर्थ में रोकरके ये तमाशा क्यों दिखाते हो? आज से त्याग कर दो रोने का। ये ढोंग मत किया करो। तीसरा दिन होते ही सब काम शुरू हो जाते हैं। जाने वाला गया, तुम मस्ती में जी रहे हो। इस जगत् का स्वभाव ही ऐसा है। 'बात तो सही है, महाराज! लेकिन क्या करूँ?' होता नहीं है। छूटता नहीं है। जबकि सब को मालूम है। आज और खुल ही गई हैं सब बातें। पिता का नाम कम लेता है, बेटा का नाम ज्यादा लेता है।

स्वाधीनता का विचार करो। हे साधको! काययोग को सम्हालो। अपने शरीर को अशुभ की ओर मत ले जाओ। मन चला गया, उसे तो मोड़ लोगे, लेकिन तन चला गया तो भ्रष्ट ही कहलाओगे। इसलिये ज्ञानियो! यदि किसी का मन विचलित हो गया हो, तो उसको तुरन्त भ्रष्ट मत कह दिया करो। कुछ लोगों की अज्ञान-दशा चल रही है। रात में बेटे न कहा, माँ! भूख लग रही है। माँ ऐसी अज्ञानी मिल गई कि वो कह रही है 'अब मन तो हो ही गया, खा ले। नहीं, माँ! मन ही हुआ है, खिला मत देना। तू यूँ कहना, बेटा! अनन्त बार खाया है। रात्रि में जो खायेगा वो माँस का पिण्ड होगा और पानी खून के तुल्य होगा। मत खाओ, मत खाओ, भगवान का नाम लेकर सो जाओ। वह तेरी सच्ची माँ नहीं होगी जिसने कह दिया कि अब मन हो ही गया, तो खा ले। वह माँ नहीं है। बाघिन है, बाघिनी, जो तेरे संयम को खा गई। माँ! खिलाओगी रात्रि में बेटे

को? वह माँ 'माँ' ही नहीं है, जो रात्रि में बेटे को खाना खिलाये। सच्ची माँ तो वह है, जो शाम को बेटे को जिनवाणी पिलाकर सुला देती है 'बेटा! तू सो जा। जागना तो जिनदेव के दर्शन के लिये जागना, जगत् को देखने के लिये मत जागना।' इसका नाम है सच्ची माँ। इसलिये रात में दूध मत पिलाया करो, शाम को जिनवाणी पिलाकर सुला दिया करो। जिनवाणी पीकर सोयेगा, तो उसे कभी नींद की गोली नहीं खानी पड़ेगी। जिनको पागलपन से बचना है, वे कभी जीवन में नींद की गोली न खायें। जिनको नींद न आये, वे सौभाग्यशाली हैं।

योगियों को तो जित्निद्रा गुण होता है। सोने में प्रमाद से खोटे-खोटे स्वप्न आ गये, तो पाप हो गया। जागता रहेगा तो स्वाध्याय करता, जाप करता। विश्वास रखना, जो जाप करने बैठेगा और स्वाध्याय करेगा, तो अपने आप नींद आ जायेगी। दिन भर स्वाध्याय किया करो, बड़ी जल्दी नींद आती है। पर बेचारे गप्पें करते रहेंगे, स्वाध्याय नहीं करेंगे। जिन जीवों का दुर्गति का बन्ध हो चुका है वे गप्पें करके रात्रि तो गुजार सकते हैं, लेकिन जिनवाणी में अपना मन नहीं लगा सकते। भोगों के लिये रात्रियाँ दे दीं, विषयों के लिये रात्रि की रात्रियाँ दे डालीं, लेकिन अरहंत की वाणी के लिये एक घण्टा नहीं दे सकता है। जब काययोग सम्हाल लेगा, तब वचन योग पर दृष्टि डालना। उनके चित्त चंचल होते हैं, जो ज्यादा बातें करते हैं। जो सीमा से भी अधिक वाचाल होते हैं।

सुनो, एक विद्या सीखो। जब दौड़ता है तो हाथ फैलाकर दौड़ता है। ऐसा क्यों? गहरी रहस्य की बातें सीखो। रहस्य क्या है? 'मन वश करो, मन वश करो,' पागलपन छा गया है। **यदि हाथ बांध दिये जायें, तो दौड़ने की गति मंद हो जाती है। ऐसे-ही जीभ को बांधकर रखा जाये, तो मन के दौड़ने की गति मंद हो जाती है। तुम जीभ नहीं बाँध पाते हो, इसलिये तुम्हारा मन दौड़ता है। गति बढ़ाने वाला हाथों का हलन-चलन होता है, ऐसे-ही मन की गति को बढ़ाने वाली जिह्वा होती है। जितनी जीभ हिलेगी, उतना मन हिलेगा। जीभ को शान्त कर लो तो श्वासें शान्त हो जाती है। फिर श्वासोच्छवास को वश नहीं करना पड़ता है।** जीभ को स्थिर कर लो तो योग अपने आप

प्रारम्भ हो जायेगा। उपान्शु जाप, जिह्वा को स्थिर करो। जिनकी जीभें स्थिर नहीं हैं, उनके न मन स्थिर हैं, न तन स्थिर है। ज्ञानियो! वचन पर नियन्त्रण करो। जितना ज्यादा बोलोगे, उतना असत्य बोलोगे, उतना सोचना पड़ेगा। यहाँ-वहाँ का बोलेगे तो यहाँ-वहाँ का सोचेंगे। अपना सम्मान बढ़ाना है, लोक में पूजा चाहिये है, तो मित (कम) बोलो। हित-मित-प्रिय बोलो।

जो बहू घूँघट डाल कर आती है, उसका चेहरा दुनियाँ देखती है। जो पहले से ही चेहरा खोल कर आ गई, उसका चेहरा कौन देखने जा रहा है। ऐसे ही जो मौन रहते हैं, उनको दुनियाँ सुनना चाहती है, और जो पहले से ही बड़बड़ाने लगते हैं, दुनियाँ समझ जाती है कि कौन क्या है? सम्मान चाहते हो तो मौन रहना सीखो। सम्मान चाहते हो तो पर की निन्दा करना छोड़ो।

अहो आश्चर्य! आगम पढ़ लिये, पुराण पढ़ लिये, 'तत्त्वार्थ सूत्र' पढ़ लिया। ज्ञानी! पर का अहित हो जाये इसकी आपको चिन्ता नहीं है। ठीक है, मैं मान लेता हूँ, परन्तु स्वयं का अहित न हो जाये, इसकी तो आपको चिन्ता होनी चाहिये। भारत की भूमि पर विचरण करने वाले कई योगियों पर मेरी तीव्र करुणा झलकती है। ऐसा भाव नहीं आये कि ये ऐसा क्यों कर रहे हैं? तीव्र करुणा आती है। उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में लिख दिया कि, हे ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि आत्मप्रसंशा और परनिन्दा करने से कौन से गोत्र का आस्रव होता है? नीच गोत्र का।

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद् गुणोच्छादनोद् भावने च नीचैर्गोत्रस्य॥ त. सूत्र॥

हे मुमुक्षु! पर की निन्दा, स्वयं की प्रशंसा, सद्गुणों को दबाना, असद्गुणों को प्रकट करना इससे नीच गोत्र का आस्रव होता है। ज्ञानी! नीच गोत्र का आस्रव करके यदि तू गलियों में झाड़ू लगाने वाला हो गया अथवा रोड़ पर जीवों के टुकड़े करने वाले कुल में चला गया, या कहीं तू नालियों का पानी पीने वाला हो गया, तो तेरा क्या होगा? अभी तेरे वश में है, फिर तू परवश हो जायेगा। यह जीव हँस-हँस कर पाप करता है, मुस्कुरा-मुस्कुरा कर निन्दा करता है। करने वाला भी दुर्गति में जायेगा और सुनने वाला भी दुर्गति को जायेगा, क्योंकि करनेवाले को ताकत सुननेवाला ही देगा।

आगरा में नगरपालिका बहुत बड़ी है, कचड़ा भी बहुत है, मकान भी बहुत सारे खाली पड़े हैं। बच्चे तुम्हारे बाहर पढ़ने चले गये, अकेले रह रहे हो। खाली मकान क्यों डाले हो? नगरपालिका के जो ट्रक जाते हैं, उन्हीं को भरवा लो। कम-से-कम घर भरा तो दिखेगा। पर नाक पर ध्यान रखना। सूँघने की ताकत भी लानी पड़ेगी। हे ज्ञानी! तू यूँ कहता है—महाराज! खाली मकान पड़ा रहना अच्छा है, लेकिन कचड़ा घर में रख करके कौन दुर्गन्ध सहन करेगा? ऐसे-ही हे मुमुक्षु! जब भी कोई तुम्हारे सामने गद्दी में बैठ करके निन्दा करने बैठता है तो तुम यह कहना कि मैं अपने निज भवन को खाली रखना पसन्द करता हूँ, परन्तु परनिन्दा को सुनकर अपने निज में दुर्गंध फैलाना नहीं चाहता, ना ही दुर्गति में जाना चाहता हूँ। कहीं सुनने के काल में तेरा अबाधा काल (अपकर्षकाल) आ गया, तो दुर्गति हो जायेगी।

विश्वास रखना, सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा जो जिनवाणी सुनते-सुनते मृत्यु को प्राप्त होता है, उसकी सुगति हो जाती है यदि परिणाम निर्मल हैं तो।

एक भैया आया था। बीस वर्ष का बालक 'णमो जिणाणं' कहते-कहते उसने अपनी अन्तिम आयु को पूरा कर लिया धन्य हो उसके माता-पिता को, कैंसरपीड़ित बच्चे को दुनियाँ तो घर में बैठकर रोती है, महाराज के पास ले चलो। अब तो जो है, सो निश्चित है, लेकिन आपके चरणों में बेटे के परिणाम अच्छे रहेंगे। बीस वर्ष का बालक 'णमो जिणाणं' पढ़ते-पढ़ते अन्तिम श्वास ले गया। उस समयकाल तक उसकी माँ की आँखों से आँसू नहीं गिरा। वह कहती थी कि उसकी अन्तिम यात्रा में अपशगुन नहीं करना चाहती। ऐसे लोग भी हुये हैं। जब तुम्हारे घर में ऐसी अवस्था बन जाये, तो रोना मत। जब यात्रा को जाते हो, तो कलश दिखाते हो। किसी की अन्तिम श्वास निकल रही हो तो महामन्त्र का कलश दिखा देना, लेकिन आँख में आँसू डाल कर अपशगुन मत करना।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि पर की पीड़ा न हो, स्वयं की तो पीड़ा होना चाहिये। तब लगता है कि कहाँ गया आगम का ज्ञान?

कषाय के उद्रेग में कोई ज्ञान काम में नहीं आता। तभी तक ज्ञान काम में आ रहा है जब तक चित्त शान्त है और कषाय मंद है। कषायी के पास कोई ज्ञान काम में नहीं आता है। रावण भी कमरे में बैठकर सोचता था कि मैंने गलत किया है। जब अहंकार आता, तब कहता- मैं राम से कम थोडे-ही हूँ। इसलिये मन के रावण को सम्हालकर रखना।

ज्ञानी! जगत् में सब जगह जाया करो, लेकिन इस बात का ध्यान रखना कि शिव की प्राप्ति के लिये जाऊँगा, शव की प्राप्ति के लिये नहीं जाऊँगा। पंचमकाल में सबसे उत्कृष्ट धन सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व नष्ट नहीं होना चाहिये। श्रद्धा गुण में कमी नहीं आना चाहिये।

परनिन्दासु ये मूकाः, निजश्लाघापराङ्मुखाः।
ईदृशैर्यैः गुणैर्युक्तास्ते पूज्याः सर्वविष्टपे॥ 86 सा.स.॥

दूसरे की निन्दा करने में जो मूक हैं, अपनी प्रशंसा सुनने से पराङ्मुख हैं ऐसे गुण वाले ही जगत् पूज्य हैं। जो अपनी प्रशंसा नहीं करते हैं, पर की निन्दा नहीं करते हैं, वे ही लोक में पूज्य हैं और पूज्यपद में आकर भी निन्दा कर रहे हैं, वे पूज्यपद की अवहेलना कर रहे हैं। माताओ! जीवन में ध्यान रखना, 'बहिन हमने ऐसी सुनी, कोई से न कहियो' और सबसे कहती जा रही हैं। कोई बात फैलाना हो तो दीदी से कह दइयो और कह देना कोई से कहियो मत। बस, वो सब से कह देगी और कहेगी 'कोई से कहियो मत।' बिना पैसे का दूरदर्शन विभाग, बिना पैसे का दूरसंचार विभाग। ऐसा करते-करते पंचमकाल में आ गई हो, अब छटवें काल की तैयारी मत करना। आज से त्याग कर दो।

"**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**" आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

साधु सुख का भोक्ता

प्राणान्तिकेऽपि सम्प्राप्ते, वर्जनीयानि साधुना।
परलोक-विरुद्धानि, येनात्मा सुखमश्नुते॥ 87॥

अन्वयार्थ—प्राणान्तिके अपि सम्प्राप्ते = प्राणों के अन्त होने पर भी, **साधुना** = साधु को, **परलोक विरुद्धानि** = परलोक से विरुद्ध कार्यों को, **वर्जनीयानि** = त्याग देना चाहिए, **येन** = इसी उपाय से, **आत्मा** = यह आत्मा, **सुखं** = सुखको, **अश्नुते** = भोग सकता है।

भावार्थ—प्राणविनाश का समय आ जाने पर भी साधुजनों के लिये परलोक-विरुद्ध कार्य वर्जनीय ही हैं। इसी से आत्मा सुख का भोक्ता बनता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' जी ग्रन्थ में आत्मद्रव्य की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि हे ज्ञानी! जबतक असमान-जाति पर्याय का राग सता रहा है, तब तक हमें शुद्ध पर्याय का भान नहीं हो सकता है। जिस पर्याय से मुक्ति के लिये योगियों ने साधना की है, जिस पर्याय के विलीनीकरण के लिये मोक्षमार्गी बना है, उस पर्याय की प्रसंशा में ही डूब गया, तो हे ज्ञानी! तूने जिनलिङ्ग धारण किया ही क्यों है? जो पुरुषार्थ चल रहा है वह असमान-जाति पर्याय में चल रहा है। निर्ग्रन्थ तपोधन देह को भोजन भी देते हैं तो देह को चलाने के लिये देते हैं, देह को सजाने के लिये नहीं देते हैं। देह को चलाते हैं जब-तक रत्नत्रय के फल को प्राप्त न कर सकें। जहाँ देह सजाने का लक्ष्य आ गया, वहाँ असमान-जाति पर्याय में लीन हो गया। मेरा यश, मेरी कीर्ति, मेरा नाम। जब इस जीव को विवेक-ज्ञान का अभाव हो जाता है, तब असमान जाति पर्याय पर राग की पुष्टिता होती है। जैसे-जैसे विवेक की वृद्धि होती है, कर्म-नो-कर्म से अपने आपको पृथक् देखता है। पुरुषार्थ इस बात का होना चाहिये कि मैं देह में होकर भी देह से भिन्न हूँ। शरीर में होकर भी शरीर का नहीं हूँ। एक सौ अड़तालीस कर्म प्रकृतियों से बद्ध होने पर भी मैं कर्मभूत नहीं हूँ।

तीर्थंकर के पादमूल में जीव कह रहा है-'हे स्वामी! मेरे कर्मों का क्षय हो।' और उन्हीं तीर्थंकर के पादमूल में भावना भा रहा है—'हे नाथ! मेरे यश-कीर्ति का प्रादुर्भाव हो।' ''**भोजन छोड़ देना सरल है, पानी छोड़ देना सरल है। परन्तु देह के यश का परित्याग कर पाना कठिन है। शरीर पर साँप चढ़ जाये, फिर भी स्थिर बैठे रहना सरल है। डाँस/मच्छर काट जाये, यह सहना सरल है, परन्तु दूसरे के यश को सहन करना अत्यन्त कठिन है।**'' जिस दिन अपना अपयश सहन करने की ताकत आ जायेगी, उस दिन तू सच्चा योगी बन जायेगा।

लाभ-अलाभ में हर्ष-विषाद जब तक ये दो धारायें बह रही हैं, तब तक वीतराग भाव बहुत दूर है। जीव के अन्दर सहनशक्ति आ जाये, लाभ होने पर भी हर्षभाव न आ पाये। ''**धन का लाभ हुआ है तो अन्दर में हर्षभाव चल रहा है, यह रौद्रध्यान है। धन का नाश हो गया तो अन्तरङ्ग में विषाद-भाव चल रहा है, यह आर्त्तध्यान है। कहीं ऐसे आर्त्त-रौद्र परिणामों के साथ मरण हो गया, तो तुझे दुर्गति में जाने से तीर्थंकर भी नहीं बचा पायेंगे।**'' खोज करो परिणामों की। लाभ के राग में जितना मिथ्यात्व फैलाया है, उतना किसी अन्य कारण से नहीं फैलाया है। तुझे बोध होना चाहिये कि लाभ (राग) भी कर्मोदय है, अलाभ भी कर्मोदय है। कर्म आत्मा का धर्म नहीं है। जो आत्मा का धर्म नहीं है, उसके राग में तूने आत्मा की वंचना की है। लाभ तो लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त होता है। अलाभ तो अन्तराय की तीव्रता से होता है। मिल रहा है तो भी शान्त, नहीं मिल रहा है तो भी शान्त। क्यों? कोई तुझसे दस का नोट खींच लेता है, तेरी वस्तु नहीं है। देता है, तेरी वस्तु नहीं है। लेता है, तेरी वस्तु नहीं है। इन दोनों के बीच में क्या है? जो लेने-देने के बीच में बैठा है, वह तेरा राग है। आत्मा की कर्म-सापेक्ष विभाव-दशा तेरी है, जो ऊपर-नीचे कर रही है। जब जगत् के प्रपञ्चों से दूर हट कर आगम के विषयों पर बैठकर चिंतन करेगा, तब सत्य का बोध होगा। धन्य-धान्य के बीच बैठ करके, सम्बन्धियों के राग में बैठ करके सत्य को समझा ही नहीं है, क्योंकि जब तक हर्ष-विषाद भाव रहेगा, ये कर्मसापेक्ष अनुभूतियाँ ले रहे हैं। अभी तक, शुद्ध आत्मतत्त्व तो छोड़िये,

आपने शुद्ध काषायिक भाव की भी अनुभूति नहीं ली। तूने आज तक स्वयं के कषाय का भी आनन्द नहीं लिया, क्योंकि कषाय की अनुभूति हो नहीं पा रही, तब तक कषाय का आनन्द प्रकट हो जाता है।

समझो मैं क्या कह रहा हूँ? कषाय का आनन्द नहीं लिया। जैसे कषाय उत्पन्न हुई, वैसे-ही कषाय को दूसरे पर उडेल दिया और शान्त। क्रोध आया और दूसरे पर बरस गया, तू अपने क्रोध का वेदन नहीं कर सका, तू दूसरे पर गुस्सा हो गया। काश तू अपनी क्रोधकषाय को ही ज्ञेय बना लेता और यूँ चिन्तन करता-मेरे परिणाम इस समय क्रोध कषाय में हैं। मेरे परिणामों में इस समय अग्नि लग चुकी है। अग्नि में जो-जो वस्तु रखी जाती है, वह जल जाती है।

दया को पहचाना ही नहीं, पर की चर्म को बचाना ही दया माना है। यदि किसी के घर में आग लग जाये, तो क्या तू उसमें किसी को उठाकर फेंकेगा, आग में जलायेगा? यदि तू जैन है, करुणाशील है, तो उस आग में किसी को डालेगा नहीं। ऐसे-ही तेरे निज घर में क्रोधकषाय की आग लग जाये, तो उन क्रोध के अंगारों को तू दूसरे पर फेंकेगा तो तेरी दया पलेगी क्या? जैसे पर के ऊपर आग नहीं फेंकी जाती है, वैसे ही निजघर में आग लगने पर दूसरे का घर मत जलाना। यदि करुणाशील और विवेकशील हो तो इतना ध्यान रखना कि जब गुस्सा आ रही हो तो एकान्त में जाकर बैठ जाना। जब तू ठण्डा हो जाये, तब परिवार के बीच में आना, मित्रों के बीच में आना और धर्मसभा में तो प्रवेश ही नहीं करना और मंच पर बोलने का तो मन ही नहीं बनाना। कहीं मंच पर आकर बैठ गया और तेरे भीतर आग जल रही है, तो तू कोटि-कोटि श्रोताओं को झुलसा देगा। क्या निकालेगा? आग निकालेगा। श्रोताओं की विशुद्धभाव-दशा झुलस जायेगी।

यदि दयावान् हो, करुणावान् हो, तो गडढे में गिरते आदमी को उठाना पसन्द करते हो। वह भी दया है। तो अग्नि में गिरते आदमी को उठाना चाहिये कि नहीं? उठाना चाहिये। जब-जब कषाय आती है, तो स्वयं का भी घात होता है और दूसरे पर पड़ती है तो उसका भी घात होता है। स्व-पर घाती कषाय। स्वयं

का भी घात किया, पर का भी घात किया। जितने परिवार नाश हुये हैं, कषाय के द्वारा ही हुये हैं। देश का विनाश कषाय के द्वारा हुआ है। जितने लोगों की दुर्गति हुई है, कषाय के द्वारा हुई है। वर्षों की मैत्री क्षणमात्र में नष्ट कर दी। किसने? कषाय ने। गुरु-शिष्य जैसे मधुर सम्बन्ध कषाय के कारण नष्ट हो गये। पिता-पुत्र के सम्बन्ध विलीन हो गये कषाय के कारण। श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध भी कषाय में नष्ट हो गये। आप तभी तक सबके हो जब तक तेरे हृदय-आँगन में कषाय की आग नहीं लगी। यदि कषाय की ऐसी आग लग गयी, तो तुझे कुछ भी दिखाई नहीं देगा, सारे राग कषाय में राख हो जायेंगे।

यहाँ मुझे मत सुनो। जो तुम्हारे घर में हुआ, उसका चिन्तन करो। जो तुम्हारे घर में घटित हुआ, उसको सोचो। राख हो गये कषाय में। एक कटोरे में खीर खाने वाले दो भाई विच्छिन्न हो गये कषाय में। इसलिये हर्ष-विषाद भाव को जानने का प्रयास करो। जो जीव निज के हर्ष-विषाद को जानने लगेगा, उसे अलग से ध्यान करने नहीं बैठना पड़ेगा। यही ध्यान चल रहा है।

हर्ष को प्रमेय बनाइये, विषाद को प्रमेय बनाइये। हर्ष-विषाद को ज्ञेय बनाकर ज्ञान का विषय बनायेगा तो कषाय किसी पर टूट नहीं पायेगी, स्वयं शान्त हो जायेगी। उबलते दूध के लिये थोड़ा-सा पानी का छींटा चाहिये, खौलते परिणामों में जिनवाणी का छींटा मार दो, ज्ञान का छींटा मार दो, तो तेरे परिणाम शान्त हो जायेंगे। दो काम हो सकते हैं। या तो चूल्हे की अग्नि खीच दो या पानी का छींटा मार दो। उबलते दूध को शान्त करने के लिये या तो अग्नि को शीघ्र बन्द कर दो या पानी का छीटा कर दो। ऐसे-ही उबलते परिणामों के समय जिन निमित्तों से परिणाम उबल रहे हैं, उन निमित्तों के चूल्हे को बुझा दो या फिर जिनवाणी का पानी छींट दो, तो तेरे परिणाम शान्त हो जायेंगे।

आश्चर्य तब होता है, जब मोक्षमार्ग पर चलनेवाला पथिक मार्ग को ही भूल जाता है। कर्म का क्षय करनेवाला जीव कर्म में ही आकण्ठ डूब जाता है। मेरा शरीर मेरे साथ कब तक रहेगा और आपका शरीर आपके साथ कब तक रहेगा?

जिन वर्गणाओं का मैं भोग कर रहा हूँ, वे उच्छिष्ट हैं। उच्छिष्ट अर्थात् वमन।

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्, मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥ 30 इष्टो.॥

मेरे द्वारा ब्रह्मण्ड के सारे पुद्गल-पिण्ड भोगे जा चुके हैं। जो आज खाया है, वही मल बनकर, विसर्जित होकर, खाद बन कर, खेतों में जाता है और वे ही परमाणु पुनः थाली में सज कर आते हैं। तू कह रहा 'आ-हा! आनन्द आ गया। ऐसा भोजन कभी नहीं किया।' जो भीतर गया वही बाहर आया है, फिर वही भीतर गया, नया क्या हुआ है? घटाकाश का पानी गिलासाकाश में और गिलासाकाश का पानी मुखाकाश में, मुखाकाश का पानी पेटाकाश में, और पेटाकाश का पानी पुनः नदी में नदी से समुद्र में, समुद्र से वाष्पित होकर आकाश में वही पुनः लोटे में आ गया, वही मुख में आ गया नया कुछ भी नहीं है अनन्तों बार भोगा हुआ उच्छिष्ट है। जिन वर्गणाओं को मैं भोग रहा हूँ, उन वर्गणाओं को तूने भोगा, अनन्तों ने भोगा, वे ही वर्गणायें। यह शरीर झुलस जायेगा, उस पर हरी घास उग आयेगी, उसी में पुनः फल लगेंगे, जिनको तू छोड़कर आया था उन्हें पुनः खाना प्रारम्भ कर दिया, नया तूने क्या किया? यह विषय समझ में नहीं आ रहा है। जगत् में उससे बड़ा बहिरात्मा जीव नहीं होगा जो अपने शरीर के प्रचार के लिये अपनी पर्याय को विलीन कर रहा है। वो चाहे मैं हूँ, चाहे तू हो। यदि अन्तरङ्ग में देह के प्रचार का भाव उमड़ रहा है, ज्ञानी! किसका प्रचार? जो मेरे हुये नहीं, जिनका मैं हुआ नहीं, जो मेरे होंगे नहीं, जिनका मैं होऊँगा नहीं, जो मेरे थे नहीं, जिनका मैं था नहीं, उनमें मेरा पूरा जीवन बरबाद हो रहा है। त्रैकालिक अवस्था चल रही है। यहाँ तक आये हो, कम-से-कम सुन कर ही चले जाओ, क्योंकि मुझे मालूम है कि गहरे में जा नहीं पाते हो और घर में विषय का चिन्तवन बनता नहीं है। बनता भी है तो इतना ही बनता है कि यह छोड़ो वह छोड़ो, परन्तु छोड़ा क्यों? इस पर ध्यान ही नहीं गया। तो क्या किया? जब-जब धर्म पर दृष्टि जाती है सारे धर्म मुझे असमान जाति पर्याय तक ही नजर आते हैं। पर्याय की रक्षा का ही जीवन चल रहा है, पर्याय की

रक्षा में ही जीवन जा रहा है। तूने धर्म भी किया तो पर्याय से ही किया और पर्याय के लिये ही किया और पर्याय ने ही किया है। असमान जाति। 'ओह! अमुक व्यक्ति बीमार है, उसके प्राण बचा लो।' लोक की दृष्टि से ठीक कह रहा है। महाराज! जैसे बने तैसे बचा लो। चाहे रक्त-पिण्ड खिला दो, चाहे खून पिला दो, जैसे बने वैसे बचा लो।

हे ज्ञानी! जिस व्यक्ति ने आठ वर्ष की उम्र में मद्य, माँस, मधु का त्याग किया था, पाँच उदम्बर फलों का त्याग किया था, ऐसा अरहन्त का भक्त, उसका शरीर अस्वस्थ हो गया तो तुझे लगा कि बचेगा नहीं। हे ज्ञानी! अब तू क्या कर रहा है? खून की बोतल चढ़ा दो, जैसे बचे वैसे बचा लो। हे अभागे! तूने उस जीव की आत्मा पर करुणा नहीं की है। तेरी करुणा उसकी पर्याय पर टिकी रही। जिसने आठ वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक संयम का पालन किया हो, आज तू अन्तिम श्वास के समय उसे भ्रष्ट कराके दुर्गति में भेज रहा है और कह रहा है, कि मैंने बहुत बड़ी करुणा की है। अभी तुझे करुणा का पता ही नहीं था। तेरी करुणा मैं मान लेता जब तू सभी को बाहर करके धीरे-से कहता-मेरे मित्र! यह देह तो बचने वाली नहीं है। असमान-जाति पर्याय को तो कोई बचानेवाला नहीं है। तीर्थंकर भी आ जायें, वे भी नहीं बचा पायेंगे। तेरे वश में पर्याय नहीं है, तेरे वश में परिणाम हैं। तू चाहे तो परिणाम बचा कर परमात्मा बन जाये, पर्याय तू नहीं बचा सकता है। अज्ञानी पर्याय को बचाने के चक्कर में परिणामों का नाश करा देते हैं और कहते हैं कि मैं दयावान हूँ। जैनत्व की दया को पता नहीं कहाँ कर दिये? लोक की आँख से देखोगे तो मेरी बात विपरीत लगेगी। परमार्थ से देखेगा तो इससे बड़ा कोई सत्य नहीं है। तीर्थंकर, नारायण, चक्रवर्ती जैसे जीव—

तत्थ भवे किं सरणं, जत्थ सुरिंदाण दीसदे विलओ।
हरि हर बंभा दीया, कालेण य कवलिया जत्थ॥ 23 का.आ.॥

उनका कौन शरण हुआ? हरि हर ब्रह्मा सबको काल ने चबा लिया है। तुम कौन-से खेत की मूली हो जो पर्याय को बचा लोगे। पर्यायों के राग में परिणति

का घात मत करो। ऐसा कार्तिकेय स्वामी 'कार्तिकेय अनुप्रेक्षा' ग्रन्थ में लिख रहे हैं। उसका कौन शरण होगा? ब्रह्माण्ड में कोई परम पुण्यात्मा जीव हैं तो वह तीर्थंकर हैं। तीर्थंकर से बड़ा पुण्यात्मा विश्व में न हुआ, न होगा। जिसके पादमूल में सौधर्म इन्द्र हाथ जोड़े खड़ा रहता हो, उन तीर्थंकर का भी निर्वाण हो गया, तो तुम्हें बचाने वाला कौन मिलेगा? चाहे मृत्युञ्जय विधान कर लो, चाहे कितने ही जाप और पाठ कर लो। औषधियाँ, तन्त्र-मन्त्र सभी आयुकर्म की सत्ता में काम आते हैं। आयुकर्म के विलीन होने पर कोई काम में नहीं आते। धनवन्तरि की भी मृत्यु हो गई, जिन्होंने आयुर्वेदशास्त्र लिखे हैं। जब उनकी भी मृत्यु हो गई, तो मैं भी नहीं बचूँगा, मुझे पक्का श्रद्धान है। आप बचो तो आप जानो। भैया! आप तो बच जाओगे? नहीं। जब नहीं बच पाओगे, तो उसे बचा लो जो बचनेवाला है। धर्म। बहुत कठिन है। यश की आराधना-आत्मा की विराधना है।

जो महल/अटरियाँ गगन का चुम्बन किया करते थे, वे अवनि-तल में सो गये, लेकिन ज्ञानी परेशान है कि कौन-सी दीवाल पर मेरा नाम लिख जाये जहाँ बच जाये। जब तू ही नहीं बचेगा, तो तेरा नाम कहाँ बचेगा? बेटा! न किसी को गिराना, न उठाना। ये तेरा शुद्ध पागलपन है।

चक्रवर्ती भरत दिग्विजय करके आता है और वृषभाचल पर्वत पर पहुँच कर सेनापति से कहता है- जाइये, इस वृषभाचल पर्वत पर मेरा नाम अंकित करके आइये। सेनापति जैसे-ही पर्वत पर पहुँचता है, स्तब्ध हो गया। नीचे से आवाज आती है सेनापति जी! विलम्ब किस बात का? शीघ्रता कीजिये। 'हे नरोत्तम! हे नृपति! चक्रेश! क्षमा कीजिये।' बात क्या है? 'राजन्! इस पर्वत तल पर ऐसा कोई प्रदेश दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है जहाँ आपका नाम अंकित कर सकूँ। क्यों? भूत में इतने चक्रवर्ती हो चुके हैं कि आपका नाम लिखने को कोई शिला बची ही नहीं है। मैं प्रथम तीर्थंकर का प्रथम पुत्र, भारत भूमि का सम्प्रति प्रथम चक्रवर्ती, मेरा नाम लिखने को क्या कोई स्थान नहीं है? हाँ! स्वामी! कोई स्थान नहीं है। कोई बात नहीं, एक पटिया पलट दो, मेरा नाम लिख दो। हे चक्रवर्ती

भरतेश! तुम अहंकार में डूब गये, तुम भूल गये कि जब दूसरा चक्रवर्ती आयेगा तो यह पटिया भी पलटा जायेगा। सबके दिन एक-से नहीं होते। हे श्रावको! इस भ्रम को तोड़ दो कि मैं ही बचूँगा। कोटि-कोटि महान् जीव हो गये, उनके नाम नहीं बचे तो तेरा नाम कहाँ बचने वाला है? जब तक वस्तुस्वतन्त्रता/आत्मस्वतन्त्रता का भान नहीं है, जब तक पर्याय के राग का भेदविज्ञान नहीं हुआ है, तब तक कोई वैराग्य नहीं है। जब शुद्ध वैराग्य उत्पन्न होता है, तब वह क्षण आता है कि न मैं संस्कार, न मैं संस्कृति। मैं जो हूँ, वह हूँ। मैं प्रमत्त नहीं मैं अप्रमत्त नहीं। प्रमत्त-अप्रमत्तपने का जहाँ अभाव हो गया है, फिर कौन-सी संस्कृति की रक्षा करूँ, कौन-से धर्म की रक्षा करूँ? मैं जो हूँ, वही तो धर्म है। उसमें लीन हो जाना, यही धर्म की रक्षा है, यही संस्कृति की रक्षा है। यह परम निश्चय नय की व्याख्या है। धर्म को छोड़कर धर्म कहाँ? जहाँ किञ्चित् भी क्लेश आता है, वहाँ धर्म नहीं होता है। जो आप सुन रहे हो, बहुत ऊपर की दशा है। मैं परेशान क्यों होऊँ? 'ज्ञानी प्यासा है, इसे पानी पिला दूँ।' ओह! प्यासा तो पानी खोज लेगा, परन्तु पानी पिलाने की भावना रखने वाला तू निज के नीर से फैल हो चुका है। आपकी भूमिका में आप पानी पिला देना। दया/करुणा रखना। लेकिन ध्यान रखना, धर्म इसके ऊपर है। यहीं सिमटे रहे तो आगे नहीं जा पाओगे।

ज्ञानी! गन्ने के रस में स्वाद है, लेकिन एक अज्ञानी-ज्ञानी गन्ने को पेलता रहा, रस पीता रहा। जीवन भर वह गुड़ का स्वाद नहीं चख पाया। थोड़ा ऊपर चढ़ा, गुड़ ही चखता रहा तो खांड का स्वाद नहीं चख पाया। खांड को चखता रहा, लेकिन शक्कर के स्वाद को नहीं चख पाया। एक अज्ञानी, रस को ही पीने वाला, मिश्री का स्वाद क्या चख पायेगा? यह तुम्हारी जितनी धर्म की व्याख्या है, वह गन्ने का रस है। उसको और-विशिष्ट कीजिये, और-शुद्ध कीजिये। मिश्री बनाइये। गन्ने की सबसे शुद्ध स्वादिष्ट पर्याय मिश्री है। ऐसे-ही मिथ्यात्व को छोड़ करके सम्यक् के गुणों को प्रकट किया, अभी सन्तुष्ट मत हो जाना। सामायिक से परिहार-विशुद्धि,सूक्ष्म-सांपराय, यथाख्यात चारित्र और परम यथाख्यात

चारित्र की अनुभूति लेगा, तब कहीं शुद्ध मिश्री का स्वाद प्रकट होगा। परम यथाख्यात का फल सिद्ध-पर्याय होगा। यह मत सोचना कि हमें सुनाने से क्या लाभ जब हमें होना ही नहीं है?

अरे मुमुक्षु! जब तक ज्ञान नहीं होगा, तब तक उसको पाने के भाव कैसे होंगे? हमारे वक्ता भूल कर रहे हैं। वो यूँ बोल देते हैं कि यह 'समयसार' श्रावकों को नहीं सुनाने का। अरे मुमुक्षु! तुम श्रावकों के साथ छल कर रहे हो। गन्ने का रस पिला-पिला करके अन्य पर्याय का बोध ही नहीं होने दे रहे हो। गन्ने के रस का पान तो कर रहे हो। उसे तपाना पड़ेगा। घर की सामान्य भट्टी में तपाकर तो गुड़ ही बना पाओगे। कारखाने में ले जाओगे तो खाँड या शक्कर बनाओगे और शक्कर के बाद की प्रक्रिया मिश्री होगी। ऐसे-ही बहिरात्मा को समाप्त करके अन्तरात्मा (जघन्य, मध्यम उत्कृष्ट अन्तरात्मा) जब बनेगा, तब कहीं परमात्मा बन पायेगा। ज्ञानी! इतना ही समझ लो कि गन्ने के रस में कितनी सामग्रियाँ हैं? गुड़ हे, शक्कर है, मिश्री है। जब सब हैं, तो गन्ने के रस में सबका स्वाद आया क्या? नहीं। जैसे गन्ने के रस से भरे ग्लास में सभी सामग्रियाँ शक्तिरूप से मौजूद हैं, वैसे-ही तेरे अन्दर भी केवली भी है, अरहन्त भी है, सिद्ध भी है। बस, निकालने की आवश्यकता है। वह कब निर्मलता को प्राप्त करेगा?

गन्ने का रस काला होता है, परन्तु काले रस में भी गोरी शक्कर दिखेगी नहीं, लेकिन कारखाने में ले जाओ तो कालापन निकल जायेगा। विहार के समय शक्कर के कारखाने मिले। देखने गये। एक ओर से गन्ना डाला जा रहा है, दूसरी ओर से शक्कर निकल रही है, बोरी में भर रही है और स्वयं सिल रही है। किसी पुरुष का हाथ ही नहीं लग रहा है। कितनी प्रक्रियायें भीतर-ही-भीतर चल रही हैं। गन्ना डाला और शक्कर निकल रही है। ऐसे ही—

हे मुमुक्षु! तुम वर्तमान की मनुष्यपर्याय को भेदविज्ञान के कारखाने में डाल दो तो सिद्ध पर्याय ही निकलेगी, लेकिन डालना पड़ेगा। काले रस में गोरी शक्कर निकल सकती है। ऐसे-ही काले शरीर में गोरी भगवान्-आत्मा है, उसे निकालने

का प्रयास करो, लेकिन पर्याय का राग छोड़ना पड़ेगा। आज से, अभी से ही छोड़ना पड़ेगा। किञ्चित् भी राग की आग झुलस रही है, तो बहुत दूर है। जो हमारे पुरुषार्थ में नहीं आ रहा है, उसे अभाव में देखना प्रारम्भ कर दिया। सोलापुर में एक त्यागी था। उसने एक दिन उपदेश सुने और फिर तीन दिन मेरे पास नहीं आया। वह कहता है कि महाराज जी आप जो कहते हैं, वह सम्भव है क्या? वह कहता है—हे महाराज! मैं तो पागल हो गया। आप जो ऊँचा-ऊँचा बोल रहे हो, यह सम्भव ही नहीं है। क्या ऐसा हो सकता है कि मैं किसी से बात न करूँ, अपने में ही लीन हो जाऊँ? मैं तो पागल हो रहा हूँ। मैंने कहा, ज्ञानी! तेरी सामर्थ्य की कमी है, इसलिये तू पगला रहा है। इसका मतलब यह नहीं है कि ऐसा सम्भव ही नहीं है। ज्ञानी! वे ही तत्त्व को झेल पायेंगे जिनका वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम होगा। अधिक ध्यान में मत घुमाना, पागल हो जायेंगे। उत्कृष्ट ध्यान उत्तम संहनन वाले को ही होता है। उत्तम ज्ञान। जब तक अनन्तबल नहीं होगा, तब तक अनन्तज्ञान को धारण नहीं कर सकता।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनकी पन्द्रह मिनिट में आँखें दर्द करने लगती हैं, सिर दर्द करने लगता है। इनके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम मन्द है। ज्ञान को धारण करने के लिये शक्ति चाहिये। सिर पर टोकनी रखकर फेंकने वालों की ताकत शरीर की है। बुद्धि की मेहनत करने वालों को वेतन अधिक मिलता है, शरीर की मेहनत करने वालों को वेतन कम मिलता है। ऐसे-ही शरीर की साधना करने वालों की निर्जरा बहुत कम होती है। जो आत्मा की साधना करता है, उसकी निर्जरा प्रचुर होती है। वह निर्जरा ध्यान से होती है। तू तीन घण्टे खड़े-खड़े पूजा कर सकता है, परन्तु तीन मिनिट ध्यान नहीं कर सकता। सब सीधे बैठ कर अपनी आँख से नाक को देखो और चिन्तवन करो 'ब्रह्मानन्द स्वरूपोऽहं'। दुनियाँ को देखने में सिर भारी नहीं होता, लेकिन निज की नाक देखने में सिर भारी होता है। परन्तु ध्यान रखना, जब तेरी आँख से नाक दिखना बन्द हो जाये, उसी दिन समाधि लेकर बैठ जाना, क्योंकि वह अन्तिम दिन है। जब आँख से नाक देखने में इतना समय लगता है, तब आत्मा से आत्मा को

देखने में कितना समय लगेगा? द्वादशांग के अन्दर जैनदर्शन में ऐसी कोई विद्या नहीं है जिसकी व्याख्या न हो। आप लोग समय नहीं देते हो, क्या करूँ?

बहु व्यापारी के हाथ में जिनवाणी पड़ गई, जो हर विषय में व्यापार देखता है, कि लाभ हो, ऐसा काम करूँगा। कागज देखते-देखते समय नहीं मिलता ग्रन्थ पलटने के लिये। मेरे मित्रो! इतनी करुणा करना जिनशासन पर एवं स्वयं के ऊपर कि साल भर में एक ग्रन्थ पढ़ लिया करो। जिस ग्रन्थ को प्रारम्भ किया, उसी को पूरा करना। सबसे पहले तो तुम 'पुरुषार्थ देशना' पढ़ो। इससे सभी की बुद्धियाँ ठीक होती हैं। जिन्होंने नियम लिया, कायोत्सर्ग करो व्याख्यात्मक शैली में भावात्मक दृष्टि आनी चाहिये। जिनके मन-मस्तिष्क में चित्त को शुद्ध करने की बात बार-बार टकरा रही है। मैं स्वाध्याय पर जोर क्यों दे रहा हूँ? पंचमकाल में उत्कृष्ट साधना स्वाध्याय ही बची है, क्योंकि जितने चित्त भ्रमित होते हैं, आँखों से। किसी तिर्यञ्च की भी अशुभ क्रिया देखकर आये हो, मन्दिर में भी खड़ा हो, तो भगवान् नहीं दिखते, तिर्यञ्च दिखाई दे रहा है। किसी गलत काम को देखकर आया है, भगवान् के सामने भी खड़ा है, तब भी उसको भगवान् नहीं दिख रहे, वह चित्र दिख रहा है। भटकता मन है, भटकाती आँखें हैं। माला लेकर बैठेगा तो मन भी फुर्सत में है और आँखें भी फुर्सत में हैं। फिर तो क्या कहना? जिसके पास कोई काम न हो, फिर तो आप समझते हो। इसलिये समय के साथ इनको कार्य दे दो भटकाने वाली आँखें अक्षरों पर होंगी और मन अर्थ पर होगा। स्वाध्याय की बात कर रहे हैं। आँख अक्षरों को देखेगी, मन अर्थ को देखेगा, तो तू अनर्थ से बच जायेगा। इसलिये स्वाध्याय कर लो। जिसका मन ही अर्थ पर न हो, आँखें अक्षरों पर न हों, उसका तो अनर्थ होना-ही-होना है।

मुमुक्षु! भले ही दूध का गिलास क्यों न पिलाना पड़े, परन्तु कहना कि स्वाध्याय सुन लो। घर में मेहमान आये तो मिठाई खिलाने के साथ सुना देना कि आज जिनवाणी में आया **'जिसका मन वश में है, सारा विश्व उसके वश में है। जिसका मन वश में नहीं है, वह सारे विश्व के वश में है। नौकर वे ही बनते हैं, सिर पर वजन वे ही ढोते हैं, परिवार वे ही बसाते हैं, जिनके मन**

वश में नहीं होते हैं। जिनके मन वश में नहीं हैं, वे जगत् की चाकरी करते हैं।' मोड़ा-मोड़ी को वे मनायें जिनके मन नहीं मने होते हैं। नाती-पोता को वे मनायें जिनके मन नहीं मने होते हैं। जिनके मन मने होते हैं, उन्हें कोई नाती-पोते नहीं मनाने पड़ते हैं।'' देखो इन मुनिराजों को, कोई को नहीं मनाना पड़ता। अब तुमने की गल्ती, मन नहीं मना पाये, सो मनाओ। बेचारा, देखो कभी इधर, कभी उधर। भौंरा देखा? कभी इस फूल पर, कभी उस फूल पर। ऐसे ही आप कभी इस फूल पर, कभी उस फूल पर। अब आप समझो मैं क्या कह रहा हूँ। बेचारे फूल ही बन गये। अंग्रेजी में फूल (Fool) माने मूर्ख।

हे मुमुक्षु! परनिन्दा में मूक हो जाओ। परनिन्दा वही करता है, जिसको अपने यशकीर्ति की भूख होती है। पेट की भूख मिटा देना सरल है, परन्तु ख्याति की भूख नहीं मिटती है। पेट की भूख के लिये तो उपवास भी कर लेता है, परन्तु ख्याति की भूख के लिये कभी उपवास नहीं करता। दूसरे की प्रशंसा हो रही हो तो कहेगा 'बस, बहुत हो गया, सुन लिया।' और स्वयं की प्रशंसा शुरू हो जाये तो 'आ हा!' जैसे बच्चों के मुख में चाकलेट घुलती है, चूसने से और मीठी लगती है, ऐसे-ही परनिन्दा में कितनी चाकलेट घुलती है, और अपनी प्रशंसा सुनने में क्या आनन्द आता है। परनिन्दा करने से मोक्ष नहीं मिलेगा। आचार्यभगवान् ने कहा है कि—जो परनिन्दा में मूक है और निज की प्रशंसा से पराङ्गमुख है, ऐसे व्यक्ति ही सारे विश्व में पूज्य होते हैं।

'दोष वादे च मौनम्'। जब तुम्हारे सामने कोई पर की निन्दा करे तो धीरे-से कहना—'दोष वादे च मौनम्', दोष के बोलने में मेरा मौन है। **''सम्यग्दृष्टि जीव परनिन्दा करने में मूक होता है, परनिन्दा सुनने में बहरा होता है, पर-नारी के लिये नपुंसक होता है, पर धन के लिये हाथविहीन होता है, लेकिन परमात्मा की आराधना के लिये सर्वाङ्ग पूर्ण होता है। उसका नाम सम्यग्दृष्टि होता है।''**

प्राणान्तिकेऽपि सम्प्राप्ते, वर्जनीयानि साधुना।
परलोक-विरुद्धानि, येनात्मा सुखमश्नुते॥ 87 सा. स.॥

लगता है आचार्यमहाराज कितने गहरे रूप में बैठे होंगे और धर्म के प्रति कूट-कूट कर 'पिय धम्मो, दृढ़ धम्मो' सूत्र भरा होगा।

साधुओं को छोड़ देना चाहिये। मेरे प्राणों का वियोग भी क्यों न हो रहा हो, जिससे मेरा धर्म का नाश होता हो, ऐसी क्रिया को छोड़ देना चाहिये। मुझे प्राण बचाने की आवश्यकता नहीं है, मुझे प्रण बचाने की आवश्कता है। अन्तिम श्वास निकल रही हो और तेरा कोई मित्र आकर कह जाये कि अमुक वस्तु का सेवन करा दो तो वह बच जायेगा तब तुम कह देना कि मैंने अपने दिगम्बर वीतरागी गुरु से प्रतिज्ञा ली है कि प्राण दे सकता हूँ, लेकिन प्रण नहीं छोड़ सकता हूँ। प्राण दे देना, परन्तु प्रण मत छोड़ना। प्राण जाने पर तो उसी भव में दु:ख होगा। जब तुम्हारे प्राणों की बाजी लग जाये और एक ओर संयम खड़ा हो तो तुम प्राणों की बाजी लगा देना, लेकिन संयम को मत छोड़ देना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

विनयी का अपमान नहीं होता

संमानयति भूतानि, यः सदा विनयान्वितः।
सः प्रियः सर्वलोकेऽस्मिन्नापमानं समश्नुते॥ 88॥

अन्वयार्थ—यः = जो, **सदा विनयान्वितः** = सदैव ही विनयावान है, **सः** = वह, **भूतानि** = प्राणीमात्र का, **संमानयति** = सम्मान करता है, **सः** = वह, **अस्मिन् सर्वलोके** = इस सर्व लोक में, **प्रियः** = प्रिय माना जाता है, **अपमानं** = वह अपमान, **न समश्नुते** = नहीं भोगता है।

भावार्थ—जो मानव विनयशील है और सर्वजीवों की रक्षा करता है, वह इस सम्पूर्ण लोक में प्रिय होता है। वह कभी भी अपमान का पात्र नहीं होता।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सार समुच्चय' जी में आत्मा की उस परम दशा की व्याख्या कर रहे हैं जो कि अनादि-अविद्या के वश आच्छादित है। अपनी निज की शक्ति को जीव नहीं पहचान पा रहा है। जगत् की सम्पूर्ण सत्ताओं को, सम्पूर्ण शक्तिओं को जानता हुआ भी, जो सारे जगत् को जान रहा है, उसे जानने का प्रयास नहीं है। अहो, आश्चर्य! जड़ को जानने का पुरुषार्थ जारी है। जिससे मेरा सम्बन्ध किञ्चित् मात्र भी नहीं है, ऐसे द्रव्यों के प्रति तो मेरी ललक है, लेकिन जो त्रैकालिक मेरा ही स्वभाव है, मेरे से कभी भिन्न नहीं हुआ, मैं उससे भिन्न नहीं हुआ, उसे जानने का विचार ही नहीं होता। जैनकुल में जन्म ले लेना, निर्ग्रन्थ मुद्रा को प्राप्त कर लेना, इसकी महिमा तभी है, जब सत्यता का बोध हो जाये। हे सत्य! तुमने जगत् के प्राणियों को जाना, जगत् के द्रव्यों को जाना, परन्तु जाननहार को नहीं जाना। जिसने सारे लोक को जनाया है, उसे क्यों नहीं जान रहा है? लोक को जानने के राग में आत्मलोक को भूल ही गया। देह का नाम, चर्म का यश तो आत्मख्याति का साधन नहीं है।

''हे मुमुक्षु! प्राण का अन्त भी क्यों न हो जाये, लेकिन ऐसा काम मत करना जिससे आत्मा का अहित हो जाये। प्राणों का वियोग भी हो जाये, लेकिन ऐसा कोई काम मत करना जिससे समाज की इज्जत पर कलंक लगे, ऐसा काम मत करना जिससे गुरुकुल का अपयश फैले। ऐसे कार्य मत करना जिससे श्रमणसंस्कृति पर कलंक लगे।'' इतने गम्भीर शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। सामने प्राणों का वियोग खड़ा हो जाये, तब भी प्राण देना स्वीकार कर लेना, परन्तु जिनशासन पर कलंक लगे, ऐसा कार्य करने की चेष्टा मत करना।

युवाओ! ध्यान से सुनना कषाय और इन्द्रिय की विडम्बना। जब जीव को कषाय भड़कती है, इस समयकाल में विवेक पता नहीं कहाँ पलायन कर जाता है। तभी तक सारे जीव पण्डित/ज्ञानी हैं, जब तक कषाय के बाणों से बिंदित नहीं हुये हैं। जैसे-ही कषाय धक्का मारती है, पता नहीं चलता जीव का ज्ञान कहाँ पलायन कर जाता है। ज्ञान तो वही है। ज्ञान कहीं नहीं गया। ज्ञान में विकार आ गया। दुध कहीं नहीं जाता, वह तो उसी बर्तन में था, परन्तु खटाई के संयोग से खट्टा हो गया। ऐसे-ही जो ज्ञान साधना की ओर जाता था, वही ज्ञान विराधना की ओर जा रहा है। अज्ञानी कहता है कि ज्ञान चला गया। ज्ञान कहीं नहीं गया था, ज्ञान के साथ विकार आ गया। जो ज्ञान जिनालय की सीढ़ियों की ओर ले जाता था, उसी ज्ञान से अज्ञानी वेश्यालय/मदिरालय की सीढ़ी चढ़ा है। ज्ञान तो था। बिना ज्ञान के सीढ़ी चढ़ा कैसे? अन्तर यह आ गया कि जो जिनेन्द्र के पास ले जा रहा था, वह पापों के नजदीक ले गया। आज तक किसी जीव ने बिना ज्ञान के पाप नहीं किया।

पाप भी किया तो जान कर किया है। परमात्मा का स्मरण भी जान कर किया है और परमेष्ठी की अवहेलना भी जान कर की है। मित्र बनाया है तो जान कर बनाया है और शत्रु बनाया है तो जानकर बनाया है। बिना ज्ञान के तो तू सागमण्डी से साग भी नहीं खरीद सकता। पचास रुपये की साग खरीदने के लिये तू दस दुकानों में घूमता है कि कहाँ पर अच्छा है? चर्म के पेट को भरने के लिये स्वच्छ द्रव्य खोज रहा है। चैतन्य भगवान्-आत्मा को बचाने के लिये

चित्त की स्वस्थता क्यों नहीं खोजता है? इसी चिन्ता में तुम सूख रहे हो कि मेरों का क्या होगा, मेरा क्या होगा, गैरों का क्या होना चाहिये? यह जीव इसी चिन्ता में सूख रहा है। वस्तुस्वतन्त्रता का बोध नहीं है। विश्वास रखो, तेरा कुछ नहीं होगा। इस देह की आयु निश्चित है। आयु के निषेक नष्ट हो जायेंगे, जैसी तेरी भावावली होगी, वैसी तेरी भविष्य की भवावली होगी। मेरों का क्या होगा? तू मेरों के बारे में सोच तो सकता है, परन्तु कर कुछ नहीं सकता 'कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है।' तू दूसरे के बारे में अच्छा सोच तो पायेगा, परन्तु तू उसका अच्छा कर नहीं पायेगा। जिस जीव का पुण्य अच्छा होगा, सो उसका अच्छा होगा। जिसका पुण्य अच्छा नहीं है, उसके बारे में अच्छा भी सोचोगे तो अच्छा नहीं कर पाओगे। पुण्यात्मा के बारे में बुरा भी सोचोगे तो बुरा नहीं कर पाओगे। ऐसी अकाट्य श्रद्धा करना। वस्तुव्यवस्था ऐसी ही है। यदि तुमने प्रबल पुण्यात्मा जीव को दगा देने का भाव भी किया, तो तेरे पुण्य का क्षय तो हो जायेगा, परन्तु उस पुण्यात्मा को तुम दगा दे नहीं पाओगे।

राम-लक्ष्मण के लिये रावण ने कितना करना नहीं चाहा, लेकिन सोचो, रावण क्या कर सका? कमठ ने पार्श्वनाथ पर उपसर्ग करने के पूर्ण प्रयास किये, लेकिन हे कमठ! तेरे उपसर्गों की महिमा तो देखो, उनको कैवल्य प्रकट हो गया। ध्यान रखना, तेरे उपसर्ग से कैवल्य प्रकट नहीं हुआ है, तेरे उपसर्ग के काल में भी प्रभो ने विशुद्ध परिणाम किये, भावों की विशुद्धि से श्रेणी का आरोहण किया, ध्यान की लीनता में कैवल्य को प्रगट किया, यह निमित्त-नैमित्तिक दशा है। बुरा करने वालों के द्वारा भी अच्छा हो जाता है और अच्छा करनेवालों के द्वारा भी अच्छा हो जाता है और अच्छा करने वालों के द्वारा भी बुरा हो जाता है। किसी को मत निहारो अपने शुभाशुभ कर्म पर लक्ष्य डालो। ग्यारह अङ्ग का ज्ञान करने के उपरान्त भी अभव्य जीव के अन्दर भवितव्यता को प्रकट करने की किसी के अन्दर सामर्थ्य नहीं है और भव्य जीव के लिये अभव्य बनाने में कोई समर्थ नहीं है। पर के उपादान को तू किसी प्रकार बदलने में समर्थ नहीं है। निमित्त तभी प्रभावी होता है, जब उपादान शक्तिमान होता है। कार्य उपादन से परिणत

होता है, निमित्त तो सहकारी होता है। निमित्त-कारणरूप में मात्र सहकारी है, परन्तु जो कार्यभूत परिणत होगा, वह उपादान होगा। जो निमित्त कार्यभूत परिणत होता है वह अंतरङ्ग निमित्त होता है, बहिरङ्ग निमित्त नहीं होता है। हे ज्ञानियो! घर में भी कभी आपके साथ द्वैत्व भाव हो जाये, यानि माँ के भाव तेरे प्रति दूसरे हो जायें और भैया के प्रति दूसरे हो जायें, तब भी बेटो! माँ के चरण ही स्पर्श करना। माँ! तेरे भाव ही, बदले हों, मेरे प्रति अशुभ भी हुये हों तो-भी। मेरे अशुभ कर्म का उदय न होता, तो तेरे भाव ही क्यों बदलते और मेरे शुभकर्म का उदय होता तो विष देने वाली माँ के भाव भी बदल जाते। पुराणग्रन्थों में लिखा हुआ है कि पुण्यात्मा के प्रभाव से एक वीतरागी तपोधन एक सूखे बगीचे, सूखे सरोवर के पास से निकले तो वह सूखा सरोवर पानी से लवालव भर गया और सूखे वृक्ष फलों से लद गये। जब पुण्यात्मा के योग से वनस्पति भी प्रसन्न हो सकती है, वनस्पति फलवती हो सकती है, तो पुण्यात्मा के योग से इन मनुष्यों के भाव क्यों नहीं बदल सकते? पुण्यात्मा जीव के नियोग से वनस्पति भी हरित हो जाती है। ज्ञानियो! एक सूत्र अपने मन में लाओ कि मैं किसी की सम्पत्ति देखकरके ईर्ष्या नहीं करूँगा और किसी की सम्पत्ति देखकर के दु:खी नहीं होऊँगा। ज्ञानीजीव पर की सम्पत्ति पर बिलखता नहीं है और निज की सम्पत्ति पर हर्षित नहीं होता है। वह तो यह सोचता है—**'पुण्य पाप फल माहिं हरषो बिलखो नहिं भाई।'** पुण्य भी पुद्गल की पर्याय है और पाप भी पुद्गल की पर्याय है। कभी पुण्य-उदय होता है, तो हरा-हरा दिखता है। कभी पाप उदय होता है, तो सूखा-सूखा दिखता है। ज्ञानियो! सावन की हरियाली जब भूमि पर होती है, तो भूमि मुस्कुराती है, लेकिन जब जेठ मास आता है तो उसी हरियाली भूमि में सूखा पड़ता है। तुम सूखे समय में सूख जाते हो और हरियाले समय में मुस्कुराते हो। ज्ञानी कहता है कि मौसम का प्रभाव है, भूमि वही है। भूमि तटस्थ है, मैं तो वही हूँ। जो हूँ, सो हूँ ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव पुण्य की हरियाली में मध्यस्थ रहता है। उसे दोनों मौसम दिखाई देते हैं। मत बिलखना, मत हँसना। दोनों कषाय हैं। हँसना भी कषाय है, रोना भी कषाय है। दोनों से चारित्र-मोहनीय

कर्म का आस्रव होता है। असातावेदनीय कर्म का आस्रव होगा। कुछ नहीं करें। जब सुख सहन करने की सामर्थ्य आपके अन्दर आ रही है, तो दुःख सहन करने की सामर्थ्य भी लाइये। सुख सहन करने की सामर्थ्य है तो दुःख सहन करने की सामर्थ्य भी लाइये। पृथ्वी पर मल के पिण्ड भी पड़े होते हैं, उस पृथ्वी पर पुष्पवृष्टि भी दिखाई देती है। जहाँ पुष्पवृष्टि हाती है, वहाँ घूरे भी खड़े दिखाई देते हैं।

सम्हलो-सम्हलो। देह को सम्हालने का, देह को सुधारने का अनन्त पुरुषार्थ किया है, भावों को सम्हालने का पुरुषार्थ करो। भगवान् बनना है तो देह को ही मत सम्हालो, परिणामों को सम्हालो। क्षण-क्षण के परिणामों को सम्हालो। अपने निज भावों को ज्ञेय बनाइये। न किसी का भवन देखो, न किसी का धन देखो। किसी का कुछ मत देखो। देखो तो मात्र अपना पुण्य-पाप का परिणामन देखो। यहीं भूल हो जाती है। यह जीव हजारों-हजारों ग्रन्थों को तो जान लेता है, लाखों श्लोकों को याद कर सकता है, पुण्य-पाप की व्याख्या भी पढ़ लेता है, लेकिन समय आने पर सब भूल जाता है।

ज्ञानी! ज्ञान कब होगा? आप अपने व्याख्यान में कह रहे थे कि पिता को पुत्र को कैसे सम्हालना चाहिये। परन्तु जब तेरे बेटे की बारी आती है, तो तू पड़ोस में कहने जाता है कि मेरे बेटे ने ऐसा किया। हे अभागे! जब तू पड़ोस में कहने जाता कि तेरा बेटा बिगड़ चुका है, ज्ञानीपुरुष होगा तो यूँ कहेगा कि ये तेरी कमजोरी है। तू एक बेटे को नहीं सम्हाल पा रहा है, तू पिता बन कैसे गया? जब सम्हालने की सामर्थ्य नहीं थी, तो पिता बनने का शौक कैसे चढ़ गया? ज्ञानी कहेगा कि तुम दोनों तरफ से गये। घर में प्रवेश करता है तो बेटा धक्का मारता है। समाज में चर्चा की, तो समाज ने धक्का मार दिया। तेरे अन्दर इतनी सामर्थ्य क्यों नहीं आई थी? ज्ञानीलोग घर की बात भी इतनी जोर से नहीं बोलते कि स्वयं का कान सुन ले। स्वयं के कान भी सुनेंगे तो दुःखी हो जायेगा। अपने घर की बात भी इतनी जोर से नहीं कहना, तो परघर की बात तो कहना ही नहीं। ध्रुव सत्य तो यही है।

सम्राट पहुपाल ने भी अपनी बेटी मैनासुन्दरी व सुरसुन्दरी से कह दिया था, बेटियो! अपने पति को चुन लो। सुरसुन्दरी ने तो अपना पति चुन लिया, लेकिन मैनासुन्दरी कहती है, हे तात्! कुलवन्ती कन्यायें अपने पति का वरण नहीं करतीं। जो विधि का विधान होगा, वही मेरा स्वामी होगा। हे जनक! चाहे लगड़ा हो, चाहे लूला हो, चाहे अन्धा हो, चाहे बहरा हो, जो भाग्य में होगा, वही मेरा स्वामी होगा। सम्राट को चढ़ गया था अहंकार। सबसे बड़े दु:खी वे लोग हैं, जिन्हें कर्त्ता-बुद्धि चढ़ गई है कि सारे विश्व का परिणमन मेरे हाथ में है, सारे विश्व का संचालन मेरे हाथ में है। मेरे बिना कुछ हो ही नहीं सकता। उस अज्ञानी से बड़ा कोई अज्ञानी नहीं है। इस भूमि पर बड़े-बड़े राजा-महाराजा होकर समाप्त हो गये।

आचार्य विद्यासागर जी महाराज ने 'मूक माटी' नाम का एक ग्रन्थ लिखा। उसमें उन्होंने सारी चर्चा माटी पर की है। विश्व में शक्तिमान वस्तु माटी है। जो मिटती रहती है, फिर भी नहीं मिटती। जगत् में जितने पुतले खड़े हुये हों, सबको मिटा देती है, अपने में समा लेती है, उसका नाम मिट्टी है। अहो मिट्टी के पुतलो! तुम कितने ही अहंकार में डूब जाओ, लेकिन मिट्टी में मिल ही जाओगे। ये सब जितने चमक रहे हैं, वे सब मिट्टी में मिलनेवाले हैं। जिस पर राग कर रहे हो, जिस पर अहंकार कर रहे हो, उन सब की राख होना है और राख को एक दिन मिट्टी में मिल जाना है। सम्राट कहता है, बेटी! तेरे सिद्धान्त काम में नहीं आयेंगे। तू चयन कर ले अपने स्वामी का। फिर भी कन्या क्या कहती है?

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।
बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्व मेव हि॥ 10 स्व. सं.॥

इन कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता आत्मा स्वयं ही है। हे तात्! ध्यान दो। वह तो सम्बन्ध का सम्बन्ध हमारा आपका है। मैं अपने परमात्मा को भी अपना कर्त्ता नहीं मानता हूँ, तो फिर तुम मेरे कर्त्ता क्या हो? जितने पिता बैठे हैं, सम्हलकर सुनना। हे पिता! आप मेरे चैतन्य ध्रुव आत्मा के कर्त्ता नहीं हो। ध्रुव सत्य यह

है कि कर्म-नोकर्म वर्गणा से मिलकर मेरा शरीर बना है और चैतन्य का जन्म होता नहीं है, वह त्रैकालिक अजन्मा है। आपके सहयोग से, रज-वीर्य के निमित्त से, जो देह निर्मित हुई है, आप उसके भी कर्त्ता नहीं हो। हे पिता श्री! आप तो मात्र अपनी वासना के कर्त्ता हो, सन्तान के कर्त्ता नहीं हो। तुम्हारे भीतर कोन उत्पन्न हुआ है? आपके बूते कौन से बेटे ने जन्म लिया है? क्या तू उस बेटे से परिचित था जिसने तेरे घर में जन्म लिया है? हे ज्ञानी! यदि तूने किसी को जन्म दिया है, तेरे बेटे की माँ ने किसी को जन्म दिया है, तो मात्र वासनाओं को जन्म दिया है। उनकी इच्छाओं की पूर्ति तुमने की है, बेटे का जन्म तो बेटे के अपने पुण्य से हुआ है। सन्तान ने जन्म लिया है, तो अपने पुण्य से लिया है। इस परम सत्य को भूल मत जाना। यह ध्रुव सत्य है। बेटी! मान लो। बाद में पछताना पड़ जायेगा। बेटी सोचती है कि पिता का सम्बन्ध अवश्य है, परन्तु बुद्धि दुर्बुद्धि हो चुकी है। बेटी धीरे-से कहती है, पिताजी! इस अहं को छोड़ दो। यदि मैं किसी गरीब कुल में जन्मी होती, तो आप थाली लगा कर देने नहीं जाते। ये मेरा भाग्य है कि मैं आपके घर में जन्मी हूँ। तात् ईर्ष्या से भर गया।

भैया! कभी यह मत कहना कि ईर्ष्या शत्रु से होती है, शत्रु तो कहीं होता ही नहीं है। जिससे तेरी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, उसे तू शत्रु मान लेता है। शत्रु कोई नहीं है, इच्छाओं की वृत्ति ही शत्रुता है। इच्छाओं का निरोध ही मित्रता है। साधुओं को सभी लोग क्यों मानते हैं? सभी लोग उनके पास क्यों जाते हैं? क्योंकि उन्हें मालूम है कि ये कुछ माँगेंगे नहीं, क्योंकि इनकी इच्छायें मर चुकी हैं। इसलिये इनके पास चलो, क्योंकि इनको कुछ देना नहीं पड़ेगा। यदि तू साधु बनके माँगने लग गया, तो लोग तेरे पास भी नहीं आयेंगे। यही सोचेगा कि जब तक लाखों-करोड़ों हाथ में नहीं होंगे, तब तक जाओ मत। अपन इज्जत वाले लोग हैं, कहीं सबके सामने बोल दिया, लेकिन दे नहीं पाये तो भाव बिगड़ जायेंगे। साधु के पास श्रावक इसलिये पहुँचते हैं कि उन्हें मालूम है ये (साधु) माँगने वाले नहीं हैं। यथार्थ मानिये। आज लोगों की मानसिकतायें बदल गई हैं। उन्हें मालूम चल जाये कि आज बोली लगना है, तो आधे लोग नहीं आयेंगे। बोलेंगे

कि आज प्रवचन सुनने तो मिलना नहीं है बोली लगना है।

ज्ञानियो! साधु को लोग अपना क्यों मानते हैं? क्योंकि जगत् का वही होता है, जो जगत् से माँगना छोड़ देता है। उसको दुनियाँ देती है। वह किसी का भी नहीं हो पाता है जो हाथ फैलाता है। आज तक तुमने देखा कि किसी ने गद्गद् भाव से, प्रसन्न मन से घर के सामने आये भिखारी को कुछ दिया हो? ज्ञानी! तेरे पास इतना है कि तू रोज पाँच भिखारी को खिलाये तो तेरा भंडार कभी समाप्त नहीं होगा। लेकिन तब भी कोई भिाखरी सामने आये तो क्या बोलता है? चलो-चलो, आगे चलो। न जाये तो आवाज लगाते 'इसको एक चम्मच डाल दो।' जिस दिन माँगना प्रारम्भ कर दिया, उस दिन मान नष्ट हो जाता है। तेरा मान-सम्मान, स्वाभिमान तभी तक है, जब तक तुमने 'दे दो' शब्द का प्रयोग नहीं किया। गुटका, बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू खाने वाले सब भिखारी हैं। इनको कभी-न-कभी माँगना ही पड़ता है 'दे दो'। जब जेब में कुछ न हो, तब अरबपति भी रोड़ पर बीड़ी का टुकड़ा उठाकर मुख में लगा लेता है। धिक्कार हो। नियम ले लो। कभी किसी के सामने हाथ मत फैलाना कि दे दो।

एक वे जीव हैं जो गली-गली में द्वारे-द्वारे पर 'दे दो' शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु कोई नहीं दे रहा है। एक वे जीव हैं जिनको द्वारे-द्वारे पर लोग कह रहे हैं 'हे स्वामी! ले लो, ले लो।' तीन-तीन परिक्रमा लगवा करके मनबा करके, 'पधारो, स्वामी! ले लो, स्वामी! और वे छोड़ देते हैं। जो छोड़ देते हैं, उन्हें दुनियाँ देने आ जाती है और जो माँगते हैं, उनसे दुनियाँ कतराती है। कभी माँगना मत। एकमात्र जैनदर्शन ऐसा है, दिगम्बर मुद्रा ऐसी है, जिसमें भोजन भी नहीं माँगा जाता है। अंजुली लगाकर सिंह जैसे वीरचर्या में जा रहे हैं। आजकल राजा-महाराजा नहीं बचे, आज तो मात्र दिगम्बर मुनि ही महाराजा हैं। अब तो लोग उन्हीं के सामने स्वामी कह पाते हैं, परन्तु हे श्रावको! हमारे इन महाराजों को भिखारी बना कर मत रखना, संस्थाओं के नाम पर इनसे कोई द्रव्य मत मँगवाना, इन्हें महाराज ही रहने देना। ये योगी हैं। मत मँगवाना, इनको महाराज

ही रहने देना। ये योगी है।

मैनासुन्दरी कह रही है, पिताश्री! सत्यता यह है कि आप कर्तृत्व के अहं में डूब गये हो। आपको लग रहा है कि मैं ही पालनहार हूँ, जबकि आप तो स्वयं के भी पालनहार नहीं हो, फिर मेरे पालनहार क्या हो सकते हो?

'हे धर्म! मां पालय' हे धर्म! मेरा पालन करो। आप पूर्व में धर्म के पालने में न पले होते तो आप भी राजा नहीं बन पाते। आप किसी को पालने वाले नहीं हो अहं में बोल देते हो, महाराज श्री! मैं धर्म को पाल रहा हूँ। ज्ञानी तू इतना बड़ा कब से हो गया जो तू धर्म को पालने लग गया? तू इतना महान् कब से हो गया जो तू धर्म को पालने लग गया? धर्म इतना छोटा कब से हो गया कि तेरे पलने में पलने लग गया? धर्म को कोई नहीं पालता है। धर्म सारे विश्व को पालता है। 'हे धर्म! माँ पालय'। ये जो मुनिराज मंच पर बैठे हैं, ये धर्म के पालने में न आये होते तो इनको भी रोटी-नमक की चिन्ता करनी पड़ती। धन्य हैं वे श्रमण, जिनको अपने भोजन की भी चिन्ता नहीं होती। यही मुनिमार्ग का आनन्द है। जब समय हो गया, सो अंजुली लगा कर निकल पड़े। जब पुण्य साथ होता है तो जंगल में भी चर्या होती है और जब पुण्य नहीं होता है, तो भवन में भी अन्तराय होता है। यदि पुण्य क्षीण होता है, तो भवन में भी टुकड़ा देने वाले नहीं मिलते। घर जाओगे क्या? फिर वहीं पहुँच जाओगे जहाँ ठुकना पड़ता है, पिटना पड़ता है। आप सबके ऊपर बड़ी दया आती है कि बेचारे घर में कैसे जी रहे हैं?

राजा ने क्या किया? अहंकार की चरम सीमा। कौन किसका होता है? बेटी का पिता नहीं हुआ कह दिया मन्त्री से 'जाओ, कहीं भी अन्धा हो, बहरा हो, लूला हो, लंगड़ा हो, ऐसे व्यक्ति की खोज करके आओ, इस कन्या की शादी उसी से करना है। देखो नियोग, जंगल में पहुँचे मन्त्री आदि, वहाँ सात सौ कुष्ठियों के बीच श्रीपाल को बैठे देखा। जिसकी दुर्गन्ध से नगर खाली हो गया था। बोले कि यह ही ठीक है, यह कुष्ठियों का सरदार है।

धन्य हो। श्रीपाल स्वयं कह रहे हैं कि मैं कुष्ठी हूँ, मुझे कन्या क्यों दे रहे

हैं? राजा को क्या हो गया है? ऐसे भी लोग जगत् में हैं जो अपने रोगों को छिपा कर दूसरों की कन्या को लेकर आ जाते हैं। मायाचारी का जमाना चल रहा है। दूसरे के बेटे को दिखा दिया और दूसरे से शादी कर दी। दूसरे की पुत्री को दिखा दिया, शादी दूसरे से की। मायाचारी का समय है। मन्त्रियों ने राजा को बताया। राजा ने कहा, 'बिल्कुल ठीक है। उसी के साथ शादी कर दो।' जब मण्डप पर लाया गया, चन्दन आदि के छींटे मारे गये, सुगन्धित द्रव्यों से नहलाया गया, लेकिन श्रीपाल के शरीर की दुर्गन्ध किञ्चित् भी कम नहीं हुई। आज की बेटी होती तो क्या करती? ''**बेटियो! तन को मत देखो। सुन्दर चर्म को देखकर मत भागो उन घरों में, जिन घरों में अभिषेक न देखा जाता हो, निर्ग्रन्थ गुरु के चरण न पड़ते हों, जिस घर में जिनवाणी के शब्द सुनाई न पड़ते हों। चर्म को देखकर भाग तो जाती हैं, लेकिन जब धर्म की याद आती है, तो गंगा-जमुना की धारा आँखों से बहती है। वासना का काल लम्बा नहीं है, वासना का काल न्यून है। साधना का काल लम्बा है। बेटा! तुम तब तक ही आहार दे पा रहे हो, जब तक किसी दूसरे कुल की कन्या घर पर नहीं लाये हो। ध्यान रखना, उच्च कुल की रक्षा करना बेटा-बेटियों के हाथ में है।**'' माता-पिता ने इनको जो पाँच पाप की डिबियाँ पकड़ा दी हैं, पता नहीं कहाँ चर्चा हो रही है? क्या करोगे? इस बात को पण्डित जी लोगों को समझाना चाहिये। 'महाराज क्या करें? अपने ही घर का पता नहीं है कि क्या हो रहा है, तो कहने की ताकत कैसे हो?' ठीक है, मेरे आगे-पीछे कुछ नहीं है, इसलिए मैं ही कह देता हूँ, परन्तु ध्रुव सत्य यह है, कि यदि संस्कृति की रक्षा करना है, धर्म की रक्षा करना है, तो इन युवक-युवतियों की भी रक्षा करिये। जिस बेटी को जान करके कुष्ठी के साथ ब्याहा जा रहा हो, आज की कन्या होती तो क्या करती? छोड़ कर भाग जाती।

जब शादी हो चुकी होती है, तब पिता की आँखें सजल होती हैं कि मैंने क्या कर दिया? बेटी ने पिता के चेहरे को देखा, अपना दु:ख नहीं बताया। 'हे तात्! दु:खी मत हो। विधि की शक्ति अलंघनीय है। विधि को कौन बदल सकता

है? ऐसा ही नियोग था। आप तो विदाई करो। जो भाग्य में नियत था, वह हो चुका है। पिताजी! कुष्ठी के साथ विवाह तो करा सकते हो, लेकिन कुष्ठी बना कर नहीं रख सकते हो। मेरे भाग्य में होगा तो इनकी कंचन-जैसी काया हो जायेगी। कौन किसका हुआ? इस भरोसे में जीवन मत जीना कि इनसे मेरा जीवन चलता है या कि उनसे चलता है।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसण णाण मइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तं पि॥ 38 स. सा.॥

मेरी आत्मा एक है। ये चमक-दमक, लोगों की भीड़, जयकार तेरी नहीं है। ये सब पुण्य का परिणमन झलक रहा है। मेरी आत्मा तो 'अहमिक्को' भले ही तुम बेटे की माँ के साथ रह लो, कपट करके धन भी उसे दे देना, लेकिन जब उसका फल भोगने नरक में जायेगा, तो 'अहमिक्को', तू अकेला ही जायेगा। ज्ञानी तू पुण्य करेगा तो स्वर्ग में अकेला ही जायेगा। पुण्य-पाप से रहित होकर जब परमात्मा बनेगा, तो 'अहमिक्को' तब भी मैं एक ही अकेला जाऊँगा।

ज्ञानी! सबके बीच में रहना, लेकिन 'अहमिक्को'। बार-बार कहना। वे कुछ भी कहें, तू कहना 'अहमिक्को'। मुझे मालूम है कि फिर क्या होगा? वे फिर गुस्सा करेंगे, कहेंगे 'क्या सीख कर आया है।' सो फिर कहना—'अहमिक्को'। महाराज ने सिखाया होगा 'अहमिक्को', तो चले जाओ महाराज के साथ। तो उसी समय उनके पैर छूना और चल देना। यही तो चाहता था। 'अहमिक्को' मैं एक हूँ। कोई किसी का नहीं होता है। ये सब चीटियाँ हैं, जब तक मिश्री के धागे में मिठास होती है, तब तक चीटियाँ लगी रहती हैं। जब पूरा रस निकल गया, तो धागा अकेला पड़ा मिलता है। अहो धागो! ध्यान दो, जब तक पुण्य की मिश्री चिपकी है, तब तक परिवार की चीटियाँ लगी हुई हैं। जैसे-ही पुण्य का रस निकल जायेगा, ये सब छोड़ देंगे। न केवल छोड़ेंगे, बल्कि श्मसान में जला कर आयेंगे।

'अहमिक्को' जब सबको समझ में आ ही गया है, तो माताओ! आप आर्यिका संघ में चले जाओ और आप मुनिसंघ में चले जाओ। मालूम चला कि परिवार

का विशाल संघ बन गया। 'अहमिक्को' परमाणु मात्र भी मेरी आत्मा का साथी नहीं है। कन्या चली गई श्रीपाल के साथ। धन्य हो। अरहन्त की आराधना की महिमा तो देखो तुम गड्ढे में डाल तो सकते हो, लेकिन गड्ढे में रख नहीं सकते हो। दशरथ से बोल देना कि तुम श्रीराम को जंगल में भेज तो सकते हो, लेकिन वनवास भेजकर भी वनवासी नहीं बना सकते हो। श्री राम से कह देना कि तुम सीता को अग्नि में डाल तो सकते हो, लेकिन जला नहीं सकते हो। जिसका पुण्य है, अग्नि में भी कमल खिलता है। मत सोचो किसी के भाग्य के ऊपर। दो पर कभी अविश्वास मत करना। एक भाग्य और एक भगवान्। दो को कभी मत छोड़ देना। कौन होगा मेरा और कौन होगा तेरा? 'अहमिक्को'। जिसने निर्णय कर ही लिया है 'अहमिक्को', दुनियाँ छोड़ कर चली भी जाये, तो उसे कौन दु:खी करने वाला है? दु:खी वह होता है, रोता वह है, जो जगत् को अपना मान लेता है और जगत् अपना होता नहीं है, तो वह रोता है। आप लोग अपनी माँ के घर से आयी हो रोकर तो नहीं आयी? वे दिन गये, पहले बिटियाँ गला फाड़-फाड़ कर रोती थीं। अब समझदार हो गई हैं। रहना वहीं है, जाना वहीं है, तो फिर रोना क्यों? इसलिये रोना नहीं। यह सब पागलपन नहीं करना। रोकरके असाता का बन्ध नहीं करना।

ध्रुव सत्य है कि 'अहमिक्को' में ही आनन्द है। जेब में एक सिक्का डाल लेना और दौड़ना। कोई आवाज नहीं आयेगी, शान्ति से दौड़ेगा। कहीं दो सिक्के डाल लिये, तो खनखन आवाज आ रही है, शान्ति भंग हो रही है। समझो शान्ति किसमें है? 'अहमिक्को'। अपने पिता जी से पूछना, क्योंकि वे तुमसे कहेंगे कि शादी करवाओ। तो आप पूछना—मेरी माँ के आने पर तुमको कैसा लगा? वे कहेंगे ठीक है तो कहना कि ठीक है तो 'अहमिक्को', एक में आनन्द है, दो में तो विसंवाद होता ही है। निश्चयनय में 'अहमिक्को', व्यवहार में द्वैत्व होता है। चलना तो 'अहमिक्को', खाना तो 'अहमिक्को', बैठना तो 'अहमिक्को'।

अरहन्त सिद्धों की आराधना की। यन्त्र के अभिषेक का गंधोदक जैसे-ही छिड़का, वैसे-ही श्रीपाल का कुष्ठ दूर हो गया। अब देखो, समय कैसे बदलता

है? नियोग देखो। मैनासुन्दरी की माँ उज्जयिनी में भगवान् के दर्शन करने पहुँची, उसी समय मैनासुन्दरी भी अपने पति के साथ वन्दना करने पहुँची। देखो कर्मों की विचित्रता और लोगों की दृष्टि। जैसे-ही माँ ने बेटी को देखा, पहचान लिया, परन्तु श्रीपाल को नहीं पहचान सकी।

जो आँखों से देखा जाता है, वह सत्य हो, यह नियम नहीं होता। जो सत्य होता है, वह सत्य ही होता है। आँखों देखा भी सत्य नहीं होता है। कोई आपसे कहे 'अरे! ऐसा हो गया, मैंने आँखों से देखा था।' अरे! तूने आँखों से देखा, आत्मा से नहीं देखा। मैनासुन्दरी की माँ ने आँखों से देखा, भगवान् को भूल गई और मन में क्या कह रही है? ये बेटी क्या बड़ी-बड़ी बातें करती थी, आज कुष्ठी श्रीपाल को छोड़ कर किस युवा के साथ बैठी हुई है? इसने मेरा पूरा कुल कलंकित कर दिया।' बेटी के प्रति माँ के दुर्भाव ने जन्म ले लिये।

हे माँ! इन दुर्भावों को जन्म देने से पहले, बेटी कौन दूर थी, धीरे-से कान में पूछ ही लेती, 'बेटी! श्रीपाल कहाँ है?' मेरे मित्रो! किसी के प्रति अशुभ भाव लाने से पहले उससे बात कर लेना, क्योंकि दूरियाँ तो दूरियाँ बढ़ाती हैं। पास में आकर बात कर लो कि सत्य बात क्या है? सुनी-सुनी सुनना नहीं, आँखों-देखी मानना नहीं। वस्तुस्वरूप को समझना। श्रीपाल टाल गये, कि माँ अपनी बेटी से बात नहीं कर रही है। अरहन्त की वन्दना करके श्रीपाल कहते हैं—हे माँ! वन्दना करो जिनवर की, ग्लानि करके बन्ध न करो बेटी के कारण। मैं वही श्रीपाल हूँ। ये जिनवर की वन्दना का फल है, तेरी बेटी की भक्ति का परिणाम है, पुण्य का नियोग है, कि कुष्ठी भी स्वर्णमयी शरीर को प्राप्त हो चुका है।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥ समाधि भक्ति॥

हाँ! आप श्रीपाल? हाँ, माँ! मैं वही श्रीपाल हूँ। क्यों, आँखों देखा सत्य हुआ क्या? भारत भूमि पर आधे लोग पागल इसलिये है कि दूसरे पर भ्रम कर रहे हैं। कोई बेटी पर भ्रम कर रहा है कोई माँ पर भ्रम कर रहा है, कोई पति पर

भ्रम कर रहा है, कोई पुत्र पर भ्रम कर रहा है। भ्रम में जीने वाला कभी सुखी हो ही नहीं सकता। चेहरे मत बिगाड़ो। 'जो है, सो है।' भ्रम निकल जाये तो आनन्द आ जाये। अब माँ कह रही है—बेटी! तेरे धैर्य को, तेरे शील को, तेरे सिद्धान्त को सिर झुकाती हूँ। पिता पहुपाल भी आता है, बेटी! धन्य हो तेरे धैर्य को। मैंने तेरे साथ इतना दुर्व्यवहार किया, तब भी तूने यही कहा कि तेरे कर्म का उदय है आज समझ में आ गया कि कोई किसी का कर्त्ता नहीं है। अहमिक्को' जो यहाँ कह रहे हो, वही घर पर कहना। माँ दो लड्डू बनाये, बड़ा लड्डू छोटे भैया को दे दे और छोटा लड्डू तुझे दे, तब कहना माँ! अहमिक्को।'

यदि तू अपनी आत्मा को सुखी करना चाहता है तो परलोक के धर्म के विरुद्ध किसी भी काम को मत करना।

अरे! समय हो गया समय हो गया, तब भी चेत नहीं रहे हैं। देखो, दादा जी के बाल सफेद हो गये, तब भी चेत नहीं रहे हैं ज्ञानी! समय हो गया। वे कहते हैं कि महाराज! थोड़ी और रुक जाओ।

संमानयति भूतानि, यः सदा विनयावन्तिः।
सः प्रियः सर्वलोकेऽस्मिन्नापमानं समश्नुते॥ 88॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, हे जीव! इस भूतल पर वे ही मानव श्रेष्ठ हैं, जो विनयवन्त हैं। हरी घास, कितना ही तूफान आये, तुरन्त झुक जाती है और तूफान गया सो खड़ी मिलती है। बाँस अकड़ा रहता है, इसलिए एक तूफान में धराशायी हो जाता है। जो विनयशील पुरुष होते हैं, वे हर समय विकास को प्राप्त होते हैं। जो अहंकारी अविनयी होते हैं, वे नियम से रावण—जैसे धराशायी हो जाते हैं।

कुछ सीख सको तो इतना सीख लेना कि विनय करना सीखना, अविनयी मत बनना। जो दूसरे की विनय करता है, उसकी विनय दुनियाँ करती है। लोक में वह प्रिय पुरुष हो जाता है। आप घर में ही देखो, जो विनयशील बालक होगा, उसे सब चाहते हैं और जो उद्दण्ड होगा, उसके लिये तो अड़ौसी-पड़ौसी भी कहते हैं 'उनको लड़का तो ऐसो है।' ज्ञानी! सन्तान बन कर रहना, लड़का बन

कर नहीं रहना। जो अपने माता-पिता को लड़-लड़कर भगा दे, उसका नाम है लड़का। जो सनातन धर्म को आगे लेकर चले, जिनशासन को आगे लेकर चले, नमोऽस्तु शासन को जयवन्त करे, उसका नाम है सन्तान। विनयवंत जीव कभी अपमान का पात्र नहीं होता। सम्मान करने वाला विनयशील जीव हमेशा सम्मान को प्राप्त होता है, जबकि अविनयी जीव का सर्वत्र अपमान होता है। इसलिये अपने जीवन में पंचपरमेष्ठी की विनय रखना और ज्येष्ठों की विनय रखना। मोक्षमार्ग पर चलते रहना। परन्तु इस बात को भूल मत जाना, 'अहमिक्को'। ''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

विषयों में प्रवृत्ति नहीं करना

किम्पाकस्य फलं भक्ष्यं, कदाचिदपि धीमता।
विषयास्तु न भोक्तव्या, यद्यपि स्युः सुपेशलाः॥89॥

अन्वयार्थ—कदाचिदपि = कदाचित्, **किम्पाकस्य फलं** = किंपाक-फल को (जो खाने में स्वादिष्ट हो, किंतु विषतव् हो, ऐसे फल को), **भक्ष्यं** = खा लेना ठीक है, **तु** = परन्तु, **धीमता** = बुद्धिमान को, **विषयाः** = इन्द्रियों के योग्य पदार्थ, **यद्यपि** = यद्यपि, सुपेशलाः **स्युः** = बड़े ही सुन्दर हों तो भी, **न भोक्तव्याः** = नहीं भोगने चाहिए।

भावार्थ—बुद्धिमानों को कदाचित् किम्पाक फल का भक्षण करना तो ठीक है, परन्तु सुन्दर विषयों को कभी भी नहीं भोगना चाहिये।

स्त्री-संसर्ग है दुःख का कारण

स्त्रीसम्पर्क-समं सौख्यं, वर्णयन्त्यबुधा जनाः।
विचार्यमाणमेतद्धि, दुःखानां बीजमुत्तमम्॥90॥

अन्वयार्थ—अबुधाः जनाः = अविवेकी मानव, **स्त्रीसम्पर्कसमं** = स्त्री के संसर्ग को, **सौख्यं** = सुख, **वर्णयन्ति** = कहते हैं। **विचार्यमाणं** = किन्तु विचार किया जावे तो, **एतत् हि** = यह ही, **दुःखानां** = दुःखों के, **उत्तमं बीजं** = बड़े भारी बीज हैं।

भावार्थ—अज्ञानीजन स्त्री के संसर्ग को सुख कहते हैं, परन्तु वास्तविक दृष्टि से विचार किया जाये, तो स्त्री का संसर्ग ही सर्व दुःखों का मूल कारण है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवरभगवत् कुलभद्र स्वामी 'सार समुच्चय' ग्रन्थ में जीव पर अत्यन्त करुणा से युक्त होकरके वस्तुव्यवस्था की व्याख्या कर रहे हैं। सारे जगत् में जगत् को जानने की स्पर्धा है, परन्तु निज लोक को जानने का भाव नहीं है। हमारी दृष्टि इतनी ऊपर जा चुकी है कि नीचे के लोग दिखाई दे रहे है, पर जहाँ आँख लगी है, वह आँख दिखाई नहीं दे रही है। सम्हल कर सुनना। ज्ञानी पुरुष आँख

से पर को तो देखता है, परन्तु निज को आँख से कभी नहीं देख सकता। आँख दूसरे को देख सकती है, परन्तु स्वयं की आँख स्वयं को कहाँ देखती हैं? यही कारण है कि योगियों को आँख से देखने का आदेश ही नहीं है, क्योंकि आँख से दूसरे को देखा जाता है, स्वयं को आँख से देखने के लिये दर्पण रखना पड़ता है। स्वयं की आँख स्वयं को देख ही नहीं पाती। इन खुली आँखों से आपने आज तक जिसे देखा है, वह दूसरे को देखा है। कोई काला दिखाई देता है, कोई गोरा दिखाई देता है, कोई सुन्दर दिखता है, कोई असुन्दर दिखता है; परन्तु सत्य यह है कि सुन्दर या असुन्दर देखने से इन आँखों ने तुझे दोष ही दिया है, गुण नहीं दिये। यदि सुन्दर दिखने लग गया, तो उसमें राग होता है और असुन्दर दिखने लग गया, तो द्वेष होता है।

मुमुक्षु! आँखों ने तुझे क्या दिखाया? राग दिखाया, द्वेष दिखाया। छोटे से बच्चे से भी यदि कोई कहता है 'बेटा! भगवान् का नाम लो' तो वह सबसे पहले आँख बन्द कर लेता है। ऐसा क्यों? भारत की मिट्टी में इतना अध्यात्म भरा हुआ है सारे विश्व ने दार्शनिकों को जन्म दिया, प्रचारकों को जन्म दिया लेकिन आचारकों को जन्म देने वाली भारत भूमि है। सदाचार, अध्यात्म, भारत भूमि से सदाचार और अध्यात्म का निर्यात हुआ है। हमारे देश का कोई ग्रहस्थ श्रावक भी पहुँच जाये तो वह साधु जैसा दिखता है, साधु यदि पहुँच जाये तो वह भगवान् जैसा दिखेगा। भारत भूमि को छोड़ करके जितने देश दिखाई पड़ रहे हैं। वहाँ के नागरिकों ने आज तब साधुओं को नहीं देखा।

हे ज्ञानी! वीतरागी साधुओं का गमन न विमान से होता है, न यान से होता है समुद्र यात्रा करते नहीं, जगत् के विषयों को देखने के लिये विश्व में यात्रा की जा सकती है, परन्तु विश्व यात्रा से बन्द करके शिव की यात्रा करना है, तो भरत की यात्रा में आना पड़ता है। वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन भारत की भूमि में ही दिखाई देते हैं। जब बालक से कहा बेटा परमात्मा का ध्यान करो, तो वह तुरन्त ही आँख बन्द कर लेता है। कहता है परमात्मा उन आँखों से दिखाई नहीं देता जिन आँखों से वासनाओं को देखा है, जिन नेत्रों ने कामनाओं को देखा है,

जिन नेत्रों ने विराधनाओं की देखा है उन अशुभ नेत्रों से परमात्मा दिखाई नहीं देता है। आपको मालूम होना चाहिये जिस लोटे को शौच के लिये लेकर जाते हो उस लोटे से कभी परमात्मा का अभिषेक नहीं करते हो। जो लोटा जिनालय लेकर जाते हो उसकी संज्ञा बदल जाती है। लोटा शब्द समाप्त हो जाता है, उसका नाम कलश हो जाता है। उल्टा हाथ करके जब जाते हो तो मालूम पड़ जाता है उल्टे काम के लिये जा रहे हो, सीधा हाथ करके जाते हो यानि किसी धर्म कार्य करने जा रहे हो, बस विश्वास रखो जिसकी आँखें नीचे झुक जायें समझ लो पापों की ओर जा रहा है जिसकी आँखें अन्दर चली जाये यानि वह परमात्मा का ध्यान करने जा रहा है। जिस लोटे से आपने मल की शुद्धि की है उस लोटे से कभी भगवान् का अभिषेक नहीं होता है।

हमारे देश का बच्चा कितना भी बिगड़ा होगा तब भी उसे मालूम होगा कि भगवान् का अभिषेक सण्डास के लोटे से नहीं होता है। इतना विवेक उसके अन्दर है। परमात्मा का अभिषेक तो शुद्ध कलश से ही होगा। आँख बन्द करने का उद्देश्य क्या था? माता-पिता को आँख खोल कर देखेगा, मित्रों को आँख खोलकर देखेगा, लेकिन परमात्मा को देखने के लिये आँख बन्द कर रहा है, रहस्य क्या है? अब मैं उन आँखों का प्रयोग करना नहीं चाहता हूँ, जिन आँखों ने वासनाओं को निहारा हो, जिन आँखों ने पापों को निहारा हो, इसलिये मैं परमात्मा को आँख से नहीं अन्तरात्मा से निहारना चाहता हूँ, आँख बन्द कर ली है। नेनों में सरसता नीरसता टपक रही है। किसी को वश मत करो इन घूमती आँखोंको बन्द कर लो। हे नयन! आप में नीर भी टपकता है, आप में अंगारे भी टपकते हैं। स्नेहमयी दृष्टि से देखो तो जो आनन्द अमृत में नहीं होता है वह नयनों में होता है और कषाय से भरी आँख से देख लिया तो जो कष्ट विष में नहीं होता है वह उन आँखों में होता है।

मित्रो! किसी को तुम अमृत पिला सको या नहीं, परन्तु आँखों का जहर किसी को मत पिलाना। जब तू अपने पोते को गुस्से में आँख फाड़ कर देखता है, उस बच्चे की मासूमियत का आपने विनाश कर दिया। कितने माता-पिताओं ने

बच्चों के अन्दर भय भर दिया है। अब वे कभी उठ नहीं पायेंगे। लगता यह है कि मैं सुधार रहा हूँ, परन्तु सत्य यह है कि आपने उनको बिगाड़ दिया है। आँख तेरी है, तू बदलना भी जानता है। आप चाहो तो सारे विश्व को एकत्वभूत भी देख सकते हो और द्वैत्वभूत भी देख सकते हो। ज्ञानी! आँख नहीं बदली जायेगी आँख बदल जायेगी, आँख को नहीं बदलना है, भाव बदलो अभिप्राय जैसा होता है, अन्तरङ्ग भाव जैसा होता है वैसा आँख देखना प्रारम्भ कर देती है। कौऐ की आँख तो दो होती हैं, लेकिन गोलक एक होता है। जब दाँयी आँख से देखता है, तो बाँयी आँख बन्द हो जाती है और जब बाँयी से देखता है तो दाँयी बन्द हो जाती है। ऐसे ही तुम्हारे पास तो तीन आँखें हैं जैन श्रमण परम्परा में कहा जा रहा है कि तुम्हारे पास तीसरा नेत्र और है। जब यह जीव इन आँखों से देखता है तो भिन्न देखता है। 'आगम तीजा नेत्र बखाना' तीसरे नेत्र का नाम आगम है, शास्त्र है।

निर्ग्रन्थों का नेत्र 'आगम चक्खू साहु' योगियों का नेत्र आगम है। उत्कृष्ट तीसरा नेत्र केवली का केवल ज्ञान होता है और छद्मस्थों का तीसरा नेत्र आगम है। जीवन को पापों में लगाने के लिये तो आँखों से देखा जा सकता है। जीवन को परमात्मा में लगाना है तो इन आँखों को बन्द करके आगम से देखा जाता है। आगम से देखना प्रारम्भ कर दोगे तो जगत् के समस्त प्राणी एकत्वभूत दिखेंगे। मैं और मेरे पन का अभाव हो जायेगा। तब तक आगम से नहीं देख रहे हो तब तक मैं और मेरे दिखेंगे और जगत् में भेद दिखाई देगा। हर व्यक्ति आकांक्षा रखता है कि मैं लोक प्रिय बन जाऊँ, लोक प्रिय होने के लिये बहुत कुछ करना पड़ता है। लोकप्रिय होना चाहते हो तो आत्मप्रिय कहता अवश्य है, लेकिन दूसरी पार्टी उसको गाली भी देती है, फिर लोकप्रिय कैसे? नेताओं का लोकप्रिय शब्द तो ऐसा है सुनो किसी के पिता जी भले नरक चले गये हों, लेकिन लिखता तो स्वर्गवासी ही है। जबकि दुनियाँ जानती है वे क्या करके गये हैं।

बहुत पाप करके गये हों, परन्तु बेटा पत्र में यही लिखता है कि मेरे पिता जी स्वर्गस्थ हो गये हैं। ऐसे ही नेता को कहा जाता है लोकप्रिय विधायक,

लोकप्रिय मन्त्री भले ही पीछे से गाली दें। वास्तव में कोई लोकप्रिय है, तो जिसका कोई मित्र न हो, जिसका कोई शत्रु न हो वह परमात्मा ही ऐसा लोकप्रिय नेता है जिसको कहीं कोई गाली देने वाला नहीं है। **'मोक्षमार्गस्य नेतारं'** वह मोक्षमार्ग का नेता है, वह परमात्मा है। नेता बनना हो तो मोक्षमार्ग के नेता बनना गाली खाने वाले नेता नहीं बनना। अरहन्त देव लोकप्रिय हैं। उस लोकप्रियता को पाना है, तो जगत् के प्राणियों के प्रति एकत्व बुद्धि लानी पड़ेगी। तीर्थंकर प्रकृति का बन्धक जीव सारे लोक के जीवों की कल्याण की भाावना भाता है। मुझे तो आश्चर्य तब होता है जब कोई जीव तीर्थंकर शान्तिनाथ की प्रतिमा के ऊपर शान्तिधारा कर रहा हो तब घोर आश्चर्य होता है। एक ज्ञानी पुस्तक लेकर शान्तिधारा पढ़ रहा है। एक ज्ञानी कलश लेकर धारा कर रहा है जैसे ही पढ़ता है—

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्यतपोधनाम्।

उसी बीच में किसी ने हाथ लगा दिया तो अरे! दूर हटो और सगा भाई आकर खड़ा हो गया तो सिर मोड़ लिया, क्योंकि इसने पिताजी की पूरी चाबियाँ रख लीं हैं। मैं इससे बात नहीं करूँगा। ऐसे भक्त भी खड़े हैं जिनेन्द्र के चरणों में, जो माँ से नहीं बोलता, पिता को देखता ही नहीं ऐसे अभागे भी शान्तिधारा करने पहुँच जाते हैं। एक भाई दूसरे भाई को देखना पसन्द नहीं कर रहे हैं और कहते हैं कि **'देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्ति भगवान् जिनेन्द्रः'** बहू को पैसे के लोभ में भट्टी में झोंक रहा है। बेटा दर-दर भटक रहा है टुकड़े-टुकड़े के लिये, उसे घर से भगा दिया और कह रहा है 'देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्यराज्ञः' बूढ़े माता-पिता अनाथ आश्रम में पड़ हुये हैं, ऐसे अभागे भी हैं जिनके घरों में बोरियों द्रव्य सड़ रहे हैं और माता-पिता ने पूर्व में घोर पाप किया था जिससे उनकी सन्तान ने आश्रम में पटक दिया है।

पुष्पगिरि में हम लोगों ने विश्राम किया तब वहाँ एक लम्बा गोरा अधेड़ उम्र का व्यक्ति शाम को आ गया और उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपकने लग

गये। मैंने कहा दादाजी साधु के पास सब मुसकुरा कर आते हैं आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गये? बोला महाराज! बुन्देलखण्ड की कहावत है बहू घर में परेशान बैठी है भीतर से रो रही थी, आँखों से आँसू नहीं निकल रहे थे, इसी बीच में भैया आ जाये तो भीतर के आँसू बाहर आने में देर नहीं लगती आत्मीय पुरुष के मिलते ही भीतर का दु:ख फूट पड़ता है। स्वामी! पता नहीं क्यों आपको देखकरके मेरा हृदय भर गया, मैं रो नहीं रहा हूँ, आँसू रोक रहा हूँ, लेकिन वे रुक नहीं रहे हैं। पूछा बात क्या है? बोला मैं एक बहुत बड़ी पोस्ट का अधिकारी हूँ, वह तो उसका शरीर और चेहरा ही बता रहा था। खेत में काम करने वाले का चेहरा अलग होता है, सर्विस वाले चेहरा अलग होता है। और दुकानदार का चेहरा अलग होता है और निर्ग्रन्थों के चेहरे अलग दिखाई देते है और अरहन्तों के चेहरे अलग दिखाई देते हैं वह धीरे से कहता है महाराज श्री! मैं वही पुरुष हूँ। जिसे एक माह में एक लाख रुपये मिलता था, मेरे सत बेटे हुये।

ज्ञानी! बेटों से आज ही पूछ लेना कि मेरे अन्तिम संस्कार किस मकान में करोगे? मैं जानता हूँ। वे यही कहेंगे जल्दी करो, जल्दी ले जाओ कहीं भूत न बन जाये। एक आदमी था उसको अपनी पत्नी से तीव्र राग था, अब चोर-चोर मौसेरे भाई, सब बैठे हैं एक से। एक बार नगर में महाराज पधारे उन्होंने कहा सेठ जी! अब संयम धारण कर लो, बोला महाराज श्री सही बताऊँ मेरी पत्नि का मेरे से बहुत प्रेम है। मैं महाराज तो बन जाऊँ, लेकिन कहीं मैं घर नहीं पहुँचा तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। वह मेरे बिना पानी नहीं पीती है, मेरी पत्नि को मेरे से इतना प्रेम है।

महाराज ने कहा आज तू परीक्षा करले। आज तू घर जाकर बोलना मेरे पेट में जोर से दर्द हो रहा है और महाराज ने उसको प्राणायाम की विद्या सिखा दी, श्वास को कैसे रोकना पड़ता है। सेठ जी ने कहा ठीक है आज करके देखता हूँ। सेठ जी घर पहुँच कर बोले हाय रे! पेट में दर्द और दरवाजे पर आड़े लेट गये और श्वास को रोक लिया। सेठानी ने देखा इनकी तो श्वास ही नहीं चल रही, ये तो चले गये। अब सोचती है कि यदि मैं अभी से रोती हूँ, तो रात भर

रोना पड़ेगा। इसलिये पहले शान्ति से शाम का भोजन करो। अभी से लोग आने लग जायेंगे तो और परेशानी होगी। उसने बढ़िया भोजन किये, सेठ पड़ा-पड़ा अन्दर ही अन्दर झुलस रहा था। जिसके लिये मैं कहता था कि वह मेरे बिना पानी नहीं पीती। यह तो आराम से खा रही है। सुबह फिर देखा कि वह आ रही है सो फिर श्वास रोक ली। चलो अब अच्छे से ही परीक्षा हो जाये। सेठानी सोचती है अभी छः बजे हैं दिन भर कौन आँखें फोड़ेगा चलो नाश्ता, चाय, भोजन आदि करलें फिर फुर्सत से रोयेगें। फिर उसने दाल बाटी आदि इतना गरिष्ठ भोजन किया कि तीन दिन भी न खाये तो चलेगा। अन्दर से जब सुगन्ध आ रही थी तो सेठ जी सोच रहे थे देखो मेरे भगवान। जब समय हो गया चहल-पहल होने लगी सेठानी पेट भर के आराम से बैठती है फिर चिल्लाना शुरू किया हाय! वे तो चले गये कुछ कह ही नहीं गये।वह अन्दर ही अन्दर कह रहा था देवी तेरी माया भगवान् ही जान पाये। पूछने कब आयी थी जो कह नहीं गये। उसने जोर-जोरसे चिल्लाना शुरू किया सभी लोग इकट्ठे हो गये। उधर विमान की तैयारियाँ हो गईं। जब लोग उठाने आये तो खिसके ही नहीं, हाथ-पैर जकड़े हुये थे। एक ज्ञानी ने कहा अब सेठ जी को सुरक्षित निकाल लो, गेट को तोड़ दो। सेठानी तुरन्त खड़ी हो गई और कहती है सुनो भैया! वे तो अब चले गये अब वो तो आने वाले नहीं हैं, बनाने वाला चला गया अब बनाने कौन आयेगा इनको तो जलाना ही है, ये है कुल्हाड़ी इनके दो टुकड़े कर लो और निकाल लो। विचारा अभी तक तो शान्ति से लेटा रहा कि क्या होता है? अब जैसे ही कुल्हाड़ी सामने आयी सेठ जी उठ कर भाग गये, जैसे ही भागे सब चिल्लाने लग गये कि यह तो भूत बन गया। लोग जलती लकड़ी लेकर सामने आये भगाओ इसको। अब वह भागते-भागते काँपते-काँपते जंगल में महाराज के पास पहुँच गया है स्वामी! रक्षा करो। क्यों सेठ जी आ गये? कब तक को? हमेशा के लिये।

बोला मैंने अपना पागलपन देख लिया। मैं सोचता था कि मेरे बिना पानी नहीं पीती। मैं तो पड़ा रहा रात भर द्वार पर, वह रोयी तो है नहीं, कुल्हाड़ी लेकर काटने और आ गई। सब के साथ ऐसा ही है, न मानो तो कर के देख लेना।

छोड़ो राग की धारा। महाराज ने पूछा सेठजी ! क्या हुआ बोले महाराज जी अभी तक मैं बाहर की आँख से देखता था सो मुझे अपनी देवी-देवी दिखती थी। आज समझ में आ गया मैं देवी नाथ नहीं था, मैं देवी दास था। आप लोग समझ नहीं पाते वह तो पहले दिन ही पता चल जाता है कि आप क्या हो? एक बात बताओ जब तेरे गले में बरमाला पड़ी थी तब तू कहाँ देख रहा था? नीचे देवी के चरणों की ओर बस आज से मैं तेरा दास बन चुका हूँ। हे देवी दासो! विचारे दुनियाँ में घूम फिर कर आते हैं, धन्य हो देवी के पुण्य को पूरी सम्पत्ति उनके हाथों में दे देते हैं। लो सम्हालो।

यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं। लोकप्रिय होना है तो जगत् की प्रीति को छोड़ दो कि मेरी नारी मेरे बिना नहीं रहती, कि मेरे भाई मेरे बिना नहीं रहते। इस भ्रम को छोड़ दो। लोकप्रिय होना है, तो विनयशील बनो। विद्या प्राप्त करना चाहते हो, तो विनयशील बनो। विनय के बिना सारी विद्या निष्फल है। ग्लास नल की टोंटी के नीचे लगाने पर ही भरता है यदि तुम्हें ज्ञानी बनना है तो तुम्हें गुरुओं के नीचे तो आना ही पड़ेगा। अब तू नीचे नहीं आ पाता है तो पानी नहीं पी पाता है और ज्ञानी नहीं बन पाता है, बिना विनय के विद्या मिलती नहीं। संयम से जिया सो इतनी उम्र मिल गई, यदि तुम गुटका गुटकोगे, सिगरेट पिओगे, शराब पिओगे तो जल्दी जाओगे। लम्बी उम्र चाहिये तो नियम ले लो गुटका नहीं खायेंगे। पचासी वर्ष के विद्वान् भी आकरके मुनिराज के चरण छू रहे हैं। हे मुनिराज! तुम्हारी वन्दना नहीं चल रही है, यह तुम्हारे रत्नत्रय धर्म की वन्दना विद्वान् कर रहे हैं। वह आपके तन की पूजा नहीं है, चमड़ी की पूजा नहीं है यह, नंगेपन की पूजा नहीं है, यह नग्नत्व वीतराग दिगम्बर धर्म की पूजा है।

जबलपुर में पण्डित पन्नालाल जी कह रहे थे महाराज आपके प्रवचन सुनना है और मैं कह रहा था कि मैं आपसे पढ़ने आया हूँ। मैंने कहा पहले आप क्लास ले लो फिर मैं प्रवचन करूँगा। बोले महाराज! मैं भले ही इतना बुजुर्ग विद्वान् हूँ, मैंने पूरा जीवन शब्द श्रुत में निकाल दिया भावश्रुत को प्राप्त नहीं कर सका, आपने छोटी सी उम्र में अरहन्त मुद्रा को प्राप्त किया है। मैं उसकी वन्दना करता हूँ। मैं तो क्लास लेता हूँ, प्रवचन तो आपके ही होते हैं। प्रकृष्ट वचन तो दिगम्बर

मुद्राधारी के ही होते हैं। मेरी उम्र का कोई भरोसा नहीं है, आप यहीं रुको मैं अपनी पूरी विद्या आपको देना चाहता हूँ, मुझे पात्रता दिख रही है। पण्डित जी जब चरण छूते हैं तो लगता है ओ हो!

महाराष्ट्र में मैंने देखा छोटे-छोटे वृक्ष फलों पर लदे हुये थे, परन्तु उनके बीच में बल्लियाँ लगी हुई थीं उन फलों से लदे वृक्षों को देखकर मेरा मन इतना हर्षित हुआ, खाने के लिये नहीं बात कुछ दूसरी थी जो फलवान् होता है वह नम्र होता है, झुका होता है। जो बिना फल के वृक्ष थे, वे तने खड़े थे।

जो ज्ञानवान् होता है, वह विनयवान होता है। जो ज्ञान शून्य होता है, वह अविनयी होता है। ज्ञान शून्य होता है, वह अविनयी होता है। ज्ञान का फल विनय और विनय का फल मोक्ष होता है। ऐसा आचार्य वट्टकेर स्वामी बोल रहे हैं। 'विणओ मोक्खद्वारं' यह सूत्र याद करलो, भैया! युधिष्ठिर जैसा याद हुआ कि दुर्योधन जैसा?

द्रौणाचार्य जी के यहाँ एक सौ पाँच शिष्य थे, सौ कौरव पाँच पाण्डव। जिस दिन विद्यालय में काम कम मिले और छुट्टी जल्दी हो जाये, तो आनन्द आ जाता है। एक दिन द्रोणाचार्य जी ने सिखाया 'सत्यम् वद् सत्यम्चर' और कह दिया छुट्टी। दूसरे दिन पूछा याद हो गया? हाँ गुरुजी युधिष्ठिर सेपूछा तो कहा कि अभी नहीं गुरुजी। दूसरे दिन पूछा नहीं हुआ। द्रौणाचार्य जी सोचते हैं, जो बालक रोज दस-दस श्लोक सुनाता हो, वह यूँ कह रहा है कि याद नहीं हुआ। तीसरे दिन पूछा बेटा याद हो गया युधिष्ठिर कहते हैं मुस्कुराकर हाँ गुरुदेव याद हो गया। गुरुजी जैसा मेरे भाइयों ने सुनाया ऐसा तो मुझे तभी याद हो गया था, जब आप बोल रहे थे। गुरु जी! कल तक मैं झूठ बोलता था, मैंने दो दिन में अभ्यास किया है। आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा, मुझे पाठ याद हो गया है। अब बताओ किसके जैसा याद हुआ? विणओ मोक्खद्वारं' विनय ही मोक्ष का द्वार है। विनय करना मत भूल जाना, लेकिन विनय किसकी? पंचपरमेष्ठी भगवान की। ज्ञानी! गया ससुराल और सासों के पैर छू कर कह रहा है 'विणओमोक्खद्वारं' पंचपरमेष्ठी की विनय करना मोक्ष का द्वार है। किसी के भी पैर पड़कर यह नहीं कहना कि विणओ मोक्खद्वारं' वह मोक्ष का द्वार नहीं है

विनय मिथ्यात्व है। यह पंचम काल है, इसमें हर बात को स्पष्ट बोलना चाहिये, नहीं तो मालूम चला हमारे ही सूत्र से आप मिथ्यात्व में चले गये। **अरहन्त की विनय मोक्ष का द्वार है, रागियों की विनय मोक्ख का द्वार नहीं है, इसलिये जीवन में विनय करना मत छोड़ देना। अपना सम्मान चाहते हो तो दूसरे का अपमान करना छोड़ दो। तुम्हारे अन्दर दूसरे का अपमान बैठा हुआ है, तो तुम्हारा सम्मान होने वाला नहीं है। सिर पकड़ कर पैरों पर रखवा देना भिन्न विषय है और श्रद्धा से हाथ जुड़वा लेना भिन्न विषय है। यह मोक्षमार्ग सिर पकड़ कर पटकवाने का नहीं है, श्रद्धा से हाथ जुड़वाने का है।** पहले श्रद्धा प्रकट करवाना, श्रद्धा अन्दर के भावों से होती है।

किम्पाकस्य फलं भक्ष्यं, कदाचिदपि धीमतां।
विषयास्तु न भोक्तव्या यद्यपि स्युः सुपेशलाः॥ 89 सा. स.।।

बुद्धिमानों को कदाचित् किम्पाक फल भक्षण करना तो ठीक है, लेकिन संसार के इन्द्रिय विषयों का भोग नहीं करना चाहिये यदि अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहते हो, जीवन में संयम की ओर जाना असंयम से अपनी रक्षा करना। रत्नत्रय धर्म ही मोक्ष का मार्ग है।

''**आत्म-स्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कामाग्नि दाहक है

स्मराग्निना प्रदग्धानि, शरीराणि शरीरिणां।
शमाम्भसा हि सिक्तानि, निवृत्तिं नैव भेजिरे॥ 91 सा. स.)

अन्वयार्थ—शरीरिणाम् = शरीरधारी प्राणियों के, **शरीराणि** = शरीर, **स्मराग्निना** = काम की अग्नि से, **प्रदग्धानि** = जला करते हैं, **शमाम्भसा** = शान्त जल से **हि** = भी **सिक्तानि** = सींचे जावें, **निवृत्तिं न एव भेजिरे** = तो भी शांत नहीं होते हैं, उनको आराम नहीं मिल पाता।

भावार्थ—काम रूपी अग्नि के द्वारा जले हुये प्राणियों के शरीर शीतल जल से सींचने पर भी शान्ति को प्राप्त नहीं होते हैं।

कामान्ध को शान्ति नहीं

अग्निना तु प्रदग्धानां, शमोऽस्तीति यतोऽत्र वै।
स्मरवह्नि प्रदग्धानां, शमो नास्ति भवेष्वपि॥ 92 सा. स.॥

अन्वयार्थ—यतः = क्योंकि, **अत्र वै** = इस लोक में, **अग्निना प्रदग्धानां** = आग से जलने वालों की, **तु शमः अस्ति इति** = तो शान्ति हो ही जाती है परन्तु, स्मरवह्नि **प्रदग्धानां** = जो काम वासना की आग से जलते रहते हैं उनकी, **शमः** = शान्ति, **भवेषु अपि** = भव भव में भी, **नास्ति** = नहीं होती।

भावार्थ-इस लोक में अग्नि से जले हुये को शान्ति मिल सकती है, परन्तु काम रूपी अग्नि से जले हुये प्राणियों को भवान्तरों में भी शान्ति नहीं मिलती।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर कुल भद्रस्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में आत्म द्रव्य के विभाव गुण की व्याख्या कर रहे हैं जो आनन्द स्वभाव में है, वह आनन्द विभाव में किञ्चित् मात्र भी नहीं है। जिन विषयों की प्राप्ति में संक्लेशता का प्रादुर्भाव हो, जिन विषयों की आकांक्षा में प्रतिक्षण-प्रतिपल अन्तरङ्ग झुलसता हो, कोटि-कोटि

द्रव्यों का स्वामी किसी भी इन्द्रिय विषय को अपनेअन्तरंग में विराजमान कर लेता है, तो सारा वैभव, सारी विभूति उसे तुच्छ नजर आती है। उस समय तो उसे मात्र वह विषय ही इष्ट दिखता है। रावण के पास कौन सी कमी थी? उसे स्वर्ण की लंका की अनुभूति नहीं आ रही थी। अट्ठारह हजार महारानियों का संयोग उसे शान्ति नहीं दे रहा था। स्फटिक मणिमय भवन था रावण का। जब लंका में अंगद ने प्रवेश किया, तो कई जगह वह दीवाल से टकरा गया, फिसल-फिसल कर गिरने लगा। क्यों? गलियाँ ही नहीं दिख रहीं थीं। जिसे सामान्य स्थान समझता था, वह स्फटिक मणि की दीवाल थी। वह दीवाल और आकाश में भेद नहीं कर सका, सो दीवाल से टकरा रहा था। ऐसे स्फटिकमयी भवन में लंकेश का निवास हो, तब भी रावण को शान्ति नहीं थी। अशान्ति के जनक का नाम आकांक्षा है। नि:कांक्षाओं में सर्वत्र मित्रता है, सर्वत्र शान्ति है। जहाँ अन्तस में आकांक्षा जन्म ले लेती है, उस आकांक्षा की जब पूर्ति नहीं हो पाती है, तो जलना प्रारम्भ हो जाता है। अभी आपको कोई तनाव नहीं है, जैसे ही तुम्हारे मन में कोई विषय आ जाये। अमुक वस्तु मिलना चाहिये है बस कष्ट प्रारम्भ हो चुका है। पदार्थ का मिलना लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम का विषय है, लेकिन आकांक्षा शत्रु है, महअग्नि है कि जन्म लेते ही उसने जलाना प्रारम्भ कर दिया। सीता की आकांक्षा रावण को झुलसा रही थी। मित्रो! क्या कमी थी रावण को जो तीन खण्ड का अधिपति हो, वैभव के साथ जी रहा हो, परन्तु ध्रुव सत्य है जब तक शीलबन्द है तब तक वस्तु की कीमत है। बाजार से सामान खरीदते हो, तो देखते हो शील बन्द है या नहीं? जिस पैकेट की शील खुल गई है, दुकानदार कहे भी कि चूहाकाट गया, तब भी आपका मन कहता है कि इसमें गड़बड़ी होना चाहिये है? मुझे वह नहीं लेना आप दूसरी पैक सामग्री दो। यानि जिस द्रव्य पर शील लगी हुई है, उस द्रव्य पर विश्वास है। जिसकी शील खुल चुकी है, उससे विश्वास नष्ट हो जाता है। ऐसे ही जिस नारी का, नर का शील शील है, जिसका शील व्यवस्थित है उस पर सारा विश्व विश्वास करता है और देव भी आकरके सिर झुकाते हैं, जिसका शील खुल चुका है उस

पर कोई विश्वास नहीं करता। सारे विश्व में शील की ही कीमत है। सर्वस्व नष्ट हो जाये, तो हो जाने देना, लेकिन शील को भंङ्ग मत करना।

हम उस भूमि पर बैठे हैं जिस भूमि पर सिद्धान्त चक्रवर्ति नेमिचन्द्र जैसे जीव ने विचरण किया है। वास्तव में धन का सदुपयोग तो वही है, जो श्रुत की आराधना में लग जाये। वस्तु की प्राप्ति होना कठिन नहीं है, वस्तु की प्राप्ति का उपयोग किस ओर हो रहा है, बस व्यक्ति के भावी पुण्य-पाप की यही पहचान है। वे आचार्य नेमिचन्द्र जैसे योगी, कुन्दकुन्द जैसे योगीश्वर जब भारत की भूमि पर विचरण कर रहे होंगे। कल्पना में जाकर देखो कि—हे वर्द्धमान! जब आप अंजुली लगाकर निकल रहे होगे, तो ये भूमि कैसी पवित्र हो रही होगी? वे गलियाँ कितनी पावन होगीं जिनसे महामुनि वर्द्धमान निकलते होंगे। ज्ञानियो! वे श्रावक कितने धन्य होंगे जिनके हाथ से तीर्थंकर जैसे मुनिराज को ग्रास रखा जाता होगा। आठ वर्ष के भी मुनिराज होते थे, वे नन्हे-नन्हे से हाथ उन हाथों में ग्रास रखने वाला श्रावक कैसे ममता से भर जाता होगा? अहो! मैं साठ वर्ष का पाप में लिप्त हूँ, वे आठ वर्ष के मुनिराज, धरती के देवता विचरण कर रहे हैं। दिगम्बर आम्नाय में जिनसेन स्वामी ऐसे योगी हुये है जिन्होंने कभी कपड़े ही नहीं पहने। आज तो बच्चा जन्म लेता है, तुरन्त कपड़े पहना देते हो पहले तो दस-दस वर्ष तक बच्चे ऐसे ही नंगे घूमते रहते थे। जिनसेन स्वामी खेल रहे थे और ऐसे ही आचार्य महाराज के साथ चले गये। आचार्य महाराज को उस बालक के कपड़े भी नहीं उतरवाने पड़े बस, संस्कार किये, वे मुनिराज बन गये।

आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति देव गोम्मटसार कर्मकाण्ड में लिख रहे हैं। **'पयडिशील स्वभावो'** प्रकृति शील स्वभाव। शील यानि प्रकृति, प्रकृति यानि स्वभाव, जो अपने स्वभाव में होती है उसका स्वाद अलग होता है, जो विकृत होती है उसका स्वाद स्वभाव भिन्न हो जाता है।

यदि किसी व्यक्ति ने छोटा सा भी नियम ले लिया हो और उसने अपने नियम में स्वप्न में भी दोष नहीं लगाया हो, विश्वास रखना उसके पास उत्साह शक्ति होती है। भीतर का आनन्द होता है। गौरव के साथ कहता है ,धन्य है मेरी पर्याय

मैंने जीवन में ऐसा कोई पाप नहीं किया। इतने गौरव से कहने की ताकत पापी के अन्दर नहीं होती। अपनी भुजाओं से पर्वतों को फेंक देना सरल है, लेकिन सीना तान कर कह पाना कि मैंने जीवन में अपने शील को भंग नहीं किया इतनी ताकत रखने वाले जीव बिरले हैं। गुण भद्र स्वामी ने आत्मानुशासन ग्रन्थ में कह दिया है कि –

अभुक्त्वापि परित्यागात् स्वोच्छिष्टं विश्वमासितम्।
येन चिजं नामस्तरमे कौमार ब्रह्मचारिणे॥ 109 आत्मानुशासन॥

जिसने भोगों को भोगे बिना ही उच्छिष्ट के समान छोड़ दिया हो उस कुमार ब्रह्मचारी को नमस्कार हो। जीवन में भूल हो सकती है इंसान से, लेकिन भूल को भूल स्वीकार कर लेता है, वह इंसान है। भूल को समाप्त कर लेता है और भूल ही नहीं करता है वही तो भगवान् बन जाता है। आत्मा के निकलने पर शरीर ठण्डा होता है, वैसे ही संयम के निकलने पर आत्मा के परिणाम ठण्डे हो जाते हैं।

ज्ञानियो! कालिया नागके फण में मणि है और जब तक मणि है तब तक उसकी ताकत देखने लायक है। इक्कीस वर्ष का युवा बेटा जिसके घर में हो और सम्पत्ति से भरा घर हो और पत्नि धर्मात्मा हो, स्वयं के परिणाम धर्मात्मा हों उस दम्पत्ति के सुख का क्या कहना? इक्कीस वर्ष का युवा मृत्यु को प्राप्त हो गया, उसी दिन धन का हरण हो गया उन दोनों से पूछना, न बुखार है, कोई बीमारी नहीं है फिर भी शरीर में ताकत क्यों नहीं है? मणि से रहित साँप, सम्पत्ति से रहित ग्रहस्थ, पुत्र से रहित पुरुष कुटुम्ब शोभा विहीन हो जाता है ऐसे ही शील से रहित पुरुष-स्त्री की शक्ति समाप्त हो जाती है। सब कुछ गया। चेहरे को प्रसन्न रखना चाहते हो, सिर को ऊँचा रखने की ताकत है, तो मात्र शील में है। तीन खण्ड का स्वामी रावण तिरस्कार को प्राप्त हो गया, नगर-नगर में उसका पुतला जल रहा है किस कारण से? लंकेश! तेरे पुतले को दहन करने की किसी मे ताकत नहीं थी, परन्तु तूने ही अपने शील को दहन किया है, उसके प्रतीक में लोग तेरे पुतले को जला रहे हैं।

हे ज्ञानी! किम्पाक फल का सेवन कर लेना अच्छा है, यानि कि विषफल को खाना श्रेष्ठ है, लेकिन विषयों का सेवन करना श्रेष्ठ नहीं है। रक्षा करो, बाहर के धर्म से सम्प्रदाय की रक्षा तो हो जायेगी बैंड बजवाने से, अन्य उपक्रम करने से बाहर में आपके सम्प्रदाय की प्रभावना तो हो जायेगी, आप लोक की आँखों में आ जाओगे कि जैन समाज का जुलूस निकल रहा है। तीर्थ वन्दना कर रहे हो लोग समझ जायेंगे ये धर्मात्मा है, लेकिन जगत् में लोग मुझे धर्मात्मा कहें रूप में पहचान लें इसमें मैं खुश नहीं होता और न आप होना। जिस दिन स्वयं का मन कह दे कि आप धर्मात्मा हैं उस दिन खुश हो जाना और तेरा मन तभी कह पायेगा जब आप धर्मात्मा हो जाओगे, आपके अन्तरङ्ग का संयम निर्दोष होगा। **मित्र! छुपकर पाप करके तो आ सकते हो, परन्तु उदास चेहरे को छुपा कर नहीं आ सकते हो। छुपकर पाप कर सकते हो, लेकिन पाप करने के बाद जो उदासता आती है उसे छुपाने कहाँ जाओगे? कोई बालक सण्डास में बैठ करके , जनक-जननी से छुप करके गुटका खाकर आ जाये, लेकिन दाँत बता ही देगें तुम क्या करने लगे हो।** चेहरा बता देगा, दाँत बता देगें कि ऐसे ही हे ज्ञानियो! तुम पाप छुपकर कर सकते हो, लेकिन पाप का फल बता देगा कि तुमने क्या किया है?

अन्तरङ्ग के भावों की विशुद्धि बनती है, तब पापों की ऊष्मा निकलना प्रारम्भ हो जाती है। जब पश्चाताप में बैठते हैं तो समझने में आता है कि—मैंने क्या किया है? युवाओ! जरा विवेक से सुनना बुद्धियाँ नष्ट क्यों हो रही हैं? क्षयोपशम क्षीण क्यों हो रहे हैं, विद्या वृद्धि को प्राप्त क्यों नहीं हो रही है? हम अपने घातक स्वयं ही हैं। स्मरण शक्तियाँ समाप्त क्यों हो रही हैं, क्योंकि हमने अपने ही द्वारा अपना घात किया है। ऐसे भी लोग मिल जायेंगे अल्प उम्र है किसको क्या दिया था, क्या लिया था ध्यान ही नहीं है, क्यों? रहे कैसे? हमारे शरीर में एक अपनी अंजुली प्रमाण मस्तिष्क में वीर्य है उसके क्षय होने से। शरीर को जब आवश्यकता पड़ती है तो उस तरल का प्रयोग करना प्रारम्भ कर देता है। हमारे शरीर में धातु है, वीर्य है जो कि शक्ति देता है, प्रज्ञा देता है, आयु को सुरक्षित रखता है, बुद्धि

विवेक को वृद्धिमान करता है। जब उसका क्षय हो जाता है, तो मस्तिष्क का तरल नष्ट हो जाता है तो फिर उस व्यक्ति की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

गाड़ी में तेल डालने के साथ इनके पुर्जों में ग्रीस लगाने की क्या आवश्यकता है? इसलिये मैं समझा रहा हूँ, लोगों की मानसिकता है कि जैन दर्शन मात्र पूजा पाठ कर लो यह सिखाता है। लोगों ने जैन दर्शन की विद्याओं को जाना ही नहीं है। हमारे पास जितना चरणानुयोग का सूक्ष्म विवेचन है उससे कई गुना आत्म-तत्त्व की व्याख्या है। करणानुयोग, खगोल, भूगोल, ज्योतिष हर क्षेत्र में जिनागम है। जीवों का जो सूक्ष्म विवेचन जिनागम में है, वह कहीं नहीं मिलता है। यदि कान में हाथ डाल दिया तो यहाँ प्रायश्चित लिया जाता है क्यों? क्योंकि कान के मल में सम्मूर्छन जीव हैं और उनकी हिंसा हुई है। जीव समास मार्गणा स्थान इनका वर्णन जैनदर्शन में ही है और कहीं नहीं मिलेगा। जब शरीर विज्ञान की बात आती है भगवती आराधना में, मरणकण्डिका में, कल्याणकारकम् इन ग्रन्थों में शरीर का सूक्ष्म वर्णन किया है। हमारे शरीर में क्या-क्या है? 24 सेर मल भरा हुआ है। यदि आदमी के शरीर का पूरा मल निकल जाये, तो उसी दिन मृत्यु हो जायेगी। मल फूटने के बाद बचना मुश्किल होता है।

बैलगाड़ी तक को औंगन चाहिये पड़ता है, किसान कपड़ा तेल में डाल-डाल करके अन्दर भर देता है। यदि औंगन नहीं होगा, तो गाड़ी के चक्के चीख-चीख करके टूट जायेंगे, धुरी टूट जायेगी, अभीष्ट स्थान तक पहँच नहीं पायेंगे। हमारे युवा-युवतियों को इस विषय से बचना चाहिये है। ग्रीस की आवश्यकता क्यों? चिकनाहट नहीं होगी और घर्षण होता रहेगा तो धुरी टूट जायेगी। अपने मित्रों से कह देना मेरे मित्रो! जैसे गाड़ी में ग्रीस नहीं होगा तो घर्षण से पुर्जे असमय में टूट जायेंगे और नष्ट हो जायेंगे, ऐसे ही हे मुमुक्षु! हमारे शरीर में यदि कोई ग्रीस है उसका नाम वीर्य है, शुक्र है। यदि उसका क्षय हो जाता है, तो चिकनाई समाप्त होने से हमारी शरीर रूपी गाड़ी असमय में नष्ट हो जायेगी और तू मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। ज्ञानी! मोक्षमार्ग में चलने वाला अपने मार्ग को प्राप्त नहीं हो पायेगा। आज समझ में न आये तो अन्तिम श्वास के समय समझ लेना, लेकिन

समझना पड़ेगा। कोई यदि यह कहे कि महाराज! इतना स्पष्ट क्यों बोलते हो? आज पता नहीं क्यों हमारे वक्ताओं में कितना डर भर गया है? डरपोक व्यक्ति आगम की व्यवस्थित व्याख्या नहीं कर पायेगा। तत्त्व उपदेष्टा के लिये क्रोधका त्याग होना चाहिये। कहीं क्रोध में तू उपदेश करने बैठ गया, तो अपनी कषाय ही बिखेरेगा। लोगों को विष पिलायेगा, जिनवाणी नहीं पिलायेगा। वक्ता का क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग होना चाहिये है। आगम में जो परिवर्तन हो रहे हैं वे लोभ के राग में हो रहे हैं तुम इतना धन ले लो, मेरे मन की बात लिख दो।

"स्मराग्निना प्रदग्धानि शरीराणि शरीरिणां" शरीरधारी प्राणियों के शरीर काम की अग्नि से जला करते हैं। ज्ञानी! आचार्य भगवान् कुलभद्र स्वामी समझा रहे हैं कि- अग्नि तो जल के संयोग होते ही शान्त हो जाती है, परन्तु जो कामाग्नि है वह जल के सिंचन से भी शान्त नहीं होती है। **"शमाम्भसा हि सिक्तानि निवृत्तिं नैव भेजिरे"** कामाग्नि से दग्ध प्राणी को पानी के सिंचन से भी शान्ति नहीं मिलती है।

"अग्निना तु प्रदग्धानां" ज्ञानियो! अग्नि से जलने वाले को उपचारोपरान्त शान्ति मिलना सम्भव है, लेकिन जो काम-वासना की आग में झुलस रहे हैं उनकी शान्ति भव-भव में भी नहीं हो सकती है।

ज्ञानियो! भव-वृद्धि से बचना है, तो निज-ब्रह्म में लीन होने का पुरुषार्थ करो। श्रुत का पारायण, श्रुत का अभ्यास एवं वैराग्य भावना भाओ कि यह देह तो शुचि है इस देह में विराजा निज भगवानात्मा ही परम ब्रह्म है।

''**आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

काम ही महाव्याधि है

मदनोऽस्ति महाव्याधिर्दुश्चिकित्स्यः सदा बुधैः।
संसारवर्धनेऽत्यर्थं, दुःखोत्पादन तत्परः॥ 93 सा. स॥

अन्वयार्थ—मदनः = काम वेदना, **महाव्याधिः** = बड़ा भारी रोग है, **सदा** = सदा ही, **दुश्चिकित्स्यः** = इसका इलाज कठिन है, **संसार वर्धने** = संसार को बढ़ाने में, **अत्यर्थं** = अतिशय रूप है, **दुःखोत्पादन तत्परः** = और सांसारिक दुःखों को उत्पन्न करता ही रहता है, **बुधैः** = ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

भावार्थ—कामवेदना महाव्याधि है। इसकी चिकित्सा ज्ञानी जनों ने दुश्कर कही है। यह व्याधि दुःखोत्पादन में तत्पर है तथा अतिशय रूप से संसार को बढ़ाने वाली है।

कर्मास्रव की कारण कामाग्नि

यावदस्य हि कामाग्निः, हृदये प्रज्वलत्यलम्।
आस्रवन्ति हि कर्माणि, तावदस्य निरन्तरम्॥ 94 सा. स.॥

अन्वयार्थ-यावत् = जबतक, **अस्य** = इस जीव के, **हृदये** = मन में, **कामाग्निः** = काम की ज्वाला, **अलं प्रज्वलति** = तीव्रता से जलती रहती है, **तावत्** = तब तक, **अस्य** = इस जीव के, **निरन्तरम्** = निरन्तर, **कर्माणि आस्रवन्ति हि** = आस्रव होता ही रहता है, अर्थात् कर्म आते ही रहते हैं।

भावार्थ-जब तक इस जीव के हृदय में काम की ज्वाला तीव्रता से जलती रहती है। तब तक इस जीव के निरन्तर कर्मों का आस्रव होता रहता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवत् कुल भद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय में वस्तु स्वरूप का व्याख्यान कर रहे हैं।

अहो मुमुक्षु! जब तक अन्तस् का भेद विज्ञान जागृत नहीं हुआ स्वसंवित्ति पर दृष्टि नहीं है। आत्मा के वैभव का भान नहीं है, जिन प्रभुत्व शक्ति पर दृष्टि नहीं है तब तक वह ज्ञानी अज्ञानी बन करके विषयों की नाली का कीड़ा बन

रहा है। एक नाली में पड़ा जीव उस नाली के पानी को ही सर्वोत्कृष्ट स्वीकार रहा है। उसे अमृत भी नहीं झलकता कि अमृत भी कोई स्वादिष्ट द्रव्य है। उस प्राणी को मात्र नाली में ही आनन्द आ रहा है। ऐसे ही इस जीव ने संसार के इन्द्रिय सुखों को ही सर्वस्व मान लिया है और एक दो नहीं, अनन्तानन्त पर्यायों को उसमें विलीन किया है। देह और इन्द्रिय का राग इतना प्रबल है कि विषय कषाय की पूर्ति कर पाता है, तो मान कषाय खड़ी हो जाती है, मान पूरा नहीं हो पाया सो माया खड़ी हो जाती है और माया पूरी नहीं हो पाई तो लोभ खड़ा हो जाता है। सबसे खोटी कषाय का नाम लोभ है। जो वस्तु तुम्हारे सामने है, उपभोग चल भी रहा है। यह भी ज्ञात हे कि मेरी पर्याय का कोई निश्चितपना नहीं है। पानी के बबूले को स्थिर होने में समय है, विलीन होने में समय है, लेकिन आयुकर्म विलीन होने का कोई समय नहीं है। प्रातः की बेला में मुस्कुरा रहे थे, दोपहर में शान्त हो गये, शाम को आपसे चर्चायें हो रहीं थीं, सुबह अग्नि संस्कार हो गये। जीव को किञ्चित् भी विवेक नहीं है। मित्र राग की आग में झुलस करके विशुद्ध परिणामों का घात मत कर लेना। रागभूत द्रव्य अनन्त बार मिले पुनः मिल जायेंगे, लेकिन भावों की निर्मलता पुनः नहीं मिलती। जीव ने स्वयं के परिणाम अनुभव किये होंगे। एक समय जो परिणाम विशुद्ध हुये थे, जीवन में एक समय जो विशुद्धि आयी थी, वह विशुद्धि दुबारा नहीं ला पाये। पूरा जीवन धर्मिक क्रियाओं में व्यतीत हो गया, लेकिन उस क्षण की विशुद्धि को पुनः प्राप्त नहीं कर सका। कई बार जीव उस क्षण का चिन्तवन करता है तो सोचता है जैसे किसी व्यक्ति का इकलौता सपूत यौवन अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हो गया हो, अब पिता को स्मरण आता है उसका चेहरा दिखाई देता है, तो ठण्डी श्वास भर लेता है कि मेरा इकलौता सपूत समाप्त हो गया। इकलौते सपूत का अनुराग पिता को उतना दुःखी नहीं करता, जो एक समय तुम्हारे जीवन में विशुद्धि आयी थी। जैसे पुत्र नहीं मिलता तो, सोचता ओह! वैसे ही सोचना ओह! मेरे परिणाम कैसे निर्मल थे?

युवाओ! हर बालक को जीवन में एक बार वैराग्य होता है, जब मोड़ का समय आता है, निर्णय का काल आता है, तब तुम्हारे अन्दर द्वन्द होता है कि

मैं ग्रहस्थ आश्रम को स्वीकार करूँ या मोक्षमार्ग में चलूँ? जब राग की प्रबलता होती है तो वह धक्का मार देता है कि तू गढ्ढे में गिर जा। हर एक युवक के अन्दर 20-25 वर्ष की उम्र में, सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र में गिरने और उठने की दोनों धारायें चलती हैं। यदि युवावस्था की देहलीज में चढ़ते समय अच्छे संयोग मिल जायें तो वे महान् साधु के रूप में सामने आते हैं और यदि इनको कुसंगति मिल गई तो बहुत बड़े खूँखार सप्त-व्यसनी भी बन जाते हैं। सम्हालने का समय है और सम्हलने का समय है। धारा है पानी की चाहो तो 'श्रीजी' की ओर ले जाओ तो गंधोदक बना दो, चाहो, तो संडास की ओर ले जाओ तो मल को धोने में लगा दो। पानी की वह धारा जो श्रीजी के ऊपर से जा रही है गंधोदक बन रहा है। श्रावक और भक्त उसे श्रद्धा से मस्तक पर लगा रहे हैं और कह रहा है मेरे कर्मों का क्षय हो। जो पानी कुयें से आया था वह पानी अरहन्त के बिम्ब पर ढुरते ही गंधोदक संज्ञा मिल गई और भक्त मस्तक पर लगा करके अपना अहो भाग्य मान रहा है। इतने से गंधोदक के लिये लोग हजारों किमीमीटर चल करके गोमटेश्वर तक जाते हैं। एक पाषाण के ऊपर पड़ी जल धारा को निहारने के लिये, राष्ट्रीय ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय कोई महोत्सव है तो वह गोमटेश्वर का महामस्तिकाभिषेक है। उस माँ के परिणामों को निहारो, जिस माँ ने, जिस पिता ने, काम पुरुषाार्थ करते हुये भी भगवान् का नाम नहीं छोड़ा। अपनी इन्द्रियों को, कषायों को वश नहीं कर सके, वे मोक्ष वृत्ति के लिये नहीं, सनातन धर्म की प्रवृत्ति के लिये काम पुरुषार्थ किया है और काम पुरुषार्थ करते हुये भी पंचपरमेष्ठी का स्मरण किया है ऐसे मता-पिता के यहाँ चामुण्डराय जैसी सन्तान होती है जो विश्व में जिन शासन को आगे बढ़ाती है। उस कुल में ज्ञानी सन्तान होती है, उस कुल में त्यागी सन्तान होती है भगवान् की भक्त सन्तान होती है। काम पुरुषार्थ के काल में भी परमात्मा का नाम मत भूलना इसकाल में भी जो परमात्मा का नाम स्मरण करता है उसके तीर्थंकर जैसे बेटे होते हैं। जिसने पाँच दिन भी संयम धारण नहीं किया उसके घर में रावण, कंस, सूपनखा, चन्द्रनखा जैसी संतानें होती हैं। जो विषय पण्डित जी को बोलना चाहिये था वह मुझे बोलना पड़ रहा

है। जिनके घर में माँ बेटियाँ पाँच दिन की शुद्धि का भी ध्यान नहीं रख रहे हैं शुद्धि-अशुद्धि का कोई विवेक नहीं है और भोजन बनाकर पति व पुत्रों को खिला रहे हैं, वे माता-बहिनें अपने परिवार को जहर खिला रही हैं। ऐसा भौतिक युग आ गया है कि पता ही नहीं चलता है। एक जड़ अचेतन बड़ी-पापड़ भी जब खराब हो सकते हैं, तो बुद्धियाँ खराब क्यों नहीं होगीं? अशुद्धि के समय में हम चाहें कि पारस चैनल देख लें, जिनवाणी चैनल देख ले यथार्य यह है उस काल में बन्द एकान्त कमरे में रहना चाहिये। उच्चारण किये बिना महामन्त्र का स्मरण करना चाहिये। किसी भी पुरुष नारी को देखने की आवश्यकता नहीं है, यह आगम वचन है। उत्कृष्ट मार्ग है कि उपवास करें, नीरस करें इन मर्यादाओं का जिसके घर में पालन हो रहा है, उसके घर में योगी जन्म लेते हैं। जिनके यहाँ मर्यादाओं का पालन नहीं है, उनके घर में निशाचर-राक्षस जन्म लेते हैं। ये सारे विषय योगियों ने कहने बन्द कर दिये, विद्वानों के मुख पर आते नहीं हैं। ये मर्यादायें भङ्ग हो जायेंगी, तो समाज का क्या होगा? धर्म का क्या होगा? संस्कार जीवन्त है, तो धर्म जीवन्त हैं। संस्कार नष्ट हो गये, तो धर्म कहाँ बचेगा? आज की इस चर्चा को घर-घर भेज देना। संस्कार जीवन्त है, तो सदाचार जीवन्त है, तभी सदाचार पल पायेगा। जिसके सदाचार ही नहीं है, उसके आचार क्या होगा? जहाँ आचार विचार ही नहीं है वहाँ शुद्धात्मा की झलक कहाँ? एक चामुण्डराय ने जन्म लिया और अपनी माँ की भावनाओं को पूर्ण किया। जिसकी माँ के मन में यह परिणाम हुये थे बाहुबली भगवान् जो भरतेश के द्वारा स्थापित हुये हैं उन भगवान् के दर्शन करूँ ,परन्तु उनके दर्शन करना दुस्कर था और अपनी माँ की भावना को देखकरके ऐसा बिम्ब स्थापित किया है। आज चामुण्डराय नहीं है नेमिचन्द्र स्वामी नहीं हैं, न चामुण्डराय की माँ दिखाई दे रही है, लेकिन कृति बता रही है कि कृतिकार कितना महान् था।

हे ज्ञानी! कामवासना महाव्याधि है। इसकी औषधि करना अत्यन्त कठिन है। यह व्याधि दु:खोत्पादन में हर-हमेश तत्पर है तथा यह संसार-सागर को वृद्धिमान करने वाली है।

मुमुक्षु! भूखा व्यक्ति जूठा भात नहीं देखता है, वह क्षुधा से पीड़ित हो भक्ष्य-अभक्ष्य का भेद न करके क्षुधा पूर्ति करता है। वैसे ही हे ज्ञानी! जिसे वासना का भूत लग जाता है, उसे न कुल दिखाई देता है, न धर्म दिखाई देता है, न परिवार दिखाई देता है, न समाज दिखाई देती है, न ही उसे देश दिखाई देता है। ज्ञानी! समझो, वासना महाव्याधि है। मुमुक्षु! अग्नि में जितना-जितना ईंधन डालोगे उतनी-उतनी ही अग्नि भड़कती है।

भगवान् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि-

"मदनोऽस्ति महाव्याधिर्दुश्चिकित्स्यः सदा बुधैः" कामवेदना महाव्याधि है, इसकी चिकित्सा अत्यन्त दुष्कर है। **'संसारवर्धनेत्यर्थं'** वासना संसार को बढ़ाने वाली है। **'दुःखोत्पादनतत्परः'** वासनारूपी व्याधि दुःख उत्पादन में कारण है। जो-जो वासना की पूर्तिमें तत्पर हैं वे सब विकारी हैं। भिखारी हैं।

हे भव्यात्मा! संसार के सर्व रागों की चिकित्सा सुसाध्य है, उत्तम पथ्य और औषधि के सेवन से ये व्याधियाँ समाप्त हो सकती हैं, परन्तु काम-व्याधि भयंकर और दुश्चिकित्स्य है। काम-वासना रूपी व्याधि के अधीन हुआ प्राणी हेय-उपादेय ज्ञान से शून्य हो जाता है, तदुपरान्त अन्याय-मार्ग में प्रवृत्ति करने तत्पर हो जाता है।

"हृदये प्रज्वलत्यलम् कामाग्निः" हे ज्ञानी! समझो, भगवान् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि-जब-तक इस जीव के हृदय में काम की ज्वाला तीव्रता से जलती रहती है, तब-तक इस जीव के निरन्तर कर्मों का आस्रव होता रहता है।

हे मुमुक्षु! दुःखद काम की ज्वाला के कारण आत्मा रागी-द्वेषी और मोही होती है। विषयों की तीव्र अभिलाषा एवं विषय लम्पटता रूप आर्त्त-ध्यान से तीव्र आस्रव निरन्तर होता रहता है।

ज्ञानियो! शरीर से काम सेवन करना तो पशुवृत्ति है, इस पशुवृत्ति को छोड़कर परमब्रह्म में रमण करो। ब्रह्मचर्य ही व्रतों का सार है। ब्रह्मचर्य ही परम ब्रह्म को उद्घाटित करने में सहायक है।

''**आत्मस्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

काम से संसार-परिभ्रमण

कामाहिदृढदष्टस्य, तीव्रा भवति वेदना।
यया सुमोहितो जन्तुः, संसारे परिवर्त्तते॥ 95 सा. स.॥

अन्वयार्थ—कामाहिदृढदष्टस्य = जिस किसी जीव को कामरूपी नाग डस लेता है उसको, **तीव्र वेदना** = घोर पीड़ा, **भवति** = होती है, **यया** = जिस तीव्र वेदना से, **सुमोहितः** = मूर्छित होता हुआ, **जन्तुः** = यह प्राणी, **संसारे** = इस संसार में, **परिवर्त्तते** = एक गति से दूसरी गति में चक्कर लगाया करता है।

भावार्थ—काम रूपी सर्प के द्वारा डसे हुये प्राणी के तीव्र वेदना होती है। इस तीव्र वेदना से मूर्च्छित हुआ यह प्राणी संसार में परिवर्तन करता है, अर्थात् एक गति से दूसरी गति में चक्कर लगाया करता है।

काम दुःखों की खान

दुःखानामाकरो यस्तु, संसारस्य च वर्धनम्।
स एव मदनो नाम, नराणां स्मृतिसूदनः॥ 96 सा. स.॥

अन्वयार्थ—यस्तु = जो मदन, **दुखानां** = दुःखों की, **आकरः** = खान है **च संसारस्य वर्धनम्** = तथा जिससे संसार की वृद्धि होती है, **स एव** = वह ही, **मदनः नाम** = कामदेव नाम का शत्रु है, **नराणां** = और वह मानवों की, **स्मृति सूदनः** = स्मरण शक्ति को नाश करने वाला है।

भावार्थ—दुःखों की खान, संसार का वर्द्धक जो कामदेव नामक शत्रु है वही मनुष्यों की स्मरणशक्ति का घातक है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवत् कुलभद्रस्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्म तत्त्व की गम्भीर व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। मनीषियो! चित्त की प्रसन्नता ही आत्म उन्नति का सोपान है। निज को प्रसन्न रखने की जो शैली है, वही मोक्षमार्ग है। खोज कीजिये स्वयं को खुश कैसे रखा जा सकता है? बिल्कुल तटस्थ होकर

के समझना। महाराज! हास्य कषाय है आप कह रहे हो खुश रहो। क्या कषाय से मोक्ष होता है? उसके करने से कर्म का आस्रव होता है। मैं हँसने को नहीं कह रहा हूँ, मैं खुश रहने को कह रहा हूँ। आह्लादित होना, प्रसन्न चित्त होना। जो व्यक्ति अपने आप को आनन्दित कर लेता है उसके लिये मोक्ष दूर नहीं होता, उसकी मुट्ठी में मोक्ष होता है। आज तक आपने दुनियाँ को खुशकिया है, परंतु स्वयं को खुश नहीं कर सका। किञ्चित् मात्र भी संक्लेश परिणाम हैं वहाँ खुशीपना कहाँ? मोक्षमार्गी जीव आह्लादित होता है। जैसे कमल खिला होता है, वैसे ही मोक्षमार्गी का प्रतिक्षण मुख कमल खिला रहता है। देह में वृद्ध अवस्था आने पर भी जिसके चेहरे पर वृद्धत्व न झलकता हो, प्रमुदित है आह्लादित है, संवेग भाव से युक्त है उसका नाम मोक्षमार्ग है। आप सोचते हो कि मैंने अपने आप को प्रसन्न रखने के लिये बहुत सारे उपक्रम किये, लेकिन ज्ञानी! उन सब उपक्रमों में दुःख निहित है।

पहला हेतु प्रारम्भ होता है पैसा, पैसा होगा तो मैं प्रसन्न रहूँगा। पैसे से खुशी होती तो निर्ग्रन्थों के आँखों से आँसू टपकता, मुनियों की आँखों से अश्रुपात होता। इस पैसे के पीछे जीव माँ की गोदी को भी सूना कर देता है। बेटो! सम्हल कर सुनना।

जयपुर में जब सुबह श्रावक शुद्धि को ले जाते थे, बापू नगर के वाचना के पीरियड में, वे युवा इंगित करते थे महाराज! सामने देखो बहुत बड़ी बिल्डिंग खड़ी हुई है, अब इसको बेंच करके सामूहिक बिल्डिंग में जा रहे हैं लोग। जहाँ सामान्य कई परिवार रह रहे हैं। क्यों बेंच रहे हैं? महाराज जी! कभी ये बंगला बनवाया था कि इसमें परिवार रहेगा खुशी का जीवन जीऊँगा। एक बेटे को जन्म दिया और बेटा विदेश चला गया, अब बूढ़े माता-पिता अपने आपको अकेला महसूस कर रह हैं सुरक्षा में नहीं हैं, इसलिये बंगला बेंचकरके सामूहिक भवन में जा रहे हैं। क्या सारे देश की जनता को कम करने का अधिकार आप लोगों के हाथ में आ चुका है, सन्तान को जन्म नहीं दे रहे हो इससे पाप में कमी आ गई क्या? इस परम सत्य को ध्यान से सुनना। सन्तान को जन्म नहीं देने से

आपके पाप का क्षय हो रहा है क्या? क्या आप वासनाओं को भी जन्म नहीं दे रहे हो। श्रेष्ठ पुरुष का जन्म होगा, श्रेष्ठ समाज सन्तान को जन्म देगी तो देश में श्रेष्ठ लोग होंगे। अनाचारी संख्या को बढ़ा रहे हैं और आप संख्या को घटा रहे हैं। न धर्मो धार्मिकैः बिना' जब धर्मात्मा नहीं होंगे तो धर्म कहाँ से बचेगा? यह आज की पीड़ी को समझने की आवश्यकता है। एक बेटे को जन्म दिया और मन्दिर पर मन्दिर बना कर रखे और वही बेटा विदेश में जाकर रहने लगा और तुम्हारी आयु पूर्ण हो गई फिर इन मन्दिरों को देखने कौन आयेगा ? जो विदेश में रह रहा है, वह कह रहा है साधन नहीं हैं, यहाँ कोई रह नहीं रहा है। बेटा! जीवन में कहीं भी निवास करना, लेकिन जिन शासन को छोड़करके एक श्वास काल मात्र भी नहीं रहना। अपनी सन्तान को सिखा कर भेजना। घर के बाहर पैर रखने के पहले समाचार दे देना मेरे लाल! मैंने श्री जिनशासन को आगे बढ़ाने के लिये तुझे जन्म दिया है। बेटे! प्रथम श्वास आये तो णमो अरिहन्ताणं निकलना चाहिये। दूसरी श्वास निकले तो णमो सिद्धाणं की ओर जाये तीसरी श्वास जब आये तो णमो उवज्झायाणं में जाये, पंचम श्वास आये तो णमो लोए सव्व साहूणं में आये और पंचम गति की प्राप्तिहो जाये वही श्वास लेनी चाहिये। लोक की अवधारणा को ठीक करना पड़ेगा। जिसने सन्तान को जन्म नहीं दिया और वासनाओं को छोड़ा नहीं, तो वह दुर्गति का भाजक बनता है। यदि आपको सन्तान नहीं चाहिए तो बहुत अच्छी बात है, ब्रह्मचर्य का पालन करो। पुत्र चाहे जन्म ले या न ले यदि वासनाओं की पूर्ति की है तो एक बार में नव कोटि जीवों की हिंसा तो की ही है। उसे कौन टाल सकता है। एक बार के अब्रह्म सेवन में नव कोटि जीवों की हिंसा तो होती ही है। नौ करोड़ जीव एक समय में नाश को प्राप्त होते हैं। पुण्य शीघ्र क्यों क्षीण हो रहे हैं! नौ करोड़ जीवों की हिंसा हो रही है। आपको आपके जनक-जननी ने जन्म दिया है यह भी कहा था कि बेटा मन्दिर जाओ। माँ कहती थी बेटा! भोजन तब मिलेगा पहले मन्दिर का तिलक लगा कर आओ। दर्शन बस करके नहीं, क्योंकि ऐसा भी अभागा बेटा हो सकता है जो मन्दिर के नाम से घर से चावल लेकर गया और बाहर

फेंक कर आ गया। नहीं, तुम तिलक लगाकर आओ। तिलक लगा है यानि तू दर्शन करके आया है। साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष तक इस भारत की भूमि पर श्री जिन नमोऽस्तु शासन ऐसे ही जयवन्त रहेगा। ऐसा स्वप्न में भी नहीं कहना कि आज की पीढ़ी धर्म से शून्य है, धर्म से दूर है। यदि अन्तरङ्ग में धर्म न होता, तो लोग चलकर यहाँ क्यों आते। आज के युवकों के अन्दर भी धर्म है। मेरा विश्वास है, माता-पिता को यदि सन्तान पर विश्वास नहीं है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि उनको अपने रज-वीर्य पर विश्वास नहीं है। यदि आप धर्मात्मा हो और आपको डर है कि कहीं सन्तान बिगड़ न जाये, इसका तात्पर्य है क्या यह तेरी सन्तान नहीं है? यदि तेरी सन्तान है, तो तेरे वीर्य में ताकत है रज में ताकत है, सुकुल श्रावक का बेटा दुर्गुण में जा नहीं सकता है। यदि दुर्गुण में जा रहा है तो कहीं न कहीं संस्कार अन्य के हैं। जैन कुल में जन्मा, श्रेष्ठ कुल में जन्मा कभी अशुभ कर्म कर ही नहीं सकता। यह कुल की प्रत्यासत्ति है। यह परम्परा के अंश का प्रभाव है, इसलिये जीवन में ध्यान रखना बेटा देहरी के बाहर पैर रखे तो माँ कहे, मेरे लाल! जीवन जीने के लिये मैंने तुझे जन्म नहीं दिया, ज्ञानी योवन अवस्था के लावण्य को नाश करके तुझे जन्म दिया है। बेटे! उन माता-पिता पर करुणा करना जिन्होंने अपने यौवनावस्था का क्षय करके तुम्हें जन्म दिया है, अपने शील धर्म का नाश करके तुझे जन्म दिया है। आपको मात्र तिर्यञ्चों जैसा जीवन जीने के लिये जन्म नहीं दिया है खाओ-पिओ और मर जाओ। जन्म लेना और जन्म देना बहुत बड़ी बात नहीं है। यह तो पशु जानते हैं, लेकिन जन्म लेकरके जन्म-मरण से रहित होने का पुरुषार्थ करना उसका नाम मनुष्य है। जन्म-मरण से रहित होने की विशेषता मात्र मनुष्य पर्याय में ही है देवों में भी नहीं है नारकियों में भी नहीं है, तिर्यञ्चों में भी नहीं है। यह आपकी पर्याय का पुण्योदय है कि सत्य सुनने को मिल रहा है। आज से 2600 वर्ष पहले जो बोलन हारे ने बोल दिया था, वही भगवान् की वाणी है अपना कुछ नहीं है। मैं समाज से मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ यदि आचार्य विद्यासागर महाराज, आचार्य विराग सागर महाराज इन योगियों के माता-पिता सोचते मुझे सन्तान नहीं

चाहिये है, तीर्थंकर वर्द्धमान की माँ सोचती मुझे सन्तान नहीं चाहिये है तो आज तुम्हें यह तत्त्व सुनने को कहाँ से मिलता। आज तुम नमोऽस्तु-नमोऽस्तु कर पाते क्या?

मेरे मित्रो! **यदि तुम्हारे घर में खिलाने को न हो, तो मन्दिर की देहरी पर छोड़ कर चले जाना, लेकिन भ्रूण हत्या करके भावी भगवन्तों का नाश मत करना। हमारी समाज का नाश मत करो। वह व्यक्ति समाज धर्म का शत्रु है, जो सन्तान को जन्म नहीं दे रहा है, अब्रह्म सेवन करने के बाद भी। ज्ञानी! उचित यह है कि तुम ब्रह्मचर्य के साथ जीवन जिओ। जब नौ कोटि जीवों की हिंसा कर ही रहे हो, तो उसका फल सामने दिखना चाहिये।** जो लड्डू पेड़े में आनन्द नहीं है, वह निर्ग्रन्थों के चरणों में आनन्द है। यदि नहीं आता होता, तो लोग क्यों आ रहे हैं? मैं मान लेता, कहीं कोई जादू-टोना होता। यहाँ तो वह भी नहीं होता है। किसी को श्रीफल भी फूँक कर नहीं दिया जाता है। तब भी बिचारे आ रहे हैं, इसका तात्पर्य क्या है? जो तन्त्र-मन्त्र में आनन्द नहीं है, वह अरहन्त के ग्रन्थों में आनन्द है। एक युवा एक बेटे को जन्म देकरके संस्कार करा रहा है उस बेटे की आयु यदि सौ वर्ष हुई और वह आठ वर्ष की उम्र में निर्ग्रन्थ मुनि बन गया। आपने नब्बे वर्ष तक जिनशासन को भारत भूमि पर जीवन्त किया है। जब तुम इन तीर्थंकर प्रतिमाओं को निहारते हो तो कितने खुश होते हो और कहते हो मेरे बुजुर्ग कितने महान् हुये थे जिन प्रतिमायें विराजमान नहीं कर जाते तो आज मैं धर्म को भूल जाता। आज भी तुम्हारे मन में अरहन्त प्रतिमा विराजमान करने के भाव होते हैं। हर श्रावक का यह भाव होता है कि जब तक ये श्री जी रहेंगे और जिस भूमि पर यह मन्दिर रहेगा, उस भूमि पर जिनशासन जयवन्त रहेगा। जैसे आप जिनालय बनातेसमय, जिन प्रतिमा स्थापित करते समय एक भाव रखते हो मेरे द्रव्य के निमित्त से मैंने जो पूर्व पुण्य किया था, वर्तमान में पुरुषार्थ किया है, उससे जो धन मिला हुआ है, उससे मैंने भगवान् की प्रतिमा स्थापित की है। जब-तक यह प्रतिमा रहेगी तब-तक मैंने जिन शासन स्थापित किया है। जैसे तुम प्रतिमा स्थापित करते समय अरहन्त के शासन को याद करते हो, वैसे ही जिस दिन तुम गर्भाधान करने जाते हो उस दिन तुम याद

कर लेना जो सन्तान जन्म लेगी वह जिन शासन को चलायेगी, जब-तक वह सन्तान जियेगी तब-तक जिन शासन चलेगा। याद करो अपने वृद्ध माता-पिता की। मूँग की दाल का पानी पीकर सो लिया, रूखा-सूखा खाकर सो लिया, ज्वार की रोटी खाकर सो लिया हो, लेकिन भगवान् के चरणों में ढोक लगाना नहीं भूले आज हमारी समाज पल्लवित पुष्पित क्यों है? इसने पानी पीकर सोना पसन्द किया है, लेकिन जिनवाणी को सुनना बन्द नहीं किया। उसका फल है कि आप जैनी भारत की भूमि में अल्प होने पर भी सबके शिखर पर बैठे हो।

धर्म को आप नहीं पाल रहे हो धर्म आपको पाल रहा है। 'हे धर्म! मां पालय' हे धर्म! मेरी रक्षा करो। कल का सूत्र था-जियो और जीने दो। परसों का सूत्र था-'विणओ मोक्ख द्वारो' इसके पहले 'अहमिक्को' आज के सूत्र ध्यान दो-तुमने मनुष्य जीवन प्राप्त किया है-जीवन में कहीं भी जीना, कैसे ही जीना, खाने को न मिले महामन्त्र का जाप करते-करते सल्लेखना तो कर लेना, लेकिन सत्य धर्म को छोड़ करके लड्डू पेड़े खाने मत जाना। सत्य का सूखा आटा श्रेष्ठ है, असत्य के पकवान खाने की अपेक्षा। सत्य को मत छोड़ना। अपने जीवन में एक सूत्र लेकर जाना-'पिय धम्मो, दृढ धम्मो' जब-जब भगवान् की वेदी के सामने पहुँचो कह देना हे नाथ! मैंने इतना ही सीखा है ज्यादा कुछ नहीं सीखा 'पिय धम्मो दृढ धम्मो'-मित्रो! जो-जो जगत् में तुम्हें प्रिय लगते हैं वे सब वासना के काल तक हैं। जो-जो प्रिय लगते हैं वे सब पुण्य के काल तक हैं। वासना का काल समाप्त हुआ तो पति-पत्नि का प्रियपना समाप्त हो जाता है। एक बेटा जन्म ले ले तो पत्नि का व्यवहार बदल जाता है, उसकी प्रीति भी बदल चुकी है। सम्पत्ति का राग भी एक समय के लिये तीव्रता रखता है जब खूब कमा लेता है, तब उसमें भी उदासता छा जाती है। जिसको तुमने धन दिया है वह भी आपको तब तक कुछ समझता है जब-तक उसके पास स्वयं में कुछ नहीं होता है। जिसका आपने भरपूर सयोग किया है **ऐसे बिरले लोग होते हैं जो उपकारी के उपकार को अन्तिम श्वासों तक याद रखते हैं। ऐसे बहुत लोग होते हैं जो आँखे फिरते ही आँख फेर लेते हैं।**

मेरा आपसे कहना है तूम खूब सहयोग करना, लेकिन उसको भूल जाना, कहीं

आपने सहयोग की याद कर ली तो तुम्हारा भवन भी गया धर्म भी गया और सम्पत्ति भी गई शत्रु और बना लिया। कहीं आपने सभा में बोल दिया कि इसको मैंने सहयोग किया था विश्वास रखना उसका मान भड़क जायेगा, सम्मान तो दूर है वह शत्रु रूप में देखेगा कि आपने मेरी इज्जत का ध्यान नहीं दिया।

मित्र के साथ व्यापार और रिश्तेदारों के साथ लेन-देन करना अपनी सम्पत्ति का नाश मान कर करना। सम्पत्ति का नाश तो ठीक है, प्रीति का नाश भी मानकर चलना। संसार में सबसे खोटी वस्तु लोभ कषाय है। लोभ में आकरके, पैसा देख करके, श्री को देखकरके कौन नहीं इतराता है। **सारे विश्व में युद्ध के दो ही तो कारण हुये हैं। रामायण के युद्ध का कारण है श्रीमती और महाभारत के युद्ध का कारण है श्री। महाभारत धन के कारण हुआ है और रामायण का युद्ध के स्त्री कारण हुआ है। जो इन दोषों से दूर हो गया वह श्रीमान्, धीमान् भगवान् बन जाता है। यदि भगवान् बनना है तो आज से दो का त्याग कर देना श्री और श्रीमती।** ज्ञानी! तुम्हारी जगत् के जितने द्रव्यों में प्रीति है वह प्रीति शाश्वत् नहीं है, नष्ट होने वाली है।

मेरे मित्रो! प्रीति ही करना है तो आज से ध्यान रखना। यह भीतर का विषय है कोई से बोलना मत, नहीं तो शत्रु बन जायेंगे। कहो माँ भोजन ही न दे। जब तू कह देगा माँ! मेरी तो प्रीति मात्र धर्म से है तेरे से नहीं है तो बेटा वह भोजन नहीं देगी। ज्ञानियो! बोलना कुछ नहीं मात्र अन्दर निर्णय करके बैठना। माँ! तू मेरा पालन कर रही है तो तेरे भीतर भी कुछ है। वह विषय अलग है कि उसकी पूर्ति हो या न हो। प्रत्येक माता-पिता के भीतर कुछ होता है-ये सन्तान आगे मेरे लिये कुछ करेगी। ज्ञानी! सन्तान तेरे सोचने से कुछ नहीं करती है, पुण्य होगा तो सन्तान भी करने खड़ी हो जायेगी। पुण्य नहीं है, तो सन्तान भी घर से बाहर निकाल देगी। आज अपने हृदय में निर्णय कर लेना जगत् की प्रीतियाँ तो छूट जाती हैं और जब छूटती हैं तो दुःख देकर जाती हैं। जो बेटा प्रतिदिन पिता के चरण छूता हो एक दिन न छुये तो पिता को वेदना प्रारम्भ हो जाती है। क्या बात है! बेटा या तो सम्मान देना मत, तो पिता पहले से ही निर्णय

कर लेगा कि हमारा बेटा ऐसा ही है। सम्मान देना तूने सीखा है, तो वृद्ध माता-पिता का अपमान मत करना। उस पुत्र की भाँति अन्तेवासिन होता है **जिस पर गुरु का भरोसा हो और शिष्य ने कहीं आज्ञा भङ्ग कर दी तो गुरु का हृदय विदीर्ण होता है। आज्ञा विहीन शिष्य हो, आज्ञा विहीन बेटा हो ज्यादा कष्ट नहीं होता, परन्तु आज्ञा में चलने वाला आज्ञा भङ्ग करे तो उसकी पीड़ा जहर से भी कई गुनी अधिक होती है।** भगवान् के पादमूल में तुम चिन्तवन कर रहे हो, प्रभो! जगत् के सम्बन्ध स्वार्थों से भरे हैं, ये छूट जायेंगे। मैंने गुरु मुख से इतनी बात सीखी है, पिय धम्मो दृढधम्मो घर में तुम्हारे सम्बन्ध भी 'पिय धम्मो दृढ धम्मो' जीवित बचेंगे। जिसके परिवार में धर्म के प्रति प्रीति है वह कभी किसी को दु:खी देखना पसन्द नहीं करेगा, जब किसी को दु:खी देखना पसन्द नहीं करेगा, तो परिवार को दु:खी कैसे करेगा?

उन ज्ञानियों को समझाना कि तुम चींटी की रक्षा की बात करते हो और घर के सदस्यों से तुम अच्छी तरह से बोलना भी नहीं जानते हो। फिर दया किस बात की? यहाँ चींटी की रक्षा कर रहे हो वहाँ भैया से मुँह फेरकर भाग रहे हो। जितना बाण का घाव पीड़ा नहीं देता है, उतना तेरा मुख का फेरना पीड़ा देता है। जब मैं व्यवहार से बोल रहा हूँ तब इतने शान्त हो, जब मैं निश्चय से बोलूँगा तब क्या होगा?

हे प्रभु! जगत् की प्रीति छोड़ करके में आपके चरणों में आया हूँ। मैंने सारे लोक की प्रीतियाँ देख ली हैं। यदि साथ देने वाली कोई प्रीति है, तो वह धर्म प्रियता है। वही साथ देगी। 'पिय धम्मो' बोलकर ,तुरन्त बोलना 'दढ धम्मो' धर्म प्रिय तो हो गया और प्रीति के कारण तुमने धर्म धारण भी कर लिया, परन्तु जरा सा कोई उपसर्ग आया कष्ट आया। रात्रि में भोजन का त्याग किया तुम्हारा सिर भन्नाने लग गया, तो अब क्या करोगे ? 'पिय धम्मो' तभी सम्हाल पाओगे जब भीतर का भगवान् कहेगा बेटा! अब तेरी परीक्षा का दिन है, इतने दिन से तुमने धर्म में प्रीति की थी अब 'दढ धम्मो' धर्म छोड़ मत देना। एक दिन की धर्म की दृढ़ता भव भव के कष्ट दूर कर देगी। मात्र अड़तालीस मिनिट किसी

ने अपने आपको सम्हाल लिया तो भव-भव की पीड़ा दूर हो गई। प्रत्येक कषाय का काल अन्तर्मुहुर्त होता है और अन्तर्मुहूर्त के वेग को सम्हाल लिया तो लोक में लोग क्या बोलते हैं ? अजैन बन्धु बोलते हैं कि ये जैनी हैं। जैनी किसी को पत्थर भी मारेगा तो गड़ी ईंट उखाड़ेगा। जब-तक ईंट उखाड़ने जायेगा, तब-तक वह सामने वाला भाग जायेगा। और कषाय का काल भी पूरा हो जायेगा, झगड़ा भी समाप्त हो जायेगा, कषाय से भी बच जायेगा। पड़ा पत्थर उठाकर मत मारना, इसमें रहस्य है। माँ! ध्यान रखना घर में अस्त्र-शस्त्र मत रखना, न पत्थर रखना। आपस में झगड़ा हो जाये और तेरी कषाय भड़कने लग जाये, तो दीवाल से ईंट उखाड़ना। जब-तक तू दीवाल की ईंट उखाड़ने का प्रयास करेगी, तब-तक तेरा स्वामी भाग ही जायेगा। भावों को तो सम्हाल लोगे, लेकिन जो द्रव्य हिंसा हो गई, उसको कैसे सम्हाल पाओगे? 'पिय धम्मो दढ धम्मो' जीवन में किसी भूमि पर निवास करना, चाहे महलों में रखना, चाहे श्मशान में रहना, चाहे जंगल में निवास करो, चाहे शहरों में निवास करो, लेकिन इतना ध्यान रखना 'पिय धम्मो, दढ धम्मो'। आज घर जाकर बोल देना जीवन में कितने भी कष्ट आ जायें 'पिय धम्मो, दढ धम्मो' अबजगत् में कोई भी कष्ट आ जाये कोई भूत आ जाये और कहे मैं तेरा नाश करता हूँ, तो कह देना कि मैं तुझे सिर नहीं टेकूँगा। 'पिय धम्मो, दढ धम्मो' मैं धर्म में दढ हूँ, तू मेरा कुछ नहीं कर सकता। व्यन्तर कुछ नहीं कर पायेगा, 'पिय धम्मो-दढ धम्मो'। माँ! बेटे के लिए सिर टेकने मत जाना 'पिय धम्मो-दढ धम्मो' कहोगे। महाराज! आपके तो न कोई आगे न पीछे, सो आप तो अपनी कहते रहते हो, हमको ग्रहस्थी चलाना है सब देखना पड़ता है। विश्वास रखो कितनी ही ग्रहस्थी चलाओ, जो व्यक्ति 90-100 साल का है, जिसके हाथ में छड़ी काँप रही है वह स्वयं में गिर रहा है।

पतन्ते स्वयमेव

जो स्वयं पतित हो रहा है वो दूसरे को क्या हाथ का अवलम्बन देगा? जो मिथ्यात्व के गढ्ढे में स्वयं डूब रहा हो, वह मुझे क्या तारेगा? 'पिय धम्मो दढ धम्मो'। मुमुक्षु! जब तुम प्रिय धर्मी हो और दृढ धर्मी हो, तो फिर अपने लालों

के टुकड़े पेट में मत कराना, सन्तान को जन्म देना। जब हमारी सन्तान बढ़ेगी, तो जिन शासन बढ़ेगा। विदेश में जा रहा है वहाँ भी बैठकर णमोकार पढ़ रहा है, तो अपने आप समझ जायेगा कि कोई धर्मात्मा जीव है। जब तू बाहर जाये और पानी पीने की इच्छा हो तो छन्ना लगा कर पीना। एक ज्ञानी के एक करोड़ के बैंडों को बजवाने से इतनी प्रभावना नहीं होगी जितनी कि तूने विदेश में भी छन्ना लगा कर पानी पिया है उससे हो जायेगी। दुनिया देखेगी यह जैन है, तूने जैन धर्म की प्रभावना कर दी। जितने युवा बैठे हैं ध्यान दो, घर में तुम क्या कर रहे हो तुम जानो, लेकिन जब भी किसी के घर में तुमको निमन्त्रण दिया जाये, तो उसके घर में रात्रि भोजन नहीं करना। यानि अपने घर में तो करना ही नहीं है, दूसरे के घर में भी करने नहीं जाना। एक अजैन बन्धु ने कार्ड दिया और कहा आपके लिये शाम को 5 बजे भोजन की व्यवस्था है, जैन साहब रात्रि के बारह बजे पहुँचते हैं, तूने उनकी श्रद्धा को चकनाचूर कर दिया। उसने जैन समझ कर व्यवस्था की थी, तूने कह दिया चलता है। हे अभागे! तूने अपने धर्म का नाश कर दिया।

आचार्य महाराज कह रहे हैं जिसको धर्म प्रिय है वह अपनी कामनाओं-वासनाओं को कमजोर कर लेता है। जो धर्म शून्य है उसकी कामनायें बढ़ती हैं और कमर तोड़ देती हैं। बुद्धि नष्ट उन्हीं की होती है, तत्त्व निर्णय उन्हीं का समाप्त होजाता है जिनके अन्तरंग में ब्रह्मधर्म का नाश हो जाता है। इसलिये पुनः-पुनः समझा रहे हैं।

कामाहि दृढदष्टस्य, तीव्रा भवति वेदना।
यया सुमोहितो जन्तुः, संसारे परिवर्त्तते ॥ 95 सा. स.॥

दुःखानामाकरो यस्तु, संसारस्य च वर्धनम्।
स एव मदनो नाम, नराणां स्मृति सूदनः॥ 96 ॥

आचार्य कुल भद्र स्वामी करुणा दृष्टि से मुमुक्षु को समझा रहे हैं। हे मित्र! सत्य मानो, हाथ मिलाने वाले मित्र उन्हें ही मिलेंगे जिनके पास श्री है। जब गरीबी के दिन आते हैं तब मित्र भी फाटक बन्द कर लेता है। सभी मेरे तभी तक

होते हैं जब-तक मेरे पास कुछ होता है और पास का धन चला जाये तो माँ भी उस बेटे के घर में रहने लगती है जिसके पास में कुछ होता है। किसी माँ के यदि चार बेटे होते हैं, तो वह भी देखती है कि किस बेटे के पास पैसा अधिक है। गरीबी के दिन विचित्र होते हैं।

ज्ञानियो! भले ही तुम धन से लदे रहो, पर फिर भी तुम गरीबों के हृदय को देखा करो, क्योंकि सब के दिन एक से नहीं होते। उन दिनों की याद करो जब घर में एक दाना भी नहीं था और आज भरपूर भरा हुआ है। फल मिला है, तो कहना मुझे मेरे द्वारा मिला होता, तो मैं पहले जब जन्मा था तब मेरे पास क्यों नहीं था? आज तुमने पुण्य किया है, पुण्य से धन बढ़ गया है उस धन को पुण्य में ही लगा दो। यह टेंसन समाप्त कर दो कि मेरी सन्तान का क्या होगा? जब तेरे पिता तुझे गरीब छोड़ कर गये थे तू अमीर हो गया तेरे बेटे का पुण्य होगा, तो वह भी अमीर हो जायेगा। तुझे जो धन मिला है उसे धर्म में लगा दो, क्योंकि भाग्य से मिला है, पुण्य से मिला है। चक्रवर्ती का बेटा चक्रवर्ती नहीं होता है। सामान्य सम्राट का बेटा होता है उसके पुण्य से चक्ररत्न उत्पन्न होता है, छह खण्ड का स्वामी होता है और जो छियानवें हजार रानियों के साथ सुख भोगता हो, जब श्वास निकलती है तबवे चौदह रत्न नवनिधियाँ कहाँ विलीन हो जाती हैं। या फिर चक्रवर्ती दीक्षा लेने के लिये घर की देहरी से बाहर पैर रखे? चक्रवर्ती का बेटा वहीं रहता है उसका जितना पुण्य होता है उतना ही वैभव बचता है। बाकी सब अन्तर्मुहूर्त के अन्दर-अन्दर विलीन हो जाता है। ज्ञानियो! जितने पुण्यात्मा पिता यहाँ बैठे हों उन सबसे मेरा कहना है कि तुम अपने बेटे को देना, परन्तु श्रमण संस्कृति के विकास में कुछ ऐसा कार्य करके जाओ सारा विश्व तुम्हारा नाम लेता रहे, क्योंकि मुझे मालूम है कि मेरी पर्याय भी नाश को प्राप्त होगी। एक सज्जन तो मेरे से कह रहे थे कि आप इतना प्रवचन क्यों करते हो? परन्तु सत्यता तो यह है कि मुझे प्रवचन करने की कोई भूख नहीं है, परन्तु मुझे दिखाई देता है अपनी पर्याय का विलीन होना, नियत नहीं है, आज प्रज्ञा काम कर रही है, बुद्धि काम कर रही है, अतः आगम ग्रन्थों पर जल्दी चर्चा हो जाये, फिर आगे की पीढ़ी देखेगी समझेगी। यदि हमारे कुन्दकुन्द देव न लिखते, तो हम समय सार कैसे पढ़ पाते? नेमिचन्द्र स्वामी त्रिलोक सार न लिखते, तो हम कैसे समझपाते, वीरसेन स्वामी धवला न लिखते, तो हम कैसे समझ पाते?

धरसेन स्वामी को यह भाव न आते कि जिनवाणी की रक्षा हो और पुष्पदन्त-भूतवली स्वामी जिनवाणी न लिखते तो यह षट्खण्डागम कहाँ से मिलता? सभी योगियों से, विद्वानों से, श्रावकों से कहना है कि अपने पास जो क्षमता है उसका उपयोग करो और जिनशासन की प्रभावना करो आगे की पीढ़ियाँ तुमको दुआयें देंगी।

जिसके पास जो सामर्थ्य है, विद्या के द्वारा, दान के द्वारा, तपस्या के द्वारा, अतिशयों के द्वारा जैसे बने वैसे जिनशासन की प्रभावना करो। सबसे बड़ी प्रभावना यह है कि अप्रभावना मत करो।

जैसे कालिया नाग डँस ले, तो उसे वेग सताते हैं। व्यक्ति मूर्छित हो जाता है। **नाग के डँसे का तो मन्त्रवादी जहर उतार सकता है, लेकिन काम के डँसे को उतारने के लिये आज तक कोई मन्त्र हुआ ही नहीं है। काम रूपी सर्प के डँसे व्यक्ति को तीव्र वेदना होती है। इस तीव्र वेदना से मूर्छित हुआ प्राणी संसार में मरण करता है, गति से गत्यान्तर चक्कर लगाता है।** काम से डँसे प्राणी को भव-भव में पीड़ा होती है। ध्यान से सुनना डाक्टर औषधि तो दे रहे हैं, परन्तु रोग नहीं बता पा रहे हैं। सत्यता यह है कि छोटी सी उम्र में चश्में लग रहे हैं, सिर दर्द कर रहा है, स्मृतियाँ भंग हो रही हैं। डाक्टरों को मालूम नहीं होता है, ऐसा क्यों हो रहा है वे उस बात को नहीं बता पा रहे हैं, क्योंकि स्वयं में भी कमी है दूसरे के बारे में बता दूँगा तो वह वैसा करना बन्द कर देगा तो मेरा पैसा आना बन्द हो जायेगा। चाहे तुम पराग का सेवन करो, चाहे तुम ब्रह्मी का सेवन करो बुद्धि बढ़ाने के कोटि-कोटि उपाय करो यदि तुम्हारे शरीर की वीर्य की रक्षा नहीं है, तो कोई दवाई कार्यकारी नहीं है। स्मृतियाँ नष्ट हो रही हैं, तो अब्रह्म के कारण हो रही हैं। ऐसे लोग भी हैं जो सौ-सौ वर्ष के हैं उनकी स्मृतियाँ काम कर रही हैं। ऐसे लोग भी हैं कि सोलह वर्ष का बालक भी कहता है कि मुझे याद नहीं होता है। क्यों नहीं होता? क्योंकि जिसको कामनाओं की याद आने लग गई, जिसको वासनाओं की याद आने लग गई, उसका चित्त भटक गया। चित्त की स्थिरता होना अवश्यक है।

''**आत्मस्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

काम को वश करना कठिन है

संकल्पाच्च समुद्भूतः, कामसर्पोऽतिदारुणः।
रागद्वेषद्विजिह्वोऽसौ, वशीकर्त्तुं, न शक्यते॥ 97 सा. स.॥

अन्वयार्थ—कामसर्पः = कामरूपी साँप, **अतिदारुणः** = अत्यन्त भयानक है, **संकल्पात् च समुद्भूतः** = और अन्तरङ्ग विचार से ही उत्पन्न होता है, **असौ रागद्वेषद्विजिह्वः** = इसके रागद्वेषरूपी दो जिह्वा (जीभ) हैं। **वशीकर्त्तुं न शक्यते** = इसका वश करना बहुत कठिन है।

भावार्थ—अन्तरंग विचारों में उत्पन्न, राग-द्वेष रूपी दो जिह्वा वाले, अतिभयानक इस काम रूपी सर्प को वश में करना बहुत कठिन है।

काम धन का नाशक

दुष्टा येयमनङ्गेच्छा, सेयं संसारवर्धिनी।
दुःखस्योत्पादने शक्ता, शक्ता वित्तस्य नाशने॥ 98 सा. स.॥

अन्वयार्थ—या इयं = जो यह, **अनङ्गेच्छा** = काम भाव की इच्छा है, **सा दुष्टा** = वह दुष्ट है, **इयं** = और यह, **संसार वर्धिनी** = संसार बढ़ाने वाली है, **दुःखस्य** = दुःखों के, **उत्पादने** = पैदा करने में, **शक्ता** = समर्थ है और, **वित्तस्य** = धन के, **नाशने** = विनाश करने में, **शक्ता** = भी सक्षम है।

भावार्थ—जो यह दुष्ट कामवासना है, वही संसार को बढ़ाने वाली है। यह दुःख उत्पादन में समर्थ और धन का विनाश करने में सक्षम है।

कामाधीनता भवसमुद्र में गिराती है

अहो ते धिषणा हीना, ये स्मरस्य वशं गताः।
कृत्वा कल्मषमात्मानं, पातयन्ति भवार्णवे॥ 99 सा. स.॥

अन्वयार्थ—अहो = बड़े खेदकी बात है कि, **ये** = जो कोई, **स्मरस्य** = काम के, **वशं गताः** = वश हो जाते हैं, **ते** = वे, **धिषणाहीनाः** = बुद्धिहीन हैं, **आत्मानं** = अपने को, **कल्मषं** = पापी, **कृत्वा** = बनाकर, **भवार्णवे** = संसार सागर में, **पातयन्ति** = गिरा देते हैं।

भावार्थ—अहो (आश्चर्य है) जो प्राणी काम के वशीभूत हो जाते हैं, वे बुद्धिहीन अज्ञानी अपनी आत्मा को पापी बनाकर संसार समुद्र में गिरा देते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में परम ब्रह्म द्रव्य की व्याख्या करते हुये बता रहे हैं। इस विश्व की महान् सम्पत्ति का नाम शील है। महान् वैभव का नाम शील है। लंकेश जानकी से कहने लगा कि हे जानकी! हे विदेही सीते! आप मेरी बात को स्वीकार कर लो और मुझे अपना स्वामी स्वीकार लो, मैं आपसे भीख माँगता हूँ। उस समय सीता ने रावण से कहा-ज्ञानी! **जिसके पासशील होता है, संयम होता है वह संसार में किसी से भयभीत नहीं होता, जिसके हृदय में कमजोरी है, वह सर्वत्र भयभीत होता है। जिसके अन्दर चारित्र की हीनता है, उससे बड़ा कोई दीन पुरुष नहीं है और जिसके पास चारित्र की सम्पत्ति है उससे बड़ा वैभवशाली कोई जीव नहीं है।** त्रिखण्डपति रावण एक नारी के चरणों में भीख माँगता हो। हे पुरुष! तुझे पुरुषत्व के थपेड़े नहीं पड़े। धन्य हो उस महासती के लिये आज प्रत्येक नर-नारी को इस बात को समझने की आवश्यकता है सीता ने कहा-लंकेश!

"कुशीलस्य वैभवं केवलं मलं"

हे लंकेश! आप मुझे जिस लंका का वैभव का प्रलोभन दे रहे हो और यूँ कह रहे हो कि लंका की पट्ट महिषी पद को सुशोभित करो। हे रावण! आप कल्पना करो, जहाँ अट्ठारह हजार रानियाँ खड़ी हों और अनेकानेक अनुचरों के बीच में हो, तीन खण्ड का स्वामी सामने खड़ा हो और एक अवला शील की रक्षा में कैसे खड़ी हो? हे माँ! नारी का श्रृंगार बाजार में घूमने के लिये नहीं होता है। श्रृंगार मात्र पति के सामने होता है, बाकी नारी का कोई श्रृंगार होता ही नहीं है।

जगत् में मर्यादायें भङ्ग क्यों हो रही हैं? **शरीर को सजा करके बाजार में घूमना, ऐसा ही जैसे खरगोश को पकड़ने के लिये, पक्षी को पकड़ने के लिये आखेटक जाल फैला देता है। जो युवा-युवति अपने शरीर को सजा करके, जिनालय की ओर आ रहे हैं या बाजार की ओर जा रहे हैं उनका यह शृंगार नहीं है, यह शील रूपी खरगोश को पकड़ने का जाल है।**

शरीर को वे सजायें जिनके मन न सजे हों, जिनके मन सजे हैं उन्हें शरीर सजाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध भक्ति के अन्तर्गत गहरी चर्चा की है-हे प्रभो! जगत् के जीव वस्तुओं से लदे हुये हैं। मुकुट, कण्ठ, हार, पहने हुये हैं, अस्त्र -शस्त्र लिये हैं, आप सहजानन्द स्वरूप में लीन हो, परम समरसी रस से युक्त हो, शान्तिभूत आनन्दकन्द ज्ञान-घन में लीन हो। हे प्रभो! जो कर्मों के पिण्ड में लिप्त है, जो वासनाओं से युक्त है उसे वसन धारण करना पड़ते हैं। जिन्होंने वासनाओं को उतार कर फेंक दिया है, वे निडर होकर दिगम्बर भेष में घूमते हैं। माला वे पहनें जिनके कण्ठ नारियों के कण्ठ से लिपटे हों। जिनका कण्ठ शील हार से युक्त है। उनको माला पहनने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आगम इतना अगाध है कि एक ही विषय पर कई दिनों तक चर्चा हो सकती है।

जब तुम्हारे अन्दर वस्त्र आभूषण धारण करने के परिणाम हों उस समय कहना मुझे जगत् के हारों से मणि मुक्ताओं से कोई प्रयोजन नहीं है। जिसने शील के हार को धारण कर लिया हो, उनके हार-हार हैं। **जो वासनाओं से हार चुका होता है, जो कामनाओं से हार चुका होता है वह जगत् की कामनियों के हाथ जोड़ता है। हार वे ही देखते हैं, जो हार चुके होते हैं।**

वीरसेन स्वामी एक साधु परमेष्ठी की वन्दना कर रहे हैं। हे श्रमण! मैं आपकी वन्दना इसलिये नहीं कर रहा हूँ, कि आप पिच्छी कमण्डलु लिये हो, आप दिगम्बर वेष में हो। यदि कमण्डलु ढोने से मोक्ष होता, तो सम्मेद शिखर में बहुत सारे लोग पानी के टीन लिये घूमते हैं, तो उनको मोक्ष हो जाये, मयूर पंख से मोक्ष

होता तो मयूर को ही मोक्ष हो जाये। दिगम्बर भेष से मोक्ष होता है, तो बन्दर-भालू को ही मोक्ष हो जाये। संसार में वस्त्रधारी अधिक नहीं हैं। वस्त्र रहित ही अधिक हैं। आप जैसे वस्त्रधारियों की संख्या बहुत कम है। प्रकृति का जो धर्म है, उसका नाम जैन धर्म है। जो प्रकृति के साथ प्रवृति करता है उसका नाम श्रमण है। आपने शील के हार को धारण कर लिया है और दु:शील के भार को उतार दिया है। मुनियों की वन्दना कब करना, कैसे करना और किस बात पर करना? तन को देखकर वन्दना नहीं करना। यह तन की वन्दना नहीं है, यह चैतन्य धर्म की वन्दना है। क्या नोट कागज नहीं होता? क्या सभी कागज नोट होते हैं? नहीं। नोट कागज तो होता है, परन्तु सभी कागज नोट नहीं होते हैं। वीतरागी निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर तो होते हैं, परन्तु मात्र कपड़े उतारने से दिगम्बर नहीं होते हैं। नोट के बीच में एक चाँदी का तार पड़ा होता है और गवर्नर की मुद्रा होती है। यदि तुम कृत्रिम नोट ले भी गये तो पकड़े जाओगे। हर कागज नोट नहीं होता, लेकिन जो भी नोट होता है वह कागज ही होता है। ऐसे ही मुमुक्षु! जो दिगम्बर मुनि होगा वह दिगम्बर ही होगा। कपड़े तो पागल भी उतार देते हैं। जैसे नोट के अन्दर तार होता है, वैसे ही दिगम्बर के पास पिच्छी-कमण्डल होता है। यह उनकी मुद्रा है।

दिगम्बरत्व के प्रति अगाढ़ श्रद्धा हो, जहाँ भी सच्चे देव-शास्त्र-गुरु दिख जायें सिर झुक जाये। कपड़े नहीं देखना, न प्रेस देखना। जिस दिन ज्ञानी नये जूते पहन कर आता है उस दिन जनमासे की चाल चलता है याद है? मैं तो सब वस्तु देखकर वस्तु स्वरूप समझता हूँ। एक बार मैं कुये से पानी लेने गया था, वहीं से एक बारात जा रही थी। दूल्हा जमीन को देख-देख कर जा रहा था, काश ऐसे जमीन को देखकरके मुनि बनकर जाता, तो संसार की वधु क्या? मुक्ति वधु से वरण हो जाता। जब संसार की वधु को वरने जाता है, तो नीचे देखकर जाता है, तो मुक्ति वधु को वरने वाला सिर उठाकर कैसे जा सकता है?

एक पुरुष निर्वस्त्र जा रहा था। मैं एक जगह खड़ा हुआ था। मेरा मन-मयूर नाच उठा। बादल गरजें और मयूर न नाचे, ऐसा होता नहीं है। गद्‌गद् भाव हो

गया कि आज तो धरती के देवता निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधन के दर्शन हो गये। वह क्षण महान् होता है जब सच्चे भावलिङ्गी मुनि के दर्शन हो जाते हैं। पूरा दिन मंगलमय होता है। सोकर उठते ही अरहन्त बिम्ब दिख जाये, निर्ग्रन्थ मुद्रा दिख जाये, समझो इससे बड़ा पुण्य का कोई दिन नहीं है। मैं भी प्रसन्न हो गया कि आज तो महाराज के दर्शन हो गये। दौड़ कर गया। महाराज, महाराज। जैसे ही झुकना प्रारम्भ हुआ, उनके पैरों में खड़ाऊँ पड़े दिख गये। जैसे ही खड़ाऊँ देखी, न पिच्छि था न कमण्डलु था, तो मेरे हाथ अपने-आप पीछे खिंच गये। क्यों? **दिगम्बर तपोधन इतने कठोर नहीं होते हैं, जो काठ के खड़ाऊँ पहन कर जमीन पर चलते हों। उन काठ के खड़ाऊँ के नीचे कोई भी जीव आ जायेगा तो उसके प्राणों का वियोग नियम से होगा। धूल में पगतले कोई चींटी भी आ जाये तो उसकी रक्षा हो जाती है, क्योंकि हमारे पैरों के नीचे पोला स्थान होता है, परन्तु खड़ाऊँ के नीचे आया प्राणी बचने वाला नहीं है।** उनकी खड़ाऊँ देखकर मैं दौड़ कर भाग गया। ये वीतरागी तपोधन नहीं हैं। बहुत दु:ख हुआ। मैंने तो ये सोचा था कि वीतरागी मुनिराज की वन्दना करूँगा। कैसा दुर्भाग्य था कि यहाँ तो कुछ-और ही देखने को मिला। वो नागा बाबा थे। उस समय शास्त्र तो नहीं पढ़े थे, लेकिन कुल की प्रत्यासत्ति। एक म्लेच्छ कुल में जन्मा बालक जीव को देखकर ही कहता है कि इसे 'मार दो।' प्रत्यासत्ति यानि निकटता। खोटे कुल में जन्मा बच्चा खेलेगा, तो गुलेल लेकर खेलेगा।

माताओ! ध्यान दो। आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी 'गोम्मटसार जीवकाण्ड' में लिखते हैं कि **जिस जीव की मति विष, पंजर, कूट बनाने की हो, गुलेल/धनुष आदि बनाने की हो तो समझ लेना कि इसका कुमतिज्ञान काम कर रहा है, यह मिथ्यादृष्टि जीव है।** इसलिये माता-पिताओ! ध्यान रखना, अपने बच्चों को खेलते समय भी देखना चाहिये कि यह कैसे खेल रहा है? तमन्चा लेकर खेल रहा है, तो तुम्हारे घर में खोटा जीव आ गया। एक वह बालक है जो कपड़े उतार लेता है, झाड़ू उठा लेता है और माँ से कहता है कि माँ! मैं महाराज हूँ, मेरा पड़गाहन करो। **एक वह बालक है जो झाड़ू को पिच्छी मान कर खेल**

रहा है, भले ही प्लास्टिक की मूर्ति से खेल रहा हो। भगवान् के साथ खेल रहा है। एक अभागा तमन्चा लेकर खेल रहा है, बस, समझ लो तुम्हारे घर में कौन-सी सन्तान है? जैनकुल में जन्म होने पर भी जिनके घरों में चूहा पकड़ने का पिंजड़ा रखा हुआ है, समझ लो मिथ्यादृष्टि का घर है। महाराज! आप तो महाराज बन गये। घर में चूहे सब कपड़े खराब कर देंगे, सब उठा ले जायेंगे। साबुन उठा ले जाते हैं, फल उठा ले जाते हैं। क्या करूँ? हे माँ! सत्य बताना, आप लोग जैन हो क्या? हाँ। यदि जैन हो, तो आपको मालूम होना चाहिये कि हर व्यक्ति का पुण्य-पाप कार्य करता है। यदि चूहे का पुण्य न होता, तो तेरे घर में कैसे जन्म लेता? कहीं जंगल में होता। वहाँ उसको फल उठाने मिलता क्या? उस चूहे का भी पुण्य है, जो तुम्हारी गोदाम में जन्मा है। ठीक है? आप अपनी सुरक्षा करो। आपने पिंजड़ा रखा, उसमें फल भी रखा। तू कितना कृपालु है कि पिंजड़े में फल रख रहा है, जैसे बड़ी कृपा कर रहा हो। हे ज्ञानी! मायाचारी कौन-सी वस्तु है? कर भी रहे हो, तो किसके साथ? एक निरीह प्राणी मूसक के साथ मायाचारी करने गया है। लड़ना भी है तो बराबर वालों से लड़ना चाहिये। रावण भी लड़ने खड़ा हुआ तो राम के साथ, लक्ष्मण के साथ। बराबरी वालों से बात करो तो कुछ जमता है। चूहे से? धिक्कार हो, पापियो! धिक्कार हो। आपने पिंजड़ा रख दिया, उसमें फल भी रखा, सत्य बताना, उद्देश्य क्या है? फल खिलाना है? नहीं। ऐसे कपटी हो गये, बुरा मत मानना। बुरा लगे तो क्षमा कर देना। 'जो है, सो है।' दादा की दुकान पर कोई पहुँचे तो चाय पिलाता है। वह ग्राहक सोचता है? यह सेठ इतना सीधा कब से हो गया जो अपने जेब के पैसे से चाय पिलायेगा? बस, ऐसे ही मान लो, जैसे चूहे को फल रखा गया है। वास्तव में चूहे के खाने के लिये नहीं रखा गया है। उसे लोभ दिखाकरके पकड़ने के लिये रखा है। ऐसे-ही जितनी दुकानों पर चाय पिलाई जाती है, वह कोई चाय थोड़े-ही पिलाई जाती है। वह ग्राहक को पकड़ने के लिये है, कि फँस तो जाये, फिर देखता हूँ। ऐसा करते हो, फिर तो हो गया कल्याण। बहुत अच्छे से हो गया। जो आपको अभी तक मालूम नहीं था, आज तो मालूम चल

गया। चूहे को पकड़ रहा था, बताओ, माया थी कि नहीं? इतनी बात बता दो, फिर आप जो करो सो तुम्हारा काम है। मैं तो यह जानना चाहता हूँ कि वह माया है कि नहीं? है। मायाचारी का फल उमास्वामी महाराज ने क्या कहा है? 'माया तैर्यग्योनस्य।' क्यों माँ! आप मायाचारी करके तिर्यञ्च गति में जाना पसन्द करते हो? नहीं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जब तुम मनुष्य मात्र के साथ मायाचारी करो, तभी तिर्यञ्च बनो। किसी भी स्थान पर मायाचारी करोगे तो तिर्यञ्च बनना ही पड़ेगा। कदाचित् मनुष्य-आयु का बन्ध कर लिया हो, फिर मायाचारी की, तो नियम से स्त्रीपर्याय में जन्म होता है। जगत् में जितनी नारियाँ हैं, वह मायाचारी का ही फल है। जो पूर्व में हमने किया है, आज भोगना पड़ रहा है। इसलिये कम से कम, अब तो उससे छूटने का पुरुषार्थ करो। छोटे-छोटे काम में भी माया तो माया ही है। आपने अपने पति को नहीं छोड़ा, अब दुनियाँ में किसको छोड़ोगी? जरा-से नमक में, जिसमें कीड़े भी नहीं लगते, चींटी भी नहीं लगती, चोर भी नहीं चुराते, ऐसी नमक की डली के पीछे, दस दिन का घर में नमक रखा होने पर भी, पति से कहती है कि खत्म हो गया, लेकर आओ। और कहती है, महाराज! घर चलाना पड़ता है, पहले से बोलना पड़ता है। अरे! सीधा बोलो कि दस दिन के लिये रखा है, ग्यारहवें दिन नहीं चलेगा, इसलिये लेकर आओ। घर चलाना पड़ता है, परिवार चलाना पड़ता है ज्ञानी! परिवार चले या न चले, परन्तु संसार का परिवार नियम से चलेगा। जितनी मातायें यहाँ नहीं आयी हैं, उनसे भी करुणा करके कह देना-छोटी-छोटी बातों को लेकरके मायाचारी करने पर, यह मत सोच लेना कि कर्मसिद्धान्त छोड़ देगा। **माँ! आपने चूहे को निकाल करके उस पिंजड़े में रखा। पिंजड़े से तूने रोड पर छोड़ दिया। सत्य बताना, उसका क्या होगा? रोड पर भी चूहे मरे मिलते हैं। क्या रोड पर उत्पन्न होकर मर रहे हैं? इन पापियों ने घर से निकाल कर रोड पर छोड़ा है, उन पर वाहन चढ़ गये, उसके प्राण चले गये। एक फल के राग में, कपड़े के राग में उसके प्राण ही ले डाले। इतना ही नहीं, वे चुहिया के बच्चे माँ के राग में बिलबिला रहे थे। वे भी मर गये। एक चूहे को बाहर निकाल**

करके कई पंचेन्द्रिय का घात कर दिया। आज तू बिलख रही है, रो रही है कि सन्तान नहीं हो रही है। उस दिन की याद करो, उनके माता-पिता को अलग किया, उनकी सन्तान का मरण हुआ है। उस कर्म का उदय कहाँ जायेगा? एक कबूतर-कबूतरी को भिन्न किया, उसका फल सीता ने भोगा। एक बगुले के बच्चे को भिन्न किया उसका फल जीवन्धर और उनके माता-पिता ने भोग लिया। ज्ञानियो! जीवन में ध्यान रखना जो घरों में कुत्ते, बिल्ली आदि बांध कर रख रहे हैं, वे पापी लोग हैं। इनके घरों में तो किसी मुनि के आहार हो ही नहीं सकते। जिनके घरों में हिंसक प्राणी पलते हैं वे साधु को आहार नहीं दे सकते। इसलिये उनको बन्धन से मुक्त कर देना। आस्रव तो होगा 'जो है सो है।' हे जीव! हँसते-हँसते कर्म का बन्ध तो कर लेता है जब उदय में आता है तब आँखों से गंगा जमुना बहती है। जीवन के उन क्षणों से प्रच्छना करो-जिन क्षणों में तुमने अशुभ-क्या किया है। आज से नियम ले लो घरों में जितने पिंजड़े रखे हों उन्हें फेंकना नहीं है, तोड़ना है, क्योंकि फेंकोगे तो दूसरा उठाकर प्रयोग करेगा। मन्दिर में पिंजड़ा नहीं रखना। चूहों को तो पोहा खिलाना चाहिये, उनका पेट भरा रहेगा तो वे कपड़े क्यों खराब करेंगे। तुम पेट नहीं भरते हो, सो वे कपड़े खराब करते हैं। धन्य हो सीता के लिये आप तो जरा में विचलित हो जाते हो, सत्य है संयम में जो ताकत है वह जगत् में किसी के पास नहीं है। यदि तुम्हारा शरीर भी अस्वस्थ हो तुम संयम की ओर बढ़ जाना छलाँग मार देना। भैया! असाता से स्वस्थ्य विगड़ता है कि साता से? असाता से। चारित्र धारण करेगा तो साता का उदय आयेगा तो रोग भी अपने आप भाग जायेगा। मुझे याद है जिस दिन मुझे आचार्य विरागसागर जी महाराज दीक्षा दे रहे थे उस दिन 104-105 डिग्री बुखार आ गया था। जब देखा इक्कीस दिन हो गये ठीक ही नहीं हो रहा है, तो मैंने आचार्य श्री से निवेदन किया, धन्य हो ऐसे कृपा-शील गुरु के लिये यथार्थ में मैं होता, तो सोचता दीक्षा देने के लिये। बीमारी में दीक्षा दी जाती है क्या? मैंने कहा महाराज! कहीं लँगोटी लगाये-लगाये प्राण न निकल जायें, मेरे जीवन की अन्तिम विदाई रत्नत्रय धर्म के साथ हो, इसलिए करुणा करके मुझे जैनेश्वरी दीक्षा

दे दो। अहो आश्चर्य! जिस दिन दीक्षा हुई उस दिन के उपरांत वैसा बुखार ही नहीं आया। यह संयम की महिमा है। हे ज्ञानियो! गद्गद् भाव से, प्रसन्न चित्त होकरके, उल्लास पूर्वक जो व्रत का पालन करता है उसके अन्तरङ्ग में, श्वेत कणिकाओं की वृद्धि हो जाती है, वह रोग को रोक लेती है। उसमें प्रतिरोधक शक्ति होती है। जो साधु है, शीलवन्त जीव है, उसके रक्त कणिकायें नष्ट हो जाती हैं। श्वेत कणिकाओं की वृद्धि होती है। तीर्थंकर भगवान् के अट्ठारह दोष नहीं होते हैं, उनको कोई रोग शोक नहीं होता है।

एक माँ जब बेटे को जन्म देती है, तो उसके आँचल में दुग्ध भर जाता है और जिसको प्राणी मात्र के प्रति वात्सल्य होता है उनके सर्वाङ्ग का रक्त ही दुग्ध मय होता है। तीर्थंकर अट्ठारह दोषों से रहित होते हैं। ज्ञानियो! इन्द्रियों का दमन और कषायों का उपशमन। ये दो काम कर लो आप विश्वास रखो मन भी स्वस्थ रहेगा और तन भी स्वस्थ रहेगा। **इन्द्रियों का दमन और कषायों का उपशमन ये जीवन के लिए दो महामन्त्र हैं।** यही शक्ति सीता के पास थी। एक अबला त्रिखण्डपति के सामने कह रही थी-हे लंकेश! कुशील का वैभव केवल पुण्य का मल है। शीलवंत पुरुष की दरिद्रता भी आभूषण है, उसी शील की शक्ति ने काम किया कि रावण सीता को स्पर्श नहीं कर सका, दूर खड़ा रहा। **रावण का भी व्रत था कि—जो नारी मुझे नहीं चाहेगी, मैं उसे बलात् प्रेरित नहीं करुँगा। उसके इस शील ने ही सीता के शील की रक्षा की। कम से कम रावण जैसा ही नियम इस पर्याय में ले लो। हे जीव! तु रावण जैसा ही नियम नहीं ले सकता, तो तू रावण से भी महारावण है।** रावण के पास एक नियम था, वह नियम भी उसने अहंकार में लिया था। केवली भगवन्त के चरणों में रावण सोच रहा था, क्या नियम लूँ? ऐसा नियम लेता हूँ जिसका पालन भी हो जायेगा और मेरी इच्छाओं की भी पूर्ति होगी। जगत् में ऐसी कौन-सी नारी होगी जो मेरे सौन्दर्य को, मेरे वैभव को देख करके मेरे प्रति आकर्षित न हो। इसलिये मैं ऐसा नियम लेता हूँ, जो नारी मुझे स्वयं नहीं चाहेगी मैं उसके साथ व्यभिचार नहीं करुँगा। वह भूल गया था कि—ऐसी भी शीलवन्त नारी है,

जो व्यभिचारी को आँख उठाकर भी नहीं देखेगी। उसका मान भंग उसी दिन हुआ था, मैंने नियम तो अहंकर में लिया था। हे अहंकारी! तेरा अहंकार चकनाचूर हो गया। हर मन्दिर के सामने एक मान स्तम्भ होना चाहिये जिससे जितने मानी हैं उनका मान नीचा हो जाये। **जो मान का स्तम्भन करे, सो मान स्तम्भ।** खूब ऊँचा मान स्तम्भ होना चाहिये, अहंकारी लोग बड़े ऊँचे-ऊँचे भवन बना रहे हैं, खण्ड पर खण्ड, परन्तु उनको मालूम होना चाहिये जिनदेव इनसे भी ऊपर हैं।

एक अबला ने शील की महिमा से अग्नि के कुण्ड को जल का कुण्ड बना लिया और एक द्रोपदी ने शील के प्रभाव से चीर बढ़ा लिया। अपने हृदय से पूछो काश ऐसी घटना मेरे साथ घटी, तो तुम क्या करने को तैयार हो? एक उस कन्या से पूछो-जिसने साढ़े तीन हजार वर्ष तक जंगल में तपस्या की हो अनङ्गसरा जो आगे चल कर विशल्या बनी, अनन्तमती से पूछो ये महासतियाँ शील के प्रभाव से मरने के बाद भी अमर हो गईं। हे नरो! तुम्हारे में एक ही महापुरुष मिला है, उसका नाम है सेठ सुदर्शन। ये मातायें मुस्कुराती हैं मेरे लिये तो कई सतियाँ हैं! हे ज्ञानियो! तुम्हारे में एक ही महापुरुष है, उसका नाम है सेठ सुदर्शन। रानी के कई विकल्प करने पर भी उस दृढ़शील व्रतधारी को, उसके दृढ़ मन को हिला नहीं सकी। ऐसे दृढ़ मन के भावों की कुचेष्टा करने पर भी अपने संयम पर दृढ़ रहा। जब वस्त्र आभूषण के बहाने सेठ सुदर्शन को बुलाया गया था और रानी ने इच्छा व्यक्त की, तब सेठ सुदर्शन कहता है माँ! मैं नपुंसक हूँ। रानी भूल गई थी और सेठ अपने शील को बचाकर निकल गये थे और जब बसन्त उत्सव में सभी नारियाँ जा रही थीं, तब सेठ की पत्नि भी थी और छोटा-सा बेटा भी था। वह उछल कूद रहा था, उसकी चंचलता को देख करके महारानी पूछती है यह बेटा किसका है? तब दासी ने कहा-यह पुत्र नगर सेठ सुदर्शन का है। ओह! वह तो नपुंसक है। तब दासी कहती है-आपको मालूम होना चाहिये शीलवंत पुरुष पर-नारी के लिये नपुंसक होते हैं। हे रानी! तू भूल कर गई। कम से कम सुन कर ही परिणाम पवित्र करो अपने हृदय को दृढ़ करो। जब सेठ सुदर्शन इतने शीलवन्त हो सकते हैं, तो अगला उदाहरण हम भी तो

बन सकते हैं।

जब यहाँ श्रोता हाथ जोड़े बैठे रहते हैं। श्रेणिक तीर्थंकर वर्द्धमान के समवशरण में बैठ करके साक्षात् जिनेश्वर की वाणी सुनता होगा, उसका पुण्य कितना महान् होगा? यह ध्रुव सत्य है, जो श्रुत में आनन्द है वह जगत् में कहीं नहीं है। **नाग का जन्म अण्डे में होता है। दोजिह्वा लपलपा रहा है, ऐसा कालिया नाग अण्डे में जन्मता है, तो काम का जन्म संकल्प के अण्डे में होता है, यदि जीव के संकल्प परिणाम शान्त हो जायें, तो कभी वासनायें सता नहीं सकती हैं, इसका नाम है, मनज।** सिंह गरिष्ठ भोजन करने वाला भी वर्ष में एक बार काम सेवन करता है, परन्तु हे नर! तेरी कितनी क्रूरता है। तू प्रतिक्षण प्रतिपल वासनाओं से भरा रहता है। यह भूल जाना कि सर्वथा भोजन से ही विकार सताते हैं, कबूतर भोजन रूखा-सूखा भी खाये, कंकड़ चुनने वाला कबूतर भी तीव्र कामी होता है और जिनके संकल्प के अण्डे समाप्त हो गये हैं उनके ब्रह्म को कोई छीनने वाला नहीं है। जिनके संकल्प के अण्डे विद्यमान हैं, उनको ब्रह्म में कोई ले जाने वाला नहीं है। वासना संकल्प से उत्पन्न होती है। कोई सोचे ना तो बिगड़े ना। सोचा सो बिगड़ा। चित्त गया सो चारित्र गया। युवाओ ! चित्र देखना बन्द कर दो। पिता के पैसे का क्या दुरुपयोग, जब पूरा घर सो जाता है तब तुम खोटे-खोटे चित्र देखते हो। जैसे ही अशुभ चित्र में चित्त गया, चित्त जाते ही चारित्र गया। चित्र में चित्त गया, सो चारित्र गया। माताओ! तुम्हारा कर्तव्य है कि घरों में अशुभ चित्र न लगायें। हर रसोई घर में दिगम्बर मुनि का चित्र होना चाहिये।

अमरावती महाराष्ट्र में मैंने एक बहुत सुन्दर लीला देखी। आहार करके जैसे ही चौके से बाहर निकले, तो सासू माँ कहती है महाराज! दर्शन कर लो भगवान् के।

मैंने कहा-यहाँ भगवान् कहाँ? भगवान् तो मन्दिर में हैं। वह बोली, मेरे घर में भगवान् हैं। मैंने कहा प्रतिष्ठित हैं? बोली, हाँ प्रतिष्ठित हैं। मैंने दर्शन कर लिये। जैसे ही सीढ़ियों से नीचे उतरा सो बहू खड़ी थी महाराज! दर्शन कर लो,

मैंने कहा अभी तो किये हैं ऊपर।

बोली यहाँ मेरे भगवान् हैं। मुझे आनन्द आया, सुनना क्यों? मैंने पूछा ऐसा क्यों? बोली तुम्हारे उत्तर भारत में जब बटबारा होता है, तो मात्र पैसे-पैसे का होता है। हम लोग हिस्से में भगवान् भी बाँट लेते हैं। मेरे भगवान् नीचे और मेरी सासू माँ के भगवान् ऊपर। जग भोगों के लिये बराबर हिस्सा चाहिये, तो भक्ति के लिये भी बराबर हिस्सा चाहिये। जबदर्शन किये तो मैंने धीरे से क्या पूछा कि आप भगवान् को रसोई घर में क्यों रखते हो? वे अधिकांशतः रसोई में रखते हैं। वह बोली महाराज जी हम तो किसान हैं, हम लोग गरीब हैं। इतने बड़े मकान तो हैं नहीं कि अलग से चैत्यालय बना लो, सारे स्थान तो अपवित्र हैं। रसोई ही ऐसा स्थान है जहाँ व्यर्थ के लोग तो नहीं आते हैं, सुन्दर पवित्र स्थान है। जब मैं भोजन पकाती हूँ, तो भगवान् दिखते हैं। जब मैं भोजन करती हूँ, तो भगवान् दिखते हैं जिससे मेरे परिणाम विशुद्ध होते हैं, उससे दिन भर अच्छा निकलता है।

मैंने कहा-बहुत बढ़िया बात है, ठीक है, लेकिन एक दिगम्बर मुनि का चित्र रसोई घर में और लगाना। क्यों लगाना? **'मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारे'**। कदाचित् तुम्हारे घर में कोई साधु नहीं है और भोजन करने के पहले तुम्हारी दृष्टि मुनिराज पर पड़ गई और एक क्षण भाव बन गये कि ढाई द्वीप में जितने वीतरागी-तपोधन हों उनके निरन्तराय आहार हो जायें, इसके बाद तुम्हारे मुख में ग्रास जाये, तो मुनिचर्या की अनुमोदना का फल तुमको मिलेगा। वे अभागे लोग हैं, जो नेता अभिनेताओं की तस्वीरें घर में टाँगे हुये हैं उनको देख-देख करके बच्चे और बिगड़ रहे हैं। जितने सच्चे जैनी हैं वे सब एक निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधनों की फोटो लगा लो। कहीं भोजन करते-करते अन्तिम श्वास निकल गई, तो गुरु को देखकरके तेरे परिणाम तो विशुद्ध हो जायेंगे।

आज से बच्चों के नाम चिंकू, पिंटू, टिंकू नहीं रखना। कहीं ज्ञानी! जाने लग गया और बेटे का नाम चिंकू रखा, याद आई चिंकू की, तो चिंकू-चिंकू करके

चला जायेगा। कदाचित् बेटे के राग में भगवान् का नाम भूल गया और बेटे का नाम वर्द्धमान रख दिया तो तूने वर्द्धमान-वर्द्धमान नाम लिया तो धोखे से भगवान् का नाम तो ले लिया, इसलिये अच्छे नाम रखना।

अन्वर्थसंज्ञः सुमतिर्मुनिस्त्वं, स्वयं मतं येन सुयुक्तिनीतम्।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति, सर्वक्रियाकारकतत्त्वसिद्धिः॥21 स्व.स्तो.॥

हे सुमित नाथ स्वामी! आपका नाम भी अनवर्थ संज्ञक है, जिस नाम का अर्थ निकलता हो वही नाम सार्थक है।

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि काम-वासनायें अन्तरङ्ग के संकल्प से उत्पन्न होती हैं। जैसे कालिया नाग अण्डे से उत्पन्न हो रहा है, ऐसे ही काम मन के संकल्प के अण्डे से उत्पन्न हो रहा है। जैसे कालिया नाग की दो जिह्वा लपलपाती हैं जिसको डँस लें उनकी पर्याय का नाश हो जाता है वैसे ही जिसको काम डँस ले उसके संयम का नाश, अनन्त भावों की विशुद्धि का नाश और भव-भव में दु:ख मिलेगा। संकल्पों के अण्डे से और जिसमें राग-द्वेष दो जिह्वा है ऐसे काम-सर्प अत्यन्त भयंकर भयभीत करने वाला है, उसको वश करना बहुत कठिन है। बड़े-बड़े ज्ञानी लोग भी अपने पाण्डित्य को भूल गये। पाण्डित्य तभी तक है, जब-तक काम के वशीभूत नहीं हुआ है। पता नहीं शास्त्रों का ज्ञान और तत्त्व का विज्ञान कहाँ पलायन कर जाता है, जब जीव वासना के वशीभूत होता है। यह काम की इच्छा अत्यन्त दुष्ट है, संसार को बढ़ाने वाली है और संसार के प्राणियों को दु:ख देने में समर्थ है। जब उसको घर की नारी नहीं दिखती है, तो वेश्यालय की ओर जाता है। धर्म भी गया, इज्जत भी गई और धन भी गया, चारुदत्त से पूछ लेना?

जैसे कोई पुरुष गन्ने को तब-तक मुख में रखता है, जब-तक उसमें रस है और रस निकल गया सो बाहर छिलका पड़ा है। ऐसे ही नगर-नारि (वैश्यायें) हैं, जब तक तेरे पास धन का रस है तब-तक तेरे साथ हैं जिस दिन समझ लेंगी कि धन का रस समाप्त हो चुका है उसका प्रेम भी समाप्त होगया। कुलभद्र स्वामी का यह उपकार है कि इतने स्पष्ट शब्दों में कथन कर दिया है। बस अपने मन

में कायोत्यर्ग कर लेना कि जीवन को पूर्ण कर लेना श्रेष्ठ है, परन्तु पर की जूठन को स्वीकार करना श्रेष्ठ नहीं है। यह काम धन को नष्ट करने वाला है कितने राजे महाराजे नष्ट हो गये। अहो! आश्चर्य है कि—काम के वशीभूत होकर बुद्धिहीन, अज्ञानी अपनी आत्मा को पापी बना करके स्वयं ही भवरूपी समुद्र में गया है। मनीषियो! इस बात को सुन करके समझ करके भीतर इतना निर्णय कर लेना कि हे प्रभो! अच्छा हो ब्रह्म को पूर्णतः से पालन करुँ और नहीं कर सकते हो तो स्वदार संतोष व्रत का पालन करो। पर पुरुष व पर नारी अग्नि व सिंह के समान छोड़ दो। मन में ऐसा विचार कर लेना कि जीवन में अन्तिम श्वास के पहले जो खोटे काम हो चुके हों उनका प्रायश्चित कर लेना। हो सकता है अज्ञानता में दोष हो गये हों, परन्तु आज तो ज्ञान हो गया है। निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में एकान्त में जाकर कह देना। हे स्वामी! मेरी इस आत्मा को पवित्र करो। मुझे पवित्र करो जिससे मैं दोषों सहित न मरूँ। कभी काँटा लगा पैर में? चाल बदल गई थी। पैर में काँटा चुभ जाये, तो मार्ग में चलते समय चाल बदल जाती है, पैर रखा नहीं जाता, मार्ग तय नहीं हो पाता। जिसके हृदय से अपराधों के काँटे निकल जाते हैं वही मोक्षमार्ग पर अच्छे से चल पायेगा। किञ्चित् भी दोष लगे होंगे, चित्त प्रसन्न तभी होता है जब प्रायश्चित हो जाता है। मन में कोई दोष रखा होगा, तुम दुनियाँ में पूज्य हो सकते हो, पर स्वयं के परिणामों से पूछो? दुनियाँ पूजा परिणामों की नहीं पर्याय की करती है। तुम्हें मुनिराज दिख गये, ब्रह्मचारी, त्यागी दिख गये पर्यायों के दिख रहे हैं, परिणामों के नहीं दिख रहे हैं, दुनियाँ तो पर्याय को देखकर पूजती है, लेकिन तू किसी को पूजता है, तो परिणामों का देखकर पूजता है। स्वयं के परिणाम कैसे हैं? वह तुझे ही मालूम हैं। तू पूज्य है कि अपूज्य है? किसे ज्ञात है?

एक बात पूछूँ, बता दो क्या जाता है? ज्ञानी! सत्यता यह है, जिसे तू पिता कह रहा है उसे तू नहीं जानता। तू पिता इसलिये कह रहा है कि तूझे माँ ने बताया है। यथार्थ में तेरा पिता कौन है? यह माँ को ही मालूम है। जैसे सच्चे पिता का बोध माँ को होता है, ऐसे सच्चे साधु का बोध साधु को ही होता है।

श्रावकों को नहीं होता है। श्रावक तो पर्याय के भगवान् को ही पूजने वाले हैं, भावों केभगवान् को तो तुम ही जानो।

जो शील के हार को धारण किये हैं और दु:शील के भार को छोड़ चुके हैं ऐसे महाश्रमण जयवन्त हों जिनको संसार के सारे भय समाप्त हो चुके हैं। ध्रुव सत्य है जब-तक हृदय में पाप है, तब-तक दुनियाँ में भय है। जिनका भय का पाप निकल चुका है, जगत् में उन्हें भय की आवश्यकता ही नहीं है। यही कारण है कि जिनशासन में जिनदेव अस्त्र-शस्त्र लिये नहीं मिलेंगे। हाथ पर हाथ रखे बैठे हुये हैं, सर्वाङ्ग दिगम्बरत्व से युक्त हैं। न कोई तलवार, न कोई अस्त्र, न कोई शस्त्र। अस्त्रशस्त्र वे धारण करें जिनके भीतर डर हो, जिनको डर ही नहीं है उन्हें अस्त्र की आवश्यकता ही नहीं है। ऐसे वीतरागी जिनदेव जयवन्त हों।

''**आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

धर्म से पराङ्मुख करने वाला भी काम है

स्मरेणातीवरौद्रेण, नरकावर्त-पातिना।
अहो खलीकृतो लोको, धर्मामृतपराङ्मुखः॥ 100 सा. स.॥

अन्वयार्थ—अहो = बड़े खेद की बात है कि, **नरका वर्तपातिना** = नरक रूपी गढ्डे में पटकने वाले, **अतीव रौद्रेण** = अत्यन्त भयानक, **स्मरेण** = कामने, **लोकः** = मानवों को, **खली कृतः** = दुष्ट बना दिया है तथा, **धर्मामृत पराङ्मुखः** = धर्मरूपी अमृत के पान से छुड़ा दिया है।

भावार्थ—आचार्य कहते हैं कि नरक रूपी गड्डे में गिराने वाला अत्यन्त रौद्र (क्रूर) काम पिशाच सारे लोक को दुष्ट बनाकर धर्मामृत के पान से पराङ्मुख कर देता है।

काम तापकारक है

स्मरेण स्मरणादेव, वैरं दैवनियोगतः।
हृदये निहितं शल्यं, प्राणिनां तापकारकम्॥ 101 सा. स.॥

अन्वयार्थ—दैवनियोगतः = कार्मों के तीव्र उदय से, **स्मरेण** = कामदेव के द्वारा, **स्मरणात् एव** = उस काम के स्मरण मात्र से ही, **प्राणिनां हृदये निहितं** = प्राणियों के हृदय में बैठी हुई, **शल्यं** = शल्य, **तापकारकम्** = संताप को उत्पन्न करने वाली है, **वैरं** = शत्रुता एवं दूसरों का अत्यन्त बुरा करने वाली है।

भावार्थ—कर्म केनियोग से, प्राणियों केहृदय में स्थित कामरूपी शल्य काम के स्मरण मात्र से ही तापकारक है।

"शल्य की चिकित्सा"

तस्मात्कुरुत सद्वृत्तं, जिनमार्गरताः सदा।
येन सत्खण्डितां याति, स्मरशल्यं सुदुर्धरं॥ 102 सा. स.॥

अन्वयार्थ—तस्मात् = इसलिए, **जिनमार्गरताः** = जिनमार्ग में रत रहते हुए, **सदा** = निरन्तर, **सद्वृत्तं** = उस सम्यक्चारित्र का, **कुरुत** = पालन करो, **येन**

= जिस सम्यक्चारित्र के द्वारा, **सुदुर्धरम्** = अत्यन्त कठिन, **स्मरशल्यं** = कामरूपी शल्य के, **सत्खंडितां याति** = सैंकडों टुकड़े हो जाते हैं।

भावार्थ—हे आत्मन्! इस प्रकार काम की विडम्बना को जानकर सदा जैन मार्ग (जिनधर्म) में रत होकर सम्यक्चारित्र का पालन करो, जिस सम्यक्चारित्र के द्वारा अत्यन्त कठिन यह काम रूपी शल्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी सार समुच्चय ग्रन्थ में आत्मा के असद् गुणों का व्याख्यान करते हुये सद्गुणों की ओर प्रेरित कर रहे हैं। अखण्ड चिद्रूप भगवान् आत्मा पर के कर्म-नोकर्म में लिप्त हो रही है, अपने निज धर्म से शून्य हो रही है। कुछ नहीं है जगत् में।जिसको माया कहा जा रहा है वह माया हो या न हो? परन्तु हे मद! तेरी विशाल माया है। जिन पदार्थों ने तुझे नहीं स्वीकारा है, अपना नहीं कहा है उन चेतन अचेतन द्रव्यों में तू अपनत्व लेकर बैठा है। श्वास निकलते ही आग में डाल दिया जाता है पर श्वास को कोई नहीं डाल सकता। जब तक श्वास नहीं निकली तब तक आँच में नहीं डाला जा सकता, तब तक हे चेतन! इस तन का उपयोग सद् कार्यों में लगा दो, असद् कार्यों से इसको मोड़ लो, तेरे हाथ में है, पुरुषार्थ गम्य है, पराधीन नहीं, स्वाधीन है। चित्त को जहाँ ले जाना चाहे पुरुष के हाथ में है, चित्त-चित्त के हाथ में नहीं है, चित्त तेरा तेरे हाथ में है, आप मन्दिर लाये हो, धर्म सभा में लाये हो, चित्त के आधीन पुरुष नहीं है बिल्कुल विवेक केसाथ कह रहा हूँ और विवेक के साथ सुनना। यह विवेक उन्मत्त होकर नहीं चल रहा है, बड़ी सावधानी से चल रहा है उन्मत्तता छोड़ियो। चित्त के हाथ में पुरुष नहीं है, पुरुष के हाथ में चित्त है।

हे पुरुष! तू चित्त का आनन्द न लूटे, तो चित्त अशुभ कर नहीं सकता। जहाँ-जहाँ इन्द्रिय व्यापार आता है, वहाँ चित्त आनन्द लूटता है। समझ में आ रहा है? बिल्कुल तटस्थ होकर सुनना पूरा विषय समझ में आयेगा। ज्ञानी! रसों में रस नहीं, मोह का रस है तो रसों में रस है। मोह निकल गया, तो रस नीरस

है। ज्ञानियो! रसों में रस नहीं, स्पर्शों में स्पर्श नहीं, गंधों में गंध नहीं, शब्दों में सरसता नहीं स्वर नहीं, रंगों में रंगत्व नहीं यदि तेरा मन राग में नहीं रंगा तो। मन राग में लगा है, तो दुर्गन्धमयी द्रव्य में भी रस दिखाई देता है। कल्पना की बात छोड़ो, सत्य बात सुनो। लगने लगता है हाय! हो क्या गया? एक मरा हुआ तिर्यञ्च मार्ग के बगल में गढ्ढे में पड़ा हुआ है, सड़े हुये पशु की दुर्गन्ध आपकी नाक को फोड़े दे रही है। जब सामने से निकलते हो तो ऐसा लगता है कि अब वमन होने वाला है। हृदय घात होने वाला है, ऐसी दुर्गन्ध है जिसे तू सूँघना स्वीकार नहीं कर रहा है। उस दुर्गंधमयी पुद्गल के पिण्ड को एक भावी भगवान् मुख में रखे खड़ा हुआ है। उसी स्थान पर कोई गिद्ध की पर्याय में है, तो कोई श्वान की पर्याय में है, कोई गीदड़ की पर्याय में है जिसे हम देख नहीं सकते जिसे हम सूँघ नहीं सकते हैं। देखना सूँघना तो बहुत दूर है। जिस भूतल पर वह पड़ा हुआ है, उस भूतल में खड़ा होने में कष्ट हो रहा है और एक जीव उसको तोड़-तोड़ कर खा रहा है। तिर्यंच पर्याय में माँस के सड़े पिण्ड का भोजन किया जाता है। हर वस्तु को समय देना चाहिये, प्रत्येक द्रव्य को प्रमेय बनाइये। अब तो आप बहुत दिन से सुन रहे हो और आगम की भाषा भी जानने लगे हो। प्रमेय से तात्पर्य ज्ञेय और ज्ञेय से तात्पर्य जानने योग्य द्रव्य। जानना, जानने में बन्ध नहीं है, जाने में बन्ध है। जानना तो प्रत्येक द्रव्य को, परन्तु जाना नहीं प्रत्येक द्रव्य में। तत्त्व ज्ञानी जीव। ये है जिनागम की गूढ़ भाषा। जानना हर वस्तु को, पुण्य को भी जानना, पाप को भी जानना। पुण्य उदय को भी जानना और पाप उदय को भी जानना पहचानना। यदि जानोगे नहीं, पहचानोगे नहीं, तो हेय-उपादेय का विवेक कैसे? परन्तु पुण्य को ग्रह्य दृष्टि से देखना, पाप को हेय दृष्टि से देखना, परन्तु लक्ष्य में ये रखना कि पुण्यपाप दोनों हेय हैं। निज शुद्धात्मा ही परम उपादेय है। पुण्य भी हेय है, पाप भी हेय हैं, परन्तु पुण्य-पाप दोनों की तुलना करोगे, तो पाप हेय ही है, पुण्य उपादेय भी है। शुद्ध दशा पर दृष्टि डालोगे, तो पुण्यपाप दोनों हेय हैं, एक अखण्ड चिद्रूप चैतन्य आत्मा ही उपादेय है। मरघट से भी निकलो तो कदम रोक लेना। सड़े मृतक तिर्यञ्च को भी देखो

तो कदम रोक लेना, ग्लानि मत करना, नाक मत सिकोड़ना, दुनियाँ में आपने यह तो अनेक बार सुना है कि—धर्मात्मा को देखकर ग्लानि नहीं करना यह निर्विचिकित्सा अङ्ग है। इस दृष्टि को और विशाल बनाइये। मल के पिण्ड को देखकर भी गलानि नहीं करना, इसका नाम निर्विचिकित्सा अङ्ग है। जब मल अपना धर्म नहीं छोड़ रहा है, उसने अपनी दुर्गन्ध का त्याग नहीं किया, तो आपने अपनी निर्विचिकित्सा का त्याग कैसे कर दिया? मल ने अपना धर्म नहीं छोड़ा, परन्तु अपने मन से कह देना तूने अपना धर्म क्यों छोड़ा है?

मित्रो! युवाओ! मेरे भैया! थोड़ा समय दे देना जिस वस्तु में तुम राग कर रहे थे उसे स्वीकार मत कर लेना, थोड़ा समय दे देना। राग मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हो गया, प्राप्ति का पुरुषार्थ तो ज्ञान से करेगा, उस राग के भूत पदार्थ की प्राप्ति के पूर्व एक क्षण को समय दे देना, उसे प्रमेय बना लेना, यानि ज्ञेय बना लेना। पहले बस खड़े होकर देखना, जानना, पहले जाना मत। जो जाने बिना चले जाते हैं, वे रोकर ही आते हैं। यदि तुमको मुनि भी बनना हो, तो पहले जाना मत, जानना। घर छोड़कर पहले मत जाना, पहले जानना है क्या? ये वीतरागी भेष, जिनलिङ्ग महान् है, उसको धारण करने वाले महापुरुष होते हैं। जिनको महापुरुषों ने धारण किया है। असिव्रत है, असिधार व्रत है। मुनि हँसी खेल में तो बना जा सकता है, परन्तु मुनि बनकर हँसी खेल नहीं होता है। यह वन-वे ट्राफिक है, यहाँ जाना-जाना है लौट कर आना नहीं है, इसलिये जाने के पहले जान लेना। आनन्द वहाँ है जहाँ पश्चाताप नहीं और जाने के बाद पश्चाताप हो गया तो तेरा आनन्द नष्ट हो गया। घर में कोई कुछ भी कहे, तो यही कहना कि जाने के पहले जानो। तू बेटे की माँ को लेने चला गया था कि पहले जाना था? अब नहीं कहना कि बिना जाने शादी हो गई थी, जाना था तभी तो गया था। ये भी जाना था कि क्यों जा रहा हूँ? ये भी जाना था कि क्यों गया हूँ? यह भी जान लिया था कि जाने के बाद क्या होगा? यह भी जान लिया था, कि लाने के बाद क्या होगा? जाना तो है, परन्तु माना नहीं है। ज्ञानी! जाने के पहले जान लेना। काश! जाने के पहले जान लेता, तो कोई जीव पाप

में लिप्त हो नहीं सकता। हे तिर्यञ्च! जिसे तू भक्षण कर रहा है, वह तेरे ही वंश का है। हे तिर्यञ्च! जिस श्वान की पर्याय में खड़ा तू भक्षण कर रहा है, तू अपनी भगवान् की पर्याय को देख लेता तो तुझे शरम आती, भावी भगवान् सड़े पुद्गल को खा रहा है। एक गाय पड़ी हुई थी, वहाँ पर बहुत सारे श्वान खड़े हुये थे। मैंने कहा देखो! एक भटकता भगवान् इस पर्याय से चला गया ये भटकते भगवान् भोजन करने खड़े हुये हैं। अहो! जब इनकी दशा बदलेगी, दिशायें बदलेंगी, पर्याय बदलेगी, ये ही जीव जब परमात्मा बनेगा तो लोग हाथ जोड़े खड़े मिलेंगे। आज विचारा किस स्थान पर खड़ा हुआ है ?

मेरे मित्रो! जब तुम अशुभ करने जाओ उस समय मात्र एक बार अपनी आँख खोलकर अपने शरीर को देख लेना। दूसरे क्षण ही अपने कुल को देख लेना, तीसरे क्षण ही अपनी जाति को देखना, चौथे क्षण अपने धर्म को देख लेना उसके बाद पाप करना। धर्म को निहार लेना और भविष्य में भगवान् बनने जा रही पर्याय पर विचार कर लेना फिर तुम अशुभ करने जाना। मेरा विश्वास है, अशुभ कर नहीं पायेगा। जिसने इतना जान लिया हो, जिसके साथ अशुभ करने जा रहा हूँ वह भी भगवत् शक्ति सम्पन्न है। जो अशुभ करने जा रहा है वह भी भगवत् शक्ति सम्पन्न है। भगवान्-भगवान् के साथ पाप कर्म कैसा? द्रव्य (धन) दृष्टि है, तो द्रव्य दृष्टि नहीं है। जिसकी धन दृष्टि है उसकी आत्म द्रव्य पर दृष्टि नहीं है। जिसकी आत्म-द्रव्य दृष्टि है उसकी द्रव्य दृष्टि नहीं है। प्रमेय बनाइये। खड़े होकरके प्रमेय बनाइये। कैसे बनायें? जैसे तटस्थ पुरुष किसी द्रव्य को देखता है, मात्र जानने के लिये न वहाँ राग है, न द्वेष है। ऐसे ही तत्त्व ज्ञानी जीव भीतर उमड़ते भावों को देखता है।

जिसे कानों से सुन रहे हो, उसे ज्ञान का विषय बनाइये। मैं तत्त्व उपदेश सुन रहा हूँ, मैं ही तत्त्व हूँ, मैं ही उपदेष्टा हूँ। सुनाने वाला मैं नहीं हूँ, वह किसी अन्य में नहीं है, अन्य मेरे में नहीं है। मैं मात्र हूँ पाप में जाता है तो पर नहीं, पुण्य में जाता है, तो पर नहीं। मेरा चित्त न पाप में जाता है, मेरा चित्त न पुण्य में जाता है। जाते चित्त को आदेश करने वाला चेतन्य है। मेरा चित्त पाप नहीं,

मेरा चित्त पुण्य नहीं, मन तो जड़ है, स्यात् पौद्गलिक है। द्रव्य मन जड़ ही है, भाव-मन चैतन्य है। जड़मन कुछ करता नहीं, भाव मन के किये बिना।

हे चित्त! अज्ञानियों ने तुझे गालियाँ दे डालीं। अशुभ बोल डाला, परन्तु ज्ञानियों ने आज तक तुझे दोष नहीं दिया। चित्त कभी पाप करता नहीं, चित्त पाप का आनन्द लूटता नहीं। इन सबको आज्ञा देने वाला चैतन्य का विभाव भाव है, क्योंकि अज्ञानियों ने मन को गाली दे डाली। पहले मन से अशुभ कर्म किया, फिर उस मन को गाली दी, तूने पाप ही पाप किया। पता चला कोई भिन्न था नहीं निज में ही निज का कर्म बन्ध कर डाला। बहुत सारे लोगों ने अपने स्वयं के गले घोंट लिये। इस संसार में ऐसे अज्ञानी जीव हुये हैं। विद्वानों का कर्तव्य है कि समाज को सम्यक् शिक्षा दो।

युवाओ! ध्यान दो, तुम्हारे ऊपर एवं स्वयं के ऊपर करुणा करके कह रहा हूँ। जो पाप तुमसे हो गया वह किया किसने है? एक बार विवेक खो दिया तो पाप कर ही डाला और जब पाप को छोड़ नहीं पाता, जो अनर्थ तेरे हाथ से हो गया उसे छोड़ नहीं पाता है और वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम इतना कमजोर पड़ गया कि तू दूसरा पाप करने को खड़ा हो जाता है। अब मैं चेहरा किसे दिखाऊँगा, सो आत्मघात करने खड़ा हो गया। मरण किसी पाप का प्रक्षालन नहीं है। विद्वानों से मेरा कहना है सम्यक् सोच दो, सम्यक् ज्ञान दो। किसी से दोष हो जाये, उसे बार-बार मत टोको। एक दलदल में हाथी फँस गया अब हाथी को कैसे निकाला जाये? हजारों चूहे उसकी पूँछ खींचने लगे, भैया क्या चूहे से हाथी निकल आयेगा? सावधानी से सुनना ये समाज रक्षा की दृष्टि नहीं है, यह राष्ट्र रक्षा की दृष्टि है। आगम को वास्तविक रूप से समझने की दृष्टि है। **जब दोष तुमसे हो ही गया, तो मरना कोई प्रायश्चित नहीं है। गम्भीर से गम्भीर पाप भी हो जाये, तो मरने का उपक्रम मत करना। ज्ञानी! उसकी विधि सुनो, तु मर गया, तो क्या पाप नष्ट हो गया? मरना पाप का नाश नहीं है। परिवार बिलख रहा है तू तो चला गया, परन्तु जो पाप बन्ध किया था वह तो तुझे ही भोगना पड़ेगा।** आगरा के बैंक से पैसा निकाला, तुम आगरा छोड़कर भाग

सकते हो, लेकिन शासन इतना समझदार है वह खोजकर लेगा। जब भारत सरकार तुझे खोज सकती है, तो कर्म-शासन कहता है तू जहाँ मिल जायेगा वहाँ तुझे पकड़ लूँगा, तू कहीं बचने वाला नहीं है।

प्राणों का नाश, कर्म का नाश नहीं है, प्राणों का नाश प्रायश्चित नहीं है। घर में सभी प्रकार के सदस्य रहते हैं। कोई बुद्धिजीवी भी है, कोई बुद्धि-विहीन भी है, कोई अल्पज्ञान वाले भी हैं, कोई बहुत ज्ञान वाले भी हैं, किसी के साथ ऐसा व्यवहार मत करना कि उसे यह भाव आ जाये कि मेरा जीवन भारभूत है। जगत् में हीन भावना से बड़ा कोई दुःख नहीं है। कॉलेजों से ये समाचार मिलते हैं कि छोटे-छोटे बच्चे फाँसी लगा रहे हैं। माता-पिता अपनी बुद्धि से बच्चे को न पढ़ायें। दसवीं कक्षा तक आप अपनी बुद्धि से पढ़ा लो। जब विषय परिवर्तन हो, तो पढ़ना बच्चे को है कि आपको? बच्चे का क्षयोपशम नहीं है और ग्रामीण क्षेत्र के लोग अपने बच्चों को जबलपुर, भोपाल, दिल्ली आदि शहरों में भेज रहे हैं और वह बालक इतनी मेहनत नहीं कर पा रहा है, तो उनके मन में मरने के भाव आते हैं कि मैं क्या करुँ? आप पढ़ा रहे हो कि उसको सता रहे हो? क्षयोपशम देखना चाहिये है। हमारे आगम में चार अनुयोग हैं। गुरु चारों अनुयोग पढ़ाता है और देखता है कि उसकी रुचि कहाँ टिक रही है। ठीक है, आपकी बुद्धि नहीं चल रही है, तो चलो पढ़ो प्रथमानुयोग करो स्वाध्याय।

स्वाध्याय विसंवाद के लिये नहीं है, स्वाध्याय संक्लेशता के लिये नहीं है, स्वाध्याय परिणामों की विशुद्धि के लिये है। स्वाध्याय में ही संक्लेशता बनने लग गई, तो विशुद्धि का कारण क्या होगा?

मुझे ज्ञान नहीं हो रहा है, जिसे ज्ञान नहीं हो रहा है उसे जान ले सब छोड़ देना। मुझे ज्ञान नहीं हो रहा है, यदि मुझे जान लिया, तो तूने सारे द्वादशांग को जान लिया।

जो जाणदि अप्पाणं

जो आत्मा को जान लेता है वह सब को जान लेता है जो आत्मा को नहीं जानता वह किसी को भी नहीं जानता।

सो जाणदि जिण शासणे सव्वं

कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं, उसने सम्पूर्ण जिनशासन को जान लिया, जिसने अपनी आत्मा को अबद्ध, अस्पर्श जान लिया है।

हे ज्ञानी! बेटा-बेटियों को उनका क्षयोपशम देखकर अध्ययन करवाना। फेल भी हो जाये तो हीन भावना से मत देखना। तुम्हारे पास मुस्कुराहट तभी तक है, जब तक हीन भावना ने जन्म नहीं लिया।

परमात्मा के पादमूल में प्रार्थना करना, हे स्वामी! मेरे जीवन में कोटि-कोटि कष्ट आ जायें, लेकिन हीन भावना प्रवेश न कर पाये। गरीबी में दुःख नहीं है, अमीरी में सुख नहीं है, लेकिन दुःख हीन भावना में है, अहंकार में है और शान्ति आर्जव-मार्दव धर्म में है। क्या चाहिये? आपके पास सुख तो है, लेकिन शान्ति नहीं है। ऐसे सुख की खोज करो जिसमें सुख भी हो और शान्ति भी हो। आपके पास मात्र इन्द्रिय सुख होता है, परन्तु शान्ति नहीं है। धन्य हैं वे योगीश्वर **एक श्वास काल प्रमाण निर्ग्रन्थों की आत्मानुभूति का जो आनन्द है, वह कोटि-कोटि देवाङ्गनाओं का रमण करने वाले सौधर्मइन्द्र के पास भी नहीं है।** यहाँ जो सुख है, वह शान्तिमय है। मेरे मित्र! पड़ोसी चाहे अरबपति बने या खरब पति बने, परन्तु हीन भावना नहीं लाना। चमकता चेहरा भी फीका हो जाता है हीन भावना से। निर्ग्रन्थ तपोधन का चमकता चेहरा, कहीं हीन भावना आ जाये कि मुझे कोई नहीं पूछता तो उस मुनि का आनन्द भी समाप्त हो गया। जगत् में वही सुखी रह सकता है जो मात्र अपने को मानता है, मात्र वही सुखी है। जब हाथी दलदल में फँस गया और हजार चूहे लग गये अब बताओ कैसे निकलेगा?

राजा श्रेणिक ने जब मुनिराज के ऊपर साँप डाला और चेलनी ने साँप निकाला और चेलनी श्रेणिक दोनों अभिवादन कर रहे थे, तो मुनिराज ने दोनों को बराबर

आशीष दिया। तब श्रेणिक के मन में क्या भाव आया? धिक्कार हो मुझ पापी को ईर्ष्या के वश होकरके मैंने यह दुष्कृत किया।

मित्रो! अग्नि लग जाये तो पानी डाल कर बुझाया जा सकता है, लेकिन हृदय में ईर्ष्या की अग्नि लग जाये तो सागरों पानी उड़ेल देना, लेकिन उस आग को तुम बुझा नहीं सकते। हे भगवान्! किसी की माँ, किसी के भैया के हृदय में यह ईर्ष्या की आग न लगे। सबसे शक्तिमान अग्नि ईर्ष्या है। फिर वह कुछ भी नहीं देखती, एक बार पानी किसी वस्तु को बहा ले जाये तो कुछ न कुछ तो बच जाये, लेकिन अग्नि जहाँ लग जाये वह किसी को नहीं छोड़ती है। **जिसकी आत्मा में ईर्ष्या की अग्नि लग जाये, उसके एक भी सद्गुण बचने वाले नहीं हैं, वह सबको झुलसा देगी। ज्ञानियो! हीन भावना और ईर्ष्या दो आत्मा के शत्रु हैं।** जब श्रेणिक ने यह सोचा कि मैंने ईर्ष्या के वश होकर मुनि के ऊपर उपसर्ग किया, प्रायश्चित क्या करुँ? म्यान पर हाथ ले जाता है। सोचता है अब तो आत्महत्या करना उचित है, इससे बड़ा प्रायश्चित क्या होगा? तब वे वीतरागी तपोधन, धरती के देवता जो शत्रु मित्र में साम्य भाव रखते हों। इस धरती पर शत्रु को भी मित्रवत् कहने वाला कोई प्राणी है, तो उसका नाम दिगम्बर मुनि है। शत्रु को शत्रुभाव से दिगम्बर मुनि देख रहा है, वह मात्र चित्र का मुनि है, चारित्र का मुनि नहीं है। मुनिराजो! ध्यान से सुनना, चाहे कोई उपसर्ग करे या प्रहार करे बस छहढालाकार की लाइनें याद रखना।

अर्घावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन। ज्ञानी! ज्यादा सीखना हो तो इतना सीख लेना। जब भी तुम मुनि बनने के भाव रखो तो मेरी इतनी सी बात मान लेना–चौबीसी पूजा का छन्द दिन में एक बार पढ़ लेना।

मुनिमन सम उज्जवल नीर प्रासुक गंध भरा।

चौबीसी पूजा लिखने वाले जीव को गङ्गा का पानी नहीं दिखा, यमुना, कालिंदी का पानी भी नहीं दिखा, सरस्वती का पानी नहीं दिखा, क्षीर सागर का पानी नहीं मिला। हे नाथ! मैं ऐसा नीर लेकर आया हूँ। मुनिमन सम उज्जवल नीर प्रासुक गंधभरा। हे नाथ! जैसा मुनि का मन होता है। जहाँ रागद्वेष की शैवाल

न हो, विषय वासना के जलचर कीट न हों। जैसा योगी का मन है, वैसा नीर लेकर आया हूँ। मुझे तन नहीं चाहिये है, मुझे मुनि मन चाहिये है। जहाँ मुनि मन मिल गया, तो मोक्ष की आकांक्षा समाप्त कर देना। मोक्ष नियत हो चुका है उसका, जिसके पास मुनिमन है। जिसका मुनि मन होगा 'मृग उपल खाज खुजावते'। छहढाला इसी नगर में लिखा गया है। पण्डित दौलत रामजी इसी छीपीटोला में छपाई करते थे। छपाई के बीच में समय निकलता तो जिनवाणी वाचन करते थे, ऐसे-ऐसे विद्वान् हुये हैं। जो पैसे के लिये नहीं जिये, जीवन के लिये पैसा जरूर कमाया था। शेष बचा तो जिनवाणी में लगाया था। वे अभागे हैं जो पैसे के लिये जी रहे हैं। जी तो नहीं पाओगे, पैसा भी जायेगा और जीवन भी जायेगा।

हाथी कीचड़ में फँस गया, कौन निकाले? हाथी को निकालने की सामर्थ चूहे में नहीं है। यदि हाथी को दलदल से निकालना है, तो उस जैसा हाथी ही बुलाना पड़ेगा। हाथी ही हाथी को खींचेगा तब दलदल से निकल पायेगा। जिस मन हाथी ने तुझे घोर पाप के दलदल में फँसाया है, उस मन हाथी को ही ठीक कर ले, वही पाप से निकालेगा दूसरा कोई पाप से निकालने वाला नहीं है। जिस प्रज्ञा से बन्ध हुआ है उसी प्रज्ञा से मोक्ष होता है। तुमसे पाप हो गया हो तो तुम मरने मत चले जाना। गुरु के चरणों में प्रायश्चित लेने चले जाना। जिस मन ने पाप किया है, उसी मन से पाप धुल जायेगा। जीवन में नियम ले लो कितने ही कष्ट उपसर्ग आ जायें, लेकिन कभी आत्महत्या करके बदनाम नहीं करेंगे। देव-शास्त्र-गुरु की साक्षी में व्रत लिया है, परिपूर्ण पालन करना। कायोत्सर्ग कर लो, बिना कायोत्सर्ग के कोई नियम नहीं होता। महापाप से बच गये। जीवन मिला है तो आनन्द से जियेंगे। बहुत बड़ा यज्ञ हो गया। शुभचन्द्र स्वामी ने ज्ञानार्णव में लिखा है **अहिंसा से बड़ा कोई यज्ञ नहीं होता, अहिंसा ही महायज्ञ है** और आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने स्वयंभू स्तोत्र में लिखा है अहिंसा ही परम ब्रह्म है। जहाँ धर्म है, वहाँ विजय है। हाथी को हाथी निकालता है। चित्त पाप नहीं करता, चित्त को चलाने वाला चैतन्य का

परिणमन है। आत्मा अपनेज्ञानको ज्ञान में लगा दे, ज्ञान को ही ज्ञान में ज्ञायक भाव से निहार ले, तो कभी पाप नहीं हो सकता। जब ज्ञाता अपने ज्ञान को पर ज्ञेयों में ले जाता है, उनके कर्म, नो कर्म में जाता है, तो उसका चित्त लुभा जाता है। जहाँ चित्त लुभा वहाँ ब्रह्मधर्म का नाश हो जाता है। कुछ भी कहो मैं आपकी इस बात से सहमत नहीं हूँ कि महाराज हर व्यक्ति पापी है। मैं तो पापी को भी पापी मानने तैयार नहीं हूँ, एक क्षण के अशुभ भाव से पाप कर बैठा, पापी का मन भी कहता है कि मैंने अच्छा नहीं किया। तीव्र कर्म के उदय में पुनः पाप करता है, क्या करुँ? पापी के अशुभ कर्म का उदय ही ऐसा चल रहा है कि उसकी बुद्धि सुबुद्धि होती नहीं।

ज्ञानी! तुझे मालूम नहीं है कि घर में रहना पाप है? **बिना राग-द्वेष के घर में रहा नहीं जा सकता और राग-द्वेष से बढ़कर कोई पाप होता नहीं।** एक बात और बता दो, पाप का फल क्या होता है? दुर्गति। धन्य हो ज्ञानियो! जैनियो! मैंने सुना था जैन समाज बड़ी बुद्धिमान होती है, बड़े विवेक से काम करती है। तुम क्या कर रहे हो? जानकर भी घर जाओगे क्या? जानकर भी दुर्गति में जाओगे क्या? एक सिक्का भी तुम घाटे में नहीं जाते हो। बुन्देलखण्ड में कहते हैं, बनिया का लड़का जमीन पर भी गिरे, तो समझ लेना कुछ मिलना होगा, इसलिये गिरा है।

एक बालक घी का घड़ा लेकर जा रहा था, उसने घड़ा पटक दिया। एक व्यक्ति कहता है कि—विचारे का घी गिर गया। दूसरा ज्ञानी समझदार खड़ा था, वह कहता है कि—तू समझता नहीं है, लड़का किसका है? वह बनिया का लड़का है, ऐसे घी नहीं पटक सकता, कोई कारण होना चाहिये? उसको सामने मोहर पड़ी दिख गई। उसने सोचा ऐसे उठाऊँगा तो लोग देख लेंगे, सो उसने घी का घड़ा पटक दिया और उठा ली। इसीलिये लोग कहते हैं बनिया का बेटा कुछ लाभ देखकर ही गिरता है। तुमको मालुम है घर में रहना पाप है और पाप करने से दुर्गति होती है, तो फिर घर में क्यों जाना? चलो मेरे साथ। ये मत सोचना कि आहार कौन देगा? आहार के लिये जो साधु बने वह साधु नहीं है और जो

साधु है उसे नियम से आहार मिलेगा। ये पिच्छी में बड़ी ताकत है।

हाथी को किसने निकाला? हाथी को हाथी निकालता है, तो आज से ध्यान रखना जिस चित्त से पाप होते हैं उसी चित्त से पाप का प्रक्षालन होता है। ज्ञानियो! अपने दोष, न किसी को बताने जाना, न अपने दोषों को किसी से रोने जाना।

मित्र! अपने दोष केवल सच्चे वीतरागी भावलिंगी गुरु को बताने जाना, जो गुण से युक्त हों। गुरु अपने शिष्य के कोटि-कोटि दोष जानते हों, उनको भीतर पी जायें, लेकिन कभी स्वप्न में भी अपने दूसरे कान को भी न सुनायें उसका नाम अपस्रावी गुण होता है। शिष्य का दोष दूसरे को नहीं बताया जाता, इसलिए आचार्य पद विश्वास का पद है। अपने अन्दर के दोषों को बता पाना कोई छोटी मोटी बात नहीं है, महानतम् तपस्या है। प्रायश्चित अन्तरङ्ग तप है।

प्रायश्चित लेने वाले बहुत सारे लोग मिल जायेंगे, परन्तु सच्ची आलोचना करने वाले नहीं मिलेंगे। जिनका लोचन ही साफ नहीं है, उनकी आलोचना साफ कहाँ से होगी? जिनकी आलोचना साफ नहीं है, उनका लोचन साफ कभी हो ही नहीं सकता। जिसके भीतर दोष छिपा हो उसकी आँखें देखना कैसी होती हैं? अब 'जो है सो है'।

ज्ञानी! केवली भगवान् किस-किस को बनना है? **जबतक तुम कण्ठ से श्रुत का नाद नहीं करोगे तब-तक सर्वाङ्ग से नाद कैसे होगा? जो श्रुत को जितने अच्छे से पढ़ेगा, उतनी जल्दी श्रुतकेवली बनेगा। जो श्रुत केवली बनेगा, वही केवली भगवन्त बनेगा,** इसलिये जोर से बोला करो नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो, वीतराग शासन जयवन्त हो, 'जयदु श्रुतदेवता' श्रुतदेवता जयवंत हो। श्रुत देवता का तात्पर्य कोई देवी-देव से मत समझ लेना यह सूत्र धरसेन स्वामी के मुख से निकला था जय हो श्रुतदेवता। श्रुत देवता की जिनवाणी जयवन्त हो। जितने अच्छे से पढ़ोगे सारे तनाव खाली हो जाते हैं। चित्त उसी का चमकता मिलता है जिसके भीतर कुछ होता है। यदि किसी ज्ञानी को घर की नींव खोदते समय कुछ मिल गया हो और वह घर के बाहर चबूतरे में बैठा हो तब भी इसका चेहरा चमकता है, यह चमक किसकी है? जब जड़-धन की इतनी ताकत कि

इसका चेहरा चमकने लगता है। आदमी के पास पैसा आते ही चेहरा चमकता है। जब जड़-धन से चेहरा चमक सकता है, तो फिर जिसके भीतर रत्नत्रय का धन भरा हो उसका चेहरा न चमके, तो वह धन किस बात का? जिसके पास तत्त्व ज्ञान का धन होगा, उसका हृदय हमेशा गद्गद् रहता है। फटे कपड़े भी पहने हो और घर में धन भरा हो। दुनियाँ कहेगी गरीब फटे कपड़े पहने है, लेकिन उसे कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता उसको पता है कि मैं कौन हूँ?

ऐसे ही मुनियों से दुनियाँ कहती है नंगे गये, नंगे गये, अरे! नंगे गये कि चंगे गये हैं? अब समझो भीतर का विषय। अमरावती में एक 8 वर्ष का बालक घर के बाहर खड़ा हुआ था। जैसे ही हम लोग निकले बच्चा कहता है आई-आई लोकर आ जैनियों के भगवान् जा रहे हैं। इस बच्चे को नङ्गे नहीं दिखे, इस बच्चे को साधु नहीं दिखे, इस बच्चे को बाबा नहीं दिखे वह कहता है जैनियों के भगवान् जा रहे हैं। तब लगा ओ हो हो! हम अपने आप को क्या मान रहे हैं? यह छोटा बच्चा कह रहा है जैनियों के भगवान् जा रहे हैं। अब योगियों को सोचना चाहिये कि मैं पंचपरमेष्ठी भगवान् कहलाता हूँ। सारे विश्व में चले जाना जैसी दिगम्बर आम्नाय में साधु की पूजा है, वैसी जगत् में कहीं भी साधु की पूजा नहीं है। कुन्दकुन्द देव ने स्वयं भगवान् कहा है।

भिक्खं वक्कं हिययं, सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।
एसो सुट्ठिद साहू, भणिओ जिणसासणे भयवं॥ 1006-मूलाचार॥

जिस श्रमण की आहार चर्या, वचन-प्रणाली शोधन पूर्वक है, भूत बनकर नहीं खाता और व्यन्तर बनकर नहीं बोलता अर्थात् आहार कर रहा है और हूँ हूँ कर रहा है।

जिसकी बोलने की शैली मधुर हो, जिसके भोजन की शैली सम्यक् हो, ऐसे श्रमण को जिनेन्द्र के शासन में भगवान् कहा है, इसलिये हे श्रमणो! कभी कर्कश शब्द मत बोलना और कभी चप-चप करके भोजन नहीं करना। जब मुनि आर्यिका बनो, तो ये सब बातें ध्यान रखना। जितना तुम सुन रहे हो दूसरे को देखने के लिये मत सुनना।

मैंने बहुत छोटे में एक डायरी बनाई थी। जो बात मुझे साधु की नहीं जमती थी, मैं उनको परेशान नहीं करता था, उनकी तो सेवा वैयावृत्ति करता था, लेकिन अपनी डायरीमें लिख लेता था कि—जब मैं मुनि बनुँगा तो ऐसा नहीं करुँगा, जो मुझे पसन्द नहीं है। जो क्रिया पसन्द नहीं उसको कभी मत करना, क्योंकि 'णाणा जीवा, णाणा कम्मं'।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं ज्ञानियो! वासनायें कामनायें नरक रूपी गड्ढे में पड़ने के लिये हैं। सारे लोक में काम-पिशाच नरक के गड्ढे में डालने वाला है। जो धर्मामृत से पराङ्गमुख कर देता है, उसका नाम वासना है।

हृदय में काम रूपी शल्य का स्मरण करने मात्र से ताप बढ़ता है। जैसे तुम बहुत अच्छे से थाली के सामने थे, तुम्हारा शत्रु आ गया उसका नाम सुनते ही सारे भोजन का स्वाद समाप्त हो गया। ऐसे ही, तभी-तक ही सारे विश्व में धर्म की थाली का आनन्द है। जब-तक काम-शत्रु ज्ञात नहीं है।

जिसको काम-शत्रु का बोध हो जाता है, जिनको कोई विकार नहीं था। साधुओं के पीछे चला करते थे, रोज भगवान् की भक्ति पूजा करते थे। जैसे ही विकार की उम्र आ गई, सो भगवान् को भूल गये। भैया! मत भूलो भगवान् को, सद्वृत्ति को धारण करो। इस काम की विडम्बना को जानकर के सदा जिन-धर्म में रत होकर सम्यक् चारित्र का पालन करो।

बेटा! तुम जीवन में तपस्वी बन पाओ या न बन पाओ, परन्तु जैन धर्म, जैन कुल की मर्यादा को मत छोड़ देना। युवाओ! कभी जिनशासन की मर्यादा को भङ्ग मत करना। निज को जिनमार्ग में लवलीन रखना। सम्यग्दर्शन का पालन करो, जिस सम्यग्दर्शन से अत्यन्त कठिनता से काम रूपी शल्य के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। जिसने जिन शासन को स्वीकार लिया है, वह कभी न कभी कामरूपी शल्य के खण्ड-खण्ड कर देगा।

''**आत्मस्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कामवासना अनर्थ की पोषक

चित्तसंदूषणः कामस्तथा सद्गतिनाशनः।
सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ, कामोऽनर्थपरम्परा॥ 103 सा.स.॥

अन्वयार्थ—कामः = यह कामभाव, **चित्तसंदूषणः** = चित्तको मलिन करने वाला है, **तथा सद्गतिनाशनः** = तथा शुभ गति का नाशक है। **च सद्वृत्तध्वंसनः** = और सम्यक्चारित्र को भ्रष्ट करने वाला है। **असौकामः** = यह काम, **अनर्थ परम्परा** = अनर्थों की परम्परा को चलाने वाला है।

भावार्थ—यह कामभाव चित्त को मलिन करने वाला, शुभ गति का विनाशक, सद् (समीचीन) व्रतों का ध्वंसक और अनर्थ की परम्परा को चलाने वाला है।

सर्व आपत्ति का मूल काम

दोषाणामाकरः कामो, गुणानां च विनाशकृत्।
पापस्य च निजो बन्धुः, परापदां चैव संगमः॥ 104 सा. स.॥

अन्वयार्थ—कामः = यह काम, **दोषाणां** = दोषों की, **आकरः** = खान है, **च गुणानां विनाश कृत्** = और गुणों को नाश करने वाला है, **पापस्य** = पाप का, **निजः बन्धुः** = निजबन्धु है, **च एव** = और यही, **परापदां** = बड़ी-बड़ी आपत्तियों का, **संगमः** = संगम कराने वाला है।

भावार्थ—सर्व दोषों की खान, गुणों का नाश करने वाला, पाप का निज बन्धु और बड़ी-बड़ी आपत्तियों का संगम कराने वाला यह काम है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर कुलभद्रस्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मा की वैभाविक दशा का वर्णन करते हुये समझा रहे हैं। जो वैभाविक दशा को जानता है, वह स्वाभाविक दशा को भी पहचान सकता है। जिसे अशुद्धि का बोध नहीं है, वह शुद्ध सत्ता को प्राप्त कर ही नहीं सकता है। अशुद्ध को शुद्ध किया जाता है, शुद्ध को शुद्ध नहीं किया जाता। यदि क्रोध है, तो उसके विपरीत क्षमा धर्म भी

है। क्षमा है तो उसके विपरीत वैभाविक क्रोध भी है। दोनों शक्तियाँ एक ही द्रव्य में हैं, भिन्न द्रव्य में नहीं हैं। यह बहुत आवश्यक विषय है जानने की भी आवश्यकता है। दोनों शक्तियाँ एक ही स्थान पर हैं, विभाव शक्ति भी है स्वभाव शक्ति भी है। जिस समय विभाव शक्ति उद्घाटित होगी, उससमय स्वभाव शक्ति ढकी होगी और जब स्वभाव शक्ति का उदय होगा तो विभाव शक्ति का अभाव होगा।

एक पुरुष कितने समय तक कषाय में रह सकता है? गुस्सा कितनी कर सकता है? जिसको क्षण-क्षण में क्रोध आता है, विश्वास रखना-एक क्षण ऐसा आता है कि उसको स्वयं पर ही क्रोध आता है। जिस व्यक्ति को दूसरे पर कषाय आती है, कषाय करते-करते जो जीव कषाय कर रहा है, सामने वाला जीव शान्त बैठा है और आप शत्रु के प्रति भी साम्यभाव कर रहे हो, तो यथार्थ मानना एक दिन ऐसा आयेगा कि कषाय करने वाला स्वयं पर ही कषाय करेगा। कहेगा मैं कैसा पागल आदमी हूँ? कि सामने वाला कुछ कह नहीं रहा है और मैं गुस्से में ही बैठा हूँ। उसे स्वयं पर कषाय आयेगी और स्वयं पर कषाय करने के उपरान्त वह ठण्डा हो जायेगा। सोचेगा ओ हो! मैंने क्या किया? विभाव शक्ति पर इतना जोर दिया, कि स्वाभाविक शक्ति पर विचार ही नहीं किया। आत्मा के गुण कहीं बाहर से नहीं आते, परमात्मा कहीं बाहर से नहीं आता है। जैन दर्शन में तो बाहर से परमात्मा बनने वालों को पूजा ही नहीं जाता। मिट्टी पुद्गल की बनी प्रतिमा को हमारे यहाँ पूज्य स्वीकार नहीं किया जाता। ईंट चूने से कोई प्रतिमा बना ले तो क्या वह प्रतिष्ठा के योग्य है? जब सीमेन्ट से प्रतिमा बन सकती है, सीमेन्ट से आप प्रतिमा कहीं भी बनवा सकते हो, पर वह पूज्य नहीं है। जो पर से थोपा जाता है वह स्वभाव नहीं होता। जो जोड़-जोड़ कर रखता है, वह स्वभाव नहीं होता, जो तोड़कर निकाला जाता है वह स्वभाव होता है। जिन शासन में प्रतिमा बनाई नहीं जाती, जिनशासन में प्रतिमा निकाली जाती है। गोम्मटेश बाहुबली को बनाया नहीं है, निकाला गया है।

शिल्पकार व्यर्थ के उपलखण्ड को, व्यर्थ के पाषाण को बाहर निकाल कर फेंक देता है और भीतर से प्रतिमा का आकार निकल आता है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव भेद-विज्ञान की छैनी से विभाव के पत्थर को तोड़-तोड़ कर फेंक देता है और भीतर के भगवान् को प्रकट कर लेता है, यही वीतराग विज्ञान है। दो शक्तियाँ जानना चाहिये है। जो पाषाण में व्यर्थ के पाषाण खण्ड को नहीं समझता वह प्रतिमा को नहीं निकाल पायेगा। जो प्रतिमा के पाषाण के भीतर प्रतिमा को नहीं समझता वह भी प्रतिमा को नहीं निकाल पायेगा। वैभाविक शक्ति, स्वभाविक शक्ति। स्वभाव शक्ति को आच्छादित करने वाली वैभाविक शक्ति है, परन्तु वैभाविक शक्ति का काल दीर्घ नहीं है, भव्य है तो। हम अपने भीतर की सत्ता को नहीं समझ पाये, तो हमने जैन कुल में आकरके सीखा क्या? जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों के पास शक्तियाँ हैं। जीव संसार में विभाव-शक्ति के बल पर घूमता है और जब जीव सिद्ध बनता है, तो स्वभाव-शक्ति के बल पर बनता है। पुद्गल जब स्कन्ध भूत होता है, तब विभाव शक्ति होती है। पुद्गल जब परमाणु भूत होता है, तब स्वभाव-शक्ति होती है। ज्ञानियो! आपको यह स्वीकारना होगा कि चाहे जीव की स्वभाव शक्ति हो, चाहे पुद्गल की स्वभाव-शक्ति हो दोनों को प्रकट करने की शैली एक है। शैली का तात्पर्य-पद्धति, तरीका।

वजनदार पत्थर है तेरे हाथ में, तू हाथ में उठाकर फेंकेगा तो कितनी दूर जाकर गिरेगा? थोड़ी दूर और मुट्ठी बाँधकर फेंकेगा, तो दूर गिरेगा।

श्रमण, विद्वान् को अपने जीवन की अनुभूति में आगम लाना चाहिये है, आगम को अनुभवन करके श्रावक के बीच में रखना चाहिये है। जैसे संसार में कितने सारे ऐसे द्रव्य हैं जिनको मशीन में डाला जाता है, फिर मशीन से निकाला जाता है। फिर मशीन में डाला जाता है, फिर निकाला जाता है, फिर आपके सामने आता है। गेहूँ किसान के खेत में उगे थे, फिर थ्रेसर मशीन में डाले गये, फिर वहाँ से निकाले गये, तब भी खाने को नहीं मिला, फिर चक्की की मशीन में डाले गये, फिर निकाले गये, आटा बनकर आ गया। अब तू चाहे पूड़ी बना

ले, चाहे पराठा बना ले, चाहे जलेबी बना ले, चाहे रसगुल्ला बनाये जो भी तुझे बनाना हो आटा निकल चुका है। ज्ञानी सीधा शास्त्र का ज्ञान तत्त्व का निर्णय नहीं है, पहले योगियों को शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये है। ले जाओ अपनी मशीन में, फिर दाना चक्की में जाते तो दिखता है इसके बाद नहीं दिखता, फिर तो आटा ही दिखता है। ऐसे ही योगियों को, ज्ञानियों को, ग्रन्थ पढ़ते तो दिखे, परन्तु ग्रन्थ पढ़ने के बाद ग्रन्थ बनकर न दिखे, निर्ग्रन्थ की भाषा में निर्ग्रन्थ दिखे। ग्रन्थ पढ़ने के बाद, **गेहूँ डालने के बाद गेहूँ ही निकले तो चक्की किस काम की? गेहूँ डाल कर आटा निकले, वह चक्की है। ग्रन्थ पढ़कर निर्ग्रन्थ बनकर निकले इसका नाम ग्रन्थ का पढ़ना है और ग्रन्थ पढ़कर निर्ग्रन्थ नहीं बन पाया, तो जैसे चक्की में गेहूँ डाला और आटा न निकला तो चक्की का नाम बदनाम।** ग्रन्थ पढ़कर भी निर्ग्रन्थता की सिद्धि नहीं कर सका, तो तूने ग्रन्थ क्या पढ़ा? ग्रन्थ पढ़ने के लिये ग्रन्थ नहीं पढ़ना, निर्ग्रन्थ बनने के लिये ग्रन्थ पढ़ना। जब ग्रन्थ पढ़कर देह से निर्ग्रन्थ बनेगा। देह का निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि और भावों का निर्ग्रन्थ बारहवाँ गुणस्थान पूर्ण निर्ग्रन्थ दशा। बारहवाँ गुणस्थान कब प्रकट होगा? जब देह का निर्ग्रन्थ भीतर की ग्रन्थियाँ तोड़ने लगेगा। श्रावको! आपने तो यही सोच कर रखा है कपड़े उतार लो, प्रवचन करना सीख लो, हो गये मुनि महाराज। हे ज्ञानी! जब-तक भीतर की गाँठ नहीं निकल रही है, तब-तक निर्ग्रन्थपना नहीं है। जैसे मशीन में डाला गया द्रव्य पिस-पिस कर आ रहा है, परिणमन होकर आ रहा है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ जब शास्त्र स्वाध्याय करें, तो इसके उपरान्त मंथन करें। गाय खाती है, फिर वह देती है। गाय के अन्दर इतनी बड़ी मशीन है। सूखी घास खाती है और आपको दूध देती है। क्या घास में दूध है? हरी घास खाने पर दूध अधिक क्यों देती है और सूखी खाने पर अधिक क्यों नहीं देती? और भूखी गाय का दूध सूख जाता है। जन्म देने वाली माँ का भोजन भी बदल कर होता है। उनको गरिष्ठ से गरिष्ठ भोजन कराते हैं क्यों? माँ के आँचल में दुग्ध आना चाहिये, बच्चे को और बछड़े को दूध मिलना चाहिये। हरी घास देखने पर तुझे दूध नहीं दिखेगा। कोई ज्ञानी सोचे कि गाय हरी घास खाकर

दूध देती है, तो मैं भी हरी घास खाकर हष्ट, पुष्ट हो जाऊँगा। तू हरी घास दुगनी भी चर लेगा, लेकिन तू दूध नहीं बना पायेगा। हे ज्ञानी! **जिस निमित्त से जो उपादान प्रकट होता है, वही चाहिये है। गाय को घास खिलायेगा, तो ही दूध निकलेगा। बैल को घास खिलायेगा, तो दूध नहीं निकाल पायेगा। भव्य के लिये उपदेश दिया गया है, भव्य को जिनवाणी भगवान् बनायेगी अभव्य को नहीं बना पायेगी।** गाय ही दूध देगी, बैल नहीं देगा। क्या यन्त्र लगा है? घास को खाने वाली, पानी को पीने वाली गाय मल को अलग कर रही है और उसी द्रव्य से दुग्ध निकाल रही है। ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव जब तत्त्व का अध्ययन करता है, तो विषय विकारों के मल को तो दूर कर देता है और स्वानुभूति के क्षीर की धारा को प्राप्त करके भेद विज्ञान के बल से दुग्ध अर्थात् भगवान् अवस्था को प्राप्त कर लेता है। यह तत्त्व ज्ञानी का भीतर का निर्णय है। निर्णय करो। आगम को समझते-समझते, आगम को सीखते-सीखते भीतर ले जाओ, फिर प्रकट करके बताओ। ज्ञानियो! **सभी लोग तीन शब्दों पर ध्यान रखना। आगम, गुरु-उपदेश, स्वानुभव। आगम से जानो, गुरु से पहचानो, स्वानुभूति से वेदन करो।** भैया! जानने और पहचानने में अन्तर है। बालक को देखा, जान लिया, उसे परखो यानि पहचानो इसका स्वभाव कैसा है? बालक शीलवन्त है, सुशील है, व्यसनों से मुक्त है, पहचानो। जब जान लिया, पहचान लिया अब वह श्रद्धा का विषय बनेगा। रुचि, प्रतीति, अनुभूति। यदि हम गद्दी पर बाहर के विषय लेकर बैठ जायेंगे, तो आगम के गूढ़ सिद्धान्त प्रकट नहीं हो पायेंगे। ज्ञानियो! यह मत सोचना कि महाराज कठिन बोल रहे हैं, कठिन-कठिन कह कर ही आगम को लोगों से अछूता कर दिया। बिना रुचि के प्रतीति का जन्म नहीं होता। यदि कोई ज्ञानी कहे-महाराज! वह तो मेरे पिता जी ने शादी करवा दी है, मैं थोड़े ही करना चाहता था। घोड़ा पर चढ़ गया, जनमासे में पहुँच गया तब भी कह रहा है मेरी कौन इच्छा थी? पिताजी ने बिठाल दिया। यदि पिता जी ही बिठालते हैं, तो नेमिनाथ स्वामी के पिता क्यों नहीं बिठाल पाये? यदि माँ-पिता जी के नाम पर शादी होती है, तो इन बेटों से कह देना आज से झूठ बोलने का त्याग

करो। ज्ञानी! अपने पिता जी से पूछना कि बाबा की इच्छा से शादी हुई कि आपकी इच्छा से? हे ज्ञानी! जगत् के कैसे स्वार्थी लोग हैं? तीर्थंकर नेमिनाथ की शादी श्रावण के महीने में होने जा रही थी जब शादी नहीं हो सकी, तो ज्ञानियों ने उस महीने को ही बदनाम कर दिया। श्रावण के महीने में शादी नहीं करना कहीं हमारा लड़का चला गया तो क्या होगा? रुचि होगी, तभी प्रतीति होगी। जिस विषय में तुम्हारी रुचि होती है, उस विषय में तुम्हारी प्रतीति होती है। रुचि के बिना कोई विषय मिल भी जाये, तो प्रीति नहीं होती, इसलिये तत्त्वज्ञानी जीव पहले प्रीति नहीं देखता, पहले रुचि देखता है। **जिस जीव को अरहन्त के चरणों में रुचि होगी, जिसको निर्ग्रन्थ के चरणों में रुचि होगी, जिसको जिनवाणी में रुचि होगी विश्वास रखना उसी जीव को सम्यक्त्व की प्रतीति होगी।** जिस जीव को देव में देव न दिखे, गुरु में गुरु न दिखे, शास्त्र में शास्त्र न दिखे, आगम को कागज कहे, आगम की प्रतिमा को पत्थर कहे, निर्ग्रन्थ गुरुओं को मनुष्य कहे, ऐसे जीव को जब रुचि ही नहीं है, उसे सम्यक् की प्रतीति कहाँ होगा?

आप लोगों के घर बदनाम क्यों हो जाते हैं? तत्त्व में गहरे रहस्य छिपे होते हैं। प्रत्येक तत्त्व में व्यवहार-निश्चय निहित होता है। श्रावकों के घर बदनाम इसलिये होते हैं, क्योंकि आप अपनी सन्तान की रुचि की परीक्षा नहीं कर पाते हो। जब-वह बहुत आगे निकल चुके होते हैं, फिर तुम बदलने का प्रयास करते हो, फिर तुमको बदलना पड़ता है, लेकिन उन्हें नहीं बदल पाते हो। **जितने आज माता-पिता बिलख रहे हैं, अपनी ही संतान के कारण कष्ट में हैं। बेटियो! जिस कुल में अरहन्त का अभिषेक होता हो, निर्ग्रन्थ को दान दिया जाता हो ऐसे कुल को छोड़ करके, जिस घर में छुरी चलती हो ऐसे कुल में जाकर के बैठ जाना, यह कुलीन कन्या का काम नहीं है।** देश में जितने समाज के कर्णधार आगे बैठते हैं, इनको चाहिये हम मात्र माला और तिलक को ही न देखें हम भावी समाज को भी देखें। यदि भावी समाज को नहीं सम्हाल पाये, तो जिनशासन को जयवन्त करने वाला कौन रहेगा? रुचि अन्यत्र चली गयी, तब

तक तुम समझ नहीं जाये प्रतीति वहीं होगी। आपने दूसरी जगह जबरदस्ती शादी भी कर दी, तो उसको छोड़ देगी, जहाँ रुचि होगी, वहाँ पहुँच जायेगा और नाक कटेगी तुम्हारी। व्यवहार से बोल रहा हूँ। यह बातें पण्डित जी को बोलना चाहिये थी, लेकिन आप नहीं बोल पाओगे अब समय नहीं बचा आपके बोलने का। रुचि की परीक्षा करना चाहिये। माँ! आपके निमित्ति से झगड़ा होता है। आप चाहो तो प्रतिदिन महामन्त्र के मंगलाचार हों।

माँ! तू पेट भरने वाला भोजन बनाना जानती है, परन्तु रुचि उत्पन्न कराने वाला भोजन बनाना नहीं जानती। जिस माँ को रुचि और सन्तुष्टि दिलाने वाला भोजन नहीं बनता है, उनके बेटे ढाबे पर खड़े मिलते हैं। यह अनुमान प्रमाण से कहता हूँ, अनुमान परोक्ष प्रमाण है स्मृति, प्रत्याभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पाँच परोक्ष प्रमाण हैं। हे ज्ञानी! यदि तेरा बेटा ढाबे पर खड़ा मिलता है, तो अनुमान ज्ञान से जाना जाता है कि इसकी माँ से स्वादिष्ट भोजन बनाते नहीं बनता है।

जब रुचिकर भोजन नहीं बनता, तो इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है। शान्ति नहीं मिलती है। तो पेट तो भर गया, लेकिन भोजन उत्साह शक्ति को जन्म नहीं दे पाया, फिर उस घर में क्लेश होता है। ज्ञानी! क्लेश का परिणाम यह होता है, कि तुम दोनों भिन्न-भिन्न हो जाते हो।

यह सत्य घटना है। एक ज्योतिषी ने सम्राट से बोल दिया राजन्! आपका शत्रु कालिया नाग हो गया है, वह अमुक तारीख को आकर आपको डँसेगा। नाग आदि की स्मृति बहुत तेज होती है तुम कहीं भी होगे वह आकर काट लेगा। वह कालिया नाग नियत काल में चला सम्राट का डँसने के लिये। सम्राट ने उस कालियानाग के आने की ऊबड़-खाबड़ भूमि को समतल करवा दिया। प्रत्येक स्थल पर मिश्री घोलकर दुग्ध के कटोरे रख दिये। व्यक्ति गुस्से में भोजन नहीं करता। क्षुधातुर होता है, तो और गुस्सा सताती है। उसने आगे देखा दूध का कटोरा रखा है, दूध पिया शान्ति से। **जब किसी को गुस्सा आ रही हो तो कहना तुझे लड़ना हो तो लड़ लेना, तू पहले मेरे घर चलकर भोजन कर ले। ठण्डा**

पानी पिला देना, भोजन करा देना थोड़ी तो शान्ति मिलेगी। राजा सिंहासन पर बैठा था उसे विदित था कि मुझे कालिया नाग डँसने वाला है। जब नाग ने चलते-चलते इतनी जगह मिश्री दूध पिया तो उसका जहर भी घुल गया वह आकर के सम्राट की तीन परिक्रमा लगाता है और सिर टेक करके वापस चला जाता है।

ज्ञानी! कषाय से कषाय भड़कती है, मधुरता से माधुर्य गुण की वृद्धि होती है। डँसने आया था परिक्रमा लगा कर चला गया। कोई तुम्हें डँसने आये उसे ऊँगली मत दिखाना उसको मधुर शीतल पानी पिला देना। तब भी नहीं माने तो जिनवाणी से बड़ी जगत् में कोई शीतलता होती नहीं है, कालिया नाग तो दूध मिश्री से सन्तुष्ट हो गया। गौतम स्वामी से पूछो वे महावीर के शिष्य बनने नहीं गये थे, महावीर के गुरु बनने गये थे। उनने अरहन्त की वाणी के क्षीर का पान किया। उनको देखते ही गौतम के मिथ्यात्व का जहर निकल गया और गुरु बनने गया था शिष्य बनकर बैठ गया। यह जिनवाणी की महिमा थी, अरहन्त वचनों की महिमा थी। स्वभाव शक्ति और विभाव शक्ति की व्याख्या पर ध्यान दो। कच्चे माल से रासायनिक क्रिया द्वारा पक्का माल बनाया जाता है। स्वभाव शक्ति और विभाव शक्ति दोनों एक ही द्रव्य में हैं, एक ही समय में हैं। एक व्यक्त है, एक अव्यक्त है।

शुद्धय्शुद्धीपुनः शक्ति ते पाक्यापाक्यशक्तिवत्।
साद्यनादीतयो व्यक्ती स्वभावोऽतर्क गोचरः॥ 100 आ.मी.॥

पक्व शक्ति अपक्व शक्ति, ठुर्रा मूँग जो कभी पकती नहीं है उसमें अपक्व शक्ति बैठी हुई है। दूसरी मूँग को जरा-सा उबाला और वह पक जाती है। ऐसे ही भव्य जीव को अल्पश्रुत के ज्ञान से भी मिथ्यात्व का विगलन हो जाता है, तुरन्त पसीज जाता है, परन्तु अभव्य जीव ठुर्रा मूँग की भाँति है उसे कितना ही समझाओ कितना ही सिखाओ वह समझने वाला नहीं है। स्वभाव शक्ति, विभाव शक्ति इन दोनों शक्तिओं से, छैनी के माध्यम से पाषाण से प्रतिमा निकाली, पुद्गल की शुद्ध शक्ति व जीव की शुद्ध शक्ति दोनों को प्रकट करने की शैलियाँ एक

सी हैं। कहीं भी घूम कर आओ, परन्तु मूल विषय पर रहना, मूल विषय को भूल मत जाना 'जो है सो है।' आचार्य उमास्वामी कह रहे हैं 'भेदादणुः' भेद करने से अणु उत्पन्न होता है। स्कन्ध के इतने विभाग करो कि—पुनः दूसरा विभाग न हो सके उसका नाम परमाणु है अविभागी। परमाणु स्कन्ध से ही उत्पन्न हुआ है, लेकिन स्कन्ध एक समय में चौदह राजू कभी भी गमन नहीं करता, परन्तु परमाणु रूप में एक समय में चौदह राजू गमन करता है। यह पुद्गल की स्वभाव शक्ति है। जैसे भेद करने से परमाणु उत्पन्न हुआ है वैसे ही आत्मा और कर्म का पृथकीकरण है जब आत्मा कर्म से पृथक हो जाती है, तो आत्मा एक समय में सात राजू गमन करती है। परमाणु एक समय में चौदह राजू गमन करने के उपरान्त पुनः नीचे आ सकता है, लेकिन जीव द्रव्य एक बार शुद्ध होकर सात राजू चढ़ गया अब पुनः कभी आने वाला नहीं है। तुम भजन नहीं गा पाओगे 'कभी महावीर बनकर कभी पारसनाथ बनके चले आना' हमारे भगवान् आने वाले नहीं हैं। तर्क बुद्धि लगाना चाहिये कि कहाँ पर क्या कहना है। **प्रतीति, प्रतीति के पहले रुचि। ऐसे ही जिस जीव की विषयों में रुचि चली जाये, तो नारियों में प्रीति उत्पन्न होती है। नारी की विषयों में रुचि चली जाये, तो नरों में प्रीति होती है। विषम लिङ्ग में प्रीति हो रही है, इसका मतलब है कि तुम्हारी प्रीति विषयों में है। यह है रासायनिक क्रिया।** बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च' तत्त्वार्थ सूत्र का पाँचवा अध्याय शुद्ध रसायन शास्त्र है। जैसे मशीन पका करके शुद्ध वस्तु देती है, वैसे ही निर्ग्रन्थ-तपोधन भीतर से तत्त्व निर्णय करके उपदेश दें, तो विश्वास रखना आज सारा विश्व कहेगा कि विश्व धर्म कहलाने की सामर्थ्य जैन धर्म में है। विश्व के तत्त्व की विवेचनायें जगत् में कहीं मिलती नहीं हैं। कोई धागे से लटका हुआ है, कोई पत्थर पूज रहा है, कोई वृक्षों को पूज रहा है, लेकिन **'वत्थुसहावो धम्मो'** कहने वाला वीतराग दिगम्बर जैन धर्म है। कहाँ उलझे हो? मुझे विश्वास है यह वीतराग वैज्ञानिक की मुद्रा दिगम्बर मुद्रा है। इसको प्राप्त करके यदि योगी प्रपञ्च में जा रहा है, तो बहुत बड़ी विद्या की अनुभूति से शून्य हो रहा है। जिसमें शक्ति-अंश अधिक

होते हैं वह हीन शक्ति-अंश को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यदि वैराग्य के शक्त्यांश अधिक हैं, तो अनेक रागियों को अपनी ओर आकर्षित कर लोगे और राग के शक्त्यांश अधिक हैं, तो वैरागी राग में डूब जायेगा। तपोधनों को वहाँ बैठना चाहिये जहाँ वीतराग भाव के शक्त्यांशों की वृद्धि हो। त्यागियों को रागियों से दूरी बना कर रखना चाहिये। कहीं इनके विषय कषायों के शक्त्यांश से तू प्रभावित हो गया, तो तेरा त्यागमय धर्म नाश को प्राप्त हो जायेगा। जैन-दर्शन की इस विद्या को सारा विश्व स्वीकार करता है। यह रासायनिक तत्त्व है। दुग्ध से भरी टंकी में नीबू की एक बूँद मात्र, यहाँ वस्तु की बहुलता से नहीं घनत्व से ग्रहण करना। शक्ति घनत्व में अधिक होती है। नीबू के एक बूँद के गिरते ही क्या होगा? ऐसे ही **हे श्रावको! तुम्हारे सदाचार, सम्यक्त्वाचार, सम्यक्त्व परिणति के जो परिणाम हैं ये दुग्ध की भाँति हैं, इनको सम्हाल कर रखो कहीं मिथ्यात्व की एक बूँद भी पड़ गई, तो श्रद्धा रूपी दूध क्षार-क्षार हो जायेगा,** इसलिये ऐसे शब्दों को मत सुनना, ऐसी जगह मत जाना, ऐसे सम्पर्क मत करना जहाँ श्रद्धा का दुग्ध नष्ट होता हो। कोटि-कोटि मोती क्यों न लुटें, हजारों-हजारों लोग तेरे क्यों न बने? लेकिन धीरे से कह देना भैया! मैंने कोटि-कोटि भवों में साधना की थी सो पंचम काल में आकर तनक सी झलक मिली थी कि देव शास्त्र-गुरु की सत्यता सत् है। मैं उससे ही अपने आप को दूर कर बैठा तो पंचम काल में और कहीं शान्ति का उपाय झलकता ही नहीं है, क्योंकि साक्षात् अरहन्त दिखाई दे नहीं रहे हैं, सिद्ध को कोई देख नहीं पाया। अरहन्त की वाणी मूक है, गुरु वर्तमान में तुम्हारे सामने हैं।

ज्ञानी! तू इन सबसे ही दूर हो गया तो अब तुझे शान्ति का स्थान कहाँ मिलेगा? गुरु को चाहिये है कि हम इतने सम्हल कर रहें कि किसी को मेरे निमित्तसे वीतराग धर्म में अश्रद्धा उत्पन्न न हो जाये। घर की दीवाल पर कबूतर बैठा है, तोता, बन्दर या श्वान बैठा हो, उनको पशु मान करके उनके सामने मनमानी क्रिया मत करना। गिद्ध पक्षी आहार देख करके सम्यक्त्व को प्राप्त हो रहा था। बन्दर, सिंह, नेवला, सुअर आहार देख करके सम्यक्त्व को प्राप्त हो रहे थे, वे भी संज्ञी पंचेन्द्रिय

जीव हैं। तुम्हारी खोटी वृत्ति देखकर के उनकी श्रद्धा भी टूट जायेगी और सम्यक्त्व को प्राप्त होने वाले मिथ्यात्व में चले जायेंगे। तेरे निमित्त से उनके सम्यक्त्व का घात हुआ है, तेरे लिए तीव्र पाप का बन्ध होगा। माता-पिता को चाहिये है कि छोटे बच्चों के सामने ऐसा कोई अशुभ कृत्य न करें कि उनकी दृष्टि पटल पर वह जाये। तुम समझ रहे हो ये बच्चे हैं, तुम्हें मालूम होना चाहिये तुम 'अ' कब सीखे थे! साठ वर्ष के थे कि आठ वर्ष के थे? चार वर्ष की उम्र में सीखा गया 'अ' आज भी याद है। उस 'अ' के माध्यम से आज बड़े-बड़े शास्त्र पढ़ लेता है। हे माँ! अब सोचो बच्चे की स्मृति कितनी तेज थी। तुम्हारे जीवन की शुभ-अशुभ परिणतियाँ हैं, छह महीने का बालक सब कुछ पहचानने लगता है आप समझो उसने कितना सीख लिया होगा? बेटा-बेटियों के शिशु होने पर मात्र उनके सामने शुभ क्रिया ही दिखनी चाहिये है। आप लोगों का परस्पर का झगड़ा भी बच्चों के सामने नहीं होना चाहिये है। जो माता-पिता बच्चों के सामने लड़ते हैं, वे क्रूर नारकी लोग हैं। उन बच्चों से पूछना वे कहते हैं, मैं इन नारकियों के घर में कहाँ से आ गया? मैं नहीं बोल रहा मैं तो किसी को गलत बोलता ही नहीं हूँ। गोम्मटसार जीवकाण्ड में लिखा हुआ है-'ना रति इति नारकी' जो कभी प्रीति को प्राप्त न हों वे नारकी होते हैं। भैया! हाथ की चक्की का डण्डा छोड़ भी दो तब भी दो चार चक्कर तो लगा ही लेती है। ऐसे ही झगड़े उन्हीं के घरों में होते हैं जो नरक से निकल कर आते हैं। उन्हें लड़ने के संस्कार होते हैं, इसलिये यहाँ पर लड़ते हैं। ज्ञानियो! इसलिये मैं कहता हूँ, जलने के पहले जलना छोड़ो। जिसके घर में किल-किल सुनाई दे, झगड़े हों उनके घरों में लिख देना 'नरक-भवन' और जहाँ णमोकार का पाठ होते दिखे वहाँ लिख देना 'देव-भवन', परन्तु पहले अपने घर की रक्षा करना। सभी नरक से नहीं आये फिर भी लड़ते हैं। आपको मालूम होना चाहिये आगरा में छावनी है, वहाँ सैनिक रहते हैं चाहे युद्ध हो या ना हो पीठ पर वजन लादे दौड़ते रहते हैं। जिनको भर्ती होना पड़ता है, उनको भी तो मेहनत करनी पड़ती है। कुछ लोग नरक से निकल कर आये हैं, कुछ लोग जाने वाले हैं उसका अभ्यास कर रहे हैं। मित्रो! आज से

ही घरों में लड़ाई-झगड़ा बन्द कर देना। छोटी सी जिन्दगी है आनन्द के साथ जिओ, झगड़ने में क्या रखा है? कुछ नहीं रखा। कषायों से प्रीति हटाओ, आत्मा से लगाओ।

यहाँ आचार्य महाराज कह रहे हैं कि संसार में विषयों की रुचि ही सबसे बड़ा अनर्थ करने वाली है।

चित्त को मलिन करने वाला कोई है, सद्गति का नाश करने वाला कोई है और समीचीन व्रतों को ध्वंस करने वाला कोई है, अनर्थ की परम्परा में ले जाने वाला कोई है, तो उसका नाम विषय-कषाय, काम-वासना है। कई दिनों की साधना एक दिन में विलीन हो जाती है। कई भवों की साधना एक दिन में नष्ट हो जाती है दोषों का खान, गुणों का विनाश करने वाला और पाप का निजी बन्धु काम वासना है। पापों का संगम कराने वाली विषय-वासना है। ज्ञानियो! पापों के संगम से आत्मा की रक्षा करो और निज की रुचि तत्त्व में लगाओ जिससे प्रीति आत्मा में चली जाये।

''**आत्म स्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

संसार परिभ्रमण का कारण काम वासना

पिशाचेनैव कामेन, छिद्रितं सकलं जगत्।
बंभ्रमेति परायत्तं, भवाब्धौ स निरन्तरम्॥ 105 सा.स.॥

अन्वयार्थ—पिशाचेन इव = भूत पिशाच के समान, **कामेन** = काम भाव ने, **सकलं जगत्** = सर्व जगत् के प्राणियों को, **छिद्रितं** = दोषी बनादिया है **सः** = वह जीव, **परायत्तं** = काम के आधीन होकर, **भवाब्धौ** = संसार रूपी सागर में **निरन्तरं** = सदा, **बंभ्रमेति** = भ्रमण किया करता है।

भावार्थ—भूत पिशाच के समान इस काम ने सारे जगत् के प्राणियों को छिद्रित (दोषी) बना दिया है। काम के अधीन होकर यह जीव संसार-समुद्र में निरन्तर परिभ्रमण करता रहता है।

कामनिवारण मन्त्र

वैराग्य-भावना-मंत्रैस्तन्निवार्य महाबलं।
स्वच्छन्दवृत्तयो धीराः सिद्धिसौख्यं प्रपेदिरे॥ 106 सा. स.॥

अन्वयार्थ—स्वच्छन्द वृत्तयः = स्वतन्त्र आचरण रखने वाले और काम के वश न होने वाले, **धीराः** = धैर्यवान मानव, **वैराग्य भावनामंत्रैः** = वैराग्य भावना रूपी मन्त्रों से, **तत्महाबलं** = उस काम के महाबल को, **निवार्य** = दूर करके, **सिद्धि सौख्यं** = मोक्ष के आनन्द को, **प्रपेदिरे** = पा चुके हैं।

भावार्थ—स्वतन्त्र आचरण रखने वाले अर्थात् काम के वशीभूत न होने वाले धीर-वीर पुरुष वैराग्य भावना रूपी मन्त्रों से उस काम रूपी महाबल को दूर कर मोक्ष सुख प्राप्त कर चुके हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में वैभाविक दशा से जीव स्वभाविक दशा में कैसे उन्मुख हों यह सहज व्याख्यान कर रहे हैं। लोक में शत्रु का अन्वेषण करने वाले लोग अनेक मिले। आँख से देखने

पर बाहर के शत्रु दृष्टि गोचर होंगे और आत्मा से देखने पर भीतर के शत्रु दृष्टि गोचर होंगे। जो शत्रु बाहर में दिखाई दे रहा है, वो यथार्थ में भीतर के शत्रु का फल है। बाहर के शत्रु का घात करने की अपेक्षा यदि भीतर के शत्रु को ही निकाल देता है, तो तुझे कभी अस्त्र उठाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कभी किसी के प्रति अशुभ करने का परिणाम नहीं करना पड़ेगा। बड़ी गम्भीरता से समझने की आवश्यकता है, जो-जो बाहर शत्रु स्वीकारते हैं उनके भीतर शत्रु है। लंकेश, लक्ष्मण तुम्हारे शत्रु नहीं, श्री राम से तेरा परिचय ही नहीं था तेरा तो परिचय काम से था। तुमने जितने अपरिचितों से सम्बन्ध बनाये हैं, वे परिचित के कारण बनाना पड़े हैं। जितने अपरिचितों से तुम हाथ मिला रहे हो वह अनादि की वासना के कारण किया है। अपरिचितों से हाथ जोड़ रहा है। अपरिचितों के पैर पड़ रहा है किसके कारण? जो कभी तेरे सामने नहीं आया उसे तू अपना कहता है। महाराज! ये मेरा बेटा है। जिसे तू अपना कह रहा है, उससे कब से परिचित था? उससे तू अनादि से परिचित नहीं था, लेकिन जिसके कारण पुत्र कहना पड़ रहा है, उससे तू अनादि से परिचित था।

मुमुक्षु! जिसे तू शत्रु कह रहा है, वह तेरा शत्रु कब से है? शत्रु तो अभी-अभी बना है, पर जिसके कारण शत्रु बना है, वह शत्रु अनादि से परिचित है। जो समय में एक हो जाये, वह सामायिक है। जो आत्मा में एकीभूत है, उसका नाम सामायिक। समय यानि आगम जो समय में एकाग्र हो जाये उसका नाम सामायिक है। करो सामायिक सीधे बैठ जाओ। लोग सामायिक को ही भूल गये, यदि जीवन में एक बार भी सामायिक आ गई होती, जीवन में एक बार भी सामायिक कर ली होती चाहे श्रावक बन कर की होती, चाहे मुनि बन कर की होती तो जगत् में मुझे कोई शत्रु नजर नहीं आता। सामायिक नहीं की, माला फेर ली है। जिसमें मन दुनियाँ में भटके और हाथ में फिरे उसका नाम माला। जिसमें मन शान्त हो जाये, निज में मगन हो जाये, उसका नाम सामायिक। करो सामायिक—

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभ-भावना।
आर्त्तरौद्र परित्याग, स्तद्धि सामायिकं मतं॥ प्रतिक्रमण॥

समता का नाम सामायिक है 'समता सर्वभूतेषु' जगत् में जितने प्राणी हैं सबके प्रति साम्य-भाव है इसका नाम सामायिक है। आर्त-रौद्र परिणामों का त्याग जब सहज हो जाये उसका नाम सामायिक है। वे पुण्यात्मा जीव हैं, जो बिना किसी के प्रेरित किये बिना स्वयं में, निज को निज में लगाये हैं, उसका नाम सामायिक है। परम सुकृत का उदय है। जब पाँच इन्द्रिय के किसी विषय में तेरा सहज मन न जाये, यह परम पुण्य का उदय है। कौन क्या कर रहा है? कौन क्या कह रहा है? मन में किञ्चित् भी विकल्प न आये यह पुण्यात्मा जीव की प्रथम पहचान है। भैया! सम्हल कर सुनना। चाहे कोई असिधार का प्रहार कर दे, चाहे पुष्पों की माला छोड़े या फिर यूँ कहे-'जो है सो है'। न माला मेरी है, न तलवार मेरी है, मेरा तो मात्र चैतन्य द्रव्य है। चाहे कोष में रखी तलवार दिखाओ, चाहे मुख कोष में रखी जिह्वा तलवार को हिलाओ। माताओ! ध्यान दो चाहे तुम तलवार घुमाओ, चाहे मुख में रखी जिह्वा को तलवार बनाओ, परन्तु तत्त्वज्ञानी को तेरे प्रहार से कुछ भी हार होने वाली नहीं। जो तत्त्वज्ञान में लीन है वह कहता है, जो म्यान की तलवार है वह पर के हाथ में है, मेरे हाथ में नहीं है, उसका हाथ है चाहे हिलाये चाहे रख ले। जो जीव मुख की तलवार बनाकर हिला रहा है। वह भी मेरे से दूर है उसके मुख में है, मेरे मुख में नहीं है। उसका परिणमन उसमें है, मेरा उसमें क्या बिगाड़? जब-तक ऐसी समता नहीं आ रही है, तब-तक सामायिक का जन्म नहीं हुआ। जब-तक हृदय में सामायिक का जन्म नहीं हुआ तब-तक मोक्षमार्ग प्रारम्भ हुआ ही नहीं। जीवन में एक बार सामायिक कर लो। चाहे यमुना के तट पर बैठ कर करो, चाहे चम्बल के तट पर बैठ कर करो, चाहे गंगा के तट पर बैठकर करो। जब-तक 'वाग्गङ्गा' वीतराग की गंगा नहीं मिल रही है, तब तक नदियों के तट पर बैठकर सामायिक होने वाली नहीं है। चाहे पर्वत के शिखर पर बैठने पहुँच जाओ, चाहे तीर्थों की भूमि पर पहुँच जाओ, परन्तु चैतन्य तीर्थ पर लक्ष्य नहीं है, तो जगत् का कोई तीर्थ तेरे लिये तीर्थभूत नहीं है। जिसकी श्मशान घाट पर सामायिक हो चुकी है, उसके लिये श्मशान घाट ही तीर्थ है। इसलिये विकल्प करने का नहीं। यहाँ तत्त्व सुन रहे हो आप

सुनने के लिये नहीं आये हो, लीन होने के लिये आये हो। जिन विषयों से अनादि से परिचित हो उन विषयों की अनुभूति सभा में आये, जिनवाणी का आनन्द क्या है? जिन विषयों का तूने कभी वेदन नहीं किया उसकी अनुभूति करके यहाँ से उठो, तो समझ में आये कि हाँ मैंने अन्तर्मन की देशना को सुना है। एक दिन की सामायिक मेरे मित्रो! यदि आपकी एक दिन की भी सच्ची सामायिक हो गई, तो सामायिक में क्या बोल रहे थे? 'समता सर्व भूतेषु' जगत् में जितने प्राणी हैं उन सबके प्रति तेरा साम्यभाव है, तो क्या तेरी पत्नि जगत् के प्राणियों में नहीं है? कालिया नाग, अजगर, जगत् के भूतों में नहीं है क्या? उन जीवों की पर्याय की प्रत्यासत्ति के कारण, उनमें क्रूरता भरी हो, लेकिन उनकी क्रूरता को देखकरके आप अपनी साम्यता का नाश नहीं कर देना। दो कलश हैं एक में आपने पुष्प का सत् (सेन्ट) भर कर रखा है और एक में मल भर कर रखा है। किस कलश से कैसी गंध आयेगी? जिस कलश में जो भरा है उससे वह गंध आयेगी। एक सुगन्ध दे रहा है, एक दुर्गन्ध दे रहा है। इसमें कलश का क्या दोष है? जो भरा गया है, वही तो दे रहा है।

हे पुरुष! तेरा मुख कलश का मुख है, भरा कलश में पेट है। सुगन्ध-दुर्गन्ध मुख से आती है। ऐसे ही जिनवाणी तेरे हृदय में भरी होगी तो वही तेरे मुख से निकलेगी और तेरे हृदय में मल वाणी भरी होगी तो वह निकलेगी। निकलेगा वही जो भरा है, इसमें जगत् का क्या दोष है। भरने वाला तू है और निकालने वाला तू है। क्या करुँ जिसकी जैसी प्रकृति।

किसान के एक ही खेत में एक नीम का वृक्ष खड़ा हुआ है एक गन्ना लगा हुआ है। इसमें खेत का क्या दोष है? जिसकी जैसी प्रकृति है। एक बड़वा रस दे रहा है, एक मीठा रस दे रहा है इसमें खेत का क्या दोष है? जिस बीज की जैसी प्रकृति थी उसका फल वैसा दिखाई दे रहा है। यह धर्मध्यान की खेती है, इस धर्म की भूमि में बैठकर भी तू अपने को गन्ना नहीं बना पाया, यह भूमि का दोष नहीं, यह तेरे बीज का दोष है। नीम की निबोड़ी कड़वी नीम को ही पैदा कर पायेगी, आम की गुठली मधुर आम को ही फलित करेगी। भूमि वही

है, इसी आगरा की भूमि में दौलतराम जैसे विद्वान् हो गये, इसी आगरा की भूमि पर पता नहीं कितने रागी भोगी होकर चले गये? भूमि का क्या दोष है? इसी (उ.प्र.) में चौबीस तीर्थंकर जैसी कई चौबीसियाँ हो गईं, इसी प्रान्त में पता नहीं कितने खूँखार डाकू भी होकर चले गये। इसमें भूमि का क्या दोष है? जैसी प्रकृति है, वैसा परिणमन होता है। एक बेटा साधु बन गया, एक बेटा डाकू बन गया, भूमि का क्या दोष है निज का परिणमन निज के भावों का, निज के पुण्य-पाप का परिणमन है। जिस दिन तुम्हारा विपाक-विचय-धर्म ध्यान प्रारम्भ हो जायेगा, उस दिन सम्यक् सामायिक प्रारम्भ हो जायेगी। विपाक विचय धर्म-ध्यान होना चाहिये है। गरीबी के दिन देखने को मिल रहे हैं, अमीरों को देखकर तुम कलुषित भाव कर रहे हो, धनपतियों को देखकर तुम अशुभ भाव कर रहे हो।

अशुभ भाव करके घर का गरीब, तू धर्म से भी गरीब है। जीवन में ध्यान रखना जो धन क्षीण है, व्यवहारिक बात कर रहा हूँ। अब पूछने की क्या आवश्यकता है, पुण्य क्षीण है, और पुण्य क्षीण है, धन क्षीणतायें। तू कितना अच्छा काम कर सकता था! ज्यादा पैसा नहीं था, ज्यादा भवन नहीं थे, ज्यादा दुकानें महल नहीं थे तब तेरे पास समय था कि नहीं? था। तू चाहता तो जिनालय में बैठ करके अर्हन्त की पूजा आराधना में लग जाता यानि कितने पुण्य का संचय कर लेता। ओ हो! उस अभागे का पुण्य क्षीण है, तो धन क्षीण है। धन क्षीण है, सो बुद्धि भी क्षीण है, इसीलिये तो सोच रहा है वह ज्ञानी इतने ऊँचे कैसे चला गया। एक अक्षर तो पढ़ा नहीं है, दुनियाँ को पढ़ा रहा है। जिसके पास कुछ भी ज्ञान नहीं था उसके पीछे अनेक ज्ञानी घूम रहे हैं। ऐसा सोचने की अपेक्षा से कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं हे जीव! मल विसर्जन करने जायेगा तो व्यक्ति को शौचना पड़ता है, शुद्धि करनी पड़ती है पानी बाहर का लाना पड़ता है तेरे भीतर जो विकारों का मल भरता रहता है उसके लिये जगत् का बाहर का पानी नहीं लाना है, तू अपनी सोच को शौच कर दे। ज्ञानियो! शरीर को साफ करना सरल है, कपड़ों को साफ करना सरल है, परन्तु अपनी सोच को शौच करना

बहुत कठिन है, जबकि तेरा ही है। सोच को शौच कर दो, बस कहीं नहीं जाना पड़ेगा। विश्वास रखना तुझे किसी तीर्थ में नहीं जाना पड़ेगा, किसी पर्वत पर आरोहण नहीं करना पड़ेगा, किसी मन्दिर की देहरी पर भी नहीं चढ़ना पड़ेगा। जिस दिन तेरा सोच शौच हो जायेगा, उस दिन तेरे नाम का ही मन्दिर बन जायेगा, तेरा नाम ही तीर्थ बन जायेगा। जिन शासन ने तीर्थ नहीं बनाये, जिन शासन में जिनने सोच को शौच किया है उनके नाम के तीर्थ खड़े हो गये। हे भगवान्! आप जयवन्त हों, आप कभी मन्दिर नहीं गये, तीर्थंकर कभी मन्दिर नहीं जाते, लेकिन आप ऐसा नहीं करना आप तीर्थंकर नहीं हो। आपको मन्दिर जाना पड़ेगा। चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र आदि महापुरुषों को कोई सूतक-पातक नहीं लगता। इसका मतलब यह नहीं है कि तुझे भी सूतक-पातक न न लगे। तू चक्रवर्ती नहीं है, नारायण नहीं है, बलभद्र नहीं है, महापुरुष नहीं हो। चक्रवर्ती के छियानवें हजार रानियाँ होती हैं रोज कोई न कोई पुत्र जन्म लेता होगा, कोई न कोई मरण को प्राप्त होता होगा, वे ऐसे रोयें या मुस्कुरायें तो विचारे का जीवन बरबाद हो जायेगा। महापुरुष हर्ष-विषाद नहीं करता जिनके लेश्या स्थान विशुद्ध होते हैं, उनको हर्ष विषाद भी न्यून होता है। जिनके पुण्य क्षीण होते हैं, बुद्धियाँ मन्द होती हैं उनको हर्ष विषाद अधिक होता है। जिसके हर्ष-विषाद अधिक होता है, उनके ही हृदय घात होता है। जो मध्यस्थ भाव में जीते हैं, शुभ लेश्याओं में जीते हैं, उनके जीवन में न अति हर्ष होता है, न अति विषाद होता है, वे तो वस्तु व्यवस्था को देखते हैं। अरे! बेटे ने जन्म ले लिया तो कौन-सी बड़ी बात हो गई? मनुष्य आयु का बन्ध करके आया था नियत काल में जन्म ले लिया अब क्या है ऐसा तो होना ही था और पिता जी की मृत्यु हो गई रोने का क्या विषय है? पका हुआ फल तो झरता ही है कोई आश्चर्य है क्या? कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार जी में लिखा 'पक्के फलम्हि पडिए' फल के पकते ही पतन हो जाता है खाना हो तो खालो, उठाना हो तो उठा लो नहीं तो नियम है वह कुछ दिन के बाद सड़ भी जायेगा। बस ऐसे ही यह देह है, जितना आयु कर्म

मिला है जीना हो सो जी लो चाहे उस फल को उठा कर भगवान् की पूजा कर लो, चाहे फल को उठाकर मुख में रख लो, चाहे पड़ा रहने दो। पूजा कर लोगे, तो पुण्य मिलेगा, पेट में रख लो तो भोग हो जायेगा, पाप का आस्रव होगा, पड़ा रहेगा तो सड़ ही जायेगा। ऐसे ही देह तुम्हारी है चाहे इसका उपभोग कर लो, चाहे साधना में लगाओ, लेकिन उसको सड़ना नियम है कोई बचाने वाला नहीं है। तीर्थंकर भी क्यों न आ जायें, परन्तु किसी के शरीर को सुरक्षित करने वाले नहीं हैं, तीर्थंकर भी क्यों न आ जायें, परन्तु किसी के शरीर को सुरक्षित करने वाले नहीं हैं। महाराज! मृत्युञ्जय विधान करुँगा तब तो बच जाऊँगा? उस मृत्युञ्जय विधान में जिनकी आराधना की गई है वे ही नहीं बचे तो मुझे क्या बचाने आयेंगे? तुम पागल हो, मैं तो धीरे से पूछ लेता तुम्हारे पिता के पिता के पिता के पिता हैं क्या? नहीं। तू मेरे घर में मृत्युञ्जय विधान कराने आया है, जब तेरे पिता के पिता के पिता के पिता नहीं बचे, तो तू मुझे क्या बचा पायेगा? भगवान् की भक्ति कर्म क्षय के लिये करो, मरने से बचने के लिये मत करो मरण तो मेरा मित्र है जीवन में कितना जिओगे कब जाओगे? मृत्यु तुमको नया शरीर देती है, मृत्यु तेरा मित्र है। कितने वृद्ध दादा यहाँ बैठे हुये हैं। चलते नहीं बनता कितना कष्ट है? मृत्यु मित्र है वह कहती है ज्ञानी! तू चिन्ता मत कर मैं आऊँगी और तुझे नया शरीर दिलाऊँगी। सारे वृद्ध आज से टेंसन फ्री हो जाना, नहीं तो सोचो कहीं मैं मर न जाऊँ। तुम तो यह सोचना कि हे मृत्यु! तू तो मेरा मित्र है। मैं अच्छा काम करुँगा, तो अच्छी पर्याय को प्राप्त करुँगा, बुरा काम करुँगा तो नरक पर्याय प्राप्त करुँगा और अच्छा बुरा दोनों से रहित हो जाऊँगा तो शरीर से ही रहित हो जाऊँगा। मृत्यु मेरा मित्र है। कोई भी मरने से कभी मत घबराना। लोक में लोग मरने पर रोते हैं, जैन दर्शन में मृत्यु-महोत्सव मनाया जाता है, उसका नाम समाधिमरण है। वह समाधिमरण होगा कब? जब सामायिक करेगा। सामायिक कब कर पायेगा? जब वासनाओं से दूर हो जायेगा।

शत्रु मेरा कौन?

जीवन भर इस चेहरेपर तनाव की झुर्रियाँ न लाना हो, बन्दर जैसा मुख न बनाना हो, भालू जैसे चेहरे न बनाना हो, तो बस इतना चिन्तवन कर लेना। 'समता सर्व भूतेषु'

आज जैसे ही घर जाओ और पत्नि बहू की शिकायत करने लग जाये, तो सबसे पहले तू पत्नि के ही पैर पड़ लेना। जैसे ही बहू की शिकायत करे तो तू अपनी देवी के ही पैर छू लेना धन्य हो तेरा द्रव्य, तू पर की शिकायत के लिये ही उत्पन्न हुआ है क्या? तू सामायिक करने बैठ जा फिर में बहू की शिकायत सुन लूँगा तेरे से। क्या हो गया? **'समता सर्व भूतेषु'** सभी प्राणियों में साम्य भाव करना सीख लो। मुमुक्षु! एक मास के उपवास करना सरल है, पर्वत की चोटियों पर उतरना-चढ़ना सरल है, कोटि-कोटि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा विधान करना भी सरल है, क्योंकि इनमें अपना कुछ नहीं लगता। आपको यह उल्टी-उल्टी व्याख्या लग रही है, परन्तु यह है तो सीधी-सीधी, लेकिन आपने उल्टी कर ली है। यज्ञ, विधान, पूजा-प्रतिष्ठा आदि में तेरा कुछ नहीं लगता। वह तो पुण्य की कमाई पुण्य में लगती है, तेरा क्या लगा? तेरे भीतर बैठी कामना, वासना हटाओ इसमें तेरा लगेगा, पर की वस्तु पर में लगा देना इसमें तूने कौन-सा बड़ा काम किया है? नाम और कमा लिया, तेरा क्या गया? मेरे भीतर जो अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, जो संक्लेश परिणाम होते हैं उनको हटाने का पुरुषार्थ करो तब समझ में आता कि मैंने कुछ किया है। पण्डित जी आपने जीवन भर जितना कमाया हो, यदि तू पूरा मन्दिर को भी देकर चला गया, तो भी मैं तेरी प्रशंसा नहीं करुँगा। लाखों-करोड़ों दान दे जाओ तब भी मैं तेरी प्रशंसा नहीं करुँगा। जब तुझे कोई गाली दे जाये, तू पीछे मुड़कर भी उसे न देखे तब तू प्रशंसा का पात्र है। गाली देने वाले को भी कहना भटकता भगवान् है।

जब मारीची ऋषभदेव के समोशरण से भाग सकता है और कहता है मैं भी भगवान् हूँ ऋषभदेव क्या हो सकते हैं? तब तीर्थंकर के समवशरण से भागने वाला जीव, भविष्य का भगवान् महावीर बन गया, वर्तमान में उनका शासन चल रहा है। एक बात ध्यान रखना, राजा श्रेणिक की बात हर पिता को ध्यान रखना चाहिये। जब स्वयं के पुत्र कुणिक ने कैद खाने में डाल दिया। सम्राट, श्रेणिक

था कुणिक नहीं था। पिता सम्राट था, जिसका साम्राज पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो, बिम्बसार ऐतिहासिक पुरुष है। इतना बड़ा सम्राट हो एक आदेश की आवश्यकता थी, बेटे का पता नहीं चलता। सेनापति कहता है राजन् आदेश करो मैं आपको कैद खाने में नहीं देख सकता हूँ। इस अभागे बेटे ने आपके साथ ऐसा किया। श्रेणिक कहता ठहरो! मेरे मन्त्री! मेरे सेनापति! आपको मेरे से प्रीति है, राष्ट्र से प्रीति है, राज्य से प्रीति है, तो एक क्षण मेरी बात सुन लो। मैं वृद्ध हो चुका हूँ, यदि आपने इस कुणिका को मार दिया, तो तुम राजा विहीन हो जाओगे। पिता का हृदय क्या बोल रहा है? मेरी उम्र तो जाने की हो चुकी है, भविष्य का राजा तो यही बनेगा, इसलिये आप इसको कुछ मत करो। भविष्य का राजा तो यही बनेगा, चाहे आज बन जाये, चाहे कल बनेगा, लेकिन राजा तो तुम्हारा यही बनेगा। जब-जब बेटा ताने-बाने दे, तब तुम श्रेणिक बन जाना और कहना बेटा! तू चाहता तो मैं तुझे खुशी से बनाता अब तू जैसे चाहता है वैसे बन ले।

दुर्बुद्धि को सुबुद्धि देना कठिन है, परन्तु सुबुद्धिशाली सुबुद्धि में रहे यही अच्छा काम है। इतना विश्वास रखना तेरा पुण्य साथ दे रहा है, तो जंगल में भी तुझे रोटियाँ खाने को मिलेंगी। महल छोड़कर जंगल चले जाना, परन्तु बेटें से झगड़ करके अपना नाम बदनाम मत करना। जंगल में जाकर निवास कर लेना, लेकिन पिता पुत्र से, भाई-भाई से विसंवाद करके इतिहास बना कर मत जाना। नगर छोड़ देना गाँव छोड़ देना और यहाँ तक हो कोई देह ही लेना चाहे यह भी दे देना, लेकिन फिर भी धर्म नहीं छोड़ना। सामायिक कर रहे हो। तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी से पूछ लेना अजगर के मुख में भी बैठ लिया, सिंह के मुख में भी बैठ लिया, साँप की ढाड़ में भी चले गये तब भी समता नहीं छोड़ी। देह तो दे दिये, परन्तु साम्य धर्मका नाश नहीं होने दिया। यदि समता चली गई, तो सब कुछ गया। जिसके लिये हम जीवन का सर्वस्व नाश कर चुके हैं, जब वह ही हाथ से जाने लगा, तो अब तुम कंगाल हो गये। मुनियों से कहा, हे मुनिराज! जिस भवन में तुम रहते थे। तुमने बुद्धि पूर्वक घर छोड़ा है, तुम सेठ के पुत्र, राजा के बेटे थे, शरीर के वस्त्र आभूषण आदि तुमने बुद्धि पूर्वक उतार कर फेंके हैं, तुम करोड़पति के बेटे थे, तुम बुद्धि पूर्वक सब त्याग करके आये हो अब देह

पर तो कुछ बचा नहीं। लोक की दृष्टि में देखो तो तुम कंगाल खड़े हो तुम्हारे पास कुछ नहीं है, परन्तु तुम्हारी कंगाली, लोगों को कंगाली महसूस नहीं होने दे रही है, क्योंकि तुम्हारे पास रत्नत्रय धर्म के रत्न रखे हुये हैं। हे योगीश्वर! जब तुम ग्रहस्थ थे तो हीरा पन्ना, जवाहरात आदि पेटियों में सुरक्षित होते थे अब तेरा रत्नत्रय धर्म समता की पेटी में सुरक्षित है। यदि पेटी ही फट गई, तो रत्न कहाँ बचेंगे? वे तो बिखर ही जायेंगे। यदि समता ही नष्ट हो गई, तो मुनि का मोक्षमार्ग रत्नत्रय धर्म ही नष्ट हो गया। इसलिये समता को सुरक्षित रखना। समता भङ्ग न होने पाये। यह समता मुनि बनकर नहीं, घर से ही प्रारम्भ करना पड़ेगी। सबसे बड़ी समता की परीक्षा घर में ही है।

जिसको तुमने सब कुछ सौंप दिया हो, तन भी दिया धन भी दिया घर भी दिया सब कुछ दिया वो ही नारी तेरे ऊपर बरसने लग जाये। दूसरे घर का कोई सदस्य डाँटे तो सहन कर लेगा, जिसको तूने सब कुछ दिया है वही तेरे ऊपर बरसे उस क्षण का चिन्तवन करना क्या है? विश्वास रखना, यदि तूने पत्नि की डाँट को सहन कर लिया, बेटों के दुत्कार सहन कर लिया तो तू मुनि बनने लायक हो चुका है। अन्दर के लोगों की बातें सहन कर पाना कोई सामान्य बात नहीं है। कितने ऊँचे नीचे परिणाम होते हैं? जिसने जन्म दिया था, तूने उसकी नहीं सुनी, माँ की नहीं सुनी, पिता की नहीं सुनी और आज नारी की सुनने बैठा है। हे ज्ञानी! जरा-सा पानी वाला होता तो कहता यह पड़ी सम्पत्ति, मैं उस सम्पत्ति की ओर जा रहा हूँ जो समता की सम्पत्ति है, निर्ग्रन्थ बनने के लिये जा रहा हूँ, परन्तु तीव्र पाप कर्म का उदय होगा तो घर छोड़कर के भीख माँग लेगा, लेकिन दिगम्बर मुनि बनकर नहीं रह पायेगा।

वसन तभी उतर पायेंगे जब वासना उतार पाओगे। वासना नहीं उतार पाये और वसन उतार कर बैठ गये तो नंगे ही बन पाओगे दिगम्बर नहीं बन पाओगे। मित्रो वसन बाद में उतारना, पहले वासना उतार देना। पहले वासना नहीं उतार पाये और कपड़े उतार कर बैठ गये, तो जैनत्व को लजाओगे, कल्याण नहीं कर पाओगे। मान भी वासना है कषाय भी वासना है, लोभ भी वासना है अहंकार भी वासना है। आपको मालूम होना चाहिये शील के अठ्ठारह हजार भेद हैं। नारी

नर के सम्बन्ध मात्र का नाम अब्रह्म नहीं है, वह तो अब्रह्म है ही, पशु वृत्ति है। क्रोध करना भी अब्रह्म है, मान करना भी अब्रह्म है, गुप्तियों को पालन नहीं करना भी अब्रह्म है, दस धर्मों का पालन नहीं करना भी अब्रह्म है और पाँच महाव्रतों-अणुव्रतों का पालन नहीं करना भी अब्रह्म है। बाहर कोई शत्रु नहीं होता, जब भीतर के कषाय भाव भड़कते हैं, तब बाहर के शत्रु दिखना प्रारम्भ हो जाते हैं और भीतर साम्यभाव आ जाये तो सिगड़ी सिर पर रखी जा रही है तब भी मित्र ही दिखाई देता है। सिर पर सिगड़ी रखी जा रही है। कीले ठोके जा रहे हैं तब भी वो कह रहे हैं तू नया क्या कर रहा है? जिसको ठुकना था उसी को तो ठोक रहा है। जिसे तु जलाना चाहता है, वह कभी जलने वाला नहीं है। मुमुक्षु! जलने के पहले जलना छोड़ दो, वह जलने वाला नहीं है। यदि ऐसी सामायिक तूने एक दिन भी कर ली तो तेरा मोक्ष तेरी मुट्ठी में आ जायेगा, लेकिन करके तो देख। जब कुन्दकुन्द स्वामी को निगोदिया में भगवान् दिख सकते हैं, द्रव्य दृष्टि से तो हे जीव! तू भी तो भावी भगवान् है। ज्ञानी! तेरे बेटे की माँ गुस्सा कर रही हो, तो तू पैर पड़ ही लेना या तो गुस्सा छोड़ या पैर पड़ता हूँ। फिर देखो क्या होता है? आनन्द है? जो ज्ञान में आनन्द है, वह जगत् में कहीं है ही नहीं हैं। वस्तु स्वभाव ऐसा है। जगत् में कोई तेरा शत्रु नहीं है, भीतर कषाय न उमड़े, अन्तरङ्ग में वासनायें न झलकें तो विश्वास रखना सारा जगत् मेरा मित्र है। चार संज्ञाओं को जीत लो बस कुछ नहीं करने का। फिर तो किसी के द्वारे पर जाना ही नहीं पड़ेगा। सही बताऊँ मैं आहार को निकलता हूँ, तो मुझे बहुत शर्म लगती है। आहार लेते-लेते शर्म लगती है। हे भगवान्! यह आहार का पिण्ड और छूट जाये, तो कितना आनन्द आये। फिर तो श्रावकों के बीच रहने की तो जरूरत ही नहीं है, फिर जंगल में जाकर रहूँ। तिलोयपणति में चौंषठ ऋद्धियों का वर्णन पढ़ते हैं तो आ हा हा! तप्त ऋद्धि, महातप्त ऋद्धि, योगीश्वरों ने मास-मास के, वर्ष-वर्ष के उपवास किये। पर्वत के ऊपर सूर्य के सामने खड़े होकर ध्यान लगाये हुये हैं, तब भी शरीर में कुछ फर्क ही नहीं पड़ रहा है। तपने वाला तप रहा है तपस्या से चमक रहा है। हे भगवान्! वह सामर्थ्य कब प्रकट हो? इन रागियों के घर में अंजुली लगाना बन्द हो जाये। न जाना पड़े।

फिर तो मैं चातुर्मास किसी सिटी में नहीं करूँगा, पर्वतों पर नदियों के किनारे और वृक्षों के नीचे करूँगा। कोई को देखना नहीं है, बस निर्वाण हो वह तो होना ही है इसमें कोई शङ्का नहीं है, लेकिन एक बार ऐसी तपस्या करूँ।

गिम्हे गिरि सिहरत्था, वरिसायालेरुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वंदिमोणिच्चं॥ योगी भक्ति॥

वे भावलिङ्गी तपोधन पुनः-पुन वन्दनीय हैं, नमस्करणीय हैं, कोटि-कोटि बार नमस्कार ही नहीं आज तक जितने भव धारण किये उन भवों में जितने भाव धारण किये उन भाव प्रमाण हे भावलिङ्गी तपोधनो! आपको नमस्कार हो। केवलज्ञान के जितने स्पर्धक हैं उतने स्पर्धक प्रमाण प्रभो आपको नमस्कार हो। भैया! कर लो नमस्कार नहीं तो कल हाथ ही न जुड़ पाये। हाथ मिल भी गये तो बन्दर के मिले तो कहीं मन ही न बने कि नमस्कार कर लूँ। तीन कम नौ कोटि मुनियों को बार-बार नमस्कार करो। योगी को एक बार नमस्कार करने से असंख्यात गुणश्रेणी कर्म की निर्जरा होती है। हे धरती के देवताओ! आपको मेरा नमस्कार हो। मात्र भारत की भूमि पर ही नहीं, ढाई द्वीप में जितने भावलिङ्गी वीतरागी तपोधन विचरण कर रहे हैं, उन सब को नमस्कार हो। ऐसा मत सोचना जितने आचार्य हैं, नहीं आचार्य तो पद है, निर्वाण तो न आचार्य से होगा, न उपाध्याय से होगा निर्वाण तो समता परिणामों से होगा, सामायिक से होगा। इसलिये सामायिक वही कर पायेगा। जिसका मन पानी बन जायेगा। आप देखो यमुना में चाहे कचड़ा पटको चाहे कुछ पटको, पर पानी समतल में बहता है, चाहे जितने गड्ढे हों कितनी ही ऊँचाइयाँ हों पानी सम में ही बहता है। ऐसे ही जिसके चैतन्य का चिन्तवन साम्य हो जायेगा निज परिणति बाहर के गड्ढों को भर करके साम्य रूप में बहेगे तब कहीं सामायिक करेगा। जब समभाव हागे तो निर्वाण निश्चित होगा। ज्ञानी! वैराग्य भजो! दुनिया तो फिर मिल जायेगी ये जिनवाणी नहीं मिलती। डमरू बजाने वाले मिल जायेंगे ताल ठोकने वाले मिल जायेंगे, तास खेलने वाले मिल जायेंगे, बाजे बजाने वाले मिल जायेंगे, लेकिन अरहन्त के वस्तु स्वरूप की व्याख्या करने वाले जीव इस भारत भूमि पर ही नहीं ढाई द्वीप में दुर्लभ हैं। इस बात को कार्तिकेय स्वामी को लिखना पड़ गया **'विरला रुच्चई तच्चं'**।

तत्त्व को जानने सुनने वाले विरले हैं, सुनने वाले मिल भी जायें, तो जानने वाले अत्यन्त अल्प हैं, जानने वाले मिल जायें, पर पालने वाले अल्प हैं, पालने वाले मिल भी जायें, परन्तु धारणा के अनुसार जैसा कहा वैसे चलने वाले अत्यन्त दुर्लभ हैं। किसी भव में पुण्य किया होगा, सो आज फलित हो रहा है।

ये कामनायें ये वासनायें पिशाच हैं। जैसे किसी को पिशाच लग जाये तो वह न खाने दे, न पीने दे, न सोने दे, कुछ नहीं करने देता, भूताविष्ट की क्या हालत होती है?

कुन्दकुन्द देव ने समयसार जी में कहा है कि—बन्दर को पिला दी मदिरा, फिर लग गये उसको भूत। एक तो बन्दर वैसे ही चंचल, फिर उसको मदिरापान करबा दिया ऊपर से लग गये भूत, अब बताओ बन्दर कैसा होगा? ऐसे ही अहो मुमुक्षु! अपने मन बन्दरों से पूछो विषयों का मदिरा पान कर लिया और मोह का भूत लग गया तेरा मन वैसे ही बन्दर था देखो उसकी क्या हालत हो रही होगी। मोह मद है और विषयों के पिशाच हें। काम भूत पिशाच के समान हे जो सारे जगत् के प्राणियों को छिद्रित किये है दोषी किये है नष्ट कर रहा है कौन? काम। वह किसी को नहीं देखता। कामक के आधीन हुआ प्राणी निरन्तर भ्रमण कर रहा ह इससे बचना है तो पुनः आचार्य भगवान् कह रहे हैं जब भूत लग जाते हैं तो उसको मन्त्रों से भगाया जाता है, लेकिन ध्यान रखना दुनियाँ के चबूतरों पर भटकने की आवश्यकता नहीं है।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥ समाधि भक्ति॥

तू दुनियाँ के चबूतरों में कहाँ भूत भगवाने जा रहा है? महामन्त्र की आराधना करने से विघ्न, भूत, पिशाच डाकिनी, शाकिनी विष सब उतर जाते हैं, श्रद्धा होना चाहिये। मालूम चला कि यहाँ एक श्रीफल चढ़ाता है वहाँ जाकर हजार चढ़ाता है। धन्य हो सम्यग्दृष्टियों को और क्या कहते हैं? अपने भगवान् तो वीतरागी हैं वे कौन कछू करते हैं? यहाँ तो नमस्कार करके चले गये वहाँ तो सबकुछ मिलता है, सो सौ बार जा रहे हैं।

न कोई लक्ष्मी देता है, न कोई उपकार करता है न कोई अपकार करता है।

उपकार या अपकार करने वाला यदि कोई है तो तेरा पुण्य पाप ही है। पुण्योगदय है तो व्यन्तर भी कुछ नहीं कर पाते। प्रद्युम्न कुमार से पूछा, भूतों के भवन में भी माला पड़ गई और पुण्य क्षीण हो गया सो राम को राज्य होने वाला होता है और जंगल में चले गये। ज्योतिषी का ज्योतिष कहाँ चला गया?

आजकल तो वास्तु/ज्योतिष के नाम पर लूट-मार चल रही है। प्राचीन मन्दिरों को बचा कर रखना। बड़े-बड़े मुनि घूम रहे हैं। वास्तु-वास्तु। निज का वास्तु ठीक हो जाये, तेरी भाषा सुधर जाये, वही सबसे अच्छा वास्तु है। वास्तु के चक्कर में निज की वस्तु समता खो गई। इन मन्दिरों/भवनों की सुरक्षा रखो। भैया! जिस घर में चक्रवर्ती रहता था, उस घर में बेटा चक्रवर्ती बन कर नहीं रह पाया। जब चक्रवर्ती था, तब वास्तु कुछ नहीं कर पाया, अब वास्तु लग गया। ठीक है, नये बनाओ तो उन्हें वास्तु से बना लो, लेकिन जो बने हैं, उन्हें नष्ट मत करो। एक शिखरबन्द मन्दिर को गिराने पर घोर पाप का बन्ध होता है।

आगम पढ़ो, आगम सीखो, आगम समझो। प्रतिष्ठाचार्य जी! मन्दिर को गिराने में कितना पापबन्ध होता है? हटाने के लिय प्रायश्चित लेना पड़ता है। इसलिये ध्यान रखना, जबरजस्ती कोई मन्दिर मत गिराना। सँभल कर रहना। नया बना लेना। पुरानों को सुरक्षित रखो, जीर्णोद्धार करो, लेकिन नष्ट मत करो।

जैसे भूत को भगाने का मन्त्र होता है, ऐसे यदि वासना के भूत को भगाना है तो वैराग्य-भावना के मन्त्र से महाबलशाली काम को दूर करके, स्वतन्त्र हो करके, धीर सिद्धिसुख को प्राप्त करेगा। यदि तूने वैराग्य-मन्त्र का आश्रय ले लिया है, तो आज घर जाकर सभी से कह देना—

'समता सर्व भूतेषु'

जगत् के प्राणि मात्र के प्रति मेरा समता भाव है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कामी की प्रवृत्ति

कामी त्याजति सद्वृत्तं, गुरोर्वाणीं ह्रियं तथा।
गुणानां समुदायं च, चेतः स्वास्थ्यं तथैव च॥107 सा. स.॥

तस्मात्कामः सदा हेयो, मोक्षसौख्यं जिघृक्षुभिः।
संसारं च परित्यक्तुं, वाञ्छद्भिर्यतिसत्तमैः॥108॥

अन्वयार्थ—कामी = कामी मानव, **सद्वृत्तं** = सम्यक् चारित्र को, **गुरोःवाणीं** = गुरु की आज्ञा रूपी वाणी को, **तथा ह्रियं** = तथा लज्जा को, **गुणानां समुदायं च** = और गुणों के समूह को, **तथैव च चेतः स्वास्थ्यं** = वैसे ही मन की निराकुलता को, **त्यजति** = छोड़ देता है, **तस्मात्** = इसलिए, **कामः** = यह काम **मोक्ष सौख्यं जिघृक्षुभिः** = मुक्ति के आनंद के ग्रहण के इच्छुक, **च संसार परित्यक्तुं वाञ्छद्भिः** = और संसार के त्याग के बांछक, **यति सत्तमैः** = साधुओं के द्वारा, **सदा हेयः** = सदा ही छोड़ने लायक है।

भावार्थ—कामी मानव सम्यक्चारित्र, गुरु की आज्ञारूप वाणी, लज्जा, गुणसमुदाय और चित्त की निर्मलता-निराकुलता को छोड़ देता है। इसलिये मोक्ष के इच्छुक तथा संसार को छोड़ने वाले साधुजनों के द्वारा यह कामवासना सदैव छोड़ने योग्य है।

जो ब्रह्म ज्ञानी इस दु:खमय संसार से छूटना चाहता है, मुक्ति सुख का इच्छुक हे ओर जिसे ध्रुव शान्तिमय स्वकीय आनन्द में लीन होने की भावना जागृत हुई हे तो काम भावना का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये तथा कमभाव जागृत करने वाले निमित्तों से दूर रहना चाहिये।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर भगवात् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में परम ब्रह्म धर्म की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं विश्व में आत्मा का परम हितैषी तिमत्र निज का ब्रह्म धर्म है। जिसके पास ब्रह्म की रक्षा है वही जगत् का ब्रह्मा है।

जो निज ब्रह्म से शून्य हो गया वह सारे जगत् से शून्य है। सारी खुशियाँ सारे आनन्द तभी तक हैं जब तक स्वयं के संयम का आनन्द है। जहाँ निज का आनंद समाप्त होता है, उसे जगत् के सारे उत्साह फीके नजर आते हैं। चन्द्रमा की चाँदनी और चन्दन के छींटे तभी तक शीतल लगते हैं जब तक ब्रह्म में वास है। जिसके ब्रह्म का ह्रास होता है, उसे पूर्णिमा की चाँदनी भी संताप देती है। ऐसी महान् कलुषता को उत्पन्न करने वाली औषधि है, तो वह अरहन्त के वचन हैं।

जिणवयण मोसहमिणं विसय-सुहविरेयणं अमिदभूयं।
जर-मरण-वाहिहरणं खयकरणं सव्व दुक्खाणं॥ 17 द. पा.॥

भगवान् जिनेन्द्र के वचन ही परम औषधि हैं **जब जगत् के रोग को उपशमन करने के लिये समपूर्ण औषधियाँ अपना कार्य करना समाप्त कर देती हैं, जब प्राणों के वियोग का नियत समय आ जाता है, तब अरहन्त के वचन ही परम औषधि हैं।** विश्वास रखना, आप देह को तो नहीं बचा सकते, कितना ही प्रयास कर लो यह तन्त्र-मन्त्र तभी तक सहकारी हैं, जब तक आयुकर्म शेष है। आयु कर्म के क्षीण होते ही कोई उपचार कार्यकारी नहीं होता है। जब नियत है आयु का क्षय होगा, प्राण छूटेंगे। जो प्राण मेरे हाथ में नहीं हैं, उन पर पुरुषार्थ करने की अपेक्षा, अपने संयम पर पुरुषार्थ किया जाये। देह का विनाश आयुकर्म के आधीन है, परन्तु संयम का नाश तेरे भावों के आधीन है। भव का नाश संयम के आधीन हैं। देह को नहीं बचा जायेगा, क्योंकि वह आयुकर्म के आधीन है संयम को बचा सकते हो, क्योंकि वह तेरे भावों के आधीन है और तेरे भाव तेरे आधीन हैं। संयम आपके भावों पर आधारित है। तू चाहे तो अपने भावों को निर्मल करके संयम की साधना कर सकता है, तू चाहे तो अपने भावों को अशुभ करके संयम की विराधना कर सकता है। संयम पराधीन नहीं, तेरे भावों के आधीन है। संसार का नाश, भगवान् के हाथ में नहीं है। वे भगवान् मेरे भव का क्या नाश करेंगे जो आशीर्वाद देना तक तो भूल चुके हैं जो वरदान देना जानते नहीं हैं जिनसे श्राप देते बनता नहीं है वे भगवान् मेरे भव का क्या नाश करेंगे? जिनको आशीर्वाद देते बनता है, वे साधु तो हो सकते हैं, लेकिन वे भगवान् नहीं

होते है। जो श्राप देते है; वे न साधु होते है न भगवान् होते हैं वे तो आप समझो क्या हो सकते हैं? जो श्राप देते हैं वरदान देते हैं, वे भगवान् तो होते ही नहीं है साधु भी नहीं होते हैं। जिनशासन में निर्ग्रन्थों के लिये मात्र इतना आदेश है कि जो धर्मानुरागी श्रावक है, आपका वन्दन किया है जिसने तो उसको 'धर्मवृद्धिरस्तु', तेरे धर्म की वृद्धि हो करपुट उठा कर के, मुख से भी कहा तो 'धर्मवृद्धिरस्तु'। परन्तु सभी को एक-जैसा आशीर्वाद नहीं देते। आप कहेगे कि इसमें राग-द्वेष क्यों? राग-द्वेष नहीं है, वस्तुव्यवस्था है। कोई श्रमण नमस्कार करता है, त्यागी नमस्कार करता है, तो 'समाधिरस्तु' आपकी समाधि अच्छी हो, वे तो धर्म में लीन है, 'समाधिरस्तु'। कोई भद्र मिथ्यादृष्टि नमस्कार करे तो 'दर्शन विशुद्धि', तेरे दर्शन में विशुद्धि हो। कोई चाण्डाल नमस्कार करे तो उससे 'पापक्षयोस्तु' तेरे पापों का क्षय हो। आशीर्वाद सभी के लिये है, लेकिन पात्रता कैसी है? वीतरागी तपोधन के चरणों में कोई चाण्डाल नमस्कार करता है, पापी जीव नमस्कार करता है, तो आशीर्वाद उनको भी होगा, लेकिन 'पापक्षयोस्तु', तेरे पाप का क्षय हो। ऐसे आशीर्वाद तो दिये हैं, लेकिन यह नहीं कहते 'नमोऽस्तु, आयुष्मान भवः।' यह कहा ही जा सकता है, परन्तु किसी की आयु को बढ़ाया नहीं जा सकता। जैनदर्शन के आशीर्वाद भी सिद्धान्त से भरे हुये हैं। 'आयुष्मान भवः' क्या दिया? कर्म दिया, लोभ दिया, स्वामी ने आशीर्वाद दिया है कि आयु बढ़ेगी। आशीर्वाद देनेवाले ही नहीं बचते हैं, वे तुम्हें क्या बचा कर रखेंगे? जो आयुष्मान भवः कह रहा है उसी की आयु अवसान को प्राप्त हो गई, तब तेरा आशीर्वाद मेरे क्या काम का होगा? इसलिये झूठे आशीर्वाद मैं चाहता नहीं हूँ। मुझे झुठे आशीर्वाद नहीं चाहिये। जो सत्य का बोध है, तत्त्व का निर्णय है, उसे कौन बदल सकता है? हमारे पण्डित जी कहते है—श्रीरस्तु, सम्पत्ति वर्द्धताम्, कुल वर्द्धताम्, धनधान्य वर्द्धताम्। तीनलोक के नाथ के पादमूल में खड़ा होकर किसकी बात कर रहा है? कर्म क्षयोस्तु, धर्म वर्द्धताम् कहना चाहिये था, लेकिन 'धन वर्द्धताम्' कह रहा है। परिग्रह पाँचवाँ पाप है और पाप की इच्छा परमात्मा के चरणों में कैसी? अब चाहे रोओ, चाहे गाओ। 'जो है सो है।' परिग्रह पाँचवाँ

पाप है। कोई झुठ बोल दे तो तुम कहते 'पाप कर दिया', हिंसा कर दे तो 'पाप कर लिया', ब्रह्म का विनाश हो गया तो 'पाप हो गया', चोरी कर ली तो 'पाप हो गया'। मित्र! और खण्ड-पर-खण्ड बनाता चला जा रहा है, सो दुनियाँ सम्मान कर रही है। ये पाप कर रहा है कि नहीं कर रहा है? तत्त्व को समझो। कम-से-कम लक्ष्य में तो आये। **बह्वारम्भ परिग्रहत्व नारकस्यायुषः॥ 6/15 त. सू.॥**

वस्तुस्वरूप समझो। जो आपको मिल रहा है, वह पूर्व के पुण्य का नियोग था। जो मिल रहा है, उसे पुण्य में लगाते जाना। इसे अपना धर्म मत मान लेना पुण्य के योग से मिला है। धर्म तेरा उतना ही है जितनी परिणामों की विशुद्धि है। श्री जी के चरणों में श्री माँगने नहीं आना और श्री जी के चरणों में स्त्री माँगने मत आना। श्री जी के चरणों में आओ तो मोक्षलक्ष्मी माँगने आना। परन्तु विश्वास रखना, ये भी नहीं दे पायेंगे। आप सोच रहे होंगे कि आज तक जो महात्मा आये, सबने मुझे श्रीयन्त्र दिया, किसी ने गंडा-ताबीज बाँधा, लेकिन ये महाराज कह रहे हैं तीर्थंकर भी तुझे श्री नहीं दे सकते हैं मोक्ष नहीं दे सकते हैं। 'स्वतन्त्र कर्ताः' मेरे कर्म का कर्ता मैं हूँ, मेरे कर्म का कर्ता कोई दूसरा नहीं है। मेरा पुरुषार्थ मैं करूँगा, आपको पुरुषार्थ आप करेंगे। मेरा पुरुषार्थ दूसरे के हाथ में हो गया तो मेरा किया कर्म व्यर्थ हो जायेगा। मैं उन भगवान् को नमस्कार नहीं करता हूँ जो किसी की आयु को बढ़ाते हैं। मैं उन भगवान् की वन्दना नहीं करता हूँ जो किसी की आयु का नाश करते हैं। जो न नाश करें, न बढ़ायें, निज में रमण करें, उन वीतरागी भगवान् को नमस्कार करता हूँ। कहीं द्रव्य के लोभ में जैनत्व को भूल मत जाना, जैनत्व को मत खो बैठना। लोगों ने देखा कि भीड़ किसके माध्यम से होती है। आगरा के पेठे की दुकान पर भी अन्य वस्तुयें मिलने लग गईं। केशरिया पेड़े की दुकान पर चाकलेट बिकने लगी है। बच्चों की इच्छा की पूर्ति के लिये तुमने अपनी दुकान की महिमा को फीका कर दिया।

एक व्यक्ति खाद्य सामग्री बेंच रहा है, उसी दुकान में जूते चप्पल भी बेंच रहा है। इतना लोभ बढ़ चुका है। अन्य सफेद द्रव्य भी दिखाई देने लगे हैं। कितना ह्रास हो चुका है। ज्ञानियों मेरा सोच है जहाँ दूध मलाइयाँ बिकती हों, मिठाइयाँ

बिकती हों, वहाँ पर जीवों के कलेवर देखे जाते हों यह ठीक नहीं है। जिस शासन में शुद्ध तत्त्व व्याख्या होती हो, उस शासन में जगत् के जादू टोने की बातें करके और सत्यार्थ मार्ग को गौण करके, जैसे एक दुकान पर कई हीन सामग्रियाँ आ गई हैं, ऐसे हमारे जिनशासन की दुकान पर हीन सामग्रियाँ नहीं आनी चाहिये। इन जिनमन्दिरों को तीर्थंकरों की उपासना का स्थान ही रहने देना, इन मन्दिरों में दुनियाँ के योग, ग्रह और कालसर्प योग उतारने की भूतों की भीड़ इकट्ठी मत करना। जो अरहन्त के नाम से आयेगा, वह आस्था से आयेगा और पुनः-पुनः आयेगा और जो भूत के नाम से आया, ग्रह के नाम से आया, उस अभागे का तीव्र पाप का उदय था, उसका भूत नहीं उतर पाया, वह फिर कभी मन्दिर नहीं आयेगा। पहले से बोल कर रखना। यह आस्था का आलय है, यह श्रद्धा का मन्दिर है। यहाँ भूतों का स्थान नहीं है, यह कर्मक्षय का स्थान है। कर्मक्षय के स्थान पर तुम श्रद्धा से आराधना करोगे तो तुम्हारा असाता साता में बदलेगा, तो अपने आप तेरे दुःख दूर हो जायेंगे। मानतुङ्ग स्वामी ने क्या जेल से निकलने के लिये भक्तामर लिखा था? नहीं। भोपाल में नन्दीश्वर के पास एक पर्वत है महावीर गिरि, वही मानतुङ्ग स्वामी की साधना-स्थली है जिसको मनुआ पहाड़ टेकरी कहा जाता है। उसी पर्वत से राजा भोज ने बुलवाया था। जब ताले के अन्दर रखा। कोठियों में पहरे पर पहरे लग गये स्वामी ने भक्तामर स्तोत्र रचा सो अड़तालीस ताले टूट गये। पुनः बन्द किया, पहरेदारों को डाँटा कि आपका पहरा ठीक नहीं है। एक क्षण ऐसा आ गया कि सम्राट स्वयं आकर खड़ा हो गया और जब स्वामी स्तुति में लवलीन हुये-प्रभो! आपके नाम लेने मात्र से कालिया नाग का जहर उतर जाता है, विषधर निर्विष हो जाता है। सिंह की दहाड़ें शक्तिविहीन हो जाती हैं, ये अड़तालीस ताले किस काम के? आराधना से एक सौ अड़तालीस कर्म के ताले टूटते हैं, ये ताले किस काम के? मानतुङ्ग स्वामी बाहर खड़े हुये हैं, सम्राट चरणों में सिर टेक देता है, कहता है—स्वामी! क्षमा करो।' आराधना करने से चमत्कार हो गया। सीता ने अग्नि का जल बनाने के लिये आराधना की थी क्या? परमात्मा का नाम लिया तो अग्नि का कुण्ड शीतल

नीर हो गया। नाग भी सोमा के कण्ठ का नाग हार हो गया। वही भक्तामर, वही आदिनाथ हैं, भक्तो! फिर तुम्हारी फुन्सी ठीक क्यों नहीं हो रही है? क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा कमजोर हो रही है। आस्था में कमी नहीं आना चाहिये। आस्था में कमी न हो, लेकिन झूठी भक्ति न हो। **'यदि आपके पास यथार्थ में सिद्धि है, तो प्रसिद्धि की कोई आवश्यकता नहीं है। जिसके हाथ में सिद्धि होगी, उसकी प्रसिद्धि नियम से होगी। जिसके पास सिद्धि नहीं है, वह प्रसिद्धि के लिये कुद भी कर लेगा, लेकिन सफलता नहीं मिलेगी। हे परमेश्वर! मैं आपकी आराधना इसलिये कर रहा हूँ कि मेरे पापों का क्षय हो। परन्तु ध्रुव सत्य है कि मेरे पापों का क्षय मेरे परिणामों से होगा।'** आप मेरे परिणामों की विशुद्धि में निमित्त हो इसलिये मैं आपकी आराधना कर रहा हूँ; परन्तु मुझे विश्वास है कि आप मेरे संसार के कारण नहीं हो। आप मेरे मोक्ष के भी कारण नहीं हो। फिर धन और स्त्री को देने वाले कहाँ से हो गये हो? वह तुम्हारे पास भी नहीं है, तुम मुझे क्या दोगे?

परमात्मा का आराधक, संयम का साधक कभी भिखारी नहीं हो सकता। भिखारी वे ही होते हैं जो विकारी होते हैं। भगवान् की भक्ति से शून्य होते हैं, उन्हें भीख माँगनी पड़ती है। भगवान् का भक्त, भीख माँगता नहीं है, वह भिक्षा का दान देता है। कभी माँगने मत जाना। तुम्हारे घर में जो द्रव्य हो, उसका सेवन करना। कोई साधु आ जाये तो आहार देना। न माँग कर खाना, न माँग कर देना। सच्चा कुलीन जैन होगा, वह भीख माँगने नहीं जायेगा। हमारे यहाँ इतने बड़े-बड़े धर्मानुष्ठान हो जाते हैं, लेकिन जैनसमाज कभी किसी के द्वारे पर माँगने नहीं जाती। ये पूरे देश की समाज का इतिहास है। जो कुछ होगा, अपने घर में कर लेंगे; परन्तु पर घर में माँगने नहीं जायेंगे। यह पुण्य आप कहाँ से लेकर आये हैं? यथार्थ मानना, आज तुम्हारे हाथ देने को क्यों उठ रहे हैं? क्योंकि देने के संस्कार हैं। जिनने अनन्त पर्यायों से माँगा-ही-माँगा है, वे बेचारे हाथ नीचे ही किये रहते हैं। इस आगरा की मेढ़ पर दिगम्बर मुनि के रूप में

भले ही मिट्टी का पुतला ही क्यों न हो, पहले नमोऽस्तु करना, उनकी चर्या करवाना, फिर कोई चर्चा करना।

मुझे तुम दिगम्बर योगीराज दिखते हो, मैं आपकी वन्दना करूँगा तो मुझे वही फल मिलेगा। जब पाषाण की प्रतिमा की वन्दना करके तीर्थंकर महावीर की पूजा का फल मिल सकता है, तो दिगम्बर मुद्रा की वन्दना करके सच्चे मुनि की वन्दना का फल क्यों नहीं मिलेगा? पहले तो आप वन्दना करना, चर्या कराना, फिर आपको कुछ गड़बड़ दिखती है तो एकान्त में जाकरके स्थितिकरण अंग का पालन करना। यदि तब भी नहीं मानें, तो उपगूहन का पालन करते हुये मध्यस्थ हो जाना। अपने श्रीमुख से वीतरागी मुद्रा की अवहेलना के शब्द का उच्चारण स्वप्न में भी नहीं करना। कुन्दकुन्द स्वामी ने 'अष्ट पाहुड' ग्रन्थ में लिखा है, जिनको समझना हो, 'अष्ट पाहुड' का स्वाध्याय करना चाहिये। वहाँ लिखा है–

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिदट्ठा।
सिविणे विण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे॥ 47 मो. पा.॥

जिनमुद्रा ही शुद्ध शिवसुख को देने वाली है। वर्तमान में विपरीतता की लहरें चल रही हैं। कहीं कोई पसीना दिख गया तो चमत्कार हो गया। यथार्थ में प्रतिष्ठा ग्रन्थ में देखो, अशुभ की सूचना है। यदि स्वप्न में भी भगवान् अरहन्त की प्रतिमा मुस्कुराती दिख जाये, तो आपको शान्ति कर्म करना चाहिये, क्योंकि यह अशुभ की सूचना है। दिगम्बर मुनि सोते दिख जायें, हँसते दिख जायें, रोते दिख जायें स्वप्न में भी तो यह अशुभ की सूचना है। हाँ, मुनिराज सामायिक करते दिखें स्वाध्याय करते दिखें, तत्त्व-उपदेश देते दिखें तो ज्ञानी! तेरे तीव्र पुण्यकर्म का उदय चल रहा है। आचार्य कुन्दकुन्द का नाम लेने वाले तो कोटि-कोटि लोग हैं, परन्तु कुन्दकुन्द स्वामी की पूरी-पूरी बात को मानने वाले अंगुलियों पर गिनने लायक लोग हैं। कुन्दकुन्द स्वामी 'अष्ट पाहुड़' में लिख रहे हैं–

"सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे"

ऐसी वीतरागी मुद्रा जिसको स्वप्न में भी रुचिकर नहीं है, यदि वीतराग मुद्रा का स्वप्न में भी अनादर कर दिया हो, इसके अनन्त भव धारण करने का समय

है, ऐसे जीव को वीतरागी मुद्रा के प्रति भी अशुभ भव आयेंगे। जिसका संसार का समय अल्प बचा है, वह प्रातः उठ कर, मुख बाद में धोयेगा, भगवान् का मुख पहले देखेगा।

मुख बाद में धोयेगा, दर्पण में अपना मुख पहले देखेगा पापी। मुख बाद में धोयेगा, पुण्यात्मा जीव पहले अरहन्त का मुखमण्डल देखेगा। एक वे जीव पुण्यात्मा हैं जिनके घर मन्दिर के पास हैं सुबह से जागते ही अरहंत की प्रतिमा दिखाई देती हो। वे पापी जीव हैं जो जगते ही दर्पण में अपना चेहरा देखता है। भैया! इतना खरा-खरा सुनता है तब भी बुरा नहीं लगता? सुबह उठते ही पुण्यात्मा परमात्मा को देखता है और पापी स्वयं का मुख देखता है। पूर्व में पुण्य किया होगा सो अभिषेक करने के परिणाम होते हैं। पापी हैं, जो सुबह से शरीर को तोड़ने चले जायें। जिम में जा सकता है, जिनेन्द्र के पास नहीं जा सकता। शरीर बढ़ाने चला जायेगा। अरे अभागे! पुण्य बढ़ा ले तो शरीर अपने आप बढ़ जायेगा। भगवान् बाहुबली स्वामी कहाँ गये थे किसी जिम में? गये थे क्या? इसलिये ध्यान दो, सुबह से जागो, भगवान् के पास भागो और सब कुछ छोड़ो।

ऐसे शान्ति से घर में बैठने लग जाओ, तो कभी विसंवाद ही न हो। मैं ऐसे परमात्मा का भक्त हूँ जो आयुष्मान नहीं कहते, वरदान नहीं देते, श्राप नहीं देते। मैं उन परमात्मा का भक्त हूँ जो कृत्य-कृत्य हो चुके हैं। आँख उठाकर भी नहीं देखते हैं। अपनी नाक मात्र को देख रहे हैं। उन परमात्मा को नमस्कार हो। माँ! बच्चे को जब डराती है तो यह नहीं कहती है बाबा उठा ले जायेगा। बाबा उठा सकता है, परन्तु मुनि नहीं उठाता। एक निर्ग्रन्थ श्रमण से बच्चा भी नहीं डरता। मैंने एक बालक से कहा तू मेरे बगल में आकर खड़ा हो जाता है, क्या तुझे डर नहीं लगता? बोला-डर क्यों लगे? आप तो मेरे गुरु हैं, अपने गुरु से थोड़े-ही डर लगता है। विश्व में विश्वास की मुद्रा दिगम्बर मुद्रा है। अविश्वास उन पर होता है जिनकी जेबें होती हैं। जहाँ कपड़े होते हैं, वहीं लफड़े होते हैं। जहाँ कुछ है ही नहीं, तो लेकर जायेंगे किसमें? जेल में भी प्रवचन करने दिगम्बर साधु जायें तो कभी कोई शील नहीं लगाता है। कपड़े वालों को कई शीलें लगती

हैं, तब अन्दर जा पाते हैं। अपन तो कई बार जेल गये, लेकिन अपराधी बन कर नहीं, अपराधियों को समझाने गये थे। जेल गये, तुरन्त गेट खुल गये और फिर बन्द हो गये। बोले, तुम अभी ठहरो, पहले सील लगवाओ। जिनके शील नहीं होती, उनको सील लगाई जाती है। जिनके शील होती है, सारे विश्व में उनकी शील होती है।

एक भैया मध्यप्रदेश से आया था। आगरा पुलिस ने उनकी गाड़ी पकड़ ली। हजार रुपये माँगे, वे पाँच सौ देकर आ गये। हमसे शिकायत कर रहे थे, महाराज! कमेटी वालों से कह देना, हम लोग हर समय आयेंगे तो हर समय देना पड़ेगा क्या? तूने ऐसा परमिट लिया कि पूरे देश में भी नहीं घूम पा रहा है। दूसरे प्रांत में ही पकड़ा जाता है। ऐसा परमिट लेना चाहिये था जिससे विश्व में कहीं कोई रोकने वाला ही न मिले। पिच्छी-कमण्डल ऐसा परमिट है, किसी भी प्रान्त, किसी भी देश में चले जाओ, कभी कोई नहीं रोकता है। जो नाके पर भी खड़े होते हैं वे भी कहते हैं 'खिसक जाओ, महाराज जी को निकल जाने दो।' **जीवन में ऐसा परमिट लेना चाहिये न नरकगति रोक पाये, न तिर्यञ्च गति रोक पाये, न मनुष्यगति रोक पाये, न देव रोक पायें। बिना रोके सीधा शिवालय की ओर जाये।** वह परमिट मिलता है, आपको चाहिये क्या? किसी भी गति में आपको अवरोध नहीं होगा, सब हटते चले जायेंगे। सीधे सिद्धत्व की ओर चलोगे। मेरे पास परमिट है। वह परमिट सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र है। रत्नत्रय धर्म है। जिसके पास आ गया, सारे विश्व में आस्था और श्रद्धा का पात्र हो जायेगा। पापी-से-पापी जीव विधर्मी-से-विधर्मी जीव भले ही पंथ के राग में तुम से ईर्ष्या कर सकता है, लेकिन भीतर से श्रद्धा से भरा होगा। जब रावण बहुरुपिणी विद्या सिद्ध करने बैठा, तो क्या सोचता है? मैं विद्या सिद्ध कर लूँगा तो राम ने मेरा तो कुछ बिगाड़ा नहीं है, वह तो मर्यादापुरुषोत्तम हैं। मैंने ही उनकी सीता का हरण किया है। लक्ष्मण ने भी मेरा कुछ नहीं किया। अंगद का दंगल करूँगा, क्योंकि उन्होंने मेरी लंका को गड़बड़ किया है। हनुमान ने उजाड़ किया है। सुग्रीव को निर्ग्रीव कर दूँगा, लेकिन राम-लक्ष्मण का तो कुछ नहीं करूँगा।

हाँ, इतना अवश्य है एक बार विजय प्राप्त कर लूँ, फिर राम की सीता वापस कर दूँगा।

यह ध्रुव सत्य है जब कषाय का उद्रेग ठण्डा होता है, उस समय में हर व्यक्ति का विवेक काम करता है। कितना भी घोर पापी होगा, धर्मात्मा को वह भी नमस्कार करता है। मुझे मत देखो, अपने हृदय से पूछो। जब तुमसे भी कोई गलत काम हो जाये, तो स्वयं का मन कहता है कि नहीं करना चाहिये। तत्क्षण न कहे, बाद में कहे, लेकिन कहेगा। यदि माँ ने गुस्सा में बेटे के गाल पर चाँटा मार दिया, तो पुचकारने कौन जायेगा? 'मैं बेटे से क्षमा भी न माँग सकी और बेटा मुनिराज बनकर चला गया।'

मित्रो! कभी किसी के प्रति कषाय आ भी जाये, विरोध हो भी जाये, तो दूसरे क्षण में क्षमा माँग लेना। ये पंचमकाल है। श्वास निकलने का कोई निश्चित समय नहीं है। आप पहले चले गये, सामने वाला चला गया, तुम जीते रहे, तो जीवन भर रोते रहोगे कि मैं क्षमा नहीं माँग पाया। तुम चले गये, तो कषाय लेकर जाओगे। अतः अगली पर्याय की तैयारी करके जाओ।

उपदेश सुनने का सार क्या है? किसी के प्रति अशुभ भाव भी आ गये हों, किसी से कोई अशुभ बातें भी हो गई हों, तो उससे क्षमा माँग लेना। यथार्थ यह है कि देहरी में पैर रखने के पहले क्षमा माँग कर जाना। आज के ये वाहन 'वाहन' नहीं हैं, यमराज के विमान हैं, कब धक्का मार दें और आदमी ऊपर चला जाये। इसलिये निर्णय करके निकला करो। आ गया तो पुनः मिलूँगा, नहीं आ पाया तो मिल कर जा रहा हूँ, क्षमा करना। कषाय बाँध कर मत रखना। इतनी बात बोल देना यदि जीवन में कमठ बनकर नहीं जाना है तो।

शान्ति से बैठने को भी कहाँ मिलता है? आवश्यक नहीं है कि जो कह रहा हूँ वह समझ में आये, परन्तु इतना समझ में आता है कि तत्त्व के उपदेश में शान्ति मिलती है।

मुमुक्षु! तुम करोड़ों का द्रव्य दान में दे सकते हो, नाम कमा सकते हो, लेकिन कोटि-कोटि द्रव्यों से भी शान्ति को नहीं खरीद सकते हो। वाणी

कालिया नाग को भी टोकनी में शान्त बिठा सकती है। जब बीन के माधुर्य से कालिया नाग शान्त हो सकता है, तो वीतराग वाणी के माधुर्य से हृदय की कलुषता के नाग शान्त क्यों नहीं हो सकते?

वीणा से साँप को शान्ति मिलती है, तो जिनवाणी से इस मनुष्य को भी शान्ति मिलती है। वर्द्धमान को ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो चुके, तब भी उन वर्द्धमान के नाम पर शान्त बैठते हो।

परिपूर्ण निर्णय करके बैठना, शान्ति श्रुत में है। शान्ति तत्त्व में है, इसलिये आचार्य महाराज ने बड़ी सुन्दर बात कह दी है- परम औषधि, परम मन्त्र जिनवाणी है। वही इस काम वासना के साँप को शान्त कर पायेगी। वैराग्य की भावना महामन्त्र है।

छोटे-छोटे बच्चे सभा में शान्त बैठे रहते हैं, कहते हैं-'समझ में तो कुछ नहीं आता, लेकिन अच्छा लगता है, सो आकर बैठ जाता हूँ।' माँ! सत्य बताना-अपने छोटे से बेटे को कितने शब्दों से खिलाती है? पर ध्रुव सत्य है, उस एक महीने के शिशु को उस माँ की एक गोदी शान्ति देती है। रो रहा हो तो कितने ही खुन-खुना दो, गोली मिठाइयाँ खिलाओ, तब भी चुप नहीं होगा और माँ गोदी में रख ले, तो बच्चा शान्त। ऐसे ही जगत् की शब्द-रचनायें खुन-खुने हैं। वे मात्र कान फोड़ेंगे अरहन्त की वाणी माँ की गोद है, उसमें शान्ति मिलती है।

अपने आगम के शब्दों को दूसरों को देते रहोगे और पर की बात करोगे, तो मुमुक्षु! किसी का शब्द नहीं है, आगम की वाणी है। आगम परमागम ये सब अरहन्त की देशना है। यह भूल मत कर लेना कि ये उनका शब्द है। ये श्रुत का शब्द है। किसी को विशेष मत बनने दो, सबको सामान्य कर दो। विशेष में फिर टिकिट लगती है।

आज घर जाकर माँ से कह देना मत डाँटो, मत पीटो। मैं मुनि बन गया तो तुमको नमोस्तु करना पड़ेगा।

ज्ञानियो! आचार्यभगवान् कह रहे हैं कि जो अशुभ-परिणामी-विषयी-प्राणी है, उसकी प्रवृत्ति कैसी है?

वह सम्पूर्ण सद् व्रतों को छोड़ देता है, न गुरुवाणी को स्वीकारता है, उसकी लज्जा तो पलायन ही कर जाती है, गुणों का समुदाय भी उससे विरक्त हो जाता है और उसका स्वास्थ्य भी क्षीण हो जाता है। अधिक अशुभ करेगा, अब्रह्म का सेवन करेगा, तो बुद्धि तो नष्ट होगी ही लज्जा भी समाप्त होगी, धर्म नष्ट होगा, देह का भी नाश होगा, स्वास्थ्य भी बिगड़ेगा। ज्ञानियो! जिनको मोक्षसुख की इच्छा है, वे इस काम को हेय मान कर छोड़ दें। यदि संसार को छोड़ना चाहते हो तो सज्जन पुरुषों को इन वासनाओं से अपनी रक्षा प्रतिक्षण करना चाहिये। ''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

संक्षेप नाम	ग्रंथ का नाम	ग्रंथकार आचार्य
आ.पु.	आदि पुराण	आचार्य श्री जिनसेन स्वामी
आ.भ.	आचार्य भक्ति	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
आ.शा.	आत्मानुशासन	आचार्य श्री गुणभद्र स्वामी
आ.मी.	आप्त मीमांसा	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
इष्ट.	इष्टोपदेश	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
का.आ.	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्य श्री कार्तिकेय स्वामी
त.सू.	तत्त्वार्थ सूत्र	आचार्य श्री उमास्वामी
द.पा.	दर्शन-पाहुड	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
प.मु.सू.	परीक्षा मुख सूत्र	आचार्य श्री माणिक्य नंदी
पंचा.	पञ्चास्तिकाय	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
पु.सि.	पुरुषार्थसिद्धि युपाय	आचार्य श्री अमृतचंद्र स्वामी
मो.पा.	मोक्ष पाहुड	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
मूला.	मूलाचार	आचार्य श्री वट्टकेर स्वामी
युक्त.	युक्त्यनुशासन	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
र.श्रा.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
वृ.स.स./स्व.स्तो.	स्वयंभू स्त्रोत	आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी
स्व.सं.	स्वरुप-संबोधन	आचार्य श्री अकलंक स्वामी
स.त.	समाधितंत्र	आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी
स.सा.	समयसार	आचार्य श्री कुन्द कुन्द स्वामी
सा.स.	सार-समुच्चय	आचार्य श्री कुलभाद्र स्वामी

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, **श्री महावीरजी पाटनी**, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर
श्री राजेशजी जैन (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर
श्री संतोषकुमारजी जैन (पटनावाले), सागर
श्री माँगीलालजी रमेशकुमारजी पहाडिया, हैदराबाद
श्री टी.के.वेद, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारयणजी, नागपुर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन (जैनको, समाजसेवी), इंदौर
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल), इंदौर
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. श्री जैनेन्द्रकुमार जैन, छत्रपति नगर, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक, (परिवार) छत्रपति नगर, इंदौर
श्री पी.सी. जैन सा., बैंकवाले, इंदौर
श्री प्रमोदकुमारजी जैन (बारदाना),सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू जैन (सिहोरा), सागर
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पं. कमलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशचंदजी, सुखलिया, इंदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाडिया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोंदिया

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री वीरेन्द्रकुमारजी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीडीवाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी जैन, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्री पुष्पाजी निर्मलजी काला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (सुपारी वाले), सागर

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इंदौर...
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो. श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमारजी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरूजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्री भागचंदजी पाटनी (सेन्ट परसेन्ट)

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन,
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमारजी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसादजी जैन
श्री नरेन्द्रकुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पाटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरुपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड़ लाईनस)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमारजी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बडकुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईट इंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंदजी बजाज
श्री श्रीपालजी बडकुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

अन्य शहर :
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन
(नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी ट्रेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्री प्रमोदजी चौधरी (जैन नगर), भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली